दरियाई लाल कपूर

धरती पर स्वर्ग

धरती पर स्वर्ग

लेखक

दरियाईलाल कपूर

राधास्वामी सत्संग ब्यास (पंजाब)

प्रकाशक :

एस० एल० सोंधी

सेक्रेटरी,
राधास्वामी सत्संग, ब्यास
ज़िला अमृतसर (पंजाब)

प्रथम संस्करण- ५,००० नवम्बर, १९७३
द्वितीय संस्करण-११,००० जनवरी, १९७५
तृतीय संस्करण-२१,००० अक्तूबर, १९७५
चतुर्थ संस्करण- ७,००० अक्तूबर, १९७८
पंचम संस्करण-१०,००० दिसम्बर, १९७९
षष्ठम संस्करण-१०,००० मार्च, १९८१
सप्तम संस्करण- ७,००० सितम्बर, १९८२
अष्टम संस्करण-१०,००० जून, १९८३

मुद्रक :

बत्रा आफसेट प्रिन्टर्स

सी/१५२, इन्डस्ट्रियल एरिया नारायणा,
फेस-1, नई दिल्ली.

अनुक्रमणिका

हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी

समर्पण

मैं अर्पण करता हूँ इस तुच्छ भेंट को मेरे प्यारे सतगुरु दीन-दयाल महाराज सावनसिंहजी के पवित्र चरण-कमलों में, जिसे किसी भेंट की ज़रूरत नहीं।

कागज़ के इन चन्द पुरज़ों के साथ कुछ बड़े-बड़े ऐसे उपहार भी लाया हूँ, जिनका लेश-मात्र भी तेरे पास नहीं है। मनुष्य वही अर्पण कर सकता है जो कि उसके पास हो। मेरे पास जो कुछ है वह सारा का सारा ही तुझ को अर्पण करता हूँ। मेरे पास कुछ थोड़ा नहीं है, खज़ानों के खज़ाने भरे पड़े हैं—ईर्ष्या और द्वेष के, क्रोध व संकीर्णता के, लालच और लोभ के, मान व अहंकार के, काम और मोह के, निर्दयता व अन्याय तथा आशा व तृष्णा के! इस कलुष के ढेर के छकड़े के छकड़े भर कर ले आया हूँ। मेरे कर्मों की इस काली बही पर क्षमा की लेखनी फेरने के लिये सिर्फ तेरी दवात में ही पर्याप्त स्याही है। तू रहमत का दरिया है, अनाथों का नाथ व निर्बलों का सम्बल है। तू समर्थ है, बख्शिन्द है। उठा अपनी लेखनी और लिख दे हुक्म कि हमने इस अभागे महापापी के गुनाहों को माफ कर दिया।

'करीमा ब-बख़्शाए बर हाले मा, के हस्तम असीरे कमन्द हवा।
नदारेम ग़ैर अज़ तु फ़रयाद रस, तुई आसियाँ रा ख़ता बख़्शो बस।
मा पुर गुनाहेम तू दरियाए रहमती, जाए के फ़ज़्ले तुस्त चे बाशद गुनाहे मा।*

तेरे दर का भिखारी,

दरियाईलाल

---

* हे दीनदयाल, मेरे हाल पर रहम कर। मैं इन्द्रियों के पाश में जकड़ा हुआ हूँ। तेरे सिवाय मेरी फ़रियाद सुनने वाला कोई नहीं। तू ही गुनहगारों के पाप बख़्शनेवाला है। मैं पापों से भरपूर हूँ, तू रहमत का सागर है। तेरी दया के समुद्र के सामने मेरे पाप क्या चीज हैं!

परिचय

इस पुस्तक के लेखक दीवान दरियाईलाल कपूर को एक योग्य जज और प्रशासक (वित्त-मन्त्री) के रूप में तो मैं उस समय से जानता था जब आप इन पदों पर कपूरथला की भूतपूर्व रियासत में सुशोभित थे। परन्तु आपके प्रवीण लेखक होने का पता तो तब चला जब आपने रिटायर होने के बाद लेखनी सँभाली।

आपकी अंग्रेज़ी पुस्तक 'कॉल आफ़ दि ग्रेट मास्टर' (सन्त समागम) तो इतनी लोकप्रिय हुई कि इसका प्रथम संस्करण दो वर्ष में ही समाप्त हो गया और अब द्वितीय संस्करण निकलने वाला है। 'धरती पर स्वर्ग' में आपने डेरा बाबा जैमलसिंह का संक्षिप्त इतिहास तथा उन महान सन्त-सतगुरु साहिबान का वृत्तान्त लिखा है जिन्होंने इस छोटी-सी बस्ती को वह सम्मान प्रदान किया कि इसे विश्व में रूहानियत का केन्द्र बना दिया है।

आपकी लेखन-शैली विद्वत्तापूर्ण है और अध्यात्म के विषय में आपको गहरा अध्ययन है। आपने महान सतगुरु हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी से सन् १९१० में नाम लेकर ३८ साल तक हुज़ूर के चरणों में रहने का सौभाग्य व गौरव प्राप्त किया है। हुज़ूर के महाप्रयाण के बाद उनके उत्तराधिकारियों की कृपा-पूर्ण छत्र-छाया में आप उनके बहुत निकट रहे हैं। अब आप कई वर्षों से डेरे में ही निवास करते हैं। आजकल आप सन्त-सतगुरु बाबा चरनसिंहजी महाराज के निजी सचिव हैं। यद्यपि आपकी आयु अस्सी वर्ष के करीब है, लेकिन लिखने का उत्साह तरुणों जैसा है। आपकी इस पुस्तक ने एक पुरानी ज़रूरत को पूरा किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि रूहानियत के जिज्ञासुओं को इस पुस्तक के द्वारा सन्त-मत को समझने में सहायता मिलेगी।

प्रभुदयाल शर्मा

२२ दिसम्बर, १९६६ (जज, हाई कोर्ट, चण्डीगढ़)

प्रकाशक की ओर से

'धरती पर स्वर्ग' दीवान साहब दरियाईलाल कपूर की प्रसिद्ध उर्दू पुस्तक 'फिरदौसे बरीं ब रूए जमीं' का हिन्दी अनुवाद है। इसमें दीवान साहब ने डेरा बाबा जैमलसिंह की स्थापना तथा विकास का वृत्तान्त दिया है। डेरे का इतिहास एक तरह से उन महान सन्तों के जीवन का वृत्तान्त है जिनकी अपार कृपा और करुणा, प्रेम और परिश्रम से यह स्थान निर्जन वन से विकसित होकर आज एक पावन और सुन्दर उद्यान बन गया है। इसके साथ ही यह सन्त-मत के प्रसार का विवरण है, जो पंजाब के एक छोटे से क्षेत्र से शुरू होकर आज भारत के हर नगर और प्रान्त में ही नहीं बल्कि विश्व के प्रायः सभी देशों में पहुँच चुका है। लेखक ने इस पुस्तक में राधास्वामी सत्संग ब्यास के क्रमबद्ध इतिहास के साथ ही यहाँ के महान सतगुरु साहिबान के पवित्र तथा प्रेरक जीवन का परिचय और उनकी दया-मेहर के वृत्तान्त देने तथा उनकी महिमा व महानता को प्रकट करने का प्रयास भी किया है।

दीवान साहब ने बी. ए. एलएल. बी. की परीक्षा पास करने के उपरान्त जालंधर में वकालत शुरू की और शीघ्र ही आपकी गणना वहाँ के श्रेष्ठ वकीलों में की जाने लगी। सात वर्ष बाद सरकार ने आपको न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया। आप कपूरथला राज्य में वित्त-मन्त्री भी रह चुके हैं। सन् १९४७ में सेवा-निवृत्त होने पर आप अपना अधिकांश समय डेरे में बिताने लगे तथा १९५७ में तो आपने पूरी तरह से डेरे में निवास करना शुरू कर दिया। आप कुशाग्र-बुद्धि विद्वान, अभ्यासी बुजुर्ग तथा विनम्र सत्संगी हैं। इस आयु में भी आप सतगुरु तथा डेरे की सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं। आप पिछले सोलह वर्षों से हुजूर महाराज चरनसिंहजी के निजी सचिव (पर्सनल सेक्रेटरी) हैं।

दीवान साहब की अंग्रेज़ी पुस्तक "कॉल आफ दि ग्रेट मास्टर" (हिन्दी में 'सन्त-समागम') बहुत लोक-प्रिय हुई है। इसके अनुवाद हिन्दी, पंजाबी, उर्दू तथा कुछ योरोपीय भाषाओं में हो चुके हैं और अरबी अनुवाद भी प्रकाशनार्थ तैयार है। दीवान साहब में आज भी युवकों-सा उत्साह और स्फूर्ति है। 'फिरदौसे बरीं' के उर्दू प्रकाशन के बाद आपको अपने अध्ययन

ग्रौर खोज में कई तथ्य मिले तथा इस उम्र में भी ग्रापने ग्रथक परिश्रम करके ग्रपनी पुस्तक का यह संशोधित ग्रौर परिवर्धित संस्करण तैयार किया है।

दीवान साहब की ग्रायु इस समय ८५ वर्ष के करीब है। ग्रापने ३० दिसम्बर १९१० को हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी से नाम की दौलत प्राप्त की तथा तब से निरन्तर डेरे में ग्राते तथा सतगुरु की सेवा करते रहे हैं। ग्रापको ६३ वर्षों के ग्रध्ययन, ग्रभ्यास ग्रौर डेरे के तीन सतगुरु साहिबान के निकट सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त हुग्रा है। ग्रापने इस ग्रवसर का पूरा लाभ उठाया है। इतने वर्षों के ग्रनुभव, ज्ञान तथा डेरे के विकास की प्रत्यक्ष जानकारी के कारण ग्राप इस पुस्तक को लिखने के सब प्रकार से योग्य तथा ग्रधिकारी व्यक्ति हैं।

दीवान साहब ने इस हिन्दी संस्करण के साथ ही इस ग्रनमोल ग्रन्थ के सर्वाधिकार राधास्वामी सत्संग ब्यास को भेंट कर दिये हैं, जिसके लिये हम ग्रापके ग्राभारी हैं।

ग्राशा है प्रेमी पाठक 'धरती पर स्वर्ग' को रुचिप्रद तथा प्रेरक पायेंगे ग्रौर इसे पढ़ कर सन्त-मार्ग पर दृढ़ता-पूर्वक ग्रग्रसर होने के लिये ग्रौर ग्रधिक उत्साह प्राप्त करेंगे।

डेरा बाबा जैमलसिंह
ग्रक्तूबर १९७३.

के. एल. खन्ना
सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास

प्राक्कथन

इस पवित्र वृत्तान्त के लिखने का प्रारम्भ तो वास्तव में सन् १९१२ में हुआ जब मैं हुज़ूर महाराज सतगुरु दीन-दयाल बाबा सावनसिंहजी महाराज के साथ स्वामीजी महाराज के भण्डारे के अवसर पर पहली बार आगरा गया। सरदार भगतसिंहजी वकील जालन्धर वाले, सरदार जगतसिंहजी (बाद में सरदार बहादुरजी महाराज), लाला मुन्शीरामजी, पंडित किशनचन्दजी वकील अमृतसर वाले तथा कुछ और सत्संगी भी साथ थे। उस समय स्वामीजी महाराज के समय के कई सत्संगी जीवित थे। मैं उनके पास जाकर पुराने समय की बातें सुनता रहता था। एक रात मैं करीब ग्यारह बजे वापस आया। हुज़ूर महाराजजी अभी जाग रहे थे। हमारे अन्य साथी, हुज़ूर के पलंग के पास फर्श पर बैठे हुए थे। मैं भी चुपचाप सबसे पीछे जा बैठा। हुज़ूर के पूछने पर मैंने निवेदन किया कि "हुज़ूर! अभी तक बच्चों की तरह कहानियाँ सुनने का शौक मुझमें कम नहीं हुआ। बीबी सेवादासी जी व अन्य पुराने सत्संगियों से बावाजी महाराज और स्वामीजी महाराज के दिनों की बातें और उनके चमत्कार के वृत्तान्त सुन रहा था। उसमें समय बीतने का ख़याल न रहा।" महाराजजी ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और जैसे बच्चों को प्यार से समझाते हैं इस तरह फ़रमाया, "ऐसा करो, एक कापी ले लो। उसमें इन बातों को जब भी समय मिले लिख लिया करो। इससे एक तो तुम्हें फायदा होगा और सम्भव है औरों को भी इससे किसी समय लाभ पहुँचे।"

उस समय की एक न भुलाई जा सकने वाली बात, जिसने मेरे दिल पर गहरा असर किया और जो अब वहाँ (आगरा में) लुप्त हो चुकी है, वहाँ के सब सत्संगी भाइयों व बहनों का हमारे प्रति हार्दिक प्यार था जो उनके हर वचन और कर्म से उमड़ कर निकलता था। जब वे बाबाजी महाराज तथा बाबा सावनसिंहजी महाराज की महिमा करते तो जी चाहता कि उनके चरण चूम लें। रायबहादुर सेठ सुदर्शनसिंहजी साहब* से जब हुज़ूर महाराजजी ने हमारा परिचय कराया तो सेठ साहब उठ कर खड़े हो गये और हम

*आप स्वामीजी महाराज के भतीजे अर्थात् चाचाजी महाराज सेठ प्रतापसिंहजी के सुपुत्र थे।

में से एक-एक को गले लगाया । हमने बहुत कोशिश की कि उनके चरणों में गिर कर मत्था टेकें, परन्तु उनकी बाहों से छूटना कठिन था । इसके बाद की मुलाकातों में भी जब कभी हम उनके चरणों में झुकने की कोशिश करते, वे हमें अपनी बाहों में समेट कर हृदय से लगा लेते । बाकी लोगों के प्रेम का अनुमान आप इससे लगा लें । हम स्वामीबाग में ठहरे हुए थे, जहाँ चाचाजी साहब प्रतापसिंहजी के समय में बाबाजी महाराज ने अपनी संगत के ठहरने के लिए कोठरियाँ, चौबारा, रसोई-घर आदि बनवाये थे (इनका निर्माण हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज द्वारा सेवा में दी गई राशि से करवाया गया था) । दिन भर सत्संगी आते और बड़े प्रेम के साथ बार-बार पूछते कि किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो बतायें, कोई सेवा हो तो फ़रमाएँ । हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी को तो अपने जूतों की सँभाल करनी मुश्किल हो जाती । एक बार किसी प्रकार उनके जूते सेठ सुदर्शनसिंह साहब के हाथ लग गये । उन्हें अपने सर पर रख कर सेठ साहब फ़रमाने लगे कि 'देखो, क्या आलीशान ताज पंजाब से हमारे लिये आया है ।' वाह ! विनय और नम्रता भी सन्तों-महात्माओं की ही सम्पत्ति है ।

खैर, इस इतिहास का प्रारम्भ तो संयोगवश हुज़ूर महाराजजी की कृपा व आशीर्वाद से हो गया और उनकी दया से कई वर्षों में धीरे-धीरे काफी सामग्री भी इकट्ठी हो गई । परन्तु कभी यह विचार न आया कि इसे पुस्तक के रूप में छपवाया जाय । डेरे में किसी भण्डारे के अवसर पर मेरे कुछ मित्रों ने विचार प्रकट किया कि डेरे के इतिहास तथा यहाँ के महान सन्तों के विषय में कुछ लिखा जाना चाहिए । इन मित्रों में डेरे के सेक्रेटरी लाला मुन्शीराम, रा. ब. लाला शंकरदास (सेवा-निवृत्त पब्लिक प्रासिक्यूटर), रा. ब. गुलवन्तराय (सेवा-निवृत्त ज़िला व सेशन जज), बख्शी चाननशाह (सेवा निवृत्त उप-आयुक्त आय-कर), लाला बालकराम (सेवा-निवृत्त ज़िला व सेशन जज), लाला अर्जुनदास और लाला धनराज (वकील, देहली) थे । कुछ मित्रों को पता था कि मैं समय-समय पर कुछ बातें नोट करता रहा हूं । उन्होंने आग्रह किया कि मैं अपने नोटस् के आधार पर तथा अन्य सामग्री एकत्रित करके डेरे के इतिहास को कलम-बद्ध करूँ । लेखन कार्य में किसी प्रकार का अनुभव न होने के कारण मैं इस कार्य का भार स्वीकार करने में झिझक रहा था । परन्तु इन मित्रों ने बहुत आग्रह किया तथा सबने मिल कर बहुत जोर दिया । उन्होंने कहा कि दिनोंदिन पुराने सत्संगी इस असार संसार को छोड़ कर जा रहे हैं । राय साहब हरनारायणजी, सरदार भगत-सिंहजी, सरदार सेवासिंहजी आदि सत्संगी जो सतगुरु महाराज सावनसिंहजी

के निकट रहे हैं, प्रयाण कर चुके हैं और अपने साथ कितनी निधियाँ छिपा कर ले गये हैं। हम सब वृद्ध हो चुके हैं और कूच की तैयारी में हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम डेरे के इतिहास तथा हुज़ूर महाराजजी के जीवन-वृत्तान्त को लिख जायें जो कि आनेवाली पीढ़ियों के लिये प्रेरणा और प्रकाश-स्तम्भ का काम दे।

इस प्रकार इन मित्रों के आग्रह, प्रेरणा और सहयोग से यह कार्य शुरू हुआ। सतगुरु दीन-दयाल की कृपा से धीरे-धीरे लेखन कार्य चलता रहा। फिर भी अन्य कार्यों के भार तथा कुछ अपने आलस्य के कारण इस कार्य को पूर्ण करने में देर होती गई। लेकिन सन १९६४ के आरम्भ में मेरे आदरणीय मित्र रायबहादुर लाला शंकरदास ने मुझे एक पत्र लिखा और इस कार्य को जल्दी सम्पूर्ण करने की ताकीद की। आपने लिखा कि पिछले छः सात वर्षों में प्रो. जगमोहनलालजी, लाला बालकरामजी, रा. ब. गुलवन्तरायजी, लाला मुन्शीरामजी, बाबू गुलाबसिंहजी तथा कई पुराने सत्संगी चोला छोड़ चुके हैं और "हम लोगों का भी क्या भरोसा ? कुछ साल, महीनों या हो सकता है कि चन्द हफ़्तों के ही मेहमान हों।" इस पत्र को लिखने के कुछ ही महीनों के अन्दर जब लाला शंकरदासजी भी हमें छोड़ गये तो मेरे दिल को चोट लगी और उनके पत्र के शब्द याद आने लगे। यद्यपि फरवरी १९६२ में लेखन का कार्य लगभग समाप्त हो गया था, फिर भी इसके प्रकाशन की ओर मेरा ध्यान न था। लाला शंकरदासजी के प्रयाण के बाद पाण्डुलिपि को फिर से देख कर १९६६ में तैयार किया तथा प्रकाशन के लिये प्रेस को दे दिया।

इस पुस्तक में सन् १९१० से पहले की घटनाएँ निम्नलिखित महानुभावों के द्वारा दिये गये वृत्तान्तों पर आधारित हैं :—बाबा गरीबदासजी, रायबहादुर सेठ सुदर्शनसिंहजी, बीबी सेवादासीजी (आप तीनों ही स्वामीजी महाराज के सत्संगी थे तथा बाबा जैमलसिंहजी महाराज के निकट सम्पर्क में आ चुके थे); बीबी रुक्को (माता राधाजी की सेविका), बाबा बग्गासिंह, महन्त इन्दरसिंह (जो बाबाजी महाराज के साथ उनकी पलटन में नौकर था तथा संभवतः बाबाजी का पहला सत्संगी था), बाबाजी महाराज के सेवक भाई मन्नासिंह, बाबा निज़ामुद्दीन, मुन्शी चाननमल, बीबी रली के पिता भाई मिलखीराम, भाई मोतीराम, लाला परमानन्द बजाज, बाबू गुलाबसिंहजी, भाई सुरैनसिंहजी व मघरसिंहजी (ये सभी व्यक्ति बाबाजी महाराज के चिताये हुए थे); वड़ाइच व बलसराय ग्रामों के कुछ वृद्ध सज्जन (सरदार लालसिंहजी, लम्बरदार जगतसिंहजी, आदि), भाई अरुड़सिंहजी व बन्तासिंह

जी (दोनों ही बहुत समय तक महाराज सावनसिंहजी के निजी सेवक थे तथा हुज़ूर की सरकारी नौकरी के दिनों में तथा बाद तक रहे), हुज़ूर महाराज जी के सुपुत्र सरदार बचितसिंहजी, तथा कई अन्य बुजुर्ग सत्संगी जिनके सम्पर्क में आने का मुझे सौभाग्य प्राप्त होता रहा । स्वयं हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी भी कभी-कभी सत्संगों में अथवा वार्तालाप के दौरान में पुरानी बातों का वर्णन किया करते थे, जिनका भी मैंने पुस्तक में उल्लेख किया है।

सन् १९१० के बाद की घटनायें लाला मुन्शीराम, रा. ब. गुलवन्तराय, रा. ब. शंकरदास, लाला बालकराम, बख्शी चाननशाह, रायसाहब लाला अर्जुनदास, भाई शादी, बीबी रली, तथा अनेक सत्संगियों की आंखों-देखी हैं। मुझे १९१० में नाम दान का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और मैं तब से निरन्तर डेरे में आता रहा हूँ। इस वृत्तान्त में कई बातें मेरे अपने अनुभव की भी हैं।

'फिरदौसे बरीं' के दूसरे संस्करण के बाद मेरे कुछ मित्रों व सत्संगी बन्धुओं ने डेरे के इतिहास और बाबाजी महाराज, हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी तथा सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी के विषय में बहुत कुछ और जानकारी दी। उनको देखते हुए तथा मित्रों के सुझाव पर मैंने इस पुस्तक का संशोधन किया तथा इसमें और सामग्री जोड़ी है। कई वृत्तान्तों के बारे में फिर से खोज की है तथा पुस्तक में आज तक के वृत्तान्तों को शामिल करने का प्रयास किया है; और अब पाठकों की सेवा में यह संशोधित, परवर्तित और परिवर्धित पुस्तक पेश कर रहा हूँ।

सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी के विषय में पिछले उर्दू संस्करणों में बहुत थोड़ा लिखा था। पंडित लालचन्दजी धर्मानी तथा धर्मानी परिवार, लाला शंकरदासजी सोंधी के परिवार (श्री. एस. एल. सोंधी, एयर वाइस मार्शल सोंधी) तथा प्रो. सरदार बलवन्तसिंह ने इस विषय में मुझे काफी सामग्री दी है। जिन दिनों सरदार बहादुरजी लायलपुर कृषि कालेज में प्रोफेसर थे, तब धर्मानी परिवार तथा सोंधी परिवार भी लायलपुर में निवास करते थे तथा सरदार बहादुरजी के निकट सम्पर्क में आये थे। पंडित लालचन्दजी तो हमेशा सरदार बहादुर महाराजजी के साथ रहते थे। सरदार बलवन्तसिंहजी लायलपुर में सरदार बहादुरजी के विद्यार्थी थे तथा तब से सरदार बहादुर महाराजजी के अन्तिम दिनों तक निकट सम्पर्क में रहे। इन के अतिरिक्त बीबी रली, लम्बरदार जगतसिंह, सरदार गुरदयालसिंह, बख्शी मलूकचन्दजी, डाक्टर कुमारी सिन्हा, श्री रामनाथ मेहता तथा कुछ और सत्संगियों की सहायता से हुज़ूर सरदार बहादुर महाराजजी का वृत्तान्त फिर से लिखा गया है। मैं इन सभी महानुभावों का आभारी हूँ।

मौजूदा सन्त-सतगुरु महाराज चरनसिंहजी के विषय में मैंने पूरा अंश फिर से लिखा है तथा उसे आज तक लाने का प्रयास किया है। इसमें हुजूर के अनेक सत्संगी, भारत तथा विदेश के विभिन्न सत्संग-केन्द्रों के सेक्रेटरी, कुमारी लुईस हिलगर, मिस्टर एच. एफ. वीकली, मिस्टर सेम बूसा, श्री राम नाथ मेहता, प्रोफेसर जनक पुरी, श्री मदन मेहता, श्री कृष्ण बबानी और एयर वाईस-मार्शल सोंधी (अंतिम पाँचों सज्जन महाराजजी की विदेश यात्राओं में उनके प्रवासकालीन सेक्रेटरी रहे हैं) तथा भारत व विदेश के अन्य अनेक सत्संगियों ने सहायता दी है जिनका मैं हृदय से आभारी हूँ। प्रस्तुत पुस्तक के इस हिन्दी संस्करण को तैयार करने में श्री वीरेन्द्र सेठी ने जो मदद दी है उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

सबसे बढ़ कर आभारी हूँ मैं सतगुरु दीन-दयाल का जिनकी दया-मेहर से यह ग्रन्थ सम्पूर्ण होकर संगत तथा पाठकों की सेवा में जा रहा है। मैं कोई लेखक, विचारक अथवा साहित्यकार नहीं हूँ, न ज्ञानी हूँ, न विद्वान और न ही भाषा, शैली अथवा मुहावरों के प्रयोग में किसी प्रकार की योग्यता का दावा रखता हूँ। इतना अवश्य है कि सन् १९१० में इस नाचीज गुनहगार को सतगुरु दीन-दयाल ने अपने पवित्र चरणों में स्थान दिया और मैंने तब से आज तक तीन महान सन्तों के निकट सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त किया है। अपने ६२ वर्षों के इस समय में जो कुछ मैंने देखा और समझा उसे इन पृष्ठों में प्रकट करने का प्रयास किया है। इसमें अपनी त्रुटियों के लिये मैं अपने प्यारे सतगुरु से क्षमा याचना करता हूँ तथा साथ ही उदार पाठकों से भी माफी चाहता हूँ।

"अज़ बंदगाने खता व अज़ बुज़ुर्गाने अता*"

अन्त में निवेदन है कि मैंने इस पुस्तक में डेरे के इतिहास के साथ ही यहाँ के महान सन्त-सतगुरु साहिबानों की महिमा प्रकट करने का प्रयास किया है। परन्तु सन्तों की महिमा कोई कर नहीं सकता, उनकी महिमा अपार है, और न ही उन्हें कोई समझ सकता है। महान सन्त तुलसी साहिब के शब्दों में मैं यही दोहराऊँगा कि "जो कोई कहे सन्त को चीन्हा। तुलसी हाथ कान पर दीन्हा।"

मेरा यह परम सौभाग्य होगा यदि यह पुस्तक मेरे प्यारे सतगुरु के दरबार में मंजूर हो तथा पाठकों को भाये।

अक्तूबर, १९७३

विनीत
दरियाईलाल कपूर

---

*छोटों से भूल होती रहती है, बड़ों का काम उन्हें क्षमा करना है।

अध्याय १

पवित्र डेरा और उसके संस्थापक

डेरा बाबा जैमलसिंह की स्थापना सन् १८९१ में बाबा जैमलसिंहजी महाराज ने की थी। आपने तहसील बटाला में ग्राम घुमान के एक जाट परिवार में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम सरदार जोधसिंहजी तथा माता का नाम बीबी दयाकौर था। आपका जन्म संवत् १८९६ के सावन मास, तदनुसार जुलाई सन् १८३९ में हुआ था। जन्म से ही आपकी रुचि परमार्थ की ओर थी। बचपन से ही हृदय ईश्वर-भक्ति और परमात्मा के प्रेम से परिपूर्ण था। घुमान ग्राम में एक नामदेवजी का देहरा है, जिसके बारे में कहा जाता है कि सन्त नामदेव ने अपने जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष यहाँ बिताये थे। बाबा जैमलसिंहजी छोटी उम्र से ही सुबह-शाम वहाँ जाते और घण्टों वहाँ के बाबा खेमदासजी के पास बैठ कर गुरुवाणी सुनते रहते। बाबा जी ने आपके प्रेम और लगन से प्रभावित होकर आपको वाणी पढ़ाना शुरू कर दिया। इस प्रकार छोटी उम्र में ही आप ग्रन्थ साहिब का पाठ शुद्ध रीति से करने लगे और जपजी व सुखमनी साहिब आपको ज़बानी याद हो गये।

पूर्ण पुरुष जब संसार में आते हैं तो बचपन से ही उनकी महानता के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। जैसे बिजली की चमक काली घटाओं को चीर कर बाहर आ जाती है, वैसे ही परमात्मा का प्रकाश स्थूल शरीर में छिपाने से भी नहीं छिपता। आध्यात्मिक सूर्य की किरणें छन-छन कर तत्वों के बन्धन से निकल कर प्रकट हो ही जाती हैं। आठ या नौ वर्ष की उम्र में हीं बाबा जी के आग्रह पर खेमदासजी ने उन्हें 'सोहं सतनाम' के जाप की विधि सिखा दी। उससे आपका मन एकाग्र तो हुआ, परन्तु आन्तरिक रूहानी जिज्ञासा शान्त न हुई। बाबाजी को तो उस नाम की खोज थी जिसके विषय में ग्रन्थ साहिब-में लिखा है, 'नामै ही ते सभु किछु होआ' और 'नाम के धारे खंड ब्रह्मंड, नाम के धारे आगास पाताल, नाम के धारे पुरीआ सभ भवन'। आपका जिज्ञासु मन यह कैसे स्वीकार कर सकता था कि इन ज़बान से बोले जाने वाले लफ़्ज़ों ने खंडों-ब्रह्माण्डों की रचना की है अथवा कोई शाब्दिक नाम विश्व की उत्पत्ति का कारण हो सकता है? उस सच्चे नाम की खोज में, जिसका वर्णन गुरु ग्रन्थ साहिब में स्थान-स्थान पर किया गया है, आप नामदेव

के देहरे के दर्शन को आने वाले साधु-महात्माओं के पास सारा दिन बैठे रहते। आप उनकी हर प्रकार से सेवा करते तथा उनके साथ दिन-रात परमार्थ की चर्चा करते रहते। घर के काम-काज और अपने पुरखों के धन्धे कृषि की ओर आपका ज़रा भी ध्यान न था।

आपके पिता के मन में डर पैदा हो गया कि कहीं उनका होनहार पुत्र साधुओं की संगति में रह कर साधू ही न बन जाये। अतएव साधुओं के मेल-मिलाप से दूर रखने के विचार से उन्होंने आपको आपकी बहन बीबी ताबो के पास ग्राम सठियाला में भेज दिया। लेकिन 'घायल की गति घायल जाने, और न जाने कोय'; जिसके हृदय में मालिक से मिलने की लगन और तड़प जाग उठी हो उसकी अवस्था को साधारण दुनियादार क्या समझ सकते हैं! उसके मार्ग में नदी, पहाड़ और दूरी कोई रुकावट नहीं डाल सकते। प्रेम कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेता है। यहाँ भी साधु-महात्माओं से आपकी भेंट होने लगी। एक योगी से मुलाकात होने पर आपने उससे प्राणायाम तथा योग सीखना शुरू कर दिया और शीघ्र ही उनमें काफ़ी निपुणता प्राप्त कर ली। वह योगी कहने लगा, "बेटा तुम तो पिछले जन्म के कोई पूर्ण योगी लगते हो। इस अभ्यास में तुम इस प्रकार उन्नति कर रहे हो जैसे यह सभी क्रियाएँ तुम पहले सिद्ध कर चुके हो।" पर कुछ समय के बाद बाबाजी ने इसे भी छोड़ दिया, क्योंकि ग्रन्थ साहिब ने इस विधि को 'प्राणयोग सब झगड़ा' बता कर इसका निषेध किया है। सरल किशोर हृदय में सत्य के खोज की लगन बढ़ती गई और जैसे-जैसे समय बीतता गया, उत्कण्ठा तीव्र होती गई।

बीबी ताबो ने जब बाबाजी का परमार्थ की ओर इतना गहरा झुकाव देखा तो अपने पिता के पास सन्देश भेजा कि भाई जैमलसिंह का साधु-महात्माओं की संगति का चाव बढ़ रहा है। इस पर पिताजी आपको वापस अपने गाँव ले आये। उस समय आपकी आयु १२-१३ वर्ष की थी। यहाँ आकर बाबाजी ने फिर गुरु ग्रन्थसाहिब का अध्ययन शुरू कर दिया कि ग्रन्थसाहिब में प्राणयोग, वैराग्य, हठकर्म (हठ योग), जप, तप, तीर्थ, व्रत, कर्म-काण्ड आदि का खण्डन किया गया है; फिर वह कौन-सी विधि या अभ्यास का मार्ग है जिस पर चल कर गुरु नानक, कबीर, नामदेव तथा अन्य महात्मा ऊँची रूहानी पदवी पर पहुँचे? उन महात्माओं ने अकाल पुरुष से मिलने का कौन-सा मार्ग बताया है? इसी मार्ग की आपको तलाश थी।

ग्रन्थसाहिब तथा अन्य महात्माओं की वाणियों का अध्ययन करने पर आप इस नतीजे पर पहुँचे कि मालिक की प्राप्ति के लिये किसी ऐसे पूर्ण

महात्मा अथवा सतगुरु की आवश्यकता है जो स्वयं सभी मंज़िलें पार कर चुका हो और जिज्ञासुओं को भी ये मंज़िलें पार कराने में समर्थ हो। ग्रन्थसाहिब में ऐसे पूर्ण महात्मा की तलाश के लिये हर पंक्ति और हर पृष्ठ पर आदेश हैं। अन्य महात्माओं की वाणियों में भी इन आदेशों का प्रबल समर्थन है। अतएव आपको मन में पूर्ण विश्वास हो गया कि पोथियों के पाठ, वेद, शास्त्र आदि के पठन-पाठन अथवा किसी ग्रन्थ की पूजा से परमात्मा की प्राप्ति असम्भव है। गुरु साहिबों की इबादत और अभ्यास की विधि के बारे में काफी अध्ययन और सोच-विचार के बाद बाबाजी इस निर्णय पर पहुँचे कि वे अनहद शब्द के अभ्यासी थे। उनका मार्ग पाँच शब्द का मार्ग था और उन का ध्येय था परमपिता परमात्मा का वह धाम जो ब्रह्म, पार-ब्रह्म आदि लोकों से परे है, जहाँ प्रलय और महाप्रलय नहीं पहुँचते।

अब तलाश शुरू हुई ऐसे महात्मा की जो इस मार्ग का भेद दे सके। जो भी साधु-महात्मा गाँव में आते उनसे आप इस विषय में पूछताछ करते। इस समय आपकी आयु १४ वर्ष के करीब हो गई थी। माता-पिता ने आपको विवाह के बन्धन में बाँधना चाहा। आपने विवाह के लिए साफ़ इन्कार कर दिया। माता पिता को आपके दृढ़ निश्चय और आत्म-बल का काफी अनुभव हो चुका था। इसलिए उन्होंने इस विषय में आप पर अधिक दबाव नहीं डाला। इसके बाद परिवार की ओर से आपको किसी विरोध का सामना न करना पड़ा। आपने सारी उम्र विवाह नहीं किया और बाल-ब्रह्मचारी रहे।

कुछ समय के बाद आपके पिता का देहान्त हो गया। अब एक ओर तो थी माता की सेवा की इच्छा और उसके प्रेम का बन्धन तथा दूसरी ओर थी परमात्मा की प्राप्ति की गहरी लगन। विचित्र दुबिधा थी। अन्त में एक दिन आपने बड़े प्रेम से माता को समझा-बुझा कर उनसे बाहर जाने की इजाज़त ले ली और मनुष्य-जीवन के सच्चे ध्येय की पूर्ति के लिये घर से निकल पड़े।

बाबाजी अमृतसर, लाहौर, ननकाना साहिब, ऐमनाबाद, आदि कई स्थानों में गये, परन्तु जिस अनमोल वस्तु की तलाश थी, वह न मिली। अमृतसर मे एक उदासी साधू से 'घोर शब्द' का अभ्यास सीखा, परन्तु सन्तोष न हुआ। जहाँ भी किसी अभ्यासी महात्मा का पता चलता, आप पहुँच जाते। परन्तु पाँच शब्द का भेदी महात्मा कहीं न मिला। 'घोर शब्द', प्राणायाम, हठयोग, वेदान्त आदि में निपुण हिन्दू व मुसलमान महात्माओं से भेंट की। उनमें से

कई सिद्धियों-शक्तियों के स्वामी भी थे। वे उन्हें शिष्य बनाने को तैयार भी हो जाते, परन्तु ग्रन्थसाहिब में लिखी पूर्ण गुरु की इस पहचान की कसौटी पर कोई पूरा न उतरता :—

घर महि घरु देखाइ देइ, सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु ॥
पंच सबद धुनिकार धुनि, तह बाजै सबदु नीसाणु ॥

पाँच स्थानों और वहाँ की धुनों का भेद तो वे क्या देते, उनको तो यह भी मालूम नहीं था कि पाँच शब्द का कोई मार्ग भी है। सारा पंजाब छान मारा। साधुओं के सभी स्थानों तथा तीर्थों में गये। जिस किशोर अवस्था में आम तौर पर बालक खेल-कूद आदि में लगे रहते हैं, उस कोमल आयु में आप परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग की तलाश में जगह-जगह घूमने लगे। उन दिनों रेलगाड़ी, मोटर, बस आदि नहीं थीं और सारी यात्रा पैदल तय करनी पड़ती थी। परन्तु बाबाजी अपने ध्येय पर अटल थे, वे अपनी तलाश में दृढ़तापूर्वक लगे रहे।

ननकाना साहिब में एक साधू ने आपको हज़रो (ज़िला अटक) निवासी बाबा बालकसिंहजी का पता दिया। आप एक लम्बा सफ़र तय करके वहाँ पहुँचे। बाबा बालकसिंहजी एक साफ-दिल महात्मा थे। उन्होंने कहा, "बेटा, जिस नाम की तुम्हें खोज है वह हमें मालूम नहीं, हम तो 'वाहिगुरु वाहिगुरु' का जाप करते हैं। इससे ज़्यादा हमें पता नहीं।" वहाँ बाबा रामसिंह जी भेणी साहिब वालों से भी आपकी भेंट हुई।

बहुत तलाश के बाद नौशहरा, पेशावर, आदि स्थानों की यात्रा करते हुए बाबाजी होतीमर्दान के पास के एक गाँव में पहुँचे। वहाँ आपकी भेंट एक गृहस्थी महात्मा से हुई। उन्होंने आपके विचार का समर्थन करते हुए कहा, "बेटा, जिस रोग के तुम रोगी हो, उसी का मैं भी हूँ। पंच-शब्द का मार्ग है तो ज़रूर और गुरु साहिबों के अभ्यास का तरीका भी यही था, लेकिन मुझे सिर्फ दो शब्दों का ही ज्ञान है।" इस बात को सुन कर बाबाजी बहुत प्रसन्न हुए और मन में तसल्ली हुई कि वे केवल किसी कल्पित विचार के पीछे नहीं भाग रहे हैं।

वहाँ से लौटते समय साधुओं की एक टोली के साथ आप हृषिकेश की ओर रवाना हो गये। वहाँ कई महीने रहकर अनेक साधुओं से मिले, परन्तु वह अमूल्य निधि जिसकी आपको खोज थी, न मिली। यहाँ से भी निराश होकर वापस लौटने को थे कि आपको पता लगा कि एक बहुत बूढ़ा साधू यहाँ से दस-बारह कोस (३०-४० किलोमीटर) दूर जंगल में रहता है, वह

आबादी में नहीं आता है और न किसी को अपने पास ठहरने देता है। जंगली फल, कन्द-मूल आदि पर अपना गुज़ारा करता है।

बाबाजी तुरन्त उससे मिलने चल पड़े और शाम के समय वहाँ पहुँचे। आपने देखा कि वह महात्मा दिन-रात खड़ा रहता है। उसने पेड़ से दो रस्सियाँ लटका कर उनसे एक रस्सी बाँध रखी है। जब खड़े-खड़े थक जाता है तो उनका सहारा ले लेता है। जब उसने बाबाजी को देखा तो बोला कि तुम यहाँ क्यों आये हो? यहाँ जंगल में रात को रीछ और शेर आते हैं। परन्तु बाबाजी ने निडरतापूर्वक उत्तर दिया, "अगर शेर आपको नहीं खाते तो मुझे कैसे खा लेंगे।" इस पर वह शान्त हो गया। रात भर बाबाजी घने जंगल में उस महात्मा के आश्रम में रहे। इतनी कम उम्र में बाबाजी की खोज की भावना और तीव्र लगन से वह बहुत प्रभावित हुआ और बड़े प्रेम से बातें करने लगा। जब बाबाजी ने पाँच शब्द के मार्ग के विषय में पूछा तो उसने लम्बी साँस लेकर कहा, "जो धुन मुझको है, वही तुमको भी है। इतने वर्षों के अभ्यास से मुझे कुछ सिद्धि और अन्तर्यामिता प्राप्त हो गई है। लेकिन पाँच शब्द के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। मुझे अपनी अन्तर्यामिता से पता चला है कि आगरा शहर में एक परम सन्त, जो सत्रह–अठारह साल से अभ्यास में थे, अब प्रकट हुए हैं और पाँच शब्द के गुप्त हुए मार्ग को फिर से ज़ाहिर कर रहे हैं। उनके पास चले जाओ।" दूसरे दिन बाबाजी को बड़े प्रेम के साथ बिदा करते हुए वह बोला, "मैं भी धीरे-धीरे चल कर आगरा पहुँचूँगा, क्योंकि लगातार खड़े रहने से मेरे पैर भारी हो गये हैं।"

बाबाजी वहाँ से चल कर आगरा पहुँचे। परन्तु अपनी लम्बी खोज की पूर्ति होने की खुशी और सन्त से भेंट करने की उत्कण्ठा में आगरा के उस सन्त का नाम व पता पूछना तक भूल गये थे। अतएव आगरा पहुँचने पर भी खोज अपूर्ण थी और अभी चिन्ता और कठिनाई बाकी थी। आगरा के उन सन्त के किसी मकान, गली, बाज़ार या स्थान का तो पता था नहीं, और जिस किसी से पूछते वह अपनी अनभिज्ञता प्रकट करता। हर गली, बाज़ार व मोहल्ले में खोज शुरू कर दी। कई दिन भटकते रहे। अजीब परेशानी थी। एक दिन यमुना के किनारे बैठे सोच रहे थे कि अब क्या करें। हार कर मालिक से प्रार्थना करने लगे कि हे मालिक! मेरी तलाश का तो अब अन्त हो चुका है; अब तो तू ही दया कर। हृदय सतगुरु की प्राप्ति के लिये व्याकुल था, नयन आँसुओं से भर आये थे। तभी पास ही स्नान कर रहे दो व्यक्तियों की बातचीत सुनाई दी। वे आपस में उन्हीं महात्मा के सत्संग की महिमा कर रहे

थे जिनकी बाबाजी को तलाश थी। (बाबाजी कहा करते थे कि यह सारा कौतुक स्वामीजी की अपनी मौज से ही हुआ था।) आप उनसे पता पूछकर पन्नी गली में स्वामी शिवदयालसिंह जी महाराज के द्वार पर जा पहुँचे।

जब बाबा जैमलसिंहजी वहाँ पहुँचे, उस समय स्वामीजी महाराज सत्संग में बिराजमान थे। बाबाजी ने जाकर चरणों में मस्तक नमाया, आपको देख कर स्वामीजी महाराज बड़े प्रसन्न हुए और मुस्कराकर बोले, "हमारा पुराना मेली आ गया है।" बाबाजी हैरान थे कि मैंने तो इन्हें पहले कभी देखा नहीं, पुरानी मुलाकात कैसी! आप सत्संग में बैठ गये। स्वामीजी महाराज ने ग्रन्थ साहिब[१] में से शब्द लिया और व्याख्या शुरू की। अपने सत्संग में स्वामीजी महाराज ने पाँच नाम का भेद, आन्तरिक मंज़लों का हाल, धुन, शब्द आदि की इतनी स्पष्ट व्याख्या की कि एक ही सत्संग से बाबाजी को विश्वास हो गया कि जिन महापुरुष की उनको अरसे से तलाश थी, वे परमपिता परमात्मा की कृपा से आज मिल गये हैं।

कई दिन तक बाबाजी लगातार सत्संग सुनते रहे। स्वामीजी महाराज की मोहक मूरत दिल में बस गई। परन्तु अभी तक कोई ज्यादा बातचीत उनसे नहीं की थी। एक विचार बाबाजी के मन में बार-बार आता रहता कि मैं सिख हूँ और ये मोने हैं, क्या मैं मोने को गुरु धारण करूँ? साथ ही उन्हें यह विश्वास भी हो चुका था कि इन जैसा पूर्ण महात्मा सारे भारत में ढूँढने पर भी न मिलेगा और जिस बहुमूल्य निधि की खोज में वे इतने वर्ष भटकते रहे हैं, वह स्वामीजी के सिवाय और किसी से प्राप्त नहीं होगी। इसी सोच-विचार में कई दिन बीत गये। आखिर स्वामीजी ने ख़ुद ही एक दिन कृपापूर्वक बड़े प्यार के साथ आप से पूछा, "क्यों बेटा, अभी तक सिख और मोने के सवाल का फैसला तुम्हारे दिल ने किया या नहीं?"

इतना सुनना था कि बाबाजी की आँखों से प्रेमाश्रुओं की धारा उमड़ चली जो किसी प्रकार थमने में ही नहीं आती थी। स्वामीजी ने धीरज बँधाते हुए फ़रमाया, "सत्य की खोज करनी चाहिये। बाहरी बातों में उलझ कर कई बार सत्य के खोजी असलियत से दूर रह जाते हैं। तुम्हीं सोचो कि सिर पर लम्बे केश रखने या सिर मुँडा देने से परमात्मा की प्राप्ति में क्या अन्तर आ सकता है? हमें वाहिगुरु से मिलना है या बालों से बँधना है! शरीयत का पालन एक हद तक ही ठीक है, अगर इसी को ध्येय मान लोगे तो हकीकत से कोसों दूर रह जाओगे।"

---

१. स्वामीजी महाराज गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी में से सत्संग फ़रमाया करते थे और नाम देते समय पाँच नाम के अभ्यास की युक्ति बताया करते थे।

बाबाजी के हृदय में प्रेम की भावना ऐसी उमड़ी कि आपने उठ कर अपना मस्तक स्वामीजी महाराज के पवित्र चरणों पर रख दिया और उस दयाल ने दया और मेहर के साथ अपने दोनों हाथ उनके सिर पर रख दिये।

दूसरे दिन बाबाजी को दीक्षा मिल गई और 'पंच शब्द' की हकीकत का पूरा भेद प्रदान कर दिया गया। दो दिन और दो रात आप एक छोटी-सी कोठरी के अन्दर अकेले लगातार समाधि में लीन रहे। आपकी काया ही पलट गई। तन-मन निहाल हो गया। वर्षों से जिस अमूल्य रत्न की खोज थी वह पूरे सतगुरु की दया से प्राप्त हो गया। बार-बार अपने सतगुरु के पवित्र चरणों में सीस झुकाते और अपनी कृतज्ञता दर्शाते। रोम-रोम में आनन्द समा गया था। खुशी में फूले न समाते थे। स्वामीजी ने फ़रमाया, "तुम हमारे पिछले मेली हो। यह सब कमाई तुम्हारी पहले की हुई है।"

स्वामीजी महाराज जैसा पूर्ण सतगुरु और बाबाजी जैसा सच्चा खोजी शिष्य! अनुपम संयोग था। उस समय बाबाजी की उम्र करीब १७-१८ वर्ष की थी। आप दिन-रात अभ्यास में लगे रहते। कई-कई दिन कोठरी से बाहर न निकलते। खाने-पीने तक की ओर ख़याल न था। गुरु का दर्शन ही आहार था और यही जीवन का आधार बन गया था। सोने के लिये चारपाई की जगह फर्श को ही बिछौना बना लिया था। भजन-सुमिरन के सिवा और किसी कार्य में रुचि ही न थी। इस सबके फल-स्वरूप दिन प्रतिदिन मालिक की भक्ति का रंग दिन दुगना व रात चौगुना चढ़ता गया।

एक बार बाबाजी अभ्यास में बैठे और उनकी सुरत अन्तर में चढ़ गई तथा एक दिन और एक रात चढ़ी रही। स्वामीजी महाराज उस तरफ़ आ गये। बाबाजी की वृत्ति अन्तर में लगी हुई थी इसलिये आप न उठे और न मत्था टेका। स्वामीजी अपनी तवज्जह से उनकी वृत्ति को बाहर लाये और उन्होंने पूछा कि बताओ, गुरु नानक का मार्ग जो हमने दिया है, ठीक है, या नहीं? बाबाजी ने हाथ जोड़ कर जवाब दिया कि हुजूर का बख्शा हुआ रास्ता तो बिलकुल सही है। सुरत ऊँचे रूहानी मण्डलों पर जाती है, लेकिन एक जगह कुछ रुकावट पेश आती है। स्वामीजी ने फ़रमाया, "यह रुकावट साधारण है। यह अभ्यास तुम पहले कर चुके हो और इससे पहले हमारे साथ आ चुके हो। यह सब तुम्हारा पहले किया हुआ है।" इस पर बाबाजी ने पूछा कि हुज़ूर, इसका क्या प्रमाण है? स्वामीजी ने कहा, "यदि प्रमाण चाहते हो तो भजन में बैठो।" स्वामीजी महाराज ने बाबाजी को फिर से भजन पर बिठाया, उनके सिर पर हाथ रखा और अपनी तवज्जह देकर रुकावट दूर

कर दी ।

जब फिर स्वामीजी ने बाबाजी की रूह को अपने ध्यान द्वारा नीचे उतारा तो बाबाजी ने विनती की कि अब मुझे अपने चरणों में ही रहने और यहीं बैठ कर भजन करने की आज्ञा दी जाये । इस पर स्वामीजी महाराज ने फ़रमाया, "दुनिया में स्वार्थ और परमार्थ दोनों बरतने चाहियें । अगर त्याग में ही रहोगे तो लोगों का पराया अन्न खाना पड़ेगा । मत्था टेकने वाले और सेवा करने वाले तुम्हारी कमाई को लूट लेंगे । दुनिया में अपने गुज़ारे के लिये अभ्यासी को कोई न कोई काम करना चाहिये । भजन-सुमिरन के लिये हक़ की कमाई बहुत ज़रूरी है ।"

अतएव स्वामीजी महाराज के हुक्म से आप सिख पलटन नम्बर २४ में, जो उन दिनों आगरा में स्थित थी, भरती हो गये । यह सन् १८५६ की बात है । जितने दिन पलटन आगरा में रही आप प्रतिदिन स्वामीजी के दर्शन व सत्संग के लिये पन्नी गली आया करते थे । इस समय में आपकी गुरु-भक्ति और नाम की कमाई की बहुत सी घटनाएँ प्रसिद्ध हैं । आप अपने सम्बन्ध में उनका उल्लेख नहीं करने देते थे तथा स्वामीजी महाराज की दया और कृपा को ही उनका कारण बताते थे ।

एक बार आप स्वामीजी महाराज के दर्शन के लिये शहर में आये और सत्संग की समाप्ति पर (रोज़ की तरह वापस न जाकर) वहीं भजन में बैठ गये । काफी रात बीतने पर भी आपकी सुरत ऊँचे रूहानी मण्डलों से नीचे न उतरी । अन्य सत्संगियों ने स्वामीजी महाराज से निवेदन किया कि हुज़ूर, पलटन की नौकरी में एक मिनिट की ग़ैर-हाज़िरी की भी सख़्त सज़ा होती है, इसलिये जैमलसिंहजी को जल्दी पलटन में लौट जाना चाहिये । स्वामीजी ने आज्ञा दी कि हाँ, इन्हें फौरन भजन से उठा कर नौकरी पर भेज दो । सत्संगियों ने विनती की कि हुज़ूर, उनकी समाधि लगी हुई है और हमारी कोशिशों के बावजूद उनका ख़याल बाहर नहीं आता है । स्वामीजी महाराज ने ख़ुद जाकर देखा कि ध्यान अन्तर में स्थिर है और उन्हें संसार की कोई सुधि नहीं है । बहुत प्रसन्न हुए और फ़रमाया, "इसे मत छेड़ो । ऐसे ही रहने दो । सुबह जो होगा देखा जायेगा ।"

बाबाजी सारी रात अभ्यास में लीन रहे । सुबह सूर्योदय से पहले पलटन में जा पहुँचे और वर्दी पहने बग़ैर सीधे अपने सूबेदार की ओर गये ताकि उससे पूछें कि रात की ग़ैर-हाज़िरी के लिये किस सज़ा का निर्णय किया गया है । उनका सूबेदार रास्ते में ही मिल गया । सलाम करके बाबाजी ने पूछा

कि उनके लिये क्या हुक्म है ? सूबेदार पूछने लगा कि किस बात का हुक्म ? आपने कहा, "रात भर की ग़ैर-हाज़िरी के लिये जो भी सज़ा तय हुई है, उसे भुगतने के लिये तैयार हूँ ।" सूबेदार आश्चर्य-चकित हो आपकी ओर देखने लगा और बोला, "रात को तो तुमने मेरे साथ पूरी गश्त की और मेगज़ीन को ताला लगा कर चाबियाँ ख़ुद मुझको दीं। सुबह पाँच बजे की गिनती परेड में भी तुम हाज़िर थे । तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई । अगर कोई और होता तो मैं समझता कि नशे में है ।" बाबाजी ने जवाब में इतना ही कहा, "अच्छा, भूल हो गई । माफ़ करना ।" और अपनी बैरक में लौट आये ।

आपने शाम को स्वामीजी महाराज की सेवा में हाज़िर होकर अर्ज़ की कि जिस सतगुरु दीनदयाल ने रात को मेरी जगह जाकर ड्यूटी दी है, अब उसको छोड़ कर और किसी की चाकरी नहीं करूँगा । स्वामीजी महाराज ने प्यार के साथ बाबाजी को हृदय से लगा लिया और दिलासा देकर फ़रमाया, "पलटन में भी तुम मेरी ही नौकरी कर रहे हो । जाओ, मेरी नौकरी समझ कर काम करो ।" इसके बाद ऐसी कई घटनाएँ घटीं जिन्हें स्वामीजी महाराज गुप्त रखने का आदेश दिया करते ।

ग्राम भंडाल (तहसील कसूर, ज़िला लाहौर) का निवासी प्रेमी सत्संगी (महन्त) इन्दरसिंह बाबाजी की पलटन में सिपाही था और आपके सेवक के रूप में भी काम करता था । एक बार उसने निम्न-लिखित वृत्तान्त सुनाया :—

सन् १८७९ में बाबाजी की पलटन पेशावर में थी । उस समय एक नया सूबेदार बदली होकर आपकी पलटन में आया । स्वभाव से वह बहुत क्रूर और क्रोधी था । बात-बात में अपने मातहतों को गालियाँ देने लगता था । कुछ ही दिनों में सिपाही उसके व्यवहार से परेशान हो गये । बाबाजी उन दिनों हवलदार थे और आपकी नेकी और बुज़ुर्गी सभी के दिलों में घर कर चुकी थी । सबने मिल कर आपकी सेवा में विनती की, "भाई साहब जैमलसिंह जी, इस नये सूबेदार के गाली-गलौच और दुर्व्यवहार ने हमें परेशान कर दिया है । बात-बात में लड़ना और बग़ैर कसूर क्वार्टर गार्ड दे देना इसके लिए मामूली बात है । इसने हमारी ज़िन्दगी ही दूभर कर दी है ।" बाबाजी ने प्यार के साथ समझाया कि अफ़सर सभी तरह के आते रहते हैं । सब्र और बरदाश्त से काम लेना चाहिये । सब दिन एक से नहीं होते ।

अगले दिन की बात है । सूबेदार ने बाबाजी को दफ़्तर में बुलाया और अपने रोज़ जैसे गरम लहज़े में बोला, "मैंने सुना है कि तुम मांस नहीं खाते

और पलटन के दूसरे सिपाही भी तुम्हारी देखा-देखी मांस छोड़ रहे हैं।"

बाबाजी ने बड़ी नम्रता-पूर्वक कहा, "आप मांस खानेवालों से जिस बात में चाहें मेरा मुकाबला करा लें। जानवरों की हत्या और उनका मांस खाना बहुत बड़ा पाप है।" बाबाजी ने सूबेदार को इसी प्रकार समझाने का प्रयास किया। परन्तु सूबेदार गुस्से के साथ चिल्ला कर बोला, "मैं बहस नहीं सुनना चाहता। यहाँ मेरा हुक्म चलेगा। आज शाम को जो मांस नहीं खायेगा उसे सख्त सज़ा दी जायेगी।" बाबाजी ने कोई जवाब नहीं दिया, खामोशी के साथ अपनी बैरक में लौट आये।

उसी शाम सूबेदार अपनी दो पहिये वाली शिकरम (एक प्रकार की छोटी घोड़ा-गाड़ी) में बैठ कर सैर के लिये निकला। अभी छावनी से थोड़ी दूर ही गया था कि उसकी गाड़ी उलट गई। उसे बहुत चोट आयी। लोगों ने उसे बड़ी मुश्किल से गाड़ी में डालकर घर पहुँचाया। मिलिट्री डाक्टर ने जाँच की तो पता लगा कि दाहिनी टाँग और कमर की हड्डियाँ टूट गई हैं। डाक्टर ने टाँग को खपच्चियों से बाँध दिया और छोटे थैले में रेत भर कर पैर के पास बाँध कर चारपाई से नीचे लटका दिया। लेकिन डाक्टर के जाने के बाद दर्द इतना बढ़ गया कि सूबेदार रात-भर चिल्लाता और कराहता रहा। एक-दो बार डाक्टर भी आया, पर उसे कोई चैन न मिला।

दूसरे दिन सूबेदार रोते हुए कहने लगा, "मेरी चारपाई उठा कर हवलदार जैमलसिंह के पास ले चलो। मैंने उसका दिल दुखाया है। इसी की मुझे सज़ा मिल रही है और अब वही मेरा इलाज कर सकता है।" सुनने वालों ने कहा कि हवलदार जैमलसिंह तो एक ऊँचे दरजे के फ़क़ीर हैं, आपको उनसे अपशब्द नहीं कहने चाहिये थे। उस दिन इतवार था। इतवार को बाबाजी सुबह ही भजन के लिये बाहर एकान्त में चले जाते थे। सारा दिन अभ्यास में लीन रहते और रात को वापस आते थे।

महन्त इन्दरसिंह ने आगे बताया कि दूसरे दिन जब बाबाजी को सूबेदार को हड्डी टूटने का पता चला तो उसके कष्ट की बात सुन कर आपको बहुत अफ़सोस हुआ। बोले, "हे मालिक, बेचारा बाल-बच्चेदार आदमी है। उसके बच्चे क्या करेंगे।" आप फौरन उठ कर सूबेदार के पास गये। सूबेदार के पिछले चौबीस घण्टे इतने दर्द और बेचैनी के साथ बीते थे कि मालिक किसी दुश्मन के भी न बिताये। जब बाबाजी पहुँचे तो उसने उठ कर बैठना चाहा। परन्तु बाबाजी ने उसे रोकते हुए कहा, "उठो नहीं, वरना हड्डी का जोड़ खुल जायेगा।" सूबेदार ने दर्द-भरे स्वर में जवाब दिया, "आगे ही कौन-

सा जुड़ा हुआ है।" आपने फ़रमाया, "कोई फ़िक्र न करो, सब ठीक हो जायेगा।"

बाबाजी उसके पलंग के पास बैठ गये। वह बोला, "जैसी तकलीफ में मैंने पिछले चौबीस घण्टे बिताये हैं, ऐसी तकलीफ़ तो शायद नरकों में भी नहीं होती होगी। लेकिन आपके आने से मेरा दर्द दूर हो गया है! मुझसे बड़ी गलती हुई, मुझे माफ़ कर दें।"

बाबाजी ने बड़े मिठास के साथ कहा, "आपने मेरा कोई नुकसान नहीं किया। मैं तो आपका एक मामूली मातहत हूँ।"

आपके प्रेमपूर्ण, नम्र और उदार वचन सुन कर सूबेदार की आँखों से जलधारा बह चली। आस-पास जितने लोग थे, सब चकित थे कि क्या यह वही सूबेदार है जो कल तक बात-बात में क्वार्टर गार्ड की धमकी देता था और जिसके मुँह से गालियों के बिना कुछ निकलता ही नहीं था।

बाबाजी ने उसके दुखते हुए शरीर पर हाथ फेरते हुए फ़रमाया, "घबराओ मत। दुःख-सुख शरीर का भोग होता है। जल्दी ही आराम हो जायेगा।" इसके बाद उसे दर्द नहीं हुआ। तीन महीने में उसकी हड्डी जुड़ गई और धीरे-धीरे उसने अपना काम सँभाल लिया। लेकिन अब वह पहले वाला सूबेदार नहीं था। बाबाजी की संगति से उसकी काया पलट गई थी।

इसके बाद पलटन में बाबाजी को कभी कोई तकलीफ नहीं हुई। आपके अफ़सर आपसे बहुत प्यार करते और हमेशा इज़्ज़त से पेश आते। अंग्रेज़ अफ़सर भी आपकी बुज़ुर्गी के कायल थे। सन् १८७७ में आपकी पलटन काबुल की लड़ाई में पेशावर चली गई। लड़ाई के दिनों में बाबाजी रात में जंगल में चले जाते और एक छोटा-सा गढ़ा खोद कर उसमें रात-भर भजन में लीन रहते। कई बार शत्रु पक्ष के पठान आपके पास से निकलते तो आपस में कहते कि यह कोई दरवेश इबादत में बैठा है, इसे कोई न छेड़े। इसी प्रकार जब पलटन एक जगह से दूसरी जगह कूच करती तो आप रात को अपने पड़ाव से कुछ दूर निकल कर रात-भर भजन में बैठे रहते।

पलटन के प्रत्येक कर्मचारी को साल में दो महीने की छुट्टी मिला करती थी। बाबाजी उसे हमेशा आगरा में बिताते और दिन-रात भजन में लीन रहते। एक बार स्वामीजी महाराज ने आपको भजन में बैठे देख कर बड़ी प्रसन्नता और प्यार के साथ फ़रमाया, 'यह तो सन्त सिपाही' है। और फिर यह पद फ़रमाया :—

यह धुन है धुर लोक अधर की, कोई पकड़े सन्त सिपाही।

सत्संग में जहाँ अक्सर रायबहादुर सालिगराम साहब की 'प्रेमपूर्ण सेवा'

ग्रौर बाबा गरीबदासजी की 'विद्या, ज्ञान ग्रौर दीनता' की तारीफ होती वहाँ बाबा जैमलसिंहजी की 'रूहानी चढ़ाई ग्रौर ऊँची कमाई' का बहुधा ज़िक्र होता था। स्वामीजी के समय में यद्यपि सत्संगियों की संख्या ग्रधिक न थी, पर जितने भी सत्संगी थे सब ग्रभ्यास ग्रच्छा किया करते थे। लेकिन बाबाजी के लिये तो सभी एक स्वर में कहा करते थे कि इस पंजाबी ने तो भजन व ग्रभ्यास में हद कर दी है। इस पर एक बार स्वामीजी ने हँस कर फ़रमाया कि इसने पंजाब फतह कर लिया है ग्रौर ग्रसली पंजाबी बन गया है। इसमें उनका इशारा ग्रन्तर के पाँच स्थानों को पार कर लेने का था। फिर स्वामीजी ने कहा, "इसका ग्रौर हमारा पुराना साथ है। इसके ज़रिये पंजाब में फिर से नाम फैलेगा।"

बाबा हंसदासजी एक ग्रच्छी कमाई वाले महात्मा राधा बाग ग्रागरा में रहा करते थे। एक बार बाबा सावनसिंहजी उनसे मिलने गये। बाबा हंसदासजी ने बाबा जैमलसिंहजी महाराज की बहुत प्रशंसा की ग्रौर कहा, "स्वामीजी महाराज ने हम लोगों को तो ग्रोक से पिलाया है, पर बाबाजी को तो दोनों हाथों से सागर भर-भर कर दिया है। जैसे कोई ग्रमीर ग्रपनी दौलत को लुटाता है ऐसे दिया है।"

सन् १८५७ में जब ग्रापकी पलटन को ग्रागरा से जाने का ग्रादेश मिला तो ग्रापने स्वामीजी महाराज की सेवा में विनती की कि वे हुज़ूरी चरणों से दूर नहीं होना चाहते ग्रौर उन्हें नौकरी से त्याग-पत्र देने की इजाज़त दी जाये। स्वामीजी ने फ़रमाया, "तुम ग्रंग्रेज़ के नौकर नहीं हो, बल्कि मेरी नौकरी में हो। मैं हर वक्त तुम्हारे ग्रंग-संग रहूँगा।" फिर फ़रमाया, "उस तरफ के लोगों का उद्धार करना है। बहुत से जीव वहाँ तुम्हारी बाट जोह रहे हैं।"

बिदा के समय बाबाजी ने स्वामीजी महाराज के चरणों में सीस नवा कर चरणामृत प्रदान करने के लिये प्रार्थना की। स्वामीजी ने फ़रमाया कि जाग्रो पानी ले ग्राग्रो ग्रौर चरणामृत बनवा लो। ग्राप जल्दी से एक छोटी परात में जल भर लाये। स्वामीजी ने ग्रपार प्रेम ग्रौर दया-मेहर के साथ ग्रपने दोनों चरण उस में रख दिये। बाबाजी परात को मुँह से लगा कर सारा पानी पी गये। फिर बाबाजी ने चलते समय ग्रपना सीस सतगुरु दीनयाल के चरणों पर रख दिया। स्वामीजी ने ग्रपने हाथ उनके सर पर रख कर उन्हें प्यार के साथ बिदा किया।

बाबाजी के जाने के बाद कई ग्रन्य प्रिय सेवकों ने भी चरणामृत लेने की

इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने फ़रमाया, "भाई जो असल चीज़ थी वह तो लेने वाला ले गया।"

उत्तर प्रदेश का रहनेवाला एक पुराना सत्संगी, जो स्वभाव से कुछ निडर था, कहने लगा, "हुज़ूर! पता नहीं आपको भाई जैमलसिंह पर रियायत और लिहाज़ की मौज क्यों होती है। हर अनोखी दया और रहमत उन पर ही बख़्शी जाती है।

उत्तर में स्वामीजी ने फ़रमाया, "यहाँ रियायत और लिहाज़ का क्या काम। यह तो प्रेम का मार्ग और कमाई का पथ है। जिसने लोक-लाज और तन की परवाह न करते हुए मन की वासनाओं और आशा-तृष्णा को प्रेम की भट्टी में जला कर भस्म कर दिया, वह रूहानी दौलत से भरपूर हो गया। इस जैसी कमाई भी किसी ने की है? मालिक की दात केवल बातों से नहीं मिलती।"

सन् १८५७ में बाबाजी की पलटन देहली में रही। फिर वहाँ से पेशावर होकर अम्बाला आई और १८५९ में झाँसी चली गई। तीन साल पलटन झाँसी में रही। बाबाजी को जब भी छुट्टी मिलती आप स्वामीजी महाराज के दर्शन व सत्संग के लिये आगरा ज़रूर आते। १८६२ में आपकी पलटन दुबारा आगरा आ गई, परन्तु कुछ ही महीनों बाद नवम्बर १८६३ में पेशावर चली गई। १८६८ में पलटन रावलपिण्डी आई। १८६९ में आपको एक साधू भाई सरबदयालसिंह जी मिले। सरबदयालजी अभ्यासी साधू थे, जो प्राणायाम करते थे तथा ग्रन्थसाहिब में से पाठ और प्रवचन करते थे। बाबाजी से मिल कर वे बहुत प्रभावित हुए और आपसे परमार्थ की चर्चा की। बाबाजी से गुरु साहिबों की शिक्षा के असली अर्थ तथा पाँच शब्द के मार्ग के विषय में सुन कर उन्होंने नाम माँगा। यद्यपि स्वामीजी महाराज फ़रमा चुके थे कि जिसे नाम का अधिकारी देखो उसे नाम दे दो, परन्तु बाबाजी उन्हें अपने सतगुरु की सेवा में भेजते रहे। सरबदयालजी आगरा गये और स्वामीजी महाराज से नाम-दान प्राप्त किया।

बाबाजी के अफ़सरों को पता चल गया था कि आप एक बड़े ऊँचे महात्मा हैं और सिर्फ़ अपने हाथ की कमाई पर गुज़ारा करने के उद्देश्य से फ़ौज में नौकरी कर रहे हैं। वे आपका आदर करते थे।

२० अक्तूबर १८७० को बाबाजी की पलटन मियाँ मीर की छावनी आ गई और वहाँ तीन साल रही। इन दिनों जब बाबाजी छुट्टी पर आते तो

बलसराय और वड़ाइच ग्रामों के बीच ब्यास नदी के किनारे आकर यहाँ के सुनसान जंगल में अभ्यास करते । आप ब्यास स्टेशन से निहालसिंह तन्दूर वाले के यहाँ से रोटियाँ खरीद कर लाते और उन्हें कपड़े में बाँध कर १५-१५ दिन तक पेड़ से लटका कर रख छोड़ते । जब भजन से उठते तो रोटियाँ पानी में भिगो कर खा लेते ।

सन् १८७३ में आपकी पलटन फिर से झाँसी आई और पाँच साल वहीं रही । झाँसी से आप हर छुट्टी पर आगरा आते थे। ऐसी ही एक छुट्टी के समय का यह वृत्तान्त है । एक बार स्वामीजी महाराज ने दो-तीन दिन के लिये अपनी कोठरी में एकान्त में बैठ कर भजन करने का निश्चय किया । आपने हुक्म दिया कि जब तक मैं खुद दरवाजा न खोलूँ तब तक कोई भी मेरे पास न आये । स्वामीजी ने द्वार अन्दर से बन्द कर लिये और भजन में बैठ गये । दूसरे दिन बाबा जैमलसिंहजी तीन दिन की छुट्टी पर दर्शन के लिये आगरा पहुँचे । उनका नियम था कि जब भी आगरा आते तो दर्शन किये बिना कुछ खाते-पीते न थे । पन्नी गली पहुँचने पर सेवादारों से स्वामीजी महाराज के हुक्म का पता चला। बाबाजी बगैर कुछ कहे और बिना खाये-पीये दो दिन बैठे रहे । तीसरे दिन कुछ सत्संगियों ने बाबाजी से कहा कि आओ, सीढ़ी लगा कर रोशनदान से उतर कर दर्शन कर लो । बाबाजी की छुट्टी उस दिन खत्म होने वाली थी । लेकिन बाबाजी ने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया और कहा कि गुरु के हुक्म से बाहर नहीं जाना चाहिये ।

जब तीन दिन के बाद स्वामीजी महाराज कोठरी से बाहर आये और बाबा जैमलसिंह जी की गुरुमुखता तथा गुरु-भक्ति से प्रसन्न हो उन्हें हृदय से लगा लिया । फिर सतगुरु दीनदयाल ने बाबाजी को प्रसाद दिया और उनकी गाड़ी के वक्त से पहले बड़ी खुशी के साथ विदा किया ।

झाँसी में इन्दरसिंह नामक एक सिख बाबाजी की पलटन में भरती हुआ । यह ग्राम भंडाल का रहनेवाला था । बाबाजी अपनी ड्यूटी के बाद का सारा वक्त या तो भजन या परमार्थ की चर्चा में लगाया करते थे । आपसे प्रभावित होकर कई लोग नाम-दान के लिये विनती करते थे । बाबाजी उन्हें स्वामीजी के चरणों में आगरा भेज देते थे । परन्तु स्वामीजी ने कई बार हुक्म दिया कि अब कोई शख्स नाम के लिए हमारे पास मत भेजो, और जिसे ठीक

समझो खुद नाम दो। अतएव सरदार इन्दरसिंह तथा एक और व्यक्ति की प्रार्थना को स्वीकार करके बाबाजी ने उन्हें स्वामीजी के जीवन-काल में ही नाम प्रदान किया। इन्दरसिंह बाबाजी की सेवा में रहने लगा। बाद में भंडाल ग्राम के कई लोग व्यास आकर बाबाजी से नाम ले गये। बाबाजी भी सत्संग के लिए भंडाल पधारते थे। बाबाजी ने भंडाल की संगत को जो पत्र लिखे हैं उनसे पता चलता है कि आपको वहाँ की संगत से बहुत प्यार था।

सन् १८७५ में बाबाजी नायक बन गये। हर छुट्टी पर आप आगरा जाते रहे। अक्तूबर १८७७ में आप छुट्टी लेकर स्वामीजी के चरणों में आगरा आये हुए थे, बिदा के समय स्वामीजी महाराज ने फ़रमाया, "अब यह हमारी और तुम्हारी आखरी मुलाकात है। हमारी संसार की यात्रा अब समाप्त होने को है और तुम्हारी अगली लम्बी छुट्टी से पहले हम वापस परमधाम को चले जायेंगे। आज के बाद तुमको देह-स्वरूप का मिलाप नहीं होगा।"

सतगुरु से विछोह का दुःख कोई प्रेमी गुरुमुख ही जानता है। स्वामीजी महाराज के वचन सुन कर बाबाजी का गला रुंध गया, नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। उनकी यह अवस्था देख स्वामीजी ने उन्हें गले लगा लिया और बड़े प्यार के साथ फ़रमाया, "तुम मेरे प्यारे पुत्र और गुरुमुख शिष्य हो। मैंने तुमको अपना रूप ही बना लिया है। साहब तुम पर सदा दयाल रहेंगे। मेरा रोम-रोम तुमसे खुश है।"

बाबाजी के एक गुरु-भाई चन्दासिंह उस समय वहाँ मौजूद थे। वे पंजाब के रहने वाले थे। अच्छे अभ्यासी थे। उन्होंने स्वामीजी महाराज की सेवा में विनती की कि हुज़ूर तो परम धाम सिधारने की बात करते हैं, पर हमारी सँभाल और रहनुमाई करने वाला कौन होगा और पंजाब में भी आम सत्संग जारी होना चाहिये।

स्वामीजी महाराज ने फ़रमाया, "यह विनती अकाल पुरुष ने परवान (स्वीकार) कर ली है और साहब के दरबार से यह काम पहले ही भाई जैमलसिंह के नाम सौंपा जा चुका है। पंजाब में नाम का प्रवाह खूब चलेगा और सबकी पूरी सँभाल होगी।" उसके बाद स्वामीजी ने अन्य प्रसाद के साथ एक पगड़ी भी प्रसाद करके बाबाजी को दी और बड़े प्रेम से उन्हें बिदा किया।

१ मई १८७८ को बाबाजी हवलदार बन गये। कुछ दिनों बाद आपकी पलटन काबुल की ओर भेज दी गई। १८८० में पलटन मुलतान आ गई और तीन साल वहाँ रही। १८८३ में मियाँ मीर, जुलाई १८८५ में रावलपिंडी और १८८७ में सियालकोट आ गई। इन सभी वर्षों में बाबाजी नौकरी के बाद अपना पूरा समय भजन में बिताते रहे। छुट्टियों में आप कुछ दिन घुमान में रह कर ब्यास नदी के किनारे आ जाते और दिन-रात भजन में लीन रहते। १८ अगस्त १८८९ को बाबाजी लगभग ३३ वर्ष की सैनिक सेवा के बाद पेंशन लेकर अपने ग्राम घुमान आ गये।

बीबी रुक्को जो पंजाब की रहनेवाली थीं, बहुत समय से आगरा में, स्वामीजी के महाप्रयाण के बाद, माता राधाजी की सेवा में रहती थीं। वे हमेशा माताजी और चाचाजी साहिब (स्वामीजी महाराज के भाई सेठ प्रतापसिंहजी) की सेवा में निवेदन करती रहतीं कि पंजाब, जो गुरु साहिबों की धरती है, एक अरसे से नाम से खाली पड़ी है। इसलिये वहाँ नाम के प्रचार के लिये किसी महात्मा को भेजा जाये। माताजी फ़रमातीं, "स्वामीजी ने सब इन्तिज़ाम किया हुआ है। फिक्र न कर। समय पर सब-कुछ हो जायेगा। अभी कोई साधू यहाँ नहीं है।" फिर एक बार बीबी रुक्को के प्रार्थना करने पर फ़रमाया, "तू ही क्यों न पंजाब चली जा।" लेकिन बीबी रुक्को ने सत्संग छोड़कर जाना न चाहा और अर्ज़ की कि यह काम तो किसी सन्त-महात्मा का है और सन्त भी ऐसा महान और पूर्ण होना चाहिये जो पंजाब जैसी कठोर और सख्त धरती को चेता सके। वहाँ किसी साधारण साधू का बस नहीं चलेगा। माताजी ने कहा, "चिन्ता न कर। स्वामीजी ने ऐसे ही महात्मा को वहाँ भेजने का इन्तिज़ाम किया हुआ है। बस कुछ महीने और इन्तिज़ार कर ले।"

कुछ समय बाद एक रोज़ अर्ध-रात्रि के बाद जब माताजी स्नान के लिये उठीं तो बीबी रुक्को को आवाज़ देकर जगाया और फ़रमाया, "कल सुबह तेरा गुरु यहाँ पहुँच जायेगा। जैसा गुरु तू चाहती थी, स्वामीजी ने वैसा ही भेजा है। वह स्वामीजी का श्रेष्ठ पुत्र और गुरुमुख सेवक है। बहुत समय पहले स्वामीजी पंजाब की धरती उसके हवाले कर गये हैं। कल स्टेशन जाकर उसे ले आना।"

स्वामीजी के परम धाम सिधारने के बाद बाबाजी पहली बार आगरा तशरीफ़ ला रहे थे। दूसरे दिन आप आगरा पहुंचे। आपको माताजी ने कुछ दिन बड़े आदर-सत्कार के साथ अपने पास ठहराया। बिदा से एक दिन पहले माताजी ने चाचाजी प्रतापसिंहजी तथा कुछ पुराने सत्संगियों को अपने यहां बुलाया। आप अन्दर से एक रेशमी पगड़ी[1] लाईं और फ़रमाया कि यह पगड़ी अपने जाने से पहले स्वामीजी महाराज़ मुझे दे गये थे और कहा था कि जैमलसिंह मेरा बहुत प्यारा पुत्र और गुरुमुख चेला है, यह पगड़ी उसके सिर पर बंधवा देना।

सबकी मौजूदगी में बाबाजी के सिर पर पगड़ी बंधवा कर माताजी ने फ़रमाया, "आप पंजाब जाकर स्वामीजी महाराज के हुक्म का पूरी तरह पालन करो और वहां स्वामीजी की शिक्षा का प्रचार तथा नाम की बख्शिश शुरू करो।"

माताजी ने बीबी रुक्को को बाबाजी की सेवा के लिये आपके साथ भेज दिया और हुक्म दिया कि बाबाजी की सेवा को स्वामीजी महाराज की सेवा समझना।

उन्हीं दिनों बाबाजी महाराज एक दिन रायबहादुर सालगराम साहिब से भी मिलने के लिये गये। वे भी सन् १८८७ में पेंशन लेकर आ गये थे, और पीपल मंडी आगरा में सत्संग आरम्भ कर दिया था। आपको लोग 'हुज़ूर साहिब' के नाम से पुकारते थे। चाचा प्रतापसिंहजी और बाबा गरीबदासजी भी बाबा जैमलसिंहजी के साथ थे। हुज़ूर साहिब बड़े प्रेम और प्रसन्नता से उठ कर बाबाजी से गले मिले और बड़े प्यार से वार्तालाप किया। आपने बाबाजी से फ़रमाया, "भाई साहिब, असली सेवा तो स्वामीजी की आपने की है और भजन-सुमिरन करके निज धाम पहुंच गये हैं।" बाबा जी महाराज ने उत्तर दिया, "आप जैसी सेवा कौन कर सकता है। स्वामीजी की आप पर बड़ी दया थी।"

दूसरे दिन रायबहादुर सालगराम साहिब एक रेशमी तिल्लेदार पोशाक लेकर बाबाजी के पास आये। पर बाबाजी ने उसे लेने से मना कर दिया और कहा, "यह रेशम और कमखाब मुझ गरीब किसान के ये क्या काम

---

१. यह पवित्र पगड़ी अब तक डेरे में सुरक्षित है। बाबाजी के चोला छोड़ने पर इसी पगड़ी से हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी की 'दस्तार-बन्दी' को गई थी। उनके बाद सरदार बहादुर जगतसिंहजी के और फिर महाराज चरनसिंहजी के सीस पर गद्दी-नशीनी के समय यही पगड़ी बांधी गई थी।

आयेंगे।" सालगराम साहिब ने फिर अनुरोध करते हुए कहा, "क्या स्वामी जी महाराज ने आपको बादशाहों का बादशाह नहीं बना दिया है और रूहानी दौलत से भरपूर नहीं कर दिया है?" परन्तु बाबाजी ने पोशाक लेना स्वीकार नहीं किया। परन्तु माता राधाजी ने जब वह पोशाक हुजूर सालगराम साहिब से लेकर अपने हाथ से बाबाजी को दी तो उन्होंने ले ली।

चाचाजी महाराज ने एक आसन लाकर बाबाजी के लिये बिछाया और उनसे इस पर बैठने को कहा परन्तु बाबाजी ने हाथ जोड़कर इन्कार कर दिया। इस पर माता राधाजी ने कहा कि यह आसन स्वामीजी का है और स्वामीजी इसे आपको देने के लिये कह गये थे। यह सुन कर बाबाजी ने उसे दोनों हाथों में लेकर अपने सर से लगा लिया। यह आसन भी डेरे के तोशाखाना (संग्रहालय) में मौजूद है।

स्वामीजी के जीवन-काल में जब भी बाबाजी लम्बी छुट्टी पर आते तो छुट्टी का पूरा समय स्वामीजी की सेवा में रहकर भजन-सुमिरन में बिताते। स्वामीजी के प्रयाण के बाद सन् १८७९ से बाबाजी का यह नियम था कि पहले अपने ग्राम घुमान जाकर वहां दो-तीन दिन ठहरते। फिर ब्यास नदी के किनारे, जहाँ अब डेरा है, आकर दिन-रात भजन-सुमिरन मे लीन रहते। जैसा कि ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है, ब्यास स्टेशन से भाई निहालसिंह तन्दूर वाले की दुकान से कुछ मिस्सी रोटियां खरीद लाते और उन्हें पोटली में बांध कर किसी पेड़ की टहनी से लटका देते। तीसरे चौथे दिन जब भूख लगती या जब भजन से उठते तो एक-दो सूखी रोटी निकाल कर नदी के पानी में भिगो कर खा लेते और नदी का पानी पीकर अपनी प्यास बुझा लेते। यह स्थान आपको बहुत पसन्द था। यह दुनिया के कोलाहल से दूर बिलकुल एकान्त स्थान था। चारों ओर वीरान और सुनसान था। पास के वड़ाइच और बलसराय ग्रामों के लोगों में चर्चा थी कि इस स्थान पर एक देव अथवा जिन्न रहता है, जो भी उस ओर जाता है उसे वह मार कर खा जाता है। कुछ वृद्ध ग्रामवासी बताते थे कि उन दिनों कई मवेशियों, जानवरों तथा कुछ मनुष्यों के कंकाल वहां पाये जाते थे और इसलिये लोगों ने उस ओर से आना-जाना तक बन्द कर दिया था।

एक पहुंचे हुए अभ्यासी को भजन-बन्दगी के लिये इस से अच्छा स्थान क्या मिल सकता था। जब आप सेवा-निवृत्त होकर आये तो इस स्थान के शान्तिपूर्ण वातावरण को पसन्द करके इसे अपना निवास-स्थान बना लिया।

बड़ाइच गांव के वृद्ध कहा करते थे कि उनके ग्राम का एक मस्त फ़क़ीर

जिसे लोग 'काहना कमला (पागल)' कहते थे बाबा जैमलसिंहजी के आने से कई वर्ष पहले यहाँ घूमा करता था। आस-पास जहां कहीं भी उसे ईंट, पत्थर, रोड़ा, कंकर गिरा मिलता, उसे बीन कर उठा लाता और यहां ढेर लगा देता। लोग जब पूछते कि यह क्या करते हो, तो कहता कि यहां एक बादशाह आने वाला है, उसके महल बनाने के लिये सामान इकट्ठा कर रहा हूं। फिर कहता कि यहां एक बड़ा शहर आबाद होगा।

वड़ाइच और बलसराय के कुछ बुजुर्गों ने बाबाजी को यहां अपना निवास स्थान बनाने से बहुत रोका, क्योंकि एक तो जंगल का स्थान होने के कारण यहां जंगली जानवर, सांप-बिच्छू वगैरह बहुत थे और दूसरे, लोगों का ख़याल था कि यहां एक जिन्न रहता है। परन्तु आपने कहा, "कोई डर नहीं, जिन्न हमारा क्या बिगाड़ लेगा।"

बाबाजी की कुछ करामातें व चमत्कारपूर्ण घटनाएं भी मशहूर हो चुकी थीं। एक बार बलसराय का एक व्यक्ति किसी सत्संगी का नया जूते का जोड़ा चुरा कर ले गया। बाबाजी को पता लगा तो आपने फ़रमाया कि कोई फ़िक्र न करो, चोर ख़ुद आकर जोड़ा लौटा जायेगा। दूसरे दिन सुबह ही वह व्यक्ति जोड़ा लेकर हाज़िर हो गया और माफ़ी मांगते हुए बोला, "सारी रात इस पापोश (जूतों) का मेरी छाती पर बोझ रहा और मैं एक पल भी सो न सका।" इसके बाद किसी देव, प्रेत या मनुष्य की ओर से बाबाजी का विरोध नहीं हुआ।

जब दीप जलता है तो पतंगे ख़ुद ही उसकी ओर खिंचे चले आते हैं। आपकी महानता, रूहानी अभ्यास और सरल व स्पष्ट सत्संगों की ख्याति शीघ्र ही आस-पास के ग्रामों में फैल गई। आपका जीवन सन्त-मत के नियमों का नमूना व आदर्श था। आपकी नेक और पवित्र रहनी लोगों को आकर्षित करने लगी। आप अपना निर्वाह अपनी पेंशन पर ही करते थे। कभी कोई वस्तु किसी से नहीं लेते थे और न ही अपना भार किसी पर डालते थे। (यही रीति आपके बाद आपके उत्तराधिकारियों की भी रही है)। ऐसे महात्मा के सत्संगों में भीड़ क्यों न एकत्रित होती!

पहले तो बाबाजी महाराज एक कच्ची कोठरी में ही निर्वाह करते रहे। परन्तु जब हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी आपके शिष्य बने, तब उनके अनुरोध पर उस कोठरी को पक्का करने की इजाज़त दे दी। उन दिनों डेरे में कुआं नहीं था। सत्संगी पास के गांवों से पानी लाते थे। जब संगत कम होती तो बीबी रुक्को ही गागर में पानी भर कर लाती थीं।

महाराज सावनसिंहजी जब पहली बार यहां आये तो उन्होंने देखा कि बीबी रुक्को कहीं से गागर भर कर पानी लाई और उन्होंने बाबाजी से स्नान करने की प्रार्थना की। इसके बाद वे महाराजजी के स्नान के लिये पानी लाई। महाराजजी ने देखा कि पानी बिल्कुल साफ और निर्मल है। हुज़ूर ने सोचा कि इतना स्वच्छ जल निकट ही बहने वाली ब्यास नदी का नहीं हो सकता, बीबी रुक्को ज़रूर किसी कुएं से लाई हैं। परन्तु हुज़ूर को डेरे में कोई कुआँ भी नज़र न आया। पूछने पर बीबी रुक्को ने बताया कि बाबाजी के स्नान के लिये, तथा भोजन आदि बनाने के लिये वे प्रतिदिन वड़ाइच ग्राम के कुएं से पानी भरकर लाती है। महाराजजी को बड़ा अफ़सोस हुआ कि बीबी रुक्को को रोज़ इतनी दूर से पानी लाना पड़ता है। हुज़ूर ने बीबी रुक्को से कहा कि जब तक वे डेरे में रहेंगें, यह सेवा खुद करेंगे। दूसरे दिन उन्होंने बाबाजी के लिये पानी लाने की सेवा का काम स्वयं सँभाला। रास्ते में ऊंची-नीची ज़मीन और खड्डे थे। हुज़ूर नें यह कार्य कभी नहीं किया था। बड़ी मुश्किल से पानी की गागर सिर पर सँभालते हुए, ऊंचे-नीचे रास्ते को तय करते हुए डेरे आये। रास्ते पर आप सोचते रहे कि अगर संगत के लिये यहाँ एक कुआं बन जाये तो कितना अच्छा हो। आखिर बहुत सोचने के बाद एक दिन हिचकिचाते हुए उन्होंने बाबाजी से अर्ज़ की कि हुज़ूर! पानी के बिना संगत को बड़ी तकलीफ़ होती है। अगर यहां एक कुआं बनवाने की इजाज़त दे दें तो संगत भी लाभ उठायेगी और बीबी रुक्को को भी इतनी दूर से पानी लाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

इस पर बाबाजी महाराज ने फ़रमाया, "मेरा क्या, आज मैं यहां हूं, कल कहीं और। मुझे ज़्यादा दिन यहां रहना नहीं है। कुआं बनाकर क्या करोगे? मैं कुएं के साथ बंध कर नहीं बैठना चाहता।"

हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज ने अर्ज़ की, "हुज़ूर, मैं आपको बांधना नहीं चाहता। आप अगर एक बार भी कुएं का पानी इस्तेमाल कर लेंगे तो मेरे लिये काफ़ी है।"

बाबाजी ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "अच्छी बात है, कुआँ बनवा लो। मैं तो इससे बंध कर नहीं बैठूंगा। तुम्हें ही इससे बंध कर यहां रहना पड़ेगा।"

बाबाजी की इस बात का रहस्य तब समझ में आया जब बाबाजी ने हुज़ूर को अपने बाद गद्दी बख़्शी।

'कुआं बनवाने की इजाज़त मिलने पर कुएं के लिये ईंटें बनाने को भट्ठा भी लगाया गया।

बाबाजी महाराज ने अपने हाथ से उसे तारीख १६ मई १८९७ को सिलगाया।[1] कुआं बन कर पूरा होने का समाचार बाबाजी महाराज ने हुज़ूर को ९ दिसम्बर १८९८ के पत्र में इस प्रकार दिया, "पानी पहले सुराही में भर कर आगरे (चाचाजी सेठ प्रतापसिंहजी के पास) भेजा है, सब संगत में बरताया गया होगा। सो कुआँ बन गया है और पानी सात हाथ आया है, सो बहुत है। और रेत थोड़ी आई थी, सो इसी गहराई तक कुआँ रहा है। २४ मगसिर व ८ दिसम्बर को पूरा हो गया है। मुहूर्त आपके आने पर करना है।"

इन्ही दिनों एक दिन सत्संग में महाराज सावनसिंहजी ने बाबाजी महाराज से अर्ज़ की कि हुज़ूर, संगत के ठहरने के लिए कोई मकान नहीं है। उस समय तक छोटा सत्संग घर था जो कुएँ के बनाने से बची हुई ईंटों से बनाया गया था। बाबाजी ने फ़रमाया, "दरिया लागे ही है" (नदी पास ही है)। फिर कुछ सोचकर इजाज़त दे दी। उन दिनों दरिया ब्यास के पानी की मार से किनारे की मिट्टी खिसक रही थी और वड़ाइच ग्राम ढह रहा था। गांववालों ने महाराज सावनसिंह से कहा, "यह आप क्या कर रहे हो? दरिया के ढाहे[2] में कोठरियाँ बनवा रहे हो।" पर हुज़ूर ने जवाब दिया कि अगर बाबा जी की संगत इनमें एक दिन भी ठहर जाये, तो मेरे लिये बहुत है, मेरी सारी सेवा सफल हो जायेगी। सो उस वक्त पाँच कोठरियाँ नीचे और चार ऊपर बनाई गईं।

धीरे-धीरे संगत बढ़ने लगी। यह देखकर हुज़ूर ने फिर बाबाजी महाराज से विनती की कि एक बड़ा सत्संग-घर बनाया जाये, क्योंकि छोटे से सत्संग-घर में सारी संगत नहीं समा सकती है। इस पर बाबाजी ने फ़रमाया कि दरिया करीब ही है, यहाँ ज़्यादा रुपया खर्च नहीं करना चाहिए। हुज़ूर ने बड़ी नम्रता के साथ अर्ज़ की, "हुज़ूर! अगर आप एक दिन भी सत्संग-घर में सत्संग कर लेंगे, तो मैं अपनी सेवा सफल समझूँगा। उसके बाद चाहे दरिया बहा ले जाये।" यह सुनकर बाबाजी ने बड़ी खुशी के साथ मंजूरी दे दी। इस प्रकार बड़ा सत्संग-घर (जो कुएँ के पास है) बनाया गया।

---

१. डेरे में ईंट का भट्ठा तब से कायम है और अब डेरे के सब मकान, सड़कें, दीवार आदि इसी भट्ठे की ईंटों से बने हैं। पहले भट्ठा उस जगह था जहां आजकल लंगर है। बाद में उसे डेरे की सीमा में उत्तर की ओर दीवार के पास रखा गया। आजकल भट्ठा बाहर डेरे के खेतों में ग्राम कानेवाली के करीब है।

२. ज़मीन का वह हिस्सा जो पानी की मार की वजह से ढह रहा हो।

एक बार बाबाजी से अमृतसर के एक व्यापारी सत्संगी ने कहा, "हुजूर, आपने यह कैसी जगह पसन्द की है ? यहाँ तो चारों ओर किक्कर (बबूल) के पेड़ और काँटे वाली झाड़ियों के सिवाय कुछ नहीं है।" बाबाजी ने जवाब दिया, "बच्चू[1] मेरी इच्छा होती है कि इन किक्करों को भी मनुष्य-जन्म दे दूँ।" फिर फ़रमाया, "यही जगह एक दिन ब्यास स्टेशन तक आबाद हो जायेगी।"

जिस सुनसान जगह में लोग आने से भी डरते थे, वह आज सचमुच आबाद ही नहीं हो गई बल्कि संसार के लिये रूहानियत का एक बड़ा केन्द्र बन गई है।

बाबाजी महाराज सत्संग के लिये धालीवाल, भण्डाल और काले कई बार जाते थे। धालीवाल की संगत ज़ोर देती थी कि आप पेंशन के बाद धालीवाल में आकर रहें और अपना पक्का डेरा यहीं बनायें। लेकिन बाबाजी ने कहा कि 'इस जगह दरिया की मार है। मैं तो डेरा किसी ऊँची जगह बनाऊँगा जहाँ दरिया मार न कर सके।' धालीवाल ग्राम को बाद में दरिया से काफी नुक्सान हुआ और उसका बहुत-सा हिस्सा पानी में चला गया।

भण्डाल का इन्दरसिंह बाबाजी महाराज के पहले सत्संगियों में से था। वहाँ से धीरे-धीरे और भी प्रेमी सत्संग सुनने आने लगे। परन्तु कर्मकाण्ड के बँधे जीव इनकी आलोचना करने लगे और कुछ लोग तो बाबाजी महाराज की निन्दा भी करने लगे। संगत ने दु:खी होकर बाबाजी को सेवा में चिट्ठी लिखी। बाबाजी सदा दयालु और बख्शिन्द थे। आपने जवाब दिया,"...... सत्संगियों को आपस में बहुत मेल-मिलाप रखना चाहिये, क्योंकि आप सब एक ही हैं जी। और सतगुरु पर पक्का भरोसा करो कि एक दिन हमें साथ ले जायेंगे। अगर कोई हमारी निन्दा करे तो घबरा नहीं जाना चाहिये जी। सन्तों की मौज होती है कि जिनको भजन दिया है उनका तो वे उद्धार कर चुके हैं; जो जो सत्संगी नहीं, उनका (अपनी) निन्दा करवा कर उद्धार करेंगे। दूसरा और कोई उपाय नहीं है। इस तरह जो भजन से बिना हैं, वे तरेंगे। सन्तों की मौज को सन्त ही जानते हैं। मैं आप पर बहुत बहुत राज़ी हूँ जी।"

कई बार बाबाजी अपने सत्संगियों को पहले से ही बता देते थे कि कर्मों की वजह से तुम पर तकलीफ आने वाली है, परन्तु थोड़े दिन के बुखार में बख्श दी जाएगी। अपने पत्रों में आप कई बार सत्संगियों को पहले से लिख देते थे कि अमुक तकलीफ आनेवाली है, पर थोड़े में भुगता दी जावेगी।

बाबाजी महाराज प्रेम और दया की मूर्ति थे। आपकी दया-मेहर की कई

---

१. बाबाजी महाराज अपने सत्संगियों को प्यार के साथ 'बच्चू' कह कर पुकारते थे।

साखियां ग्रापके सत्संगी सुनाया करते थे। हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने एक बार आपसे पत्र में अर्ज़ की कि मेरे आफिस में एक शख्स काम करता है जो नाम का बड़ा ख्वाहिशमन्द है। आपने यह भी लिखा कि वह बाबाजी को पूर्ण पुरुष मानता है और चाहता है कि इसी जन्म में उसे नाम मिल जाये। बाबा जी महाराज ने बड़े स्पष्ट शब्दों में जवाब लिखा, "जिस दिन से...... हम पर पक्की प्रतीति कर चुका है, उसी दिन से उसके रात-दिन लेखे में हैं। उसको नाम-दान की दया-मेहर दृष्टि से पहुँचेगी। अब अगर उसकी देह छूट जाये तो फिर से मनुष्य देह मिलेगी। चौरासी में नहीं जावेगा।"

बाबाजी महाराज के बारे में उनके सत्संगी सुनाया करते थे कि बाबाजी का वर्ण हलका गेहुंग्रा था, कद मध्यम, चेहरा अत्यन्त आकर्षक तथा प्रभावशाली, नेत्र ज्योतिर्मय तथा वाणी प्रेम ग्रौर माधुर्य से परिपूर्ण थी। आपके शारीरिक बल के बारे में भी कई वृतान्त सुनाये जाते थे।

सरदार फतेहसिंह दसूहे वाला अपने वक्त के मशहूर बलवान पुरुषों में था। वह रहट की माल को, जब कि डोल भरे हुए होते थे, उठा लिया करता था। दो ऊँटों को पास-पास खड़ा करके छलांग लगा कर उन्हें पार कर लेता था। एक बार ऊँट पर सवार हो जंगल में ग्रकेला जा रहा था। हाथों में सोने के कड़े पहने हुए था। रास्ते में दो डाकू आ गये और बोले कि कड़े उतार दो। इस पर फतेहसिंह बोला कि तुम दोनों एक एक तरफ़ से आकर मेरे हाथों से निकाल लो। जब वे दोनों ऊँट के दोनों ओर से कड़े लेने आये तो फतेहसिंह ने एक-एक हाथ से एक-एक डाकू के केश पकड़ लिये ग्रौर उन्हें वैसे ही उठा कर लटकाये हुए मील भर तक ले गया; बड़ी मिन्नत करने पर छोड़ा। बाबाजी महाराज के विषय में वह कहा करता था कि मैं ग्रौर बाबाजी सन् १८५७ में साथ थे। एक दिन मैंने अपनी ताकत की बड़ाई की तो बाबाजी ने कहा कि मनुष्य को अपनी ताकत का अहंकार नहीं करना चाहिए। फतेहसिंह बोला कि सच्ची बात का क्यों अहंकार न करूँ। बाबाजी उस वक्त चारपाई पर बैठे थे। उठ कर चारपाई पर एक पैर रखकर बोले, "ग्रच्छा, इस चारपाई का एक पाया उठा दो।" फतेहसिंह ने बहुतेरा ज़ोर लगाया, मगर चारपाई का पाया न उठा सका। फिर वह बाबाजी के चरणों में गिर पड़ा।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के प्रति बाबाजी महाराज का बहुत प्रेम था। हुज़ूर के अर्ज़ करने पर बाबाजी ग्रापके घर महिमासिंहवाला तशरीफ़ ले गये। तब हुज़ूर को नाम लिये कुछ ही दिन हुए थे। आपकी आन्तरिक भावना

थी कि राधास्वामी नया नया नाम है और लोग इससे अभी परिचित नहीं हुए हैं सो बाबाजी यहाँ सत्संग में ग्रन्थ साहिब का शब्द लेवें तो अच्छा है। बाबाजी जानीजान थे, आपने सत्संग में गुरु ग्रन्थ साहिब का शब्द लिया। परन्तु रात को बीबी रुक्को कोठे पर चढ़ कर ऊँचे स्वर में स्वामीजी के शब्द पढ़ने लग गई। बीबी रुक्को की आवाज़ बड़ी ऊँची थी, जब शब्द पढ़ती दूर दूर तक सुनाई देता था। बीबी रुक्को को कौन रोक सकता था। हुज़ूर सुनाया करते थे कि 'उसके शब्द पढ़ने से दस पन्द्रह मिनिट में मेरी लोक-लाज निकल गई।'

महाराज सावनसिंहजी की इच्छा थी कि आपकी माताजी को नाम-दान मिल जाये। आपको विनती पर बाबाजी महाराज ने वहाँ महाराजजी की माता जीवनीजी, धर्मपत्नी बीबी किशनकौर, दादा सरदार शेरसिंहजी (जिनकी उम्र उस समय ९० वर्ष की थी) और ज्येष्ठ पुत्र सरदार बचिन्तसिंहजी को नाम प्रदान किया। हुज़ूर के एक मित्र मुंशी नारायणसिंह हुज़ूर को सत्संगी हो जाने पर ताने सुनाते थे। उन्होंने भी बाबाजी से नाम ले लिया और आखिर अपने पूरे कुटुम्ब को नाम दिला दिया।

इसके बाद बाबाजी महाराज कई बार महिमासिंह वाला तशरीफ़ ले जाते रहे। जब भी बाबाजी वहाँ आते, हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी आपकी सभी सेवा अपने हाथ से करते। एक बार बाबाजी महाराज के लिये हुज़ूर ख़ुद आटा पीस रहे थे। आपको चक्की से आटा पीसते देख कर आपकी पुत्र-वधू (सरदार बचितसिंहजी की धर्मपत्नी) ने विनती की कि मैं आटा पीस दूँ। इस पर हुज़ूर ने जवाब दिया, "नहीं बेटी, यह तो मेरी ही सेवा है।" ख़ुद आटा पीस कर भोजन तैयार करके बाबाजी को खिलाया। बाबाजी महाराज के स्नान के लिये हुज़ूर ख़ुद कुएँ से पानी खींच कर लाते थे।

बाबाजी महाराज ने ३४ साल सेना में नौकरी करके हक़-हलाल की कमाई द्वारा अपना गुज़ारा किया तथा पेंशन पर रिटायर होकर आए। आप हर महीने अपनी पेंशन लेने सठियालां ग्राम (डेरे से २-३ मील दूर) जाते थे। आपका जीवन सादा था, रहनी बड़ी पवित्र और ऊँची थी। अपनी पेंशन में अपना खर्च चलाने के बाद, आने वाले सत्संगियों की सेवा में भी खर्च करते थे। कुछ निकट के प्रेमी सत्संगियों को आप लंगर में नहीं खाने देते थे; बल्कि उन्हें अपने चौके से खाना खिलाते थे। कपड़े बहुत कम रखते थे। सामान के नाम पर थाली, कटोरी, लोटा, एक चारपाई, बिस्तर, एक जोड़ी जूते व खड़ाऊ, एक सोटी और गिनती के कपड़े रखते थे। अपने सत्संगियों

को आप हमेशा हक़-हलाल की कमाई का आदेश देते थे। फ़रमाते कि ऊँचे असूल, पवित्र रहनी और हक़-हलाल की कमाई भजन के लिये बहुत ज़रूरी है।

बाबाजी महाराज जब भी डेरे में होते तो सत्संग रोज़ करते थे। भण्डारे के दिनों में ४० से ५० स्त्री-पुरुष आ जाते थे वैसे रोज़ के सत्संग पर कभी चार-पाँच तो कभी आठ-दस व्यक्ति होते थे। कभी आप ज़मीन पर मोटी चटाई पर सफ़ेद आसन बिछा कर बैठते और सत्संग फ़रमाते तो कभी चारपाई पर बैठ कर। बीबी रुक्को या भाई ज्वालासिंह शब्द पढ़ा करते थे।

बीबी रली जो कि छः वर्ष की उम्र से डेरे में रहती आई हैं और जिन्होंने बाबाजी महाराज के भी दर्शन किये हैं, बताती हैं कि उन दिनों भण्डारे के समय संगत ३० या ४० तक होती थी और प्रसाद बनाने में दस सेर सूजी और बीस सेर शक्कर लगती थी। आज भण्डारों में तीन-चार लाख व्यक्ति आते हैं और लंगर में सिर्फ़ एक वक्त के खाने में तीन-चार मन नमक लगता है।

बाबाजी महाराज के समय में डेरे में कोई दुकान नहीं थी। आटा, दाल आदि के सिवाय और कोई भी चीज़ पास के गाँवों में नहीं मिलती थी। डाक हफ़्ते में तीन बार आती थी। चिट्ठी लिखने का कागज़ तक शहर से मँगाना पड़ता था। बाबाजी अपने पत्र मिलखीरामजी (बीबी रली के पिता) से लिखवाते थे। कई बार ख़ुद भी लिखते थे। सत्संगियों का रहन-सहन सादा होता था। सादा खाना, सादा पहनना और पवित्र विचार उस समय की विशेषता थी। घी भोजन का ज़रूरी हिस्सा था। परन्तु बाबाजी की ख़ुराक बहुत कम थी। जो बीबी रुक्को बना देती, खा लेते थे। कई बार आठ-आठ दिन भजन में बैठे रहते। बीबी रुक्को चिन्तित हो उठती और वड़ाइच से आने वाले सत्संगियों से कहती, "भाई, बाबाजी आज दस दिन से भजन में बैठें हैं, उठने का ख़याल ही नहीं है।"

बाबाजी तथा आने वाली संगत के लिये बीबी रुक्को खाना बनाती और पानी भर कर लातीं। बाबाजी की आपने बहुत सेवा की और उनके चरणों में आपका बहुत प्यार था। इसीलिये बीबीजी का ख़याल था कि बाबाजी के बाद गुरु-गद्दी उनके घर में ही रहे और वे बाबाजी के भाई जीवनसिंह के पुत्र स्वामीसिंह को गद्दी दिलाना चाहती थीं। बाबाजी महाराज बीबी रुक्को को समझाते कि बीबी, यह इस चीज़ के लायक नहीं है और इसे जल्दी ही गुज़र जाना है। बाबाजी के बाद जल्दी ही स्वामीसिंह की मृत्यु हो गई।

बाबाजी के दो भाई थे, जीवनसिंह और दानसिंह। दोनों का बाबाजी से

बड़ा प्रेम था और सत्संग में बराबर आया करते थे। दो बहनें बीबी ताबो और बीबी राजो थीं। बीबी ताबो शुरू से जानती थीं कि उनके भाई जैमल-सिंहजी साधारण मनुष्य नहीं हैं और अपने परिवार के लोगों से कहा करती थीं कि ये मेरे भाई बड़ी करनी वाले महात्मा हैं। बाबाजी के चोला छोड़ने के कुछ समय बाद भाई दानसिंह गुज़र गये थे। बाबाजी के बाद उनके दूसरे भाई भी चोला छोड़ गये। इस समय बाबाजी के परिवार या वंश का कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं है।

बाबाजी महाराज भजन करने पर हमेशा बहुत ज़ोर देते थे। सीधे-सादे सरल-हृदय लोगों में भजन की लगन भी थी। हुज़ूर महाराज जी कभी-कभी सत्संग में उस समय के अभ्यासियों की बातें सुनाते थे। जब हुज़ूर बाबाजी महाराज के पास आये, उन दिनों मच्छर और रामदित्ता नामक दो जाट मंढाली ग्राम से आया करते थे। अच्छे प्रेमी थे। जब तक सुबह भजन में उन्हें बाबाजी महाराज के दर्शन नहीं होते, वे अपने काम-काज को हाथ नहीं लगाते। उन्हें रोज़ अन्तर में बाबाजी के दर्शन होते थे। जो प्रेमी होते हैं, गुरु भी उनकी कभी-कभी आज़माइश करता है। एक बार उन्होंने मक्की बोई हुई थी और फसल बढ़ रही थी। एक दिन रहट से पानी लेने की उनकी बारी थी। रामदित्ता बोला, "मच्छर! आज बाबाजी महाराज के दर्शन नहीं हुए।" मच्छर ने कहा, "मुझे भी नहीं हुए। लेकिन अगर आज पानी न दिया तो मक्की सूख जायेगी।" रामदित्ता बोला, "सूख जाये तो गुरु की ही तो है, सूख जाने दो।" यह कह कर दोनों दोबारा भजन में बैठ गये। जब अन्दर बाबाजी के दर्शन हुए तो उठ कर पानी दिया।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी जब डेरे आते तो बाबाजी हमेशा उन्हें अपनी कोठरी में ठहराते थे। उन दिनों डेरे में सिर्फ दो चारपाइयाँ थीं, एक तो बाबाजी महाराज की चारपाई (जो अब तक डेरे में मौजूद है) और दूसरी बीबी रुक्को की चारपाई। बीबी रुक्को की चारपाई बहुत छोटी थी। संगत सब ज़मीन पर सोती थी। सरदी में लोग पराली बिछा कर उस पर खेस या चद्दर बिछा कर सोते थे। गर्मी में ज़मीन पर चटाई या खेस बिछा लेते थे। महाराज सावनसिंहजी बाबाजी के पलंग के नीचे फ़र्श पर ही सो जाते थे।

बाबाजी के चोला छोड़ने के बाद हुज़ूर महाराजजी कभी उस कोठरी में नहीं सोते थे। आप जब भी डेरे आते तो बाबाजी की कोठरी में भजन करने ज़रूर बैठते थे। बाद में जब कोठरी की जगह कमरा और मौजूदा इमारत बनायी तब हुज़ूर ने इस बात का ख़ास ख़याल रखा कि बाबाजी महाराज

की पवित्र कोठरी के मलबे में से कुल ईंट, मिट्टी, पत्थर वगैरह का एक कण भी बाहर न जाये। आपने बाबाजी की कोठरी की दीवारों और छत की सारी मिट्टी ईंटें आदि उसी जगह प्लिथ (कुर्सी) में दबा दीं और उस पर बाबाजी का कमरा बना दिया। इसीलिये इस इमारत की कुर्सी इतनी ऊँची है। बाबाजी महाराज का पलंग और बिस्तर अब भी इस कमरे में उसी स्थान पर रखा है। हुज़ूर महाराजजी जब भी नाम-दान देने जाते या डेरे से बाहर दौरे पर जाते तो जाने से पहले बाबाजी के कमरे में कुछ देर भजन में बैठा करते थे। यही नियम सरदार बहादुर महाराजजी और महाराज चरनसिंहजी का रहा है।

बीबी रलो सुनाती हैं कि एक बार स्वामीजी महाराज ने अपना शाल बाबाजी को बख़्शा। वह शाल बाबाजी कभी-कभी ओढ़ते थे। चोला छोड़ने से कुछ समय पहले बाबाजी ने वह शाल हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी को दे दिया। हुज़ूर अक्सर भण्डारों के अवसर पर उसे ओढ़ कर सत्संग में तशरीफ़ लाते थे। अब हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी कभी-कभी बाबाजी महाराज के भण्डारे के दिन उस शाल को ओढ़ कर सत्संग में पधारते हैं।

स्वामीजी महाराज के चोला छोड़ने के बाद भी बाबाजी माता राधाजी तथा चाचाजी सेठ प्रतापसिंहजी के पास आगरा जाते रहते थे। कई बार आप हुज़ूर सावनसिंहजी को भी साथ ले जाते थे। माताजी, चाचाजी तथा उनका पूरा परिवार बाबाजी के प्रति बहुत प्रेम-भाव रखता था तथा आपकी इज़्ज़त करता था। यह प्रेम आगरा से आये तथा लिखे गये पत्रों से साफ प्रकट होता है।[1]

एक बार सेठ प्रतापसिंहजी का बाबाजी के पास पत्र आया कि चूँकि सत्संग में 'फ़िरकाबन्दी और गिरोहबन्दी' होती जा रही है, इसलिये सब मिल कर एक सदर सभा कायम करें जिसमें आप भी एक मेम्बर हों।[2] इसके जवाब में बाबाजी ने जो लिखा और सेठ प्रतापसिंहजी की ओर से जो पत्र आया उसका ज़िक्र हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी को लिखे अपने नवम्बर १९०२ के पत्र में इस प्रकार किया है, "आगरा से जनाब चाचाजी का हुक्म-नामा आया था कि दस मेम्बरों के लिये तुम दस्तख़त कर दो, जो कि तय हुए हैं। मैंने चाचाजी से यह अर्ज़ की कि मैं हुज़ूर स्वामीजी दीनदयाल को और आपको और महाराज सुचेतसिंह और सुदर्शनसिंह और स्वामीजी के बंस

१. देखें परमार्थी पत्र भाग १।
२. परमार्थी पत्र भाग १-स्वामीबाग आगरा का पत्र न. ४।

के सिवाय किसी को नहीं मानूँगा। पीछे माना नहीं, न आगे मानूँगा। फिर वह हुक्म दोबारा वापस हुआ कि 'इसी तरह चाहिये था। तुम्हारी प्रीति और प्रतीति देखनी थी, सो देखी गई, और बहुत खुश हुए'।"

बाबाजी महाराज के समय में स्वामीजी महाराज की वाणी हिन्दी में छप चुकी थी। लेकिन बाबाजी की इच्छा थी कि पंजाबी में भी सार बचन वार्तिक और सार बचन छन्द बंद छापे जायें। सन् १९०१ में बाबाजी ने स्वामीजी महाराज के छोटे भाई सेठ प्रतापसिंहजी से आज्ञा लेकर सार बचन वार्तिक तथा छन्द बन्द, दोनों पुस्तकों को पंजाबी में छपाने के आदेश दिये। बाबाजी महाराज अपने पत्रों में हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी को इनके प्रकाशन के विषय में बराबर लिखते रहते। आपका आदेश था कि जो पोथी सेठ प्रताप सिंहजी के पास से आई है उसमें एक मात्रा भी इधर से उधर न हो। इसी सिलसिले में अपने एक पत्र में आपने लिखा, "मगर इतना फ़रक ज़रूर हो कि यह न लिखा जाय कि स्वामीजी का कोई गुरु नहीं था।" क्योंकि बाबाजी महाराज फ़रमाया करते थे कि स्वामीजी ने उपदेश तुलसी साहिब हाथरस वालों से लिया था। १९०३ में दोनों पुस्तकें पंजाबी में छप कर आ गईं।

बाबाजी महाराज अपने सत्संगों में हमेशा बाहरमुखी क्रियाओं का निषेध करते थे। सन्तों के फोटो, चित्र आदि की पूजा के बारे में भी आपके विचार स्पष्ट थे। आप बार-बार हुक्म देते थे कि फोटो की पूजा करना ग़लत है और यहाँ तक फ़रमाते थे कि मेरी फोटो कोई सत्संगी न रखे। एक बार कुछ सत्संगियों ने आपसे अर्ज़ की कि हुज़ूर, आगरा में स्वामीजी महाराज की समाधि बनायी जा रही है और वह लोग चन्दा भी माँग रहे हैं। इस पर बाबाजी ने फ़रमाया, "सन्तों की तालीम ही उनकी असली यादगार है। समाधियों के द्वारा सन्त ज़िन्दा नहीं रहते। समाधियाँ तो बाहरमुखी साधन की ओर ले जाती हैं। स्वामीजी का उपदेश तो हमेशा अन्तर-मुख अभ्यास का ही रहा है।" फिर बाबाजी ने अपने सत्संगियों को हुक्म दिया कि मेरे बाद मेरी समाधि हरगिज़ न बनवाना।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी की कमाई से बाबाजी हमेशा डेरे में सेवा में रुपया लगाते थे। कुआँ, छोटा और बड़ा सत्संग घर, कोठरियों, कमरों आदि में अधिकांश रुपया हुज़ूर की सेवा में से ही लगा है। आगरा में स्वामीबाग में जो कोठरियाँ बनी उनमें भी हुज़ूर की सेवा का हिस्सा बहुत बड़ा है। कई बार हुज़ूर पहाड़ों में अपनी नौकरी के समय वहाँ से गरम कपड़ा अथवा इसी प्रकार की वस्तुएँ सेठ प्रतापसिंहजी के लिये बाबाजी के पास भेजा करते थे। बाबा

जी उन्हें आगरा भेजते और चाचाजी बड़े प्रेम से स्वीकार करते । बाबाजी कई बार हुज़ूर से फ़रमाते थे कि तुम्हारी महिमासिंहवाला की ज़मीदारी में से कुछ अनाज डेरे ज़रूर भेजा करो । बाबाजी के हुक्म के अनुसार हुज़ूर लंगर के लिये गेहूँ, मक्का आदि अनाज बराबर भेजते रहते थे । जब हुज़ूर महाराजजी ने सरसा में ज़मीनें खरीदीं तो वहाँ से आप हमेशा लंगर के लिये सामान भेजते रहे । यह क्रम आज भी चल रहा है और हुज़ूर के परिवार की ओर से सरसा से हर साल सैंकड़ों मन सामान ट्रकों में भर कर लंगर के लिये भेजा जा रहा है ।

रायसाहिब मुन्शीरामजी अपनी डायरी में लिखते हैं कि हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी फ़रमाया करते थे कि सेवा बड़ी खुशकिस्मती से मिलती है और कभी व्यर्थ नहीं जाती । जब हुज़ूर ने नाम नहीं लिया था तो अपनी सारी कमाई अपनी माताजी के सामने लाकर रख देते थे । कभी अपनी पत्नी को नहीं दी । अगर पत्नी माँगती तो आप फ़रमाते कि माताजी से ले लो । जब नाम ले लिया तो घर वालों से कह दिया कि अब गुरु का अधिकार पहले है । जो तनखाह में से खर्च के बाद बचता, आप बाबाजी के सामने लाकर रख देते । वे जो मुनासिब समझते घर वालों को दे देते और बाकी साध-संगत की सेवा में खर्च कर देते । अतएव डेरे में कुआँ, सत्संग घर छोटा व बड़ा, कोठरियाँ, रसोई वगैरह सब बाबाजी ने हुज़ूर की सेवा में से बनवाईं । इस बात का ज़िक्र करके हुज़ूर फ़रमाते थे कि उस सब सेवा के फलस्वरूप आज बाबाजी ने लाखों रुपये सलाना की आमदनी मेरे लड़कों को बख्शी है ।

हुज़ूर कई बार बाबाजी महाराज की बातें सत्संग में सुनाया करते थे । एक बार आपने बताया कि बाबाजी महाराज अपनी माताजी का वचन पूरा करनें के लिये हरिद्वार गये । माताजी ने आपसे कहा था कि मेरे बाद मेरे फूल तुम खुद हरिद्वार जाकर प्रवाहित करना । बाबाजी महाराज फ़रमाते थे कि जब आप वहाँ पहुँचे तो आपने देखा कि आपके कुल में एक घुद्दू नामक व्यक्ति था जो हरिद्वार में पीपल की जून में है । उसका उद्धार करना था । बाबाजी ने उसके कुछ पत्ते खाये; वह पेड़ दो-तीन दिन में सूख गया ।

एक बार बाबाजी महाराज हुज़ूर के साथ मरी पहाड़ तशरीफ़ ले गये । हुज़ूर के बंगले के सामने मौजपुरी अथवा मोक्षपुरी का पहाड़ था जो हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान था । वहाँ के खूबसूरत दृश्य की ओर इशारा करके हुज़ूर ने अर्ज़ की, "महाराजज़ी, देखिये कितने सुन्दर पहाड़ हैं ।" इस पर बाबाजी ने फ़रमाया कि मैं पहले इस जगह को देख चुका हूँ । हुज़ूर ने सोचा कि शायद

बाबाजी सैनिक सेवा के समय अपनी पलटन के साथ यहाँ आये होंगे। जब पूछा तो बाबाजी ने जवाब दिया कि नहीं, इससे भी पहले यहाँ आ चुका हूँ, जब ये पहाड़ बने भी नहीं थे और इस जगह मैदान था।

बाबाजी महाराज कई बार फ़रमाते थे कि अकाल पुरुष आपको इससे पहले भी जीवों को सचखण्ड ले जाने के लिये यहाँ भेज चुका है।

एक बार बाबाजी महाराज के पास तीन पण्डित आये। उनका किसी शास्त्र के अर्थ के विषय में आपस में मतभेद था। उनमें से एक ने कहा कि चलो, महाराज जैमलसिंहजी के पास चलें, वे बड़े ऊँचे महात्मा हैं और अन्दर जाते हैं। जब आये और अपनी शंका बतलाई तो बाबाजी ने सरलतापूर्वक कहा कि मैं संस्कृत नहीं जानता। परन्तु उनको साधारण बातचीत के सिलसिले में पूरी बात समझा दी। तब उन्होंने विनती की कि महाराज, हमें नाम दो। बाबाजी ने जवाब दिया कि वाचक-ज्ञानी और विद्या का आसरा लेने वाले नाम की कमाई नहीं कर सकते। यह सुनकर बाकी पण्डित तो चले गये, पर एक रह गया। उसने नाम माँगा, बाबाजी ने दे दिया।

छः महीने बाद वह फिर बाबाजी के पास आया और कहने लगा कि यह सुरत-शब्द योग का तरीका अच्छा नहीं है, प्राणायाम अच्छा है। कुछ महीनों बाद फिर आया और बोला कि प्राणायाम भी अच्छा नहीं है। आप मुझे दिखाइये कि अन्दर क्या है? इस पर बाबाजी ने उसे समझाया कि नाम की कमाई करो। वह चला गया। कई दिनों बाद एक बार बाबाजी महाराज अपनी पेंशन लेने सठियाला जा रहे थे तो वही पण्डित रास्ते में मिला और ज़िद करने लगा कि यहाँ एकान्त है, मुझे ज़रा-सा अन्दर का हाल दिखा दो। बाबाजी महाराज ने उसे समझाया कि उसका नुक्सान हो जायेगा। लेकिन उसने अपनी ज़िद न छोड़ी। इस पर बाबाजी ने उसे वहीं बिठाया और अपनी ज़रा सी तवज्जह दी। जब तवज्जह दी तो वह चिल्लाकर एक ओर गिर पड़ा और कहने लगा, "मुझे सँभालो!" बाबाजी ने फ़रमाया कि अन्दर से ख़याल छोड़ दो। जब ख़याल छोड़ा तो बाहर आ गया। बोला कि अन्दर करोड़ों बिजलियाँ टूट पड़ी थीं। फिर बाबाजी ने उससे कहा कि तेरी उमर के तीन साल बाकी हैं। चाहे भजन कर ले, चाहे दुनिया का काम कर ले।

आप फ़रमाते थे कि सन्तों से कभी ज़िद नहीं करनी चाहिये, बल्कि उनकी मौज में रहना चाहिये। जब भी वे ठीक समझेंगे ख़ुद अन्दर ले जायेंगे।

यह वृत्तान्त हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी कभी-कभी सत्संग में सुनाया करते थे। एक बार हुज़ूर बाबाजी महाराज सत्संग के लिए अम्बाला तशरीफ़

ले गये। वहाँ मोतीराम टेलर मास्टर बड़े प्रेमी सत्संगी थे। बाबाजी उनके यहीं ठहरे और कुछ दिन सत्संग करते रहे। बाबाजी का सत्संग सुनकर लोग बहुत प्रभावित हुए। वहाँ के मजिस्ट्रेट का सरिश्तेदार हुक्मसिंह रोज़ सत्संग में आता था। उसने नाम-दान के लिये विनती की, परन्तु बाबाजी ने टाल दिया। हुकमसिंह ने मोतीराम के आगे नाम-प्राप्ति की इच्छा प्रकट की। मोतीराम ने सोचा कि यह एक बड़ा आदमी है, बुद्धिमान और प्रतिष्ठित व्यक्ति है, अगर यह नाम ले ले तो सत्संग की रौनक बढ़ जायेगी। यह सोचकर उन्होंने बाबाजी से अर्ज़ की, परन्तु बाबाजी ने इन्कार कर दिया। लेकिन भाई मोतीराम जी ने बहुत आग्रह किया। इस पर बाबाजी ने फ़रमाया कि चाहे हज़ार जीवों को नाम दिला लो पर हुकमसिंह के लिये ज़िद न करो, क्योंकि इसके कर्म बड़े सख्त हैं। भाई मोतीराम ने कहा, "बाबाजी! अगर आपके पास आकर भी कर्म रह गये तो फिर दुनिया में इसके लिये और कौन सी जगह है?"

बाबाजी महाराज का विचार अम्बाला में एक महीने रह कर सत्संग करने का था। परन्तु मोतीराम के बहुत हठ करने पर आपने फ़रमाया, "अगर तुम इसे नाम दिलाना चाहते हो तो नाम मैं दे दूँगा, लेकिन फिर यहाँ और नहीं ठहरूँगा, नाम देते ही चला जाऊँगा।" मोतीराम ने हठ न छोड़ा, बोले, "अच्छा महाराजजी! मैं सत्संग ब्यास आकर सुन लूँगा।"

अतएव दूसरे दिन बाबाजी ने तांगा मँगवा लिया, अपना बिस्तरा बाँध कर उसमें रखवा दिया। हुकमसिंह को नाम दिया और फौरन तांगे में बैठ कर स्टेशन चले आये और ब्यास के लिए रवाना हो गये।

जब गाड़ी लुधियाना स्टेशन पर रुकी तो इत्तिफ़ाक से हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी स्टेशन पर मिल गये। आपने बाबाजी से अर्ज़ की, "हुज़ूर! मेरा गाँव (महिमासिंहवाला) नज़दीक ही है, हुज़ूर तशरीफ़ ले चलें और दर्शन देते जायें।" बाबाजी ने फ़रमाया, "मैं इस वक्त नहीं उतरूँगा। और तुम इस इतवार डेरे मत आना।" महाराजजी का नियम था कि जब छुट्टी पर घर आते तो हर इतवार को बाबाजी के सत्संग और दर्शन के लिये डेरे अवश्य जाते। आप हैरान हुए कि आज क्या बात है, पहले तो कभी बाबाजी महाराज ने ऐसा हुक्म नहीं दिया। परन्तु आज्ञा का पालन करते हुए आप अपने गाँव चले आये।

जब बाबाजी डेरे पहुँचे तो इतना तेज़ बुखार चढ़ा कि नीचे की साँस नीचे और ऊपर की साँस ऊपर, ऐसा लगने लगा कि शायद बचेंगे नहीं। बारह दिन इतना तेज़ बुखार रहा कि सब घबरा गये। शरीर ऐसा तपता

था कि पास खड़े हुए व्यक्ति को भी उसका सेक लगता था। बीबी रुक्को तथा अन्य सत्संगियों ने दवा खाने के लिये अर्ज़ की। आपने फ़रमाया, "मैं अभी बारह दिन कोई दवा नहीं लूँगा।" बीबी रुक्को रोने लगी। बाबाजी ने फ़रमाया, "अभी मैं जाता नहीं हूँ। तू फिकर न कर।"

बारह दिन बाद बुखार उतरा। जब हुजूर सावनसिंहजी महाराज करीब १३-१४ दिन बाद अगले इतवार को डेरे पधारे तो आपको बाबाजी के सख्त बीमार होने का पता चला। आपने अर्ज़ की, "हुजूर! आपने मुझे आने से रोक दिया। अगर मैं आता तो आपकी कुछ सेवा करता।" बाबाजी ने उत्तर दिया, "बच्चू! आपसे बरदाश्त नहीं होना था, इसलिये मैंने टाल दिया।"

जब हुजूर ने आग्रह किया कि इस सख्त तकलीफ़ का कारण क्या था तो बाबाजी महाराज ने बताया कि हुकमसिंह के कर्म इतने सख्त थे कि काल को उसे सात जन्म तपती हुई शिला पर तपाना था। मोतीराम के हठ करने पर हमें उसके कर्म उठाने पड़े।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने इस बात का हुकमसिंह को जीवन भर पता न लगने दिया। उसके देहान्त के बाद इसे प्रकट किया।

हुज़ूर की नौकरी के दिनों में आपके पास किशनसिंह नामक एक चौकीदार था। तेरह साल हुज़ूर की सेवा में रहा। खयाल नेक थे, वाणी के पाठ का बड़ा शौक था। आधी रात को उठकर स्नान करके पाठ करता था। हुज़ूर का खयाल था कि यह आदमी नेक है, वाणी का पाठ करता है, इसे नाम मिल जाये तो अच्छा है। एक बार जब बाबाजी हुज़ूर के पास दर्शन देने आये तो हुज़ूर ने कहा कि किशनसिंह आपके पास आयेगा। हुज़ूर की प्रेरणा से किशनसिंह बाबाजी के पास आया, कुछ देर बैठा मगर कुछ बोला नहीं, मत्था टेका और चला गया। सन्त खुद होकर जीव से नहीं कहते कि तू नाम ले ले। किशनसिंह ने नाम नहीं माँगा।

जब हुज़ूर अपने दफ्तर से वापस आये तो बाबाजी से पूछा, "हुज़ूर, क्या किशनसिंह आपके पास आया था?" बाबाजी ने जवाब दिया, "हाँ, आया तो था। पर जो तुम्हारा खयाल है, वह नहीं होगा।" हुज़ूर ने कहा कि "आदमी नेक है, वाणी बराबर पढ़ता है, नाम मिल जाये तो अच्छा है।" इस पर बाबाजी महाराज ने फ़रमाया, "पढ़ना-पढ़ाना और चीज़ है, नाम का मिलना कुछ और ही चीज़ है। इस जन्म में इसके कर्मों में नाम का मिलना नहीं है। इसे जलकर मरना है।" हुज़ूर सुनाया करते थे कि कई वर्ष बाद जब आप रावलपिंडी गये तो किशनसिंह के गाँव सैयद कसरावाँ की संगत से पूछा

कि किशनसिंह का क्या हाल है ? उन्होंने हुज़ूर को बताया कि एक बार किशनसिंह के मकान में आग लग गई, वह कोठे पर चढ़कर आग बुझाने गया तो आग में गिर पड़ा और मर गया।

इसी प्रकार का एक और वृत्तान्त हुज़ूर सुनाते थे। मरी में हुज़ूर का हरिसिंह नामक एक अर्दली था। उसने ग्यारह वर्ष हुज़ूर के पास काम किया। एक बार जब बाबाजी महाराज मरी पहाड़ पर गये तो हुज़ूर ने हरिसिंह को बाबाजी से मिलाया। उसके जाने के बाद बाबाजी ने हुज़ूर से कहा, "आप चाहे सौ साल तक हरिसिंह को सत्संग सुनाओ, इसे इस जन्म में नाम नहीं मिलेगा। इसे डूब कर मरना है।" कुछ वर्ष बाद हरिसिंह अपने घर चला गया। वहाँ उस पर कोई मुकद्दमा बन गया। वह घबरा गया, चिट्ठी लिख कर रख दी कि मैं खुद मर रहा हूँ, मेरे लिये किसी को न पकड़ना, और पोखरे में छलांग लगा कर डूब मरा।

हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि सन्तों की दृष्टि में कोई भी भला या बुरा नहीं होता। उन्हें जीव के कर्म इस प्रकार दिखाई देते हैं जैसे किसी शीशे की बोतल में रखी वस्तु हमें साफ दिखाई देती है।

बाबाजी महाराज का हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी को आदेश था कि महीने में दो नहीं तो एक पत्र तो ज़रूर लिखा करें। बाबाजी ने जो पत्र हुज़ूर को लिखे हैं उनमें आपका हुज़ूर के प्रति बहुत गहरा प्रेम प्रकट होता है। कुछ उदाहरण इस बात को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त होंगे :—

"बरखुरदार बाबू सावनसिंह, तुम मेरे निज प्राण हो, तुम मेरे बेटे हो, गुरुमुख हो......मैं तुम पर बहुत बहुत खुश हूँ। तुम एक दिन ज़रूर सचखण्ड पहुँचोगे और (वहाँ) सदा मेरे साथ रहोगे। फिर जन्म नहीं होगा जी।"

"आप मुझे अपनी देह व प्राणों से भी प्यारे हो। फिर जन्म नहीं होगा। जहाँ मैं रहूँगा उसी जगह आप भी मेरे साथ रहेंगे। मैं आप पर बहुत बहुत राज़ी हूँ।"

"मैं आप पर सब तरह से बहुत-बहुत राज़ी हूँ। आप मेरे स्वरूप से भिन्न नहीं हो।......काम-काज के लिये दूसरी देह प्रतीत होती है जी।"

हुज़ूर के पत्र पाकर बाबाजी बहुत प्रसन्न होते थे। आप स्वयं लिखते हैं, "जिस वक्त आपकी चिट्ठी आती है, उस वक्त चित्त में इतनी खुशी और आनन्द होता है जिसका बयान नहीं हो सकता है जी।"

भाई मन्नासिंह (जो बाबाजी महाराज के पास रह कर वर्षों सेवा करते रहे थे) ने एक बार का वृत्तान्त सुनाया, "एक दिन हुज़ूर महाराजजी को

3

चिट्ठी आयी थी। मैंने देखा कि बाबाजी महाराज उसे बार-बार हाथ में लेकर पढ़ रहे हैं। मुझे पता नहीं था कि वह क्या कागज़ है और उसमें क्या लिखा है। मेरे पूछने पर बाबाजी ने फ़रमाया कि यह चिट्ठी बाबू सावन-सिंहजी की है, बड़े प्रेम और विरह से भरपूर है और उन्होंने नौकरी छोड़ कर चरणों में आकर रहने की तड़प ज़ाहिर की है। इस पर मैंने अर्ज़ की, 'हुज़ूर ! जब उनको इतनी तड़प है तो उन्हें यहाँ बुला लें।' तो बाबाजी महाराज ने जवाब दिया कि अभी उनसे बहुत दुनियावी काम लेना है। लेकिन बच्चू ! एक दिन आयेगा जब तुम देखोगे कि स्वामीजी उनसे किस कदर परमार्थ का काम लेते हैं।"

बाबाजी कई बार हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज को लिखा करते थे कि 'आप सब मेरी ही सेवा कर रहे हो। यह जो घर में काम-काज करते हो, यह भी सतगुरु का काम है, भजन और सुमिरन करना भी सतगुरु का काम है।' जब महाराजजी ने लिखा कि मुझे नौकरी छोड़ कर चरणों में आने की इजाज़त दें तो बाबाजी ने जवाब में लिखा, "सचखण्ड तो इसी परदे के पीछे है जी, दूर नहीं है। क्यों घबराते हो, खुद घर जाओगे जी। आपने लिखा कि घर को छोड़कर, नौकरी छोड़कर भजन करूँ। घर में आपका क्या है और नौकरी में आपका क्या है ? रुपये में आपका क्या है ? सोचकर देखो, इसको छोड़ना क्या और लेना क्या ! यह तो मदारी की बाज़ी है। संसार सपना है जी। आपने लिखा कि 'मैंने रुपये का ज़िक्र किसी से नहीं किया है, मुझे कहीं मान न हो जाये।' क्यों मान हो जाये ? आपका क्या है उनमें ? सब कुछ सतगुरु का है, आप उनके कामदार बने रहो।"

हुज़ूर को भजन की लगन शुरू से थी। कई बार विचार आता था कि सरकारी नौकरी की वजह से भजन को ज़्यादा समय नहीं दे पा रहे हैं। बाबाजी आपको दुनियावी कर्तव्य और भजन, दोनों के लिये प्रेरणा देते रहते। आप फ़रमाते, "भजन और सुमिरन रोज़-रोज़ करना, जिस वक्त भी समय मिले। जिस वक्त आप सरकारी काम कर रहे हो उस वक्त का भजन मेरी तरफ है जी।"

एक बार हुज़ूर के मझले साहबज़ादे सरदार बसन्तसिंह इम्तिहान में फेल हो गये। हुज़ूर को खयाल आया कि मेरे लड़के पढ़ने में ध्यान नहीं देते, जबकि औरों के लड़के छोटी उमर में भी मन लगाकर पढ़ते हैं। आपने इस का ज़िक्र एक पत्र में किया। बाबाजी महाराज ने जवाब में लिखा, "बसन्त-सिंह के लिये घबराओ नहीं, पढ़ाये जाओ और नक्शा भी सिखाओ। अगर दो

दफ़ा पास न हुआ तो क्या हरज है, फिर हो जायेगा । उसकी किस्मत को कौन देख आया है । आप ऐसा अफ़सोस करते हो कि मेरे लड़के नहीं पढ़ते, औरों के छोटे-छोटे पढ़ते हैं । खयाल करो, औरों के लड़कों को भजन भी मिला है ? और जो मरेंगे, नरक को जावेंगे और आपके लड़के घर को जावेंगे । आपका वंश औरों से कैसे मिल सकता है !"

एक बार बाबाजी महाराज नें बीबी रुक्को से कहा कि बचिंतसिंह (हुजूर सावनसिंहजी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र) के कर्म बहुत भारी हैं, उसको अपने घर के आँगन में वृक्ष के नीचे फाँसी लगेगी । इस पर बीबी रुक्को ने अर्ज़ की कि 'बाबाजी, बाबू सावनसिंहजी तो आपके प्रेमी सेवक और गुरुमुख शिष्य हैं । अगर बचिंतसिंह के साथ ऐसा हुआ तो क्या बाबूजी को दुःख न होगा ।' इस पर बाबाजी महाराज ने कोई उत्तर न दिया । इसके बाद जब बाबाजी महाराज बीबी रुक्को के साथ महिमासिंहवाला तशरीफ़ ले गये तो एक दिन पूरी रात भजन में बैठे रहे । सुबह उठकर बीबी रुक्को को बुलाया और फ़रमाया कि मेरे बिस्तरे की रस्सी लेकर इसे आंगन के पेड़ से बाँधकर लटका दो । जब बीबी रुक्को ने रस्सी पेड़ से लटका दी तो बाबाजी नें बचिंतसिंहजी को बुलाकर रस्सी के दूसरे सिरे का फन्दा बनवाकर बचिंत-सिंहजी के गले में डाला और बीबी रुक्को को हुक्म दिया कि जब मैं रस्सी खींचूँ तब चाकू के एक ही वार से सिर के ऊपर की रस्सी काट देना । जब बाबाजी ने रस्सी को खींचा तो बीबी रुक्को ने उसे एक ही वार में काट दिया । इसके बाद बाबाजी महाराज ने बचिंतसिंहजी से फ़रमाया, "जा तुझे स्वामीजी महाराज ने बख़्श दिया है ।" यह वृत्तान्त सरदार बचिंतसिंहजी कभी-कभी सुनाया करते थे । बीबी रुक्को से भी यह बात मैं एक-दो बार सुन चुका हूँ ।

हुज़ूर को बाबाजी महाराज ने एक पत्र में परमार्थी के लिये रहनी बताई और इस प्रकार आदेश दिया, "जिस वक्त सरकारी काम कर चुको फिर किसी के साथ नहीं बोलना और शाम के वक़्त छः से आठ बजे तक भजन में बैठना । फिर आठ बजे से दस बजे तक सत्संग करना । उसके बाद चाहे सो जाना, चाहे फिर गप्पें मारते रहना । फिर सुबह के साढ़े चार बजे भजन में बैठ जाना । फिर दिन भर सरकारी काम करना, साथ ही बातें करते रहना । पर जिस वक्त सरकारी काम से छुट्टी हो तब बातें नहीं करना और न बे-सत्संगियों के साथ बैठकर वक्त खराब करना । रोटी अकेले में चौके में बैठकर खाना । दुनिया में छिपे रहना है जी । आपको तो लोगों के साथ

काम करना है। रहनी आपकी न्यारी होनी चाहिये जी। अगर आपको कोई चीज़ मुफ़्त में दे, तो नहीं लेनी है। जैसे मुर्ग़ाबी दिन भर पानी में तैरती है, पर जिस वक्त उड़ती है, सूखी की सूखी। इस तरह संसार में रहना है जी। खुद मेरी अर्ज़ है कि आप पर दया-मेहर पहुँचे, इसी वक्त जी।"

इस कठिन रहनी पर हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी जैसे पूर्ण पुरुष ही चल सकते थे। हर पत्र में बाबाजी का हुक्म होता था कि जिस वक्त भी सरकारी काम से फ़ुरसत मिले भजन-सुमिरन करो। हुज़ूर महाराज जी भी बाबाजी महाराज के आदेश के अनुसार चलने की पूरी कोशिश करते थे। अपनी सारी तनखाह आप बाबाजी से पूछकर उनके आदेश के अनुसार खर्च करते थे। बाबाजी कभी-कभी स्वयं आपसे आने वाले वर्ष की आमदनी का ब्यौरा पूछते और फिर खर्च करने के बारे में आदेश देते। २५ नवम्बर १८९८ के पत्र में आपने हुज़ूर को लिखा, "यह भी लिखना कि रुपया इस साल में कितना आयेगा। तनखाह और भत्ता एक माफ़िक है या अलग, लिखना। फिर मैं आपको इस साल की कमाई खर्च करने के बारे में बताऊँगा। और आप मेरे प्राण हो जी। खुद मेरे साथ रहोगे।"

डेरे में जब छोटा सत्संग-घर बन कर तैयार हो गया तो इसमें बाबाजी महाराज ने केवल एक ही सत्संग किया। प्रेमी सत्संगियों के बार-बार अनुरोध करने पर फ़रमाया, "यहाँ बाबू सावनसिंह सत्संग किया करेंगे।"

अपने धुरधाम जाने से कुछ महीने पहले आपने फ़रमाया, "हमारा यहाँ का काम खत्म हो चुका है।" फिर फ़रमाया, "हम बहुत समय से यही काम करते आये हैं। इसके बाद अब मर्त्यलोक में वापस नहीं आयेंगे।

चोला छोड़ने से कुछ महीने पहले जुलाई १९०३ में एक इतवार के दिन बाबाजी महाराज ने हुक्म दिया कि सब सत्संगी जाकर भजन-घर में भजन में बैठें। आप खुद नहीं गये। बीबी रुक्को तथा एक और सत्संगी भी नहीं गये। बाबाजी महाराज ने हुक्म दिया कि बीबी आप दोनों भी सत्संग-घर में जाकर भजन में बैठो। बीबी रुक्को ने कहा कि आप जायेंगे तो हम भी जायेंगे। आप चल कर सत्संग करो। बाबाजी बोले, "तू जा तो सही, सत्संग करने वाला वहाँ बैठा है।" बाबाजी के हुक्म देने पर बीबी रुक्को उस सत्संगी के साथ गई। सत्संगी तो बाहर खड़ा रहा और बीबी रुक्को सत्संग-घर में गई। जब सत्संग-घर के अन्दर पैर रखा तो वह बोल उठी, "यह क्या मौज बदल गई!" और वहीं से वापस लौट आई। बाबाजी के पास आकर

बोली, "न चाचाजी के दर्शन हुए, न आपके दर्शन हुए और वहाँ तो बाबू सावनसिंह जी आसन पर बैठे हुए हैं।"

इस पर बाबाजी महाराज ने फ़रमाया, "बीबी हुक्म मानो!" और फिर फ़रमाया, "जिस दिन बाबू सावनसिंह पहले दिन बाबू काहनसिंह के साथ सत्संग में आये थे, उसी दिन मैंने तुमसे कह दिया था कि यह पिछला अंकुरी है, इससे स्वामीजी महाराज परमार्थी काम लेंगे और अभी इस बात को छिपाये रखना।"

इसके बाद बीबी रुक्को ने सब सत्संगियों से कहा कि सब फिर से भजन में बैठो। तब सब दोबारा भजन में बैठे। जब भजन से उठे तो बीबी रुक्को ने पूछा, "ठीक-ठीक और सच-सच बताओ कि आज किसके दर्शन हुए हैं?" तो सब सत्संगियों ने कहा कि बाबू सावनसिंह जी के दर्शन हुए हैं।

इस प्रकार बाबाजी महाराज चोला छोड़ने से कई महीनों पहले से अपने जाने के और हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी को अपना जानशीन नियुक्त करने के साफ़ इशारे देते रहे। उन्हीं दिनों, इन बातों को सुनकर एक सत्संगी ने बाबाजी महाराज से कहा कि मैं आपके सिवाय किसी को नहीं मानूँगा। इस पर बाबाजी ने फ़रमाया कि तुम लोगों का कभी उद्धार नहीं होगा। तब सत्संगी ने हाथ जोड़ कर अर्ज़ की, "सच्चे पातशाह! मैं तो बहुत भूला हुआ हूं। कृपा करके अपनी बात समझाइये।"

बाबाजी ने जवाब दिया, "प्रत्यक्ष बैठे सन्त जिसे अपना जानशीन मुकरर करते हैं, वह उनका ही स्वरूप होता है।" फिर फ़रमाया, "जिसे मैं मुकरर करूंगा वह मुझ से भी तेजस्वी होगा। मैं गुप्त रहा हूं और वह प्रकट रहेगा। मैं तो हरएक का लिहाज़ रखता था, वह परमार्थी के सिवाय किसी से मेल-जोल नहीं रखेगा।"

फिर बाबाजी ने कहा, "सन्त-मत की किसी को समझ नहीं आयी। जिसे सन्त खुद समझ देंगे वही समझेगा। जोव को क्या खबर है!"

एक सत्संगी ने पूछा कि सन्त एक से दूसरे चोले में किस प्रकार समा जाते हैं? इस पर बाबाजी ने फ़रमाया कि जिस तरह जल में मिसरी समा जाती है, जल का रंग नहीं बदलता और स्वाद बदल जाता है।

चोला छोड़ने से तीन-चार महीने पहले बाबाजी ने भाई सुरैणसिंह और भाई मघ्घरसिंह को नाम दिया। ये दोनों बहुत समय तक सत्संग में हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के पाठी का काम करते रहे। २६ दिसम्बर १९०३ को बाबाजी ने अपने महाप्रयाण से तीन दिन पहले लाला मंगतरायजी को

नाम-दान बख्शा। लाला मंगतरायजी हुजूर के सबसे पहले सेक्रेटरी थे।

जब परम-धाम जाने में थोड़े दिन रह गये तो एक सत्संगी ने ज़िक्र किया कि हुजूर, होती-मर्दान वाले बाबा करमसिंहजी ने अपने जाने से कई दिन पहले कह दिया था कि अब वे चोला छोड़ जायेंगे। इस पर बाबाजी महाराज ने फ़रमाया, "हाँ, महात्माओं में ताकत होती है कि वे चाहें तो बरसों पहले बता दें कि हम फलाँ (अमुक) दिन और तारीख को जायेंगे।" फिर आपने फ़रमाया, "हमारे जाने में अब महीने या हफ्ते नहीं, बस कुछ दिन ही बाकी हैं।"

यह सुन कर संगत की आँखों से आँसू बह चले। भाई मिलखीराम ने रुँधे हुए कण्ठ से पूछा, "हुजूर! हमें किसके सुपुर्द कर चले हैं?"

बाबाजी महाराज ने उत्तर दिया, "तुम लोग कोई फ़िकर न करो। हमारे बाद बाबू सावनसिंह काम करेंगे। उनका मुझ से चौगुना तप-तेज होगा। हमारी कमाई के जौहर हमारे जाने के बाद ज़ाहिर होंगे। बाबू सावनसिंह के द्वारा लाखों जीवों का उद्धार होगा। गाँव-गाँव और शहर-शहर में राधास्वामी नाम गूंज उठेगा।"

बाबाजी महाराज के अन्तिम दिनों का वृत्तान्त बीबी रुक्को और मिलखी-रामजी समय-समय पर हुजूर महाराज सावनसिंहजी को देते रहे। अपने २५ अक्तूबर १९०३ के पत्र में बीबी रुक्को बताती हैं कि बाबाजी का खयाल ३-४ दिन से अन्तर में ही अधिक रहता है, और फ़रमाते हैं कि अब वृत्ति ऊपर की ओर जाती है तथा नीचे नहीं उतरती। 'जब वचन करते हैं तो अच्छी तरह समझाते हैं। फिर सुरत चढ़ा लेते हैं और न कोई बीमारी है, न कुछ तकलीफ है, न कुछ दवा ही करते हैं। और एक वक्त बीबी देवां महाराजजी के पास दर्शन के लिये गई तो हुक्म फ़रमाया कि अब बाबू सावन-सिंह को पकड़ो।'

२८ अक्तूबर १९०३ को मिट्ठापुर वाले सत्संगी भाई मिलखीरामजी सत्संग में आये तो बाबाजी महाराज ने अपने पास बुलाकर फ़रमाया, "कुछ गुप्त भेद खोलने का विचार है। यह वचन स्वामीजी महाराज के हुक्म से बोलता हूँ, सो तुम लिखो। जो अनामी पद के गिर्दोनवा (आस-पास) गुप्त धारें (धुनें) हैं सो स्वामीजी महाराज का हुक्म है कि ज़ाहिर करो। सो हम ज़ाहिर करना चाहते हैं।" उस वक्त बीबी रुक्को भी हाज़िर थी। बीबीजी ने कहा कि पहले बहुत वाणी बड़े हंस (स्वामी जी) की बोली हुई है। अगर दया करनी है तो स्वामीजी से अर्ज़ करें कि संगत पर अन्तरी दया बख्शे, बाहर लिखने की नहीं। इस पर बाबाजी महाराज कुछ देर खामोश

रह कर बीबी रुक्को से बोले कि मैंने स्वामीजी महाराज के आगे अर्ज़ कर दी है।

चार या पाँच दिसम्बर को बाबाजी महाराज के पास कुछ सत्संगी बैठे हुए थे। तब बाबाजी महाराज ने फ़रमाया कि पौष की चतुर्दशी, अंग्रेजी हिसाब से दिसम्बर की २८ तारीख की रात को मुझे ज़रूर चले जाना है।[१] फिर कुछ परमार्थी बातें कीं और फ़रमाया कि जो सतगुरु के हुक्म और वचन के अन्दर रहते हैं, वे जीते-जी मुक्त होते हैं।

बाबा जी महाराज के चोला छोड़ने के बारह दिन पहले बीबी रुक्को ने अर्ज़ की, "बाबाजी महाराज! आपने फ़रमाया था कि छः जानशीन मुकर्रर करेंगे।" इस पर बाबाजी ने फ़रमाया कि पहले मेरा खयाल था कि छः होंगे। अब स्वामीजी महाराज की मौज एक की ही है, सो एक से ही छः का काम ले लेंगे और यह काम बाबू सावनसिंह से लिया जायेगा।

धुरधाम सिधारने से कुछ दिन पहले आपकी कोठरी में शब्द की ऐसी जोरदार गूंज और ज़बरदस्त कशिश थी कि भाई मन्नासिंह, बीबी रुक्को तथा एक और सेवादार को छोड़ जो भी कोठरी के अन्दर जाता उसकी रूह एकदम चढ़ जाती और वे दोनों उसे उठाकर बाहर लाते।

बाबाजी महाराज २८ दिसम्बर की रात और २९ की सुबह के बीच जोति-जोत समा गये। उस समय हुजूर महाराज सावनसिंहजी एबटाबाद में थे। हुज़ूर ने एक बार बाबाजी महाराज से अर्ज़ की थी, "हुज़ूर, अपने अन्तिम समय मुझे चरणों के पास ही रखियेगा।" बाबाजी ने जवाब दिया, "नहीं बच्चू, तुम सहार (सह) नहीं सकोगे। पर बाद में संस्कार सब तुम्हारे ही हाथों होगा।"

हुज़ूर २९ की शाम को डेरे आ गये। दूसरे दिन सुबह, ३० दिसम्बर को बाबाजी महाराज के पार्थिव शरीर का संस्कार हुज़ूर के हाथों से हुआ। बाबाजी महाराज अपने जीवन-काल में कई बार हिदायत देते थे कि उनके बाद उनकी कोई समाध, चबूतरा, छतरी आदि न बनाई ज़ावे। बाबाजी के पावन शरीर का संस्कार ब्यास नदी के किनारे किया गया। हुज़ूर महाराजजी बयान किया करते थे कि जिस जगह बाबाजी महाराज का संस्कार किया था, वहाँ दूसरे दिन ही दरिया का पानी चढ़ आया। दरिया वह जगह ही बहा ले गया जहाँ संस्कार किया गया था और उनके फूल भी न चुने जा सके।

---

१. बाबाजी महाराज ने २८ दिसम्बर की रात्रि और २९ की सुबह के बीच चोला छोड़ा।

बाबाजी महाराज बाल्यावस्था से अध्यात्म के प्रेमी और सत्य के खोजी थे। १२ वर्ष की कोमल वय में आप पाँच नाम और शब्द के भेद की खोज में घर से निकल पड़े थे। पाँच साल तक स्थान-स्थान पर तलाश करते रहने और कई महात्माओं से भेंट करने के बाद १७ वर्ष की आयु में स्वामीजी महाराज के पास आगरा पहुँचे और नाम-दान प्राप्त किया। उसी वर्ष आप सेना में भरती हो गये और ३३ वर्ष की सैनिक सेवा के बाद ५० वर्ष की उम्र में पेंशन लेकर रिटायर हुए। आपने १८७७-७८ से नाम की बख्शिश शुरू की जब कि आपकी आयु ३९ वर्ष की थी और सेना में हवलदार थे। ५२ वर्ष की आयु में आप ब्यास नदी के किनारे डेरे में आकर स्थाई रूप से रहने लगे, २३४३ भाग्यशाली जीवों को नाम प्रदान किया और २९ दिसम्बर १९०३ को ६४ वर्ष की आयु में जोती-जोत समाये।

बाबाजी महाराज के कुछ वचन *

(१) हर वक्त मन में यह समझना कि सब कार्य गुरु का है। मेरा कुछ नहीं। मैं किसी लायक नहीं हूँ। यह सब गुरु की बड़ाई है। भजन और सुमिरन रोज़-रोज़ करना। अन्तरमुख मन में और सुरत-निरत में यह चेत रहे कि सतगुरु के चरणों की शरण में रहना है। सतगुरु की प्रतीति और सच्ची प्रीति करो। उनके वचन के अन्दर मन को चलाना, सब कुछ सतगुरु का समझना, अपना कुछ जानना नहीं। सब कुछ गुरु का है, मैं नहीं हूँ। रात और दिन सुरत को सतगुरु के चरणों में रखना है। दुनिया का कारोबार झूठा जानकर करना। शब्द-स्वरूप सतगुरु को अंग-संग समझना।

(२) अगर चौदह लोक का राज मिले तो खुशी नहीं होनी चाहिये, क्योंकि वह झूठा है, जाने वाला है। झूठी चीज़ में प्रीति करोगे, धोखा खाओगे। और अगर वह राज वापस छीन लिया जाये तो नाराज़ नहीं होना, क्योंकि जिसने दिया उसी ने ले लिया। उसी का था और झूठा था। कोई किसी कदर आदर करे या निन्दा करे, आदर व स्तुति में खुश नहीं होना और निन्दा में नाराज़ नहीं होना। सदा राज़ी रहना और मालिक की राज़ी में खुश रहना, जहाँ भी रखें। जब इनका मन पर असर न हो, मन सदा एक-रस रहे, फिर शब्द-धुन के मार्ग से धुर-धाम सचखण्ड जाने की बख्शिश सतगुरु के वचन के अन्दर से रोज़-रोज़ आती है।

(३) आप लोगों ने लिखा कि भजन नहीं होता। यह कोई लाचारी नहीं है जी। यह आपकी गफ़लत और बेपरवाही है। क्योंकि दोनों वक्त रोटियें

श्रौर श्रच्छी-श्रच्छी चीज़ों को खाने के लिये श्रापका मन करता है श्रौर खाता है। श्रौर भजन-सुमिरन जो कि सब कुछ दे रहा है, जिसकी कमाई के लिये यह मनुष्य देह मिली है जो कि खुद नर नारायणी देह है, जिसमें परमेश्वर मिल सकता है, सो ऐसा पदार्थ क्या यों ही चला जाये जी ? श्राप कहते हो नौकरी सख्त है। रात को गाँव वाले लोग सारी-सारी रात हल जोतते हैं, रहट चलाते हैं, गन्ने की चरखी चलाते हैं या रूई पींजते हैं, सब काम रात को ही करते हैं। श्रापकी उमर सफल है, क्योंकि श्रापको सतगुरु पूरे मिले हैं, रास्ता पूरा मिला है। श्राप जो चिन्ता करते हैं, उतनी देर भजन क्यों नहीं करते जी, ताकि वक्त सफल हो।

(४) श्रपनी हक़ की कमाई के सिवाय कभी किसी का नहीं खाना चाहिये। यह परमार्थ की पहली सीढ़ी है। चाहे सारी दुनिया का राजा हो, तब भी मनुष्य को श्रपने हक़ की, श्रपने हाथों कमाई करके खानी चाहिये। सो श्रपने हक़ की कमाई करो। श्राप भी खाश्रो, श्रौरों को भी दो, घरवालों को भीं दो श्रौर यथा-शक्ति साध-संगत को भी दो।

(५) हर समय याद रखो कि इस दुनिया से ज़रूर चले जाना है। जो कुछ हम इस मन के कहने लग कर करेंगे, उसका दण्ड ज़रूर चुकायेंगे। मन को हर वक्त यह समझाश्रो कि सतगुरु के वचन में रहे। फिर सब करनी हो गई।

शहर में रहना है पर उजाड़ में रहने के समान कोरे रहना है।...किसी सांसारिक काम में प्रीति के साथ मन नहीं लगाना। जैसे पाहुना (मेहमान) सब काम करता है, पर मन में यह समझता है कि यह मेरा घर नहीं है। सो कुल दुनिया व इसके सब श्रसबाब झूठे हैं श्रौर झूठे जानकर किये जाना है। मन श्रौर सुरत को सतगुरु के चरणों में लगाये रखना है।

(६) बहुत बड़ी करनी यह है कि यह जीव श्रपना श्रापा भाव छोड़ कर श्रलग हो जाये कि मैं नहीं, सब-कुछ सतगुरु का है। मेरा कुछ नहीं। 'मैं' श्रन्तर से पूरी तरह से निकल जाये। फिर जो कुछ यह करे, खुद मालिक सब काम श्राप श्राकर करता है।

(७) सबको यह ताकीद है कि भजन-सुमिरन रोज़-रोज़ करना, क्योंकि सिवाय भजन के कोई चीज़ श्रपनी नहीं है। दुनिया का कोई भी सामान देखकर भूल नहीं जाना। फिर यह समय हाथ नहीं श्राना है। मन की इच्छाश्रों के पीछे मत जाश्रो। सिर्फ सतगुरु के वचन के श्रन्दर रहो। मन के कहे नहीं चलना। दुनिया का काम करना, पर प्रीति-प्रतीति सतगुरु के चरणों में रखना

क्योंकि स्वांस ग्रास गिने हुए हैं। दुनिया का काम पेट के लिये है, भजन अपने तरने के लिये है। ये दो काम करने हैं। बाकी (के लिये) मन को जवाब दे दो कि तेरा कहना नहीं मानना है। मन में सतगुरु के वचन हमेशा सामने रखो।

(८) बीमारी में घबराना नहीं, बल्कि ऐसा समझना चाहिए कि जीव, पिण्ड, प्राण सब सतगुरु के हैं। और हैं भी ज़रूर सतगुरु के ही। सुख-दुख जो इस देह में बोया हुआ है सो अपना फल ज़रूर देंगे।...दुःख को सुख समझो, बरदाश्त करो। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का वचन है :—

जे सुखु देहि त तुझहि अराधी, दुखि भी तुझै धिआई ॥
जे भुख देहि त इतही राजा, दुख विचि सूख मनाई ॥

इन वचनों को याद करो और अपने मन को इन पर खड़ा करो। हुज़ूर स्वामीजी दीन-दयाल का वचन है कि 'दुःख की घड़ी ग़नीमत जानो', क्योंकि दुःख की घड़ी सबसे बेहतर है कि जिसमें मालिक याद आता है। सो दया-मेहर से दुःख आता है, यों ही नहीं आता। सो दुःख में घबराना नहीं चाहिये। खयाल मालिक की ओर रखना चाहिये।

सतगुरु सबके कर्ता हैं। जिस चीज़ को अच्छा समझेंगे, सो दे देंगे। अगर सुख से फायदा होगा तो सुख देंगे। और दुःख से फायदा होगा तो दुःख दे देंगे। सो दुःख-सुख एक सा समझो।

(९) पक्का यकीन करो कि दुनिया हमेशा सपने के समान है और इसके सम्बन्धी भी स्वप्न-मात्र हैं। इनको खूब दिल से झूठा जान कर दुनिया का कारोबार करो। सुमिरन को हमेशा चित्त में रखो। शब्द ही सच्चा धन है, और सब झूठा है। और सतगुरु का वचन सच्चा है, कभी मिथ्या नहीं। इसे हमेशा हृदय में रखो और सुमिरन को हमेशा हृदय में रखो और शब्द-धुन की आवाज़ में प्रेम-प्रीति के साथ निज-मन और सुरत को लगाओ और उसी में लीन हो जाओ। जिस वक्त भजन में बैठो और शब्द-धुन को सुनो, दुनिया की सब चिन्ता छोड़ दो। इससे बड़ा और कुछ नहीं। रोज़-रोज़ इसे (इस अभ्यास को) बढ़ाओ, कम नहीं करना।

(१०) निर्मल होना, सचखण्ड पहुँचने की ताकत प्राप्त करना, अलख, अगम और अनामी राधास्वामी के देश पहुँच कर उसमें समा कर आनन्द लेना और कुल बन्धनों से छूट कर मुक्त हो जाना—यह सब शब्द-धुन को, जो सतगुरु का स्वरूप है, रोज़-रोज़ सुन कर उसी के प्रताप से संभव हो सकेगा। पर शर्त यह है कि सतगुरु के देह-स्वरूप से प्रीति हो, उसी प्रीति से वह पद

मिलेगा। सो पहले इसी स्वरूप से मिल सकता है। जिसे इस पर प्रतीति या भरोसा नहीं आया, उसे कुछ नहीं मिलेगा; क्योंकि वह जो परम पुरुष पूर्ण धनी अनामी राधास्वामी है, वह खुद देह धारण करके सन्त-स्वरूप होकर जीवों के लिये आया है। जिसे उसके साथ प्रीति हो गई और प्रतीति आ गई कि यही सब-कुछ है, वह शब्द-धुन को पकड़ कर तर गया।

(११) भजन-सुमिरन रोज़-रोज़ करना। हर वक्त यह समझना कि अपनी चीज़ यहाँ कोई भी नहीं है जो हमारी अन्त-समय सहायता करेगी। केवल एक सतगुरु और शब्द-धुन और उनकी दया-मेहर के सिवाय इसकी कोई भी सहायता नहीं करेगा। इसलिये तन से तो काम दुनिया का करो और मन से व सुरत-निरत से काम निज-घर का करो। सतगुरु का कार्य—भजन और सुमिरन—करो। मन में कभी किसी चीज़ का मान न आये कि यह मेरी है। नहीं! चाहे ब्रह्माण्ड का राजा भी हो जाये तो भी यह समझना है कि मेरा इसमें कोई हिस्सा नहीं है। मैं सिर्फ कामदार हूँ। जो कोई चीज़ है, वह सब सतगुरु की है। मैं कुछ नहीं हूँ। हर वक्त सतगुरु का वचन मन के सामने रहे। मैं नहीं, मैं नहीं, मैं नहीं जी। और सुमिरन हर वक्त मन में रहे। सतगुरु का स्वरूप हर वक्त, कारोबार करते वक्त, मन में लिखा रहे। यह दुनिया का कारोबार तो आपको नौकरी के तौर पर दिया है। सब स्वप्न-मात्र है। आपके भाग्य बड़े श्रेष्ठ हैं कि आपको सचखण्ड पहुँचने का रास्ता मिला है। एक दिन सचखण्ड ले जायेंगे। अपना आप छोड़ कर उनकी शरण पक्की करो।

(१२) भजन-सुमिरन रोज़-रोज़ करना, क्योंकि भजन व सुमिरन की करनी अभी मनुष्य-देह में ही हो सकती है। मालिक हमें मनुष्य-देह में ही मिल सकता है। पर पूरा-पूरा रास्ता, पूरे सतगुरु का मिलाप और प्रतीति व प्रीति पूरी-पूरी अन्तर में आ जाये, कभी भी कोई अभाव की या किसी तरह के भी अभाव की बात मन में न आये, तो फिर कारज पूर्ण है। नाम से बड़ी और कोई पदवी नहीं है। आपको रास्ता भी पूरा मिला है, भेद भी पूरा मिला है। मन वैरी की कल्पना से बचो; जो भी मन की वासनाएँ हैं, सब झूठी हैं। मन की कल्पना और वासना ने ही सारे जगत को दुःख-सुख के कुएँ में बांध कर डाल रखा है। सतगुरु के वचन में रहो और शब्द-धुन को प्रेम-प्रीति से सुनो।

(१३) जो भी काम करते हो, दिल में यह समझो कि सब काम सतगुरु ही करते हैं, मैं कुछ नहीं करता। चाहे व्यवहार का हो चाहे परमार्थ का,

सब काम सतगुरु का है। 'मैं' नहीं, सब 'तू' ही है। सब सतगुरु ही हैं।

हर कारोबार में यह समझो कि हम कुछ नहीं करते, सब अच्छे काम सतगुरु आप करते हैं; और बुरे काम हमारा मन करता है। पर वे नहीं करने; मन के कहे पर नहीं चलना।

(१४) जो कुछ करना-कहना है, सब खुद मालिक राधास्वामी के हुक्म से हो रहा है। बिना उनके कोई कुछ नहीं कर सकता। पक्का भरोसा रखो। मनुष्य कुछ नहीं कर सकता है; न कुछ घटा सकता है, न कुछ बढ़ा सकता है। जो कुछ इसके (मनुष्य के) कर्मों में इसका योग होता है, जो कुछ देना होता है, तो मनुष्य के द्वारा ही आता है। जो कुछ इसके कर्मों के अनुसार हरा जाता है अर्थात् इससे ले लेना है, कर्मों से अधिक नहीं देना है, तो मनुष्य के द्वारा ही छीन लिया जाता है। सो कभी कोई चिन्ता न करना। जो अपने भाग्य में है उसे कभी कोई नहीं हटा सकता। अपने प्रारब्ध पर खुश रहो, ज्यादा नहीं मिलना है, न कम ही मिलना है। जितना हुजूर दीन-दयाल अनामी राधास्वामी की मौज होगी उतना ही मिलेगा और उसी में खुश रहो।

(१५) जिस दिन जीव को पूरे सतगुरु मिले और उन्होंने नाम-धुन पकड़ाई तो सब कुछ उसी वक्त हो गया। वह शब्द-धुन चाहे कभी कम हो, बढ़े या हट जाये, यह चाहे उसे न सुने, पर वह एक जैसी ही है। सतगुरु की दी हुई दात को कोई नहीं मेट सकता।

*हुजूर महाराज सावनसिंह जी तथा सत्संगियों को लिखे गये बाबाजी महाराज के पत्रों से संकलित।

अध्याय २

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी

१. प्रारम्भिक जीवन

डेरे की बुनियाद तो बाबा जैमलसिंहजी महाराज ने रखी, पर वर्तमान डेरे के निर्माता हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी थे। उनके समय में डेरे ने दिन दुगुनी और रात चौगुनी उन्नति की और डेरा एक कच्ची कोठरी से विकसित होकर एक छोटी-सी सुन्दर बस्ती बन गया।

जन्म और परिवार

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी का जन्म श्रावण की पंचमी संवत् १९१५, तदनुसार २० जुलाई सन् १८५८ को मंगलवार के दिन आपके ननिहाल जटाना ग्राम में हुआ। आप लुधियाना ज़िले में महिमासिंहवाला ग्राम के एक प्रतिष्ठित ग्रेवाल परिवार के सदस्य थे। आपके पिता सरदार काबलसिंहजी फ़ौज में सूबेदार-मेजर थे। उन दिनों ब्रिटिश शासन में भारतीयों को मिलने वाला यह सबसे ऊँचा पद था। हुज़ूर की माताजी का शुभ नाम माता जीवनी जी था। आपका परिवार इलाके में तीन गुणों के लिए प्रसिद्ध था; शरीर की सुन्दरता, उच्च तथा नेक चरित्र और साधु-महात्माओं की सेवा का शौक। साधु-महात्मा आपके यहाँ बराबर आते-जाते रहते थे। उन्हें भोजन, वस्त्र व रास्ते के लिए खर्च तो मिलता ही, परन्तु और भी जिस वस्तु की आवश्यकता होती मिल जाती थी। हुज़ूर के जन्म के तीन साल पहले ऐसे ही एक महात्मा ने भविष्य-वाणी की थी कि इस गृह में एक अपूर्व तेजस्वी बालक का जन्म होगा जो परमात्मा का भक्त होगा और जिसका नाम सारे संसार में फैलेगा।

नाम-करण

हुज़ूर के जन्म के दो दिन बाद हुज़ूर के पितामह सरदार शेरसिंहजी ने पास वाले ग्राम गुजरवाल में गुरुद्वारा के ग्रन्थी को पोता होने का शुभ-

समाचार सुनाया तो उसने ग्रन्थसाहिब का प्रकाश करके 'वाक' लिया और बताया कि गुरु ग्रन्थ साहिब तो बालक का नाम सावनसिंह रखते हैं। बाबा शेरसिंह जी ने प्रसन्न होकर कहा कि उनके चित्त में भी पिछले दो दिन से यही नाम बार-बार आ रहा था। पिछले साल वर्षा ऋतु में बारिश बिल्कुल नहीं हुई थी। गरमी से खेत जल गये थे। इस साल भी अभी तक बरसात नहीं हुई थी, खेती तथा पेड़-पौधे सूख रहे थे और भयानक अकाल का अंदेशा था। एक महीने से कृषक आकाश की ओर आँखें लगाये ताक रहे थे। परन्तु हुजूर के जन्म के दिन सुबह से शाम तक वर्षा होती रही और उसके बाद तो पूरे महीने ही अच्छी बारिश होती रही। कुएँ-तालाब पानी से भर गये, सूखे खेत लहलहाने लगे। सबकी ज़बान पर यही शब्द थे कि यह बालक बड़ा भाग्यवान है, इसने आते ही सब कुछ हरा-भरा कर दिया है वरना अकाल के लक्षण दिखाई देने लगे थे।

हुज़ूर की बाल्यावस्था

हुज़ूर की माता जीवनीजी ने बाबाजी महाराज से नाम लिया था। आप बहुत नेक, सौम्य और अभ्यासी महिला थीं। जब बाबाजी ने अपने बाद हुजूर को जानशीन बनाया और हुजूर ने संगत की रहनुमाई का कार्य सँभाला तब से माताजी ने हुजूर को कभी पुत्र-भाव से नहीं देखा। उसी दिन से आप उन्हें गुरु के रूप में देखतीं और आदर करती थीं। एक दिन की घटना तो मुझे स्वयं याद है। ठीक महीना तो याद नहीं परन्तु इतना याद है कि मुझे नाम-दान प्राप्त किये कुछ ही समय हुआ था। उस दिन का पूरा दृश्य आज भी मेरी आँखों के सामने है। शाम का वक्त था। हुजूर अपने कमरे में से निकल कर खुले आंगन में खड़े थे। सफेद वस्त्र सरकार ने पहने हुए थे और सफेद वस्त्र ही माताजी के शरीर पर थे। हुजूर माताजी के सामने हाथ जोड़े खड़े थे और माताजी हुजूर के सामने हाथ जोड़े हुए थीं। हुजूर का कद लम्बा था, परन्तु उस समय माताजी के सामने आप बालक के समान लगते थे। माताजी का ऊँचा कद, पतला शरीर और लम्ब-गोल मुख था। जिस पर शाहंशाही रोब के साथ प्रेमपूर्ण विनम्रता एक निराली शान पैदा कर रही थी। उस समस का पूरा वार्तालाप तो मुझे याद नहीं, केवल इतना याद है कि हुजूर ने फ़रमाया, "माताजी, आप हाथ न जोड़ा करें।" माता जी ने उसी आदर मिश्रित प्रेम के साथ उत्तर दिया, "नहीं महाराज, मेरे लिये यही ठीक है।"

उसी वर्ष १९११ में कुछ महीनों बाद माता जीवनी जी ने चोला छोड़ दिया। सरदार काबलसिंह जी तो बहुत पहले ही परलोक सिधार गये थे। हुज़ूर के पितामह सरदार शेरसिंह जी सन् १९१४ तक जीवित रहे। ११५ वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हुआ।

माता जी फ़रमाती थीं कि एक विचित्र बात तो हुज़ूर के बचपन से ही देखने में आती थी। हुज़ूर छोटी उम्र में भी कभी रोते या चिल्लाते नहीं थे और न ही अन्य बालकों की तरह किसी चीज़ से डरते थे। निडर और प्रसन्न रहना बचपन से ही आपके स्वभाव में था। दो-तीन महीने की उम्र से उन की आदत थी कि सुबह चार बजे जाग उठते और पलंग पर पड़े-पड़े दीपक की लौ को टकटकी लगा कर देखते रहते। पहले तो पलंग पर चुपचाप लेटे रहते, फिर दिन चढ़ने के समय अपने मधुर स्वर में गुनगुनाना शुरू कर देते। कई बार लेटे हुए अपने आप ही मुस्कराते और हँसते रहते। सुन्दर और प्यारे इतने थे कि हरएक का मन गोद में लेने को करता। मस्तक पर ज्योति इस प्रकार चमकती कि सारा ललाट सूर्य की तरह चमकता हुआ लगता। यह अवस्था तो अन्त तक, बृद्धावस्था में भी रही। माताजी के उठाने पर उनके पास ख़ुशी से जाते। आहार बचपन से ही बहुत कम था। परन्तु आहार कम होने पर भी शरीर की सुन्दरता या शक्ति में कभी कोई कमी नहीं हुई। जब माता जी सवेरे सुखमनी साहिब और जपुजी साहिब का पाठ करतीं तो आप ध्यानपूर्वक चुपचाप लेटे सुनते रहते और कभी-कभी बीच में आपका मुखड़ा मृदु मुस्कान में खिल उठता।

आप छोटी उम्र में घर से बाहर बच्चों के साथ खेलने बहुत कम जाते थे। ज़्यादा समय अपने घर के आंगन और घर के सामने ही खेलते रहते। वहीं और लड़के भी आ जाते। पढ़ाई के दिनों में भी अक्सर अकेले ही पढ़ा करते। पुस्तकों को बहुत सवार कर साफ़-सुथरा रखते। सफ़ाई की आपको शुरू से ही आदत थी। कभी आपके हाथों पर या कापी, किताब अथवा कपड़ों पर स्याही का निशान नहीं देखा गया।

जपुजी का पाठ

माताजी को जपुजी और सुखमनी ज़बानी याद थीं। आप रोज़ सवेरे सूर्योदय से पहले उठ कर जपुजी साहिब का पाठ किया करती थीं। आपका नियम था कि जब तक पाठ न कर लेतीं, कुछ खाती पीती न थीं। एक बार

जब हुज़ूर की उम्र नौ-दस वर्ष की थी, माता जी को बहुत तेज़ बुखार हो गया। पहले कुछ दिन तो वे बुख़ार में भी स्नान करके नियमानुसार जपुजी साहिब का पाठ करती रहीं। परन्तु आठवें दिन बुखार ने इतना निढाल कर दिया कि उठना कठिन हो गया। खाना पीना लगभग बन्द ही था। दुर्बलता के कारण बिस्तर से न उठ सकीं। चित्त में इस बात की चिन्ता थी कि इतने वर्षों में ग्राज तक कभी पाठ में नाग़ा नहीं हुआ। आज पहला दिन है कि नाग़ा हो रहा है। अभी यह सोच ही रही थीं कि पाठ का वक्त होने पर महाराजजी अपने पलंग से उठ कर माताजी के पास आये ग्रौर प्यार के साथ पूछा, "माँ, क्या ग्राज जपुजी का पाठ नहीं करना है?" माताजी की आँखों में आँसू आ गये। महाराजजी ने पूछा, "मैं पाठ कर दूँ?" पहले दो-चार पद तो माताजी के साथ रोज़ पाठ करने से महाराजजी को याद थे। परन्तु माताजी के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जब बालक ने पूरे जपुजी साहिब का पाठ बड़े प्रेम के साथ शुद्ध रीति से उच्चारण करते हुए सुना दिया। खुशी में ग्राकर माताजी ने बालक को गले से लगा लिया और बहुत प्यार किया।

दिन चढ़ते ही सारे ग्राम में यह बात फैल गई कि छोटे सरदारजी ने इतनी छोटी उम्र में जपुजी साहिब का पाठ सुना दिया है। स्त्री-पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड ग्राने लगे। पास के गांवों, नारंगवाल और गूजरवाल से भी कुछ लम्बरदार आये तो माताजी ने उनसे कहा, "भाई, ऐसे ही किसी ने झूठ कह दिया है, बच्चे को कुछ नहीं आता।" लेकिन लोगों को भला कौन रोक सकता था। तंग आकर दूसरे दिन माताजी बालक को लेकर अपने मायके ग्राम जटाना चली गईं। सोचा एक तो रूप पूनम के चाँद जैसा ग्रौर दूसरे कुशाग्र बुद्धि और फिर बच्चे की मीठी-मीठी बातें, कहीं बच्चे को नज़र न लग जाये। उनके पिता के पास आये हुए एक महात्मा बोले, "पुत्री, इसके दर्शन से तो लगी हुई बुरी नज़र का असर दूर हो जाता है, इसको भला किसकी नज़र लग सकती है?" माताजी ने कहा, "न महाराज, मेरे बच्चे को लुका-छिपा ही रहने दो। कहीं आपकी यह बात फैल गई तो लोगों से पीछा छुड़ाना ही मुश्किल हो जायेगा।"

विद्याध्ययन

हुज़ूर ने प्रारम्भिक शिक्षा नारंगवाल ग्राम के स्कूल में प्राप्त की। नारंग-वाल की सीमा महिमासिंहवाला से मिलती है। हुज़ूर का स्कूल घर से एक

मील दूर था। आप सुबह जाते और तीसरे पहर वापिस आते। उसके बाद हुज़ूर गूजरवाल ग्राम के मिडिल स्कूल में गये। गूजरवाल का स्कूल हुज़ूर के घर से दो-ढाई मील दूर था। हुज़ूर पैदल ही स्कूल जाते और आते थे। आप सुबह स्कूल जाते, दोपहर का खाना डिब्बे में रख कर साथ ले जाते और शाम को वापिस आते।

आप बचपन से ही बड़े कुशाग्र-बुद्धि और परिश्रमी थे। सदा अपनी कक्षा में प्रथम रहते। अपने अध्यापकों का पिता के समान आदर करते। आपके आदरपूर्ण व्यवहार और नेक आचरण से शिक्षक हमेशा आपसे खुश रहते। अपने फ़ारसी के अध्यापक मुंशीजी की हुज़ूर अक्सर बात किया करते और फ़रमाते कि आप खुद डोल से जल निकाल कर मुंशीजी को स्नान कराते और उनके घर का सारा काम-काज खुशी से करते। शिक्षा पूरी करने के बाद नौकरी के दिनों में भी आप अपने पुराने अध्यापकों को समय-समय पर कोई न कोई भेंट भेजते रहते। आपके एक अध्यापक पंडित दौलतराम आपके रिटायर होने के बाद भी डेरे में आपसे कई बार आकर मिला करते थे। हुज़ूर उनका बहुत आदर करते। पंडितजी बताते थे कि हुज़ूर एबटाबाद और मरी पहाड़ से सदा उनके लिए गरम पट्टू के थान भेजा करते थे। पंडितजी कहते कि हम शुरू से ही कहा करते थे कि यह लड़का एक दिन बहुत बड़ा आदमी बनेगा।

गूजरवाल स्कूल से पास होने के बाद हुज़ूर लुधियाना के मिशन हाई स्कूल में दाखिल हुए। लुधियाना महिमासिंहवाला से १४ मील दूर है। उन दिनों लुधियाना-धूरी वाली रेल की लाइन नहीं डली थी। हुज़ूर हर शनिवार को स्कूल के बाद पैदल चलकर महिमासिंहवाला आते और सोमवार को बहुत सवेरे वापिस लुधियाना के लिये चल पड़ते। जब सोमवार को घर से रवाना होते तो एक हफ़्ते का राशन (आटा-दाल आदि) खुद उठा कर साथ ले जाते। इस प्रकार पैदल चलने और सैर करने का आपको बचपन से ही अभ्यास और शौक हो गया था। बाद में ८०-८५ वर्ष की आयु में भी हुज़ूर सत्संग के लिये कई मील पहाड़ों में पैदल चला करते थे, जहाँ उन दिनों मोटर आदि सवारी के लायक सड़कें नहीं थीं। पहाड़ों में चढ़ाई भी आप इस फुर्ती से चढ़ते कि कई नौजवान भी थक कर पीछे रह जाते।

सरकारी नौकरी

विद्याध्ययन के बाद कुछ समय घर रह कर आप खेती के काम-काज की

निगरानी करते रहे। परन्तु कुछ ही दिनों बाद आपको पंजाब के सिंचाई विभाग में नौकरी मिल गई और आप रोहतक ज़िले में गोहाना नहर पर एक वर्ष तक ज़िलेदार के पद पर कार्य करते रहे। इस क्षेत्र में मलेरिया बुखार बहुत होता था। आपको यहाँ का जलवायु माफ़िक न आया और बुखार के कारण नौकरी छोड़ कर घर चले आये। वास्तव में आपका झुकाव पलटन की नौकरी की ओर अधिक था। फ़ौज में नौकरी आपके पूर्वजों का पेशा होने के कारण आपको भी उसी ओर जाने का शौक था। अतएव गोहाना से लौट कर स्वास्थ्य-लाभ कर लेने के बाद आप पंजाब पलटन नम्बर २४ में भरती हो गए। चार-पाँच महीने की सैनिक शिक्षा के बाद कर्नल साहिब ने आपको सेना के अफ़सरों को पढ़ाने के लिए अध्यापक का कार्य दे दिया। परन्तु कुछ समय बाद अंग्रेज़ अफ़सरों की सलाह पर आप थामसन कालेज रुड़की में ओवरसीयर की क्लास में पलटन की ओर से दाखिल हो गए।

थामसन इंजीनियरिंग कालेज रुड़की में हुज़ूर हर विषय में बहुत अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते रहे। कपूरथला के सेवा-निवृत्त एस. डी. ओ. पंडित बंसीलाल रुड़की में हुज़ूर के सहपाठी थे। वे हुज़ूर से मिलने डेरे आते रहते थे। वे बताते थे कि हुज़ूर बहुत कुशाग्र बुद्धि तथा परिश्रमी विद्यार्थी थे और अपने अध्यापकों का बहुत आदर करते थे। इसीलिये अध्यापक भी आपकी ओर खास ध्यान देते थे। एक बार पंडितजी ने मज़ाक के तौर पर गणित के अध्यापक से कहा, "मास्टर साहिब, फीस तो हम भी उतनी ही देते हैं जितनी कि यह देता है, लेकिन वक्त आप हमें इनसे एक तिहाई भी नहीं देते हैं।" उसने जवाब दिया, "विद्या-प्राप्ति का शौक खुद ही अध्यापक का ध्यान खींच लेता है। तुम सारे दिन बातें बनाते रहते हो, यह काम करता है। इसके उत्साह और लगन के कारण हम भी इसके शौक को पूरा करने पर मजबूर हो जाते हैं।"

पंडितजी बताते थे कि हुज़ूर अपने कालेज में बहुत लोकप्रिय थे। विद्यार्थी और अध्यापक सभी आपका आदर करते थे। आपको स्वच्छता बहुत प्रिय थी। छात्रावास में आपका कमरा स्वच्छता का आदर्श था। फ़र्श सदा साफ होता, पलंग पर साफ-सुथरी चादर बिछी होती। कापियां, किताबें, औज़ारों का डिब्बा, कलम, दवात, सभी मेज़ पर व्यवस्थित रूप से रखी होतीं। यद्यपि आप स्वभाव से मित-भाषी थे। परन्तु हास-परिहास में सबका साथ देते तथा हमेशा प्रसन्न-चित्त रहते थे। अक्सर आप पढ़ाई में लीन रहते और कमरे

का दरवाज़ा अन्दर से बन्द रखते। आपके शान्त व गम्भीर स्वभाव का सहपाठियों पर बहुत रोब था। उदार आप इतने थे कि जो वस्तु कोई सहपाठी मांगता आप तुरन्त दे देते। पंडितजी कहते, "सच पूछो तो अपनी रुड़की कालेज की पढ़ाई के दिनों में मैंने कागज़, कापी, पेंसिल, दवात, कलम वगैरह कोई चीज़ अपने पैसे से खरीदी ही नहीं।" हुज़ूर इस पर हंस कर फ़रमाते, "भाई, पंडितों की भेंट-पूजा भी तो कुछ करनी ही थी न।"

पंडितजी ने बताया कि हुज़ूर एक बार एक बहुत सुन्दर जूतों का नया जोड़ा लुधियाना से खरीद कर लाये। उन दिनों अंग्रेज़ी जूतों का रिवाज नहीं चला था। पंडितजी को जूते बहुत पसन्द आये और उन्होंने जूतों की बड़ी तारीफ़ की। हुज़ूर का स्वभाव था कि किसी चीज़ की प्रशंसा सुनकर कहते कि अगर तुम्हें पसन्द हो तो ले लो, मैं और ले आऊंगा। परन्तु इस बार आपने कहा, "भाई, यह जूता तो नवलकिशोर को पसन्द आ गया है और वह कह गया है कि अभी बाहर से लौट कर ले जायेगा।" परन्तु पंडितजी ने वह जूता पहन लिया और कहा, "नवलकिशोर से मैं खुद निपट लूंगा।" पंडित बंसी लाल जी बताते थे कि हुज़ूर प्रतिदिन सवेरे स्नान करके जपुजी साहिब का तथा रात को सोने से पहले गुरुवाणी का पाठ अवश्य करते थे।

सन् १८८२ में रुड़की कालेज से बहुत अच्छे नम्बरों से पास होकर हुज़ूर अपनी पलटन में वापिस आ गये और आपकी बदली मिलिट्री इंजीनियरिंग सर्विस (एम. ई. एस.) में कर दी गई। अपनी नौकरी का ज़्यादा हिस्सा (अर्थात १८ वर्ष) आपने कोहमरी, एबटाबाद, नथियागली, चराट, कालाबाग आदि पहाड़ी स्थानों में बिताया। शुरू शुरू में आप रावलपिंडी, नौशहरा, पेशावर आदि स्थानों में भी रहे। सरगोधा में मोना का प्रसिद्ध रिमाउण्ट डिपो भी आपकी निगरानी में ही बना है। तीन अंग्रेज़ अफसर जिन्हें यह कार्य दिया गया था, इसे समय पर पूर्ण न कर सके। उन्हें बदल कर जब यह कार्य हुज़ूर को सुपुर्द किया गया तो वे अफसर बहुत खिन्न हुए कि एक देशी अफसर को उनसे बेहतर समझा गया। लेकिन कमाण्डिग रायल इंजीनियर (सी. आर. ई.) ने कोई परवाह न की और बोला, "साल खत्म होने को है। तुम लोगों ने सात महीने में कुछ नहीं किया। इस तरह तो बजट का रुपया खर्च ही न होगा।" हुज़ूर ने बाकी के चार-पांच महीनों में वह कार्य अच्छी तरह सम्पूर्ण कर दिया।

शुरू से नम्रता की भावना हुजूर में प्रचुर मात्रा में थी। जिन दिनों हुजूर ने नौकरी शुरू की ही थी, तब की बात है। आप कालेज से नये-नये आए ही थे। एक अंग्रेज अफसर जिसके नीचे आप काम करते थे, बदली होकर दूसरे स्थान पर जा रहा था। वह हुजूर से बहुत प्रसन्न था। जिस दिन वह जा रहा था, हुजूर उसके पास गये और बोले कि मैं आपसे एक चीज़ माँगता हूँ। उसने जवाब दिया कि अब तो मैं चार्ज दे चुका हूँ। अब तुम्हें क्या दे सकता हूँ। हुजूर ने कहा, "मैं कालेज से अभी आया हूँ और काम करने का अनुभव बहुत कम है। मैं आपसे यही चाहता हूँ कि मेरी जो भी त्रुटियाँ और खामियाँ आपने देखी हो, वे बतला दें।" अफ़सर बड़ा हैरान हुआ, बोला, "आज तक इतने वर्षों में मुझ से ऐसी चीज़ किसी न नहीं माँगी।" फिर उसने जो त्रुटियाँ उसे दिखाई दीं, वे बतला दीं। हुजूर ने उसकी बात को समझ कर मान लिया ताकि आगे कार्य और अच्छी तरह से कर सकें।

बाबू गुलाबसिंहजी हुजूर के नौकरी के दिनों में बहुत समय तक हुजूर के मातहत हेड क्लर्क और स्टोरकीपर रहे थे। वे उन दिनों की बातें सुनाया करते थे। आप बताते थे कि हुजूर बहुत परिश्रमी थे। अपना कार्य इस मेहनत और जी-जान से करते थे कि हम लोग भी, जो कि उम्र में आपसे बहुत छोटे थे, थक कर चूर हो जाते। जब भी कोई बहुत उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य आपके सुपुर्द किया जाता तो उसे पूरा करने में आप अपना खाना-पीना तक भूल जाते। अपने मातहतों को भी सदैव पूरी लगन के साथ काम करने की प्रेरणा देते रहते। जो कार्य अन्य अफसर एक महीने में करवा सकते थे, उसे आप पन्द्रह दिन में पूर्ण करवा लेते। आपकी नम्रता और आपके प्रेम-पूर्ण वचनों ने मातहतों का दिल जीत लिया था। वे आपका हुक्म पूरा करने में खुशी का अनुभव करते। हुजूर कभी किसी के प्रति सख्ती या कठोर व्यवहार नहीं करते। समय की पाबन्दी, कर्तव्य के प्रति लगन और अनुशासन के आप स्वयं ही सजीव उदाहरण थे। आपके साथी और मातहत भी आपसे प्रेरणा पाकर अनुशासन और लगन के साथ कर्तव्य-पालन में जुटे रहते।

जहां भी कोई कठिन कार्य होता वहाँ हुजूर को भेज दिया जाता। मरी की वाटर वर्क्स (जल-योजना) भी आपकी निगरानी में ही बना था। बड़ी दूर से पानी लाना था, रास्ते में सख्त चट्टानें और दुर्गम पहाड़ियाँ थीं जिनमें से पाइप लाइन लाना बहुत मुश्किल था। पहले जो अंग्रेज़ अफ़सर इस काम

में लगे थे वे छेनी-हथौड़ी से पत्थर कटवाते थे। परन्तु इसमें समय बहुत लगता था और खर्च भी काफी होता था। विभाग के बड़े अफ़सरों ने इस पर विचार करने के लिये एक मीटिंग बुलाई। इसमें हुज़ूर ने सुझाव दिया कि बारूद से सुरंगें उड़ाई जायें तो खर्च बहुत कम हो जायेगा। हुज़ूर के सुझाव को पसन्द किया गया और उन्हें इस पर अमल करने के लिए कहा गया। हुज़ूर के मार्ग-दर्शन और निगरानी में कार्य तेज़ी से चलने लगा। जब इस कार्य के अन्तिम मील पर पहुँचे तो शहर का वह भाग आ गया जहाँ योरोपियन लोगों के बंगले थे। अब पाइप-लाइन को उस सड़क के नीचे से जाना था जहाँ कुछ बड़े अंग्रेज़ व्यापारियों की दुकानें थीं और एक शानदार गिरजाघर था। व्यापारियों और पादरियों ने सरकार को नोटिस दे दिया कि अगर विस्फोट से उनकी सम्पत्ति को नुकसान हुआ, अगर खिड़कियों का एक शीशा भी टूटा तो सरकार को उसका हर्जाना अदा करना पड़ेगा। इस पर सरकार को बड़ी चिन्ता हुई। ऊपर से हुक्म आया कि बारूद तथा सुरंगों से विस्फोट करना बन्द किया जाये। अतएव फिर छेनी, हथौड़ी, घन आदि से पत्थर काटना शुरू किया गया, परन्तु वहाँ की चट्टान बहुत सख्त निकली। पन्द्रह दिन के काम की प्रगति से पता चला कि इस गति से दो वर्ष में भी यह छोटा-सा टुकड़ा पूरा न होगा। साथ ही पूरी योजना पर स्वीकृत धन-राशि इस टुकड़े पर ही खर्च हो जायेगी।

बड़े-बड़े अधिकारियों ने इकट्ठे होकर फिर विचार किया लेकिन उन्हें इस समस्या का कोई हल नज़र न आया। आखिर हुज़ूर से कहा गया कि वे ही कुछ उपाय सोचें। हुज़ूर ने बताया कि एक उपाय उन्हें सूझा है लेकिन इसके लिये लकड़ी की तीन-चार सौ स्लीपर (शहतीरों) की ज़रूरत होगी। कर्नल साहिब ने कहा कि आप तीन-चार हज़ार स्लीपर ले लें, लेकिन इस काम को जैसे भी हो जल्दी पूरा करें। आपको इस योजना पर इच्छानुसार खर्च करने का अधिकार भी दे दिया गया।

हुज़ूर ने यह प्रबन्ध किया कि सुरंगें लगाकर चट्टानों के ऊपर लकड़ी की स्लीपरों की दो-तीन तहें जमा कर उन पर भारी पत्थर रखवा दिये। ऐसा करने से धमाकों का पूरा असर स्लीपरों पर ही ख़त्म हो जाता था। उस हिस्से में पाइप-लाइन डालने का सारा कार्य हुज़ूर खुद खड़े रहकर अपने सामने करवाते थे। बड़ी-बड़ी दुकानों वाले भाग तक पहुँचते-पहुँचते हुज़ूर के

मातहत और मज़दूर इस कार्य में निपुण हो गए थे और काम अच्छी तरह चल रहा था।

एक दिन सुबह जब ठीक गिरजाघर और एक बड़ी अंग्रेज़ी दुकान के बीच में काम चल रहा था, हुज़ूर का नौकर दूध लेकर आया। उस दिन हुज़ूर सुबह रोज़ से जल्दी चले आये थे और नौकर से कह आये थे कि दूध मौके पर ही ले आना। हुज़ूर ने अपने आदमियों को पहले से रखे हुए विस्फोटकों को छोड़ने के लिए कहा और दूध पीने के लिए कुछ मिनिटों के लिए एक ओर आ गये। हुज़ूर ने उस जगह पर आठ सुरंगें खुद खड़े होकर अपने सामने लगवाई थीं और चार पर शहतीरें लगा दी गई थीं और बाकी चार पर अभी रखी जानी थीं। जब हुज़ूर लौटकर आये तो देखा कि विस्फोट सफलता-पूर्वक हो गया था। इस पर आपने कहा कि चलो, अब बचे हुए चार विस्फोटकों पर भी स्लीपर लगा दें। इस पर हुज़ूर के ओवर-सियर ने कहा, "लेकिन साहब, हम तो पहले ही उनमें पलीता लगा चुके हैं।"

यह सुनकर हुज़ूर क्षणभर के लिए स्तब्ध रह गये। परन्तु दूसरे ही क्षण आप उन विस्फोटकों की ओर दौड़ पड़े जिनमें आग लगा दी गई थी। हुज़ूर का ख़याल था कि हो सके तो उन पलीतों (फ्यूज़) को बाहर निकाल लें। साथ वाले अफ़सरों ने आपको रोकना चाहा। वे सब पुकारने लगे, 'चट्टान फटने वाली है, खुदा के लिये लौट आओ', परन्तु उस समय हुज़ूर को अपना ख़याल कहाँ था। उस वक्त का वृत्तान्त हुज़ूर ने एक बार इस प्रकार सुनाया था, "उस समय अनायास मेरे मुँह के प्रार्थना निकली। मुझे थोड़े दिनों पहले ही बाबाजी महाराज से नामदान मिला था। मैंने पूरी दीनता से उन्हें याद किया, 'हे मालिक! इस वक्त मेरी लाज तेरे हाथ में है।' अपने शरीर को चोट लगने का मुझे कोई डर नहीं था, लेकिन यह ख़याल सता रहा था कि वे योरोपियन अफ़सर क्या सोचेंगे जिन्होंने मुझे इतनी ज़िम्मेदारी का और ज़रूरी काम सौंपा था।"

हुज़ूर के साथी व मज़दूर भयभीत व हक्के-बक्के खड़े थे। वे सब आप की सुरक्षा और सलामती के लिये चिन्तित थे, क्योंकि वे हुज़ूर को बहुत चाहते थे। हुज़ूर सुरंगों में चले गये। पहले फ्यूज़ को निकाला तो पता चला कि बत्ती ऊपर से चौथाई इंच जलने के बाद अपने आप बुझ गई थी। दूसरी

तीसरी और चौथी सुरंगों पर गये तो वहां भी वैसी ही हालत थी। चारों बत्तियां ऊपर से थोड़ी-थोड़ी जल कर बुझ गई थीं। कैसे बुझीं, यह कोई न समझ सका। उनमें कोई खराबी नहीं थी, क्योंकि जब उन्हें थोड़ा-थोड़ा चाकू से काट कर दोबारा लगाया गया तो वे बराबर जलीं।

हुज़ूर फ़रमाते थे कि उस वक्त सतगुरु दीनदयाल की दया-मेहर के प्रति जो भाव मन में आया वह मेरा दिल ही जानता है। रोम-रोम गुरु का शुक्र-गुज़ार था। दिल करता था कि तन-मन उस गुरु के चरणों में वार दूं जिसने ऐसे समय में मेरी लाज रखी और रक्षा की।

जब हुज़ूर ने बाबाजी महाराज से इस घटना का ज़िक्र किया तो उन्होंने फ़रमाया कि मालिक हमेशा अपने प्यारे भक्तों की मदद करता है। स्वामीजी महाराज तुम्हारे सब कार्य अच्छे करेंगे।

हुज़ूर का मधुर स्वभाव और उच्च चरित्र

हुज़ूर के मधुर स्वभाव, कर्तव्य-परायणता, सत्य-निष्ठा, सबके प्रति प्रेम और सहानुभूति की भावना आदि महान् गुणों की चर्चा सभी करते थे। अपने मातहतों के प्रति आपका व्यवहार सदय और प्रेमपूर्ण होता था। आपके अफ़सर आपकी योग्यता, कर्तव्य-निष्ठा और इन सबसे बढ़कर आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व से आप पर मुग्ध थे। अंग्रेज़ अफ़सरों से तो जो काम कोई और अधिकारी न करा सकता था, वह आप करा लेते थे।

एक बार आपके क्षेत्र में एक अंग्रेज़ अफ़सर बदली होकर आया। वह अपने कटु स्वभाव, रूखेपन औद बद-मिजाज़ी के लिये मशहूर था। आपके साथी अफ़सर कहने लगे, अगर इसको सीधा कर लिया तो फिर इन्हें मानेंगे। एक महीना हुज़ूर के साथ काम करने के बाद उसकी यह हालत हो गई कि वह कई ज़रूरी बातों में आपसे सलाह लेने लगा। हुज़ूर सर्विस करने वाले सत्संगियों को हमेशा यह हिदायत देते थे कि अपने अधिकारियों का आदर करना, उनकी आज्ञा मानना तथा उनके स्वभाव को परख कर कार्य करना, और अपने मातहतों के प्रति प्यार व मृदुतापूर्ण व्यवहार करना नौकरी में सफलता प्राप्ति के साधन हैं।

अपने एक अफ़सर कर्नल लांसबरी का ज़िक्र हुज़ूर बड़े प्यार और आदर के साथ किया करते थे। विलायत लौटने से पहले उसने नाम-दान के लिये

प्रार्थना भी की थी। परन्तु उस जन्म में नाम उसके भाग्य में नहीं था। अब इस जन्म में उसे नाम मिल गया है।

२८ वर्ष बड़ी योग्यता और सफलता के साथ नौकरी करने के बाद पहली अप्रैल सन् १९११ को हुज़ूर रिटायर होकर डेरे में आये। उस समय आप एबटाबाद में नियुक्त थे। अभी आपकी सर्विस के दो-तीन साल बाकी थे और ५५ वर्ष की उम्र होने के बाद भी आपके अफ़सर आपको सेवा-निवृत्त नहीं करना चाहते थे, बल्कि ६० वर्ष की आयु तक सर्विस में रखना चाहते थे। लेकिन अफ़सरों के बहुत अनुरोध के बावजूद आप ५३ वर्ष की आयु में पेंशन लेकर, उस महान् कार्य को करने जिसके लिये बाबाजी महाराज ने आपको चुना था, डेरे में आ गये। बाबाजी के जीवन-काल में हुज़ूर ने कई बार नौकरी छोड़ कर गुरु-चरणों में आकर रहने की इजाज़त चाही थी, परन्तु बाबाजी ने उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया था।

माता जीवनी जी का प्रयाण

हुज़ूर महाराज के सेवा-निवृत्त होकर डेरे में आने के कुछ महीनों बाद माता जीवनी जी निज-घर सिधार गईं। यहां मैं माताजी के चोला छोड़ने का वृत्तान्त दे रहा हूं जो बाबाजी की महिमा करते हुए हुज़ूर कभी-कभी सत्संग में सुनाया करते थे।

हुज़ूर रिटायर होने के बाद एक बार किसी कार्य से कालाबाग तशरीफ़ ले गये थे। वहां घर (महिमासिंहवाला) से तार आया कि माताजी बीमार हैं। इसके पहले माताजी की बीमारी का कोई पत्र या समाचार नहीं आया था, इसलिए एकाएक तार पाकर हुज़ूर ने सोचा कि ज़रूर ज़्यादा बीमार होंगी। आप तुरन्त कालाबाग़ से रवाना हो गये। जब महिमासिंहवाला पहुंचे तो देखा कि माताजी सख़्त बीमार हैं। हुज़ूर को देखकर माताजी ने फ़रमाया कि अब कूच की तैयारी है। हुज़ूर ने पूछा, "कब जायेंगे ?" माताजी खामोश हो गईं और कुछ जवाब नहीं दिया। महाराजजी ने फिर पूछा, "क्या कोई तकलीफ़ है ?" तो माताजी ने कहा कि "और तो कोई तकलीफ नहीं; दो-तीन महीने से बाबाजी के दर्शन नहीं होते थे, उसका बहुत दुःख था। सो आज दर्शन हो गये, यह तकलीफ भी जाती रही।" हुज़ूर ने माताजी से अनुरोध किया कि बाबाजी महाराज से पूछें कि दर्शन क्यों बन्द हो गये थे ? इस पर

माताजी ने कुछ देर बाद बाबाजी का जवाब बताया कि अगर सत्संगी को रोज़ सतगुरु के दर्शन होते हों तो बीमारी के वक्त नहीं होते, ताकि तकलीफ़ के वक्त शिष्य यह अर्ज़ न करे कि तकलीफ़ दूर करो। इसलिये सतगुरु उस समय दर्शन नहीं देते।

फिर हुज़ूर ने कहा कि आप बाबाजी से पूछें कि कब जाना है? माताजी ने जवाब दिया, "परसों रात को।" यह सुन कर महाराजजी खामोश हो गये। माताजी ने आपको कुछ विचार में डूबा हुआ देखकर पूछा कि क्या बात है? हुज़ूर ने फ़रमाया, "जब बाबाजी की यही मौज है और वे आपके साथ हैं, तो मुझे आपके जाने का कोई दुःख नहीं है। सिर्फ यही चिन्ता है कि परसों डेरे में सत्संग का दिन है। अगर मैं वहां न हुआ तो संगत आयेगी और मायूस होकर चली जायेगी। और इस वक्त आपको छोड़ कर भी नहीं जा सकता।"

हुज़ूर के यह वचन सुन कर माताजी ने अन्तर में खयाल लगाया और बोलीं, "आप ज़रूर जाओ। बाबाजी कहते हैं कि जब आप सत्संग करके वापिस आओगे तब ले चलेंगे।" इस पर हुज़ूर ने कहा कि मैं सत्संग करके उसी दिन आ जाऊंगा।

हुज़ूर महाराजजी डेरे आ गये। दूसरे दिन सत्संग किया। लेकिन सत्संग के बाद फौरन रवाना न हो सके क्योंकि डेरे का बहुत-सा व्यवस्था सम्बन्धी काम था। हुज़ूर ने विचार किया कि जब तक मैं नहीं पहुंचता बाबाजी माता जी को नहीं ले जायेंगे, सो डेरे का काम निपटा लूं। जब हुज़ूर कार्य समाप्त कर चुके तो अँधेरा हो गया था, अतएव रात को डेरे में ही रहना पड़ा।

दूसरे दिन जब हुज़ूर ने बीबी रुक्को को बताया कि माताजी की जाने की तैयारी है तो बीबी रुक्को भी हुज़ूर के साथ महिमासिंहवाला आ गईं। जब हुज़ूर पहुंचे और माताजी से हाल पूछा तो माताजी ने जवाब दिया कि कल बाबाजी महाराज आये थे और पूछ रहे थे कि आज बाबूजी आने का कह गये थे; क्या सत्संग करके नहीं आये? माताजी ने जवाब दिया कि जी, नहीं आये। इस पर बाबाजी ने फ़रमाया, "कोई बात नहीं, कल जब वे आ जायेंगे तब ले चलेंगे।"

अन्तिम समय में माताजी का चेहरा खुशी और नूर में चमक रहा था।

आपने सबको भजन में बैठने को कहा। जब भजन में से उठे तो माताजी चोला छोड़ चुकी थीं।

विवाह और गृहस्थाश्रम

हुज़ूर का विवाह २५-२६ वर्ष की अवस्था में हुआ जब कि हुज़ूर सरकारी नौकरी शुरू कर चुके थे। एक बार ब्रह्मचर्य पालन करने की हिदायत देते हुए हुज़ूर ने बताया कि उन्हें तो स्वाभाविक रूप से ही ब्रह्मचर्य पालन का अवसर मिलता रहा। २८ वर्ष की नौकरी में केवल तीन बार दो-दो महीने के लिये आपकी पत्नी आपके साथ रहीं। बाबाजी महाराज के दर्शन के कुछ समय बाद तो आपने पूर्ण ब्रह्मचर्य का नियम ही ले लिया था। उस समय आपकी आयु ४० वर्ष के करीब थी। अपनी धर्मपत्नी बीबी किशन कौर जी के १९४४ में परलोक गमन के बाद एक बार हुज़ूर ने फ़रमाया कि यद्यपि अपनी स्त्री की प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, परन्तु उसके देहान्त के बाद यह प्रकट करने में कोई हरज नहीं कि उसने हमेशा मुझे अपने प्रण को निभाने में पूरी मदद दी और बाबाजी महाराज ने उसे जो हुक्म दिया था कि 'अब इन्हें पति भाव से नहीं देखना,' वह इस हुक्म पर पूरे तौर से कायम रही।

माता किशन कौर जी

जिन्हें पूज्य माताजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे इस बात का समर्थन करेंगे कि माताजी ऊंचे दरजे की एक ऐसी महिला थीं, जिनके दर्शनमात्र से हृदय निर्मल हो जाता था और मन को शान्ति प्राप्त होती थी। आप दया और मेहर की मूर्ति थीं। जब हम लोग जाकर चरणों में सीस रखते तो आप बड़े प्रेम से दोनों हाथ हमारे सिर पर रख देतीं। फिर बड़े प्यार से घर के हरएक व्यक्ति का नाग ले लेकर उसके कुशल-समाचार पूछतीं और सबकी खुशी और खैरियत का हाल सुन कर बड़ी प्रसन्न होतीं। आवाज़ इतनी मीठी और बोलने का ढंग इतना प्यार भरा था कि सुनते ही हृदय शीतल हो जाता। निर्धन व्यक्ति से भी उतने ही आदर और सत्कार से बात करतीं जितने कि किसी करोड़पति से। उनकी करुणा, कृपा और स्नेह की भावना औरों को भी भाव-विभोर कर देती। माताजी इतनी कोमल-हृदय थीं कि किसी का कष्ट नहीं देख सकती थीं। किसी भी व्यक्ति के दुःख की गाथा सुनकर आपका दिल पसीज जाता और उसका दुःख दूर करने के लिये बड़े प्रेम के साथ सलाह देतीं। आधा दुःख तो तभी दूर हो जाता जब वे प्रेम-पूर्ण

स्वर में 'बच्चू' कह कर पुकारतीं। उनके तो मानों रोम-रोम से प्रेम टपकता था। आवाज़ धीमी और मधुर थी और धीमें-धीमें ऐसे बातचीत करतीं जैसे मां बच्चे को प्यार के साथ समझाती है। आप हमेशा प्रसन्न-मुख रहतीं। २५-३० वर्ष के लम्बे समय में मैंने न कभी माताजी के माथे पर सिकुड़न, न कभी क्रोध की मुद्रा और न जबान पर कोई कठोर वचन देखा या सुना।

हुज़ूर के सुपुत्र

हुज़ूर के तीन सुपुत्र थे। (१) सरदार बचिंतसिंहजी, (२) सरदार बसन्तसिंहजी और (३) सरदार हरबन्ससिंहजी। मझले सुपुत्र सरदार बसन्तसिंहजी का तो युवावस्था में ही ३२ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया था। आप अपने पीछे युवा पत्नी और एक अल्पायु बालक छोड़ गये। आपकी पत्नी का देहान्त भी कुछ समय बाद हो गया। आपके पुत्र सरदार सतनामसिंह आजकल सरसा में एक बड़े ज़मींदार हैं।

सरदार बचिंतसिंहजी अंग्रेज़ी शासन-काल में सरसा में कई वर्षों तक अवैतनिक न्यायाधीश का कार्य करते रहे। आप अपने क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय और प्रतिष्ठित बुज़ुर्ग थे। आप सन् १९५२ में चोला छोड़ गये। आपके एक ही पुत्र सरदार नगेन्द्रसिंहजी हैं जो इस इलाके के गणमान्य व्यक्तियों में माने जाते हैं।

हुज़ूर के सबसे छोटे सुपुत्र सरदार हरबंससिंहजी एक बड़े कृषि फार्म के तथा शक्कर के कारखाने के मालिक थे। बुद्धिमान, गंभीर और परिश्रमी होने के साथ ही आप अत्यन्त विनयशील और गुरु-भक्त भी थे। आपके दो पुत्र हैं, सरदार चरनसिंहजी बी. ए., एल. एल. बी. और सरदार पुरुषोत्तमसिंह जी। सरदार चरनसिंह जी हमारे मौजूदा सन्त-सतगुरु हैं। इससे पहले आप सरसा और हिसार के सर्वश्रेष्ठ वकीलों में गिने जाते थे। सरदार पुरुषोत्तमसिंह जी बी. ए., एल. एल. बी., सरसा में अपनी पैतृक कृषि-फार्म का कार्य करते हैं। आप सेना में कप्तान थे और अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध हैं।

हुज़ूर के सुपुत्र और पौत्रों का व्यवहार तथा स्वभाव पुराने सन्तों की सन्तानों के स्वभाव से बिलकुल भिन्न और बे-मिसाल रहा है। पिछले सन्तों की बहुत कम सन्तान उनके हुक्म में रही। लेकिन हमारे सतगुरु दीन-दयाल

के नेक पुत्रों ने ऐसी मिसाल पेश की है, जिसका जोड़ इतिहास में नहीं मिलता। वे हमेशा अपने पिता को परमात्मा के समान पूजते रहे और उनके हुक्म के पालन को अपना परम कर्तव्य तथा उनकी खुशी प्राप्त करना अपना ध्येय समझा।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी परम धाम सिधारने से कुछ दिनों पहले जब अपने उत्तराधिकारी की घोषणा करने वाले थे तो कुछ प्रेमी सत्संगियों और निकट के सेवादारों ने हुज़ूर की सेवा में निवेदन किया, "हुज़ूर, गुरु-गद्दी घर की घर में ही रहे।" इस पर सरकार के सुपुत्रों ने यद्यपि वे हर तरह से काबिल और लायक थे, एक साथ हाथ जोड़ कर अर्ज़ की, "हुज़ूर, गुरु-गद्दी कोई पैतृक पद नहीं है जो पिता से पुत्र को जाये। संगत में से जिसे भी हुज़ूर इस योग्य समझें उसे अपना जानशीन मुक़र्रर फ़रमायें।" हुज़ूर अपनी सन्तान के ये शब्द सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। फिर हुज़ूर ने सरदार बहादुर जगतसिंह एम. एस. सी. (कृषि कालेज लायलपुर के भूतपूर्व वाइस प्रिंसिपल) को, जो रिटायर होने के बाद से डेरे में हुज़ूर के चरणों में रह कर दिन-रात भजन में लीन रहते थे और जो बड़े ऊंचे दरजे के अभ्यासी थे और सब सत्संगियों में पहुंचे हुए बुज़ुर्ग माने जाते थे, अपना उत्तराधिकारी बनाया, तो हुज़ूर के पुत्र एवं पौत्रों ने सबसे पहले उनके आगे सीस नवा कर उनके चरणों में नमस्कार किया। बड़े साहबज़ादे सरदार बचिंतसिंहजी ने उस वसीयत पर जो हुज़ूर ने सरदार बहादुर जगतसिंहजी के पक्ष में बनाई थी, बड़ी खुशी से गवाह के तौर पर सबसे पहले अपने हस्ताक्षर किये।

२. रूहानी शिक्षा

हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि हुज़ूर के माता-पिता और दादा-दादी सभी धार्मिक विचार के थे, अतएव आप में भी बचपन से ही रूहानियत का शौक पैदा हो गया था। जब आप तीन-चार वर्ष के ही थे तो अपने दादा के साथ उनकी अँगुली पकड़ कर, अपने ग्राम में आने वाले साधु-महात्माओं के दर्शनों के लिये जाया करते थे। घर के सभी स्त्री-पुरुष सवेरे उठ कर जपुजी साहब का पाठ किया करते थे। इसलिये आपको भी छोटी उम्र में जपजी साहब ज़बानी याद हो गया था। नौ-दस वर्ष की आयु में आपने ग्रन्थसाहिब पढ़ना शुरू कर दिया था। पुस्तकें पढ़ने का शौक आपको शुरू से ही था। लेकिन

व्यर्थ की पुस्तकें पढ़ने में अपना समय नष्ट नहीं करते थे, केवल धार्मिक पुस्तकें ही पढ़ते थे। हुज़ूर बतलाते थे कि दशम ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, भागवत आदि पुस्तकें आपने छोटी उम्र में ही पढ़ लीं थीं। उस समय अच्छी पुस्तकें दुर्लभ थीं। परन्तु आप कोशिश करके कहीं न कहीं से प्राप्त कर ही लेते थे। बाद में नौकरी के दिनों में तो आपने मुंशी नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित सभी धर्म-पुस्तकों के उर्दू अनुवाद तथा अन्य कई ग्रन्थ काफी खर्चा करके मँगा लिये थे। प्रसिद्ध मुसलमान लेखकों की पुस्तकें 'कीमिआए सआदत,' अमामे गज़ाली का 'अहयाउल अलूम' तथा कई फ़ारसी पुस्तकें आपने काफी मूल्य देकर मँगाई थीं। हुज़ूर को अरबी और फारसी का अच्छा ज्ञान था और आपने धीरे-धीरे अनेक अरबी और फ़ारसी सन्तों की पुस्तकों का संग्रह कर लिया था। इनमें अनेक हस्तलिखित पुस्तकें भी थीं।

हुज़ूर की अपनी पुस्तकों की अल्मारी आज भी वैसी ही सुरक्षित है। इस में शम्स तब्रेज़, मौलाना रूम, ख्वाजा हाफ़िज़, अमीर ख़ुसरो आदि सूफ़ी सन्तों के अनेक अरबी और फ़ारसी ग्रन्थ मौजूद हैं। प्रत्येक पुस्तक पर हुज़ूर के हाथ से पेंसिल या कलम के निशान लगे हैं और कई ग्रन्थों में हुज़ूर ने मार्जिन में छोटे-छोटे नोट लिखे हैं। एक ग्रन्थ साहिब की प्रति में हुज़ूर ने प्रत्येक पृष्ट के साथ एक-एक खाली पन्ना लगाया हुआ है, जिस पर आपने हर पृष्ट पर आनेवाले पदों की व्याख्या, उन पर अपनी टिप्पणी और अपने विचार लिखे हैं। उसे देखने से पता चलता है कि हुज़ूर ने ग्रन्थ साहिब का कितना गंभीर अध्ययन किया था। गुरुमत पर हुज़ूर द्वारा लिखे गये विशाल ग्रन्थ "गुरुमत सिद्धान्त" के पीछे हुज़ूर का यह वर्षों का गहरा अध्ययन था। हुज़ूर के अध्ययन के शौक का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि "फ़तूहात मक्की" नामक एक अरबी ग्रन्थ जो लगभग अप्राप्य था, आपने एक मित्र के द्वारा मिस्र से मँगवाया।

बाबाजी महाराज के सम्पर्क में आने से पहले हुज़ूर अपना काफी समय साधु-महात्माओं की संगति में बिताते रहे। कोई न कोई फ़कीर, साधू या महात्मा आपके पास ठहरा ही रहता। आपको कभी इस बात का संकोच न था कि साधू हिन्दू है या मुसलमान। परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग की खोज में आप जहाँ भी किसी महात्मा के बारे में सुनते, वहीं पहुँच जाते। इस सिलसिले में आप कई बार धार्मिक सभाओं में गये, कई बार सभा-सोसाइटियों के सभापति और सेक्रेटरी भी बने। हुज़ूर को सच्चे परमार्थ की लगन इतनी तीव्र थी कि आप फ़रमाते कि यदि किसी नीची से नीची जाति-

वाले के पास भी यह दौलत है तो मैं उसके चरणों में बैठने को तैयार हूँ।

साधु-सेवा और दान-शीलता की वृत्ति तो मानो आपने पैतृक सम्पत्ति के रूप में विरासत में ही पाई थी। आप फ़कीरों और महात्माओं की सेवा के लिये सदैव तत्पर रहते। सन् १८९१ में हुज़ूर की बदली कोहमरी हो गई। वहाँ लाला भरपूरामल साहूकार की एक धर्मशाला थी, जिसमें अमरनाथ की यात्रा को जाने वाले महात्मा अक्सर ठहरा करते थे। हुज़ूर ने उसके पास ही एक मकान किराये पर ले लिया ताकि महात्माओं के सत्संग का अवसर आसानी से मिलता रहे। अमरनाथ जाने वाले साधुओं में यह बात शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गई कि हुज़ूर के यहाँ साधु-महात्माओं की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तथा उन्हें भोजन, वस्त्र आदि के अतिरिक्त रास्ते का खर्च भी मिल जाता है।

उन दिनों हुज़ूर को वेदान्त, उपनिषद, गीता, योगवशिष्ठ, आदि के अध्ययन तथा उन पर चर्चा करने का अच्छा अवसर प्राप्त होता रहा। आपने इन पुस्तकों तथा इन विविध दर्शनों का अध्ययन अच्छे अभ्यासी तथा विद्वान महात्माओं के साथ किया था, अतएव हुज़ूर को वेदान्त, दर्शन, उप-निषद आदि का विशद ज्ञान हो गया था। बाबू गुलाबसिंहजी बताते थे कि कई बार अच्छे-अच्छे महात्मा हुज़ूर से चर्चा करने की इच्छा प्रकट करते और रात को ग्यारह बजे तक सत्संग चलता रहता। उन्हीं दिनों हुज़ूर ने एक बौद्ध भिक्षु से बौद्ध तथा जैन धर्म का अध्ययन किया। आपको किसी धर्म के प्रति भेद-भाव या पक्षपात नहीं था। मुसलमान फ़कीर, सूफी, हिन्दू योगी, वेदान्ती आदि सभी से आप प्रेमपूर्वक मिलते थें। हुज़ूर की यह उदार भावना और उनका विशाल दृष्टिकोण अन्त तक बना रहा। आपके सत्संगियों में हजारों मुसलमान भी थे। कुछ सूफी फ़कीरों की संगति में आपने मौलाना रूम, शम्स तब्रेज़, मुजद्दिद अल फ़सानी आदि महात्माओं की पुस्तकों का अध्ययन किया। इसी प्रकार हुज़ूर ने कुरान शरीफ़ का भी अध्ययन किया। एक ईसाई पादरी के साथ आप बाइबिल के विषय में भी चर्चा करते। हुज़ूर को किसी समाज में जाने में झिझक न थी, गरीब अथवा अछूत लोगों की संगति ही क्यों न हो, आप अपनी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये जाने में संकोच न करते। जहाँ भी कोई अच्छी बात दिखाई देती, आप ग्रहण करने को तैयार रहते। इस प्रकार ३५ वर्ष की आयु तक पूर्ण सतगुरु की तलाश और उस महान कार्य की तैयारी की व्यवस्था होती रही, जिसे हुज़ूर को बाकी पूरे जीवन करना था।

यद्यपि हुज़ूर को साधु-महात्माओं से मिलने का बचपन से ही शौक था, परन्तु आप दिखावटी और भेषी साधुओं के पास नहीं जाते थे। आपको महात्माओं के गुणों की शुरू ही से परख थी। जब हुज़ूर एस. डी. ओ. थे तब का एक वृत्तान्त है। एक दिन हुज़ूर घोड़े पर सवार हो पहाड़ों में जा रहे थे। एकाएक हुज़ूर के दिल में खुशी पैदा हुई। लोग अपने बच्चों को, दुनिया की कामयाबियों आदि को याद करके खुश होते हैं। लेकिन यह खुशी और ही तरह की थी। साथ ही हुज़ूर को बहुत अच्छी खुशबू भी आने लगी। हुज़ूर ने सोचा कि अप्रेल का महीना है, शायद खुशबूदार पेड़ों के फूलों की खुशबू है। लेकिन फिर खयाल आया कि मुझे पहाड़ों में अठारह वर्ष हो गये हैं, आज तक ऐसी खुशी और खुशबू का अनुभव नहीं किया। जैसे-जैसे हुज़ूर आगे गये, खुशबू बढ़ती गई। आगे जाने पर आपने देखा कि सड़क के किनारे एक मस्त फ़कीर बैठा है। यह खुशबू उसकी थी। उसे देख कर हुज़ूर अदब के साथ घोड़े पर से उतर गये। फ़कीर हुज़ूर को देख कर बड़ा खुश हुआ और बोला, "खुशबू लेने वाली नाक भी कोई-कोई ही होती है।"

सन् १८९४ में जब आप कोहमरी में नियुक्त थे, हुज़ूर की बाबा जैमलसिंहजी महाराज से भेंट हुई। उस वक्त से हुज़ूर के जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हो गया। इस बात का संकेत बहुत पहले ही पेशावर के एक पहुंचे हुए फ़कीर बाबा काहन ने दिया था। जब हुज़ूर नौशहरा में नियुक्त थे तो इतवार के दिन अक्सर उससे मिलने जाते थे। वह सदा मस्ती और तल्लीनता की अवस्था में रहता था। लोगों को अपने पास बैठने नहीं देता था और कई बार आनेवालों को गालियाँ देकर अथवा सोटी से डरा कर भगा देता था। लेकिन हुज़ूर जब कभी उससे मिलने जाते तो वह बहुत आदर और प्रेम के साथ पेश आता। हुज़ूर भी उसकी इज़्ज़त करते थे और उसे जिस चीज़ की भी ज़रूरत होती, लाकर देते थे। एक बार हुज़ूर 'ब्लेक माउण्टेन' की लड़ाई से लौट कर एक महीने की छुट्टी पर घर जा रहे थे। आपके पास करीब दो हज़ार रुपये थे। रास्ते में बाबा काहन से मिलने के लिये पेशावर स्टेशन पर उतर पड़े। आपने देखा कि बाबा काहन पहले ही स्टेशन पर खड़ा है। पूछने पर बोला, "आज हमारी सरकार को आना था। सोचा कि चलो खुद ही स्टेशन जाकर ले आयें।" हुज़ूर को बड़े आदर व प्रेम के साथ अपने निवास-स्थान पर ले गया। बड़ी देर तक बातें

करता रहा। फिर बिदा लेते समय हुजूर ने उसे पाँच रुपये भेंट किये। वह कहने लगा "मैं तो पूरे बीस लूँगा, सफेद-सफेद व गोल-गोल।" हुजूर ने हँस कर फ़रमाया, "बाबा, अब तुम लालची हो गये हो! पहले कभी चार कभी पाँच लेते थे, आज बीस माँग रहे हो।" उसने कहा, "मै लालची नहीं हूँ। धन के अनुसार ही दान होता है। तुम दो हज़ार लेकर आये हो, मैंने बीस माँग लिये।" हुजूर ने बीस रुपये निकाल कर उसके सामने रख दिये। उसने कहा, "तुम्हें मालूम है, मुझे रुपयों की ज़रूरत नहीं है। मैं चाहता हूँ तुम्हारी कमाई पाक और सफल हो जाय।" वह रुपये अपने पास नहीं रखता था, छोटे-छोटे गरीब लड़के आकर उसके कपड़ों में से रुपये निकाल कर ले जाते थे। कुछ देर बाद लड़के आये और रुपये निकाल कर ले गये।

एक बार बहुत रात तक हुजूर उसके पास बैठे ही रहे। आधी रात के बाद उसने कहा, "अब तुम जाओ।" हुजूर ने जवाब दिया, "आज मैं खाली हाथ नहीं जाऊँगा। आज तो आप से ज़रूर कुछ लेकर ही जाऊँगा।" उसने कहा, "तुमको इतना मिलेगा जिसका कोई अन्त नहीं। लेकिन अभी वक्त नहीं आया है।" हुजूर ने पूछा कि वक्त कब आयेगा? उसने उत्तर दिया, "बस अब आने ही वाला है।" हुजूर ने फिर पूछा, "क्या आप देंगे या कोई और?" इस पर वह बोला, "तुम्हारा हिस्सा मेरे पास नहीं है। कोई और देगा।" हुजूर ने पूछा, "वे कौन हैं? कहाँ रहते हैं? कुछ पता तो बता दें।" इस पर बाबा काहन ने कहा, "वह खुद तुम्हारे पास आयेगा। तुम्हारी अमानत उसके पास है।"

हुआ भी ऐसा ही। अक्तूबर १८९४ में हुजूर एक दिन कोहमरी में अपने दफ्तर से नीचे की ओर जा रहे थे। सामने से बाबा जैमलसिंहजी महाराज और बीबी रुक्को ऊपर की ओर आ रहे थे। हुजूर ने बाबाजी को देख कर सोचा कि शायद कोई फौजी पेंशनर सरदार है जो पेंशन लेने आया है, या कमिश्नरी में इनकी कोई अपील होगी। जब हुजूर बाबाजी महाराज के पास से निकल गये तो बाबाजी ने बीबी रुक्को से कहा, "हम इस सिख को लेने यहाँ आये हैं। यह हमारा पुराना मेली है।" बीबी रुक्को बोली, "इसने तो आपको फतह[१] भी न बुलाई, यह अच्छा मेली है!" बाबाजी ने उत्तर दिया, "इस बेचारे को क्या पता है, आज से चौथे दिन यह हमारे पास आयेगा।"

ऐसा ही हुआ। हुजूर फ़रमाते थे कि उन दिनों आप एक वेदान्ती महात्मा के साथ वेदान्त के एक ग्रंथ का अध्ययन कर रहे थे। तीसरे दिन

---

१. सिख रीति से अभिवादन।

जबकि शाम के समय वह साधू आपके पास बैठा हुआ था, तो बाबू काहनसिंह, जो बाबाजी के सत्संगी थे और हुज़ूर के मित्र थे, आपके पास आये। उन्होंने हुज़ूर से कहा, "आपको बहुत समय से किसी कमाई वाले महात्मा की तलाश है। आज-कल एक बड़े विलक्षण महात्मा यहाँ आये हुए हैं। अगर दर्शन करना हो तो चलो।" हुज़ूर के पूछने पर बाबू काहनसिंह ने बताया कि वे राधास्वामी मार्ग के सन्त हैं और सुरत-शब्द-योग के अभ्यास की शिक्षा देते हैं। उस वेदान्ती साधू ने राधास्वामी मार्ग का नाम सुनते ही निन्दा करनी शुरू कर दी और बोला, "ये लोग नास्तिक हैं, ईश्वर को नहीं मानते और सिर में एक बाजा लिये फिरते हैं।" इस पर हुज़ूर ने कहा कि मैं इंजीनियर हूँ। मैंने तो आज तक कोई ऐसा बाजा नहीं देखा जो सिर में रखा जा सकता हो। साधू फिर भी हुज़ूर को वहाँ जाने से रोकने की कोशिश करने लगा, परन्तु उसकी बातों का कोई असर न हुआ।

दूसरे दिन हुज़ूर बाबू काहनसिंह के साथ बाबू सुखदयालजी सत्संगी की बैठक में गये जहाँ बाबाजी महाराज ठहरे हुए थे। तीन-चार दिन हुज़ूर ने सत्संग सुने, अनेक प्रश्न पूछे और आपको विश्वास हो गया कि यही सच्चा मार्ग है। हुज़ूर फ़रमाते थे कि तीन-चार दिन के सत्संग से 'मेरे २०-२५ वर्ष के जितने संकल्प-विकल्प तथा सन्देह थे सब दूर हो गये।'

आपने बड़ी नम्रतापूर्वक बाबाजी महाराज के चरणों में नाम-दान के लिये विनती की। परन्तु एक संकोच मन में था। राधास्वामी नाम आपको नया-नया लगता था। अतएव आपने बाबाजी से नाम के लिये प्रार्थना करने के साथ यह भी अर्ज़ की कि मुझे राधास्वामी नाम न दिया जाए। बाबाजी बड़े प्यार के साथ मुसकराये और पूछा, "इस नाम से तुम्हें क्या एतराज़ है?" हुज़ूर ने उत्तर दिया, "एतराज़ तो नहीं है, लेकिन यह नाम मुझे नया और अजीब सा लगता है।"

इस पर बाबाजी महाराज ने पूछा, "क्या आप किसी वाणी का पाठ करते हो?" हुज़ूर ने अर्ज़ की कि आप जपुजी और जाप साहिब का रोज़ पाठ करते हैं। बाबाजी ने पूछा, "जाप साहिब में गुरु गोबिंदसिंह साहिब ने परमात्मा के ऐसे कितने नाम दिये हैं जो पहले किसी ग्रन्थ या पोथी में नहीं आये?" हुज़ूर ने जवाब में कहा कि ठीक गिनती तो याद नहीं, परन्तु ग्यारह-बारह सौ के करीब होंगे।

तब बाबाजी महाराज ने बड़े प्यार के साथ फ़रमाया, "जब आपको मालिक के बारह सौ ऐसे नामों से कोई एतराज़ नहीं जो पहले किसी ग्रन्थ

5

में नहीं आये तो अगर किसी महात्मा ने उस वाहिगुरु परमात्मा का प्यार से एक और नाम रख दिया तो क्या हो गया ।" फिर आपने समझाया, "राधास्वामी भी उसी मालिक का एक और नाम है । 'राधा' आत्मा को कहते हैं और 'स्वामी' उसके मालिक को । इस तरह 'राधास्वामी' का अर्थ हुआ आत्मा का स्वामी । कुल मालिक को स्वामी तो सभी महात्माओं ने कहा है । गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'ऊंच अपार बेअंतु सुआमी'। स्वामीजी ने इसके साथ 'राधा' लफ़्ज़ और जोड़ दिया ।" फिर बाबाजी ने स्वामीजी महाराज की पुस्तक 'सार बचन नज़्म' में से यह पद निकाल कर हुज़ूर को पढ़ने को दिया—

"राधा आदि सुरत का नाम । स्वामी आदि शब्द निज धाम ।।
सुरत शब्द और राधास्वामी । दोनों नाम एक कर जानी ।।"

हुज़ूर को वास्तविकता का बोध हो गया । आपने अर्ज़ की कि अगर यह भी परमपिता परमात्मा का ही एक और नाम है तो आपको इससे कोई आपत्ति नहीं है । दूसरे दिन हुज़ूर को नाम मिल गया । नाम-दान के बाद बाबाजी महाराज ने फ़रमाया, "यह तुम्हारी अमानत मेरे पास थी, आज तुम्हारे हवाले कर दी गई है ।" इस पर बाबा काहन के शब्द हुज़ूर को याद आ गये, "जिसके पास तुम्हारी अमानत है वह ख़ुद तुम्हारे पास आयेगा ।"

नाम-दान के बाद हुज़ूर का ख़याल भजन-सुमिरन की ओर लग गया । बाबाजी महाराज के चरणों की प्रीति दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगी । आप विरह और प्रेम से परिपूर्ण पत्र अपने सतगुरु की सेवा में भेजते रहते । हुज़ूर लिखते कि "आपके दर्शन की चाह दिन रात रहती है", "आपके दर्शन के लिये मछली की तरह तड़प रहा हूँ" । सब कुछ सतगुरु का ही दिखाई देने लगा और सतगुरु का दीदार ही एक-मात्र कामना रह गई । अपने एक पत्र में हुज़ूर ने लिखा, "मैं सचखण्ड भी नहीं माँगता । मैं तो प्रीति, प्रतीति और आपके चरणों का प्रेम हमेशा माँगता हूँ ।" बाबाजी महाराज के चरणों में अटूट प्रीति और भजन की लगन इतनी बढ़ गई कि आप कई बार अर्ज़ करते कि मुझे चरणों में आकर रहने की इजाज़त बख़्शें, नौकरी में भजन के लिये वक्त नहीं मिलता । लेकिन बाबाजी फ़रमाते कि 'आप सदा मेरे पास हो, दूर नहीं । जो नौकरी आप कर रहे हो यह भी सब मेरी ही सेवा है, सो अपने को सतगुरु का कारिन्दा समझ कर नौकरी किये जाओ ।' नौकरी के दिनों में भी आप बराबर सत्संग और भजन किया करते थे । रोज़ छः-छः, आठ-आठ घण्टे भजन में बिताते । नौकरी के बाद पूरा समय परमार्थ में ही

गुज़रता। रात को सोते बहुत कम थे, यदि नींद आने लगती तो खड़े होकर भजन करते थे। खड़े होकर भजन करने के लिये हुज़ूर ने एक पाँच फीट की बैराग़िन बनवाई थी जो अभी भी हुज़ूर के कमरे में रखी हुई है।

जब भी छुट्टी मिलती हुज़ूर बाबाजी महाराज के चरणों में डेरे आ जाते। सन् १८९८ में एक बार हुज़ूर ब्यास आये हुए थे। वापस नौकरी पर जाते समय बाबाजी महाराज के हुक्म से एक दिन के लिये अपने घर गये। जब वापस लौट रहे थे तो बाबाजी महाराज ब्यास स्टेशन पर हुज़ूर से मिले, आप हुज़ूर से कुछ कहना चाहते थे, पर कहना ठीक न समझा। वापस डेरे आकर बीबी रुक्को से फ़रमाया कि बाबू सावनसिंह पर एक बड़ा भारी कष्ट आने वाला है, पर स्वामीजी सँभाल करेंगे।

हुज़ूर उस वक्त मरी से आठ-दस मील पर खैरागली में सर्विस में थे। आस-पास के निर्माण कार्य के निरीक्षण पर जाने के लिये घोड़े पर जाते थे। आप घोड़े की सवारी में निपुण थे और घोड़े की गर्दन के बाल पकड़ कर उछल कर सवार हुआ करते थे। दूसरे दिन हुज़ूर को दौरे पर जाना था। सईस ने आपकी अनुपस्थिति में घोड़े की गर्दन के बाल काट दिये थे, लेकिन आपसे कहना भूल गया। जब हमेशा की तरह हुज़ूर घोड़े पर सवार होने के लिए घोड़े की गर्दन पर हाथ रख कर चढ़ने लगे तो बाल हाथ में न आये और आप गिर पड़े। जांघ की हड्डी सिरे के पास से टूट गई और साथ ही टांग भी उतर गई। खबर मिलते ही फौज का डाक्टर आपको अस्पताल ले गया और क्लोरोफ़ार्म देकर हड्डी बैठाई और पट्टा बाँधा।

जब हुज़ूर अस्पताल में थे, डाक्टरों ने माँस का शोरबा और पोर्ट वाइन (एक प्रकार की शराब) लेने के लिये बहुत ज़ोर दिया। हुज़ूर ने इन चीज़ों के लिये साफ़ इन्कार कर दिया। डाक्टरों ने कहा कि अगर ये चीज़ें न लोगे तो सेहत कमज़ोर हो जायेगी तथा हड्डी नहीं जुड़ेगी। हुज़ूर के साथ के अफ़सरों तथा अन्य मातहतों ने बहुत आग्रह किया कि आप अपने सतगुरु से पत्र लिख कर पूछ लें। उनके बार-बार आग्रह करने पर हुज़ूर ने बाबाजी महाराज को पत्र लिखा। बाबाजी ने जवाब दिया कि मेरा हुक्म तो वही है जो पहले दिन दिया गया था, अर्थात् माँस-शराब से दूर रहना। डाक्टरों को शंका थी कि हड्डी शायद न जुड़े या टाँग में कोई खराबी रह जाये। सो बाबाजी ने लिखा, "टाँग बिल्कुल ठीक हो जायेगी और हड्डी इस तरह जुड़ जायेगी कि पता भी न लगेगा कि कहाँ से टूटी है।' करीब तीन महीने बाद जब पट्टा ख़ोला गया तो पाया कि हड्डी बिलकुल ठीक जुड़ गई है। जब

हुज़ूर अस्पताल से घर आये तो बाबाजी महाराज आपके पास कुछ दिनों के लिए खैरागली पधारे।

हुज़ूर का नौकरी का समय अपना सांसारिक कर्तव्य अदा करने में तथा अभ्यास में बीतता गया। बाबाजी महाराज के चरणों का प्रेम और उनके दर्शन की तड़प दिन-रात बनी रहती। बाबाजी महाराज अपने पत्रों में एक ओर तो खूब भजन करने की प्रेरणा देते और दूसरी ओर प्यार के साथ दिलासा देते कि आपको दर्शन का लाभ मिल रहा है, आप और मैं अलग-अलग नहीं हैं, आप मेरे निज प्राण हो, प्यारे पुत्र हो, हमेशा मेरे साथ रहोगे।

हुज़ूर को बाबाजी महाराज का आदेश था कि आफिस के कामकाज के बाद लोगों से अधिक मेल-जोल न रखें और शाम को अपने बंगले पर लोगों को बात-चीत करने के लिये न आने दें। हुज़ूर इस बात को ध्यान में रख कर हमेशा बस्ती से बाहर एकान्त स्थान में बंगला लेते थे। कालाबाग में तो हुज़ूर का बंगला बिलकुल निर्जन स्थान में था। जब आपकी बदली मरी पहाड़ पर हुई तो आपने बस्ती से बाहर एक बंगला किराये पर लिया। बंगला बिलकुल एकान्त में था। कोई उसे किराये पर नहीं लेता था, क्योंकि लोगों का ख़याल था कि उसमें भूत रहता है। लोगों ने हुज़ूर से कहा कि आप इस कोठी को न लें, इसमें एक भूत रहता है जो रात को इसमें रहने वालों को पत्थर और ईंटें मार कर भगा देता है। हुज़ूर ने जवाब दिया, "कोई बात नहीं। मैं और भूत इकट्ठे रह लेंगे।"

रात को मकान पर पत्थर गिरने की आवाज़ आने लगी। उन दिनों भाई बन्तासिंह* हुज़ूर की नौकरी में था। वह घबरा कर बाहर भाग निकला। शोर और पत्थर गिरने की आवाज़ सुन कर हुज़ूर बाहर आये। आपने देखा कि कोठी से लगा हुआ एक पेड़ है, जिसके अखरोट जैसे सख़्त फल हैं जो रात को तेज़ हवा चलने पर कोठी के टीन से टकरा-टकरा कर आवाज़ कर रहे हैं। दूसरे दिन हुज़ूर ने पेड़ का वह टहना कटवा दिया।

बन्तासिंह बताया करता था कि उन दिनों हुज़ूर का ख़याल दिन-रात भजन की ओर रहता था। आहार बहुत कम हो गया था और कई बार खाने की छुट्टी कर देते थे। कई बार बाहर सैर करने के लिये जाने का ख़याल आता तो सईस से घोड़ा मँगवाते। वह घोड़ा लेकर बाहर खड़ा रहता। उधर इस बीच में हुज़ूर वाणी के एक दो शब्द पढ़ते, प्रेम में मग्न हो जाते

---

*भाई बन्तासिंह आजीवन हुज़ूर की नौकरी में रहा। हुज़ूर के सरसा में ज़मीन खरीदने के बाद वह सरसा में रहा और हुज़ूर के परिवार की सेवा करता रहता। बड़ा प्रेमी अभ्यासी था। हुज़ूर के जीवन की कई बातें सुनाया करता था। सन् १९५१ में उसने सरसा में चोला छोड़ा।

ग्रौर भजन में बैठ जाते। सैर का ख़याल ही न रहता। दुनियादारी की बातें, गपशप ग्रादि बिलकुल न करते। ग्रगर कोई परमार्थ की बातचीत करने या सुनने वाला ग्रा जाता तो फिर घण्टों उससे शब्द ग्रौर गुरु की महिमा के विषय में वार्तालाप करते रहते। ग्रापके साथ कार्य करने वाले तथा ग्रन्य परिचित, जो हिन्दू ग्रौर मुसलमान दोनों ही कौम के थे, ग्रापके पास ग्राते। ग्राप उनसे बगैर किसी भेद-भाव के रूहानियत की चर्चा करते रहते। बन्तासिंह सुनाया करता था कि कई बार जब रात को उसकी नींद खुलती तो देखता कि हुजूर भजन में बैठे हैं।

हुजूर का सभी धर्म, सम्प्रदाय ग्रौर जाति के लोगों के प्रति प्यार था। ग्राप सबका ग्रादर करते थे। किसी धर्म की निन्दा करना तो दूर रहा, ग्रालोचना तक नहीं करते थे। एक ईसाई पादरी हुजूर से हमेशा बहस ग्रौर नोकझोंक करता रहता था। एक बार जब हुजूर ब्यास स्टेशन पर गाड़ी से उतर रहे थे तो वह मिल गया। बोला, "मेरे एक सवाल का जवाब दो।" हुजूर ने जवाब दिया, "खुशी से पूछो।" वह बोला, "मुझे यह बताग्रो कि गुरु नानक साहिब बड़े हैं, कबीर साहिब बड़े हैं या बाबा जैमलसिंहजी?" इस पर हुजूर ने फ़रमाया, "ग्राप तीनों को मेरे सामने खड़ा कर दो। फिर मैं बता दूँगा कि कौन बड़ा है।" वह बोला कि यह तो नहीं किया जा सकता। इस पर हुजूर ने कहा, "मैंने तो बाबा जैमलसिंहजी को देखा है, मैं तो उन्हीं को बड़ा कहूँगा; मेरे लिये तो उनके बराबर कोई नहीं। मुझे तो जो कुछ मिला है उनसे मिला है।"

यह हुजूर की विशेषता थी कि दो-चार शब्दों में महत्व की बात समझा देते थे। जब हुजूर पहाड़ों में नौकरी पर थे तो ग्रापके साथ एक मुसलमान ग्रफसर भी काम करता था। उसका हुजूर के प्रति बहुत प्यार था ग्रौर ग्राप की बहुत इज्ज़त करता था। एक बार वह छुट्टी लेकर हज करने के लिये जा रहा था। जाने से एक-दो दिन पहले हुजूर से बोला, "मैं हज के लिये काबा जा रहा हूँ। ग्रगर ग्रापको वहाँ कुछ काम हो तो बतायें।" हुजूर ने कहा, "वहाँ के ख़ुदा को मेरा सलाम कह देना"। यह सुन कर वह दो मिनिट सोचता रहा, फिर बोला, "क्या वहाँ का खुदा दूसरा है?" हुजूर ने मुसकराकर फ़रमाया, "फिर ग्राप वहाँ क्या करने जा रहे हैं?" हुजूर कभी बहस करना पसन्द नहीं करते थे। कुछ ही शब्दों में ग्रपनी बात कह देते थे।

एक बार का ज़िक्र है, तब ग्राप एस. डी. ग्रो. थे। ग्रापकी तबियत ठीक नहीं थी ग्रौर कुछ दिनों की छुट्टी ली हुई थी। ग्रतएव एक दूसरा एस. डी.

ग्रो. हुज़ूर के स्थान पर काम करने के लिये ग्राया। उसका नाम बाबू कैथल-राम था, खन्ना के पास उसका गाँव था। हुज़ूर की कोठी में ही ठहरा। वह ढाई घण्टे सुबह ग्रौर ढाई घण्टे रात को ठाकुरजी की पूजा किया करता था। हुज़ूर ने उसके ठाकुरजी के ग्राराम के लिये ग्रपने पास का छोटा कमरा दे दिया था। उसकी ड्यूटी में एक नौकर भी था। एक रोज़ जब रात को सोने लगा तो नौकर को ग्रावाज़ दी कि मेरी रात वाली टोपी लाग्रो। नौकर को पता नहीं था कि कौन-सी टोपी चाहिये। ठाकुरजी के सन्दूक में एक टोपी थी, उसने वही लाकर दे दी। देख कर उसने पूछा, "कहाँ से लाये हो?" नौकर ने जवाब दिया, "जी, सन्दूक में से।" सुन कर वह बाबू बड़ा नाराज़ हुग्रा ग्रौर लगा नौकर को गालियाँ देने। फिर उठ कर ग्रपने ठाकुरजी के पास गया ग्रौर कहने लगा, "इस बालक ने ग्रापको जगा दिया। क्षमा करो! क्षमा करो!!"

उन दिनों हुज़ूर के पास मोहनसिंह नामक एक बड़ा मखौली क्लर्क था। वह बाबू की बात सुन रहा था। जब उसने बाबू की यह बात सुनी कि इस बालक ने ग्रापको जगा दिया, तो बोला, "ये कभी जागे ही नहीं। हमेशा सोते रहते हैं।" दूसरे दिन बाबू कैथलराम ने हुज़ूर से शिकायत की कि तुम्हारा क्लर्क बड़ा शैतान है। इस पर हुज़ूर ने उसे बड़े प्रेम से समझाया कि परमात्मा की ग्रसली भक्ति क्या है ग्रौर सच्चा हरि मन्दिर कहाँ है। कुछ मिनिटों की बात-चीत से उसे समझ ग्रा गई ग्रौर बाहरमुखी क्रियाग्रों से उसका ख़याल हट गया। फिर हुज़ूर ने मोहनसिंह को समझाया कि कभी किसी की भावनाग्रों को चोट नहीं पहुँचानी चाहिये।

३. सत्संग ग्रौर नामदान

जब हुज़ूर डेरे आते तो ग्रपना पूरा समय बाबाजी महाराज की सेवा, सत्संग ग्रौर भजन में बिताते। सुबह बाबाजी के स्नान के लिये पानी ग्रपने हाथ से भर कर वड़ाइच से लाते। कुग्राँ बन जाने पर कुएँ से ख़ुद पानी खींच कर भरते ग्रौर बाबाजी के लिये लाते। इसके बाद ग्रन्य सत्संगियों के साथ लंगर के लिए पानी भरते। बाबाजी ने ग्रापकी इस सेवा को देख कर एक बार फ़रमाया, "बाबूजी, यह पानी की सेवा मैं ग्रापसे पहले भी ले चुका हूँ।" बाबाजी महाराज के चोला छोड़ने के बाद सतगुरु पद का भार सँभालने पर भी हुज़ूर जब भी डेरे ग्राते तो लंगर के लिये कुछ गागर पानी की भर कर ख़ुद ले जाते थे। सन् १९११ में रिटायर होकर स्थायी रूप से डेरे में ग्राने

के बाद भी भंडारों और इतवार के सत्संगों के दिन हुज़ूर कम से कम एक गागर पानी अपने हाथों से कुएँ से खींच कर लंगर में ले जाते थे।

बाबाजी के जोती-जोत समाने के बाद शुरू-शुरू में जब भी हुज़ूर डेरे आते तो सत्संग के बाद पूरा समय भजन में बिताते। बीबी रुक्को आपके अभ्यास का हाल चाचाजी सेठ प्रतापसिंहजी को लिखती रहतीं। चाचाजी ने एक पत्र के उत्तर में बीबी रुक्को को लिखा, "बाबू सावनसिंह का हाल शौक भजन व मेहनत अभ्यास का कि चार-चार रोज़ कोठे से बाहर नहीं निकलते, मालूम करके तबियत निहायत खुश हुई।"

गद्दीनशीनी के बाद हुज़ूर ने कुछ समय तक नाम की बख्शिश शुरू नहीं की। अभी आपको पेंशन के हकदार बनने के लिए नौकरी के कुछ साल बाकी थे। जब हुज़ूर कालाबाग में थे तो कभी-कभी अपनी कोठी पर सत्संग करते थे। परन्तु अपने आपको छिपाये रखते थे, क्योंकि सन्त कभी अपने मुख से नहीं कहते कि मैं गुरु हूँ। हुज़ूर का फुरसत का पूरा वक्त अभ्यास में ही जाता था। लोगों से मेल-जोल तो पहले ही कम था। उन दिनों बाबू गज्जासिंह* भी वहीं थे। वे कभी-कभी अपने घर में सत्संग किया करते थे। शब्द और नाम का सच्चा अर्थ बतला कर वे सन्तों की महिमा किया करते थे। लोगों को गुरुवाणी से प्रेम तो था, परन्तु सतगुरु की महिमा का पता न था, क्योंकि देह-स्वरूप गुरु की महिमा का पता तो उनसे मिलने पर ही हो सकता है। एक दिन दो-तीन व्यक्ति सत्संग के बाद रुक गये। उन्होंने बाबू गज्जासिंह से पूछा कि आप जैसे महात्मा की बात करते हैं ऐसा महात्मा आजकल कहीं है भी? बाबू गज्जासिंह ने जवाब दिया, "हाँ, है।" इस पर उन्होंने ऐसे महात्मा का पता बताने के लिये आग्रह किया। उन लोगों में से एक-दो व्यक्ति हुज़ूर के महकमे में हुज़ूर के मातहत काम करते थे। गज्जासिंह जी ने उनसे कहा कि अपने बाबूजी को पकड़ो। उन्हीं से यह दौलत मिल सकती है। यह सुन कर वे हुज़ूर से नाम-दान के लिये प्रार्थना करने लगे। इस प्रकार सन् १९०४ में हुज़ूर दीनदयाल ने पहली बार नाम-दान बख्शा।

धीरे-धीरे हुज़ूर के पास परमार्थ के प्रेमी एकत्रित होने लगे। नाम की बख्शिश शुरू हो गई और अगले चालीस वर्षों में गुरु साहिबानों की धरती में ही नहीं, बल्कि भारत तथा विश्व के दूर-दूर के देशों में नाम गूँज उठा। हुज़ूर का पूरा जीवन ही परमार्थ और संगत को भेंट हो गया। सत्संग नाम-

---

*बाबू गज्जासिंह बाबाजी महाराज के सत्संगी थे। आप हुज़ूर महाराजजी के साथ काफी समय रहे।

दान और संगत की सेवा ही आपकी दिनचर्या हो गई। बाबाजी महाराज के सत्संगी और नये खोजी आपके चरणों में आकर अपनी रूहानी प्यास बुझाने लगे।

बाबाजी महाराज का एक हुकमसिंह नामक सत्संगी था। वह एक मिनिट भी खाली नहीं बैठता था। रात को भजन करता और दिन में सेवा। जब मेहनत की, अन्दर परदा खुल गया। लेकिन वह हज़म न कर सका। बाबा जी महाराज ने कहा, "हुकमसिंह, हज़म कर।" वह बोला, "इस वक्त अगर चारों वेदों का पढ़ा हुआ पण्डित भी सामने आ जाये तो मेरे साथ बात नहीं कर सकता।" और वह अन्दर की बातें करने लगा। इस पर बाबाजी ने अन्दर रास्ता बन्द कर दिया। उसने बहुतेरी कोशिश की पर अन्दर परदा न खुल सका। नाराज़ होकर अपने गांव चला गया। लेकिन बाबाजी के चोला छोड़ने के बाद फिर डेरे आ गया और यहीं महाराजजी की सेवा में रहने लगा। यद्यपि अन्दर परदा बन्द था उसने भजन नहीं छोड़ा। भजन में कभी नाग़ा नहीं किया। कभी खाली नहीं बैठता, हुक्म के अनुसार भजन करना वाणी का पाठ करना या सेवा करना उसकी दिनचर्या थी। अगर कोई सेवा न होती तो रस्सियाँ बटने बैठ जाता था। अन्तिम दिनों में बीमार हो गया। हुज़ूर महाराजजी रोज़ उसे देखने के लिये जाते थे। एक दिन हुज़ूर उसकी ओर जाने की तैयारी में थे कि वह खुद आ गया। हुज़ूर ने कहा, "मैं तेरी ओर ही आ रहा था।" वह बोला, "हुज़ूर, मैं एक चीज़ माँगने आया हूँ।" हुज़ूर ने पूछा, "क्या ?" उसने अर्ज़ की, "सच्चे पातशाह ! एक बार इन चरणों में मत्था टेक लेने दो।" हुज़ूर ने उसे समझाया कि मैं मत्था टिकाना पसन्द नहीं करता। तो उसने कहा, "अगर यह आपका शरीर बाबाजी का है तो मत्था टेक लेने दो; अगर नहीं है तो मैं नहीं टेकता।" कोई प्रेमी शिष्य यह कैसे कह सकता है कि मेरी देह मेरे सतगुरु की नहीं है। सो हुज़ूर ने बाबाजी महाराज का ध्यान करके कहा कि अच्छा, मत्था टेक ले। जब उसने चरणों में मत्था टेका तो उसी वक्त बोला, "मेरी जो सोलह वर्ष की कमाई बन्द पड़ी थी, एकदम खुल गई है। और दूसरे, मेरी सँभाल हो गई है।"

हुज़ूर को तो उस दिन आगरा जाना था। पीछे से हुकमसिंह चोला छोड़ गया। आखिरी वक्त बहुत ही खुश था और सत्संगियों को अन्तर की बातें बताता तथा हुज़ूर के गुणगान करता था।

नामदान की ज़िम्मेदारी सँभालने के बाद हुज़ूर को जब भी छुट्टी मिलती तो डेरे में आकर रहते। कभी-कभी आप आगरा चाचाजी महाराज

के पास भी जाते थे । वहाँ चाचाजी आपसे मिल कर बहुत प्रसन्न होते । बाबा गरीबदासजी, जो चाचाजी के पास आया करते थे, आपकी बहुत इज़्ज़त करते थे । एक बार जब हुज़ूर आगरा गये तो चाचाजी आपसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए । एक दिन इसी खुशी में हुज़ूर से फ़रमाया, "बेटा, मैं तुमसे बहुत खुश हूँ । बोलो क्या चाहते हो ? जो चाहो माँग लो ।" हुज़ूर ने उत्तर दिया, "आपका दिया हुआ सब कुछ है, बस आपकी दया-मेहर चाहिये, और किसी चीज़ की ख़्वाहिश नहीं ।" चाचाजी के फिर ज़ोर देने पर हुज़ूर ने अर्ज़ की, "जब कुछ बख़्शने की ही मौज है, तो स्वामीजी महाराज का जो ग्रन्थसाहिब आपके पास है, प्रदान करें ।" चाचाजी ने ग्रन्थसाहिब निकलवाकर देते हुए अश्रु-पूरित नेत्रों सहित कहा, "स्वामीजी को तो पहले ही तुम ले गये हो । अब उनकी यह निशानी जो हमारे पास थी, वह भी तुम ले चले ।" फिर आपने हुज़ूर को हृदय से लगाया और बड़े प्रेम के साथ फ़रमाया, "जाओ, स्वामीजी की तुम पर हर वक्त दया-मेहर रहेगी ।" स्वामीजी महाराज का वह ग्रन्थसाहिब आज भी डेरे में सुरक्षित है ।

धीरे-धीरे डेरे का कार्य बढ़ने लगा । संगत भी अपने सतगुरु के दर्शन के लिये व्याकुल होने लगी । अतएव हुज़ूर अप्रैल सन् १९११ में अपने समय से दो वर्ष पूर्व रिटायर हो कर डेरे में आ गये । यहाँ आते ही सत्संग, सेवा और जिज्ञासुओं से भेंट में सारा दिन व्यस्त रहने लगे । इन कर्तव्यों के बाद जितना भी समय मिलता आप उसे भजन में व्यतीत करते । हुज़ूर की खुराक शुरू से ही कम थी । डेरे आने के बाद तो और भी कम हो गई । आपके निकट सेवादार यह देख कर चिन्तित होते और हुज़ूर से खुराक बढ़ाने के लिये अर्ज़ करते । वे कहते कि इतने कम आहार पर मनुष्य तन्दुरुस्त कैसे रह सकता है । इस पर हुज़ूर फ़रमाते, "नाम अमृत है, शरीर को दुर्बल नहीं होने देता । जो नाम सारी रचना को लिये खड़ा है, उसके लिये एक शरीर को सँभाले रखना क्या कठिन है ।" एक दिन भाई बन्तासिंह ने पूछा, "क्या हुज़ूर को भूख नहीं लगती ?" हुज़ूर ने जवाब दिया, "अन्तर में नाम का वह आहार मिलता है कि भूख का नाम-निशान भी नहीं रहता ।" उसने फिर पूछा, "हुज़ूर तो सोते भी बहुत कम हैं । क्या नींद नहीं सताती ।" महाराजजी ने फ़रमाया, "खुराक और नींद आदमी जितनी चाहे बढ़ा या घटा ले । यह इसके अपने हाथ में है । ज़िन्दा रहने के लिये बहुत कम खुराक और बहुत कम नींद की ज़रूरत है । भजन से ये दोनों अपने आप कम हो जाती हैं ।"

एक तो हुज़ूर का खाना बहुत कम था और दूसरे, स्वाद की ओर कोई

ध्यान नहीं देते थे। भाई बन्तासिंह कई वर्षों तक हुज़ूर का खाना बनाता रहा था। एक दिन उसने बड़ी खुशी के साथ हुज़ूर के लिये खीर बनाई और भोजन के साथ एक कटोरे में ले गया। हुज़ूर ने खीर खा ली। जब बन्तासिंह खाना खाने लगा तो पता चला कि खीर में चीनी की जगह गलती से नमक डाल दिया है। बहुत दुःखी हुआ कि इतनी बड़ी गलती हो गई और साथ ही विचार आया कि मैं तो यह खीर एक चम्मच भी न खा सका और हुज़ूर ने चुपचाप पूरी प्याली खीर खा ली। दौड़ा-दौड़ा हुज़ूर के पास गया और माफी माँगने लगा। हुज़ूर ने कहा, "भाई, मुझे तो पता नहीं लगा।" ऐसी भूलें और भी कई बार हो जाती थीं। इसी प्रकार एक बार बन्तासिंह ने दूध में चीनी की जगह सूजी डाल दी थी। लेकिन हुज़ूर इन बातों की न तो कभी शिकायत करते और न नाराज़ होते।

हुज़ूर सत्संग से दो-तीन घण्टे पहले भोजन करना पसन्द करते थे, या फिर सत्संग के बाद। कई बार सत्संग के दौरों में हुज़ूर कार से सत्संग के वक्त पहुँचते। थोड़ी देर आराम करके आप सत्संग में तशरीफ़ ले जाते और साथ वाले लोगों को खाना खाने का आदेश दे देते, परन्तु हुज़ूर खुद नहीं खाते। सत्संग समाप्त होते-होते कभी शाम के तीन या चार बज जाते। पहाड़ों के दौरों में तो आम तौर पर ऐसा होता था। सर्दी की वजह से दो बजे दोपहर का सत्संग रखा जाता था। उन दिनों सड़कें अच्छी नहीं होती थीं और कभी-कभी मोटर को खराब सड़क या पानी के नालों की वजह से काफी देर हो जाती। हुज़ूर सत्संग से पाँच-दस मिनिट पहले पहुँचते और मोटर से उतर कर सीधे सत्संग में जा बिराजते। सत्संग में चार बज जाते, फिर लंगर में दृष्टि डालते, सत्संगियों से मिलते, किसी प्रेमी सत्संगी के अनुरोध पर उसके घर पर चरण डालते और इस सब के बाद जब अपने निवास-स्थान पर आते तो शाम हो जाती थी। सुबह एक गिलास दूध पीकर निकलते थे और फिर शाम को छः-सात बजे खाना खाते। यह सब कार्य बड़ी खुशी और प्रेम के साथ करते और यह ज़ाहिर न करते कि आपने खाना नहीं खाया है या आराम की ज़रूरत है।

हुज़ूर कभी-कभी फ़रमाते थे कि मैंने बाबाजी महाराज से तीन-चार वर लिये हैं। पहला तो यह था कि हुज़ूर का लंगर कभी न खुटे। हुज़ूर ने बाबाजी महाराज से विनती की थी कि 'मैंने कभी किसी से कुछ माँगा नहीं है। आपका लंगर बराबर चलता रहे और मुझे संगत से कभी यह न कहना पड़े कि आज लंगर में फलां चीज़ की ज़रूरत है।' इस पर बाबाजी ने

फ़रमाया, 'बच्चू ! तुम्हारे लंगर में कभी कोई कमी नहीं आयेगी और लंगर कभी न खुटेगा ।' और आज तक ऐसा मौका कभी नहीं आया कि लंगर में कोई चीज़ खुट गई हो । हुज़ूर खुद लंगर के सेवादारों से फ़रमाया करते थे कि आप लोग संगत को लंगर में बड़ी खुशी और प्यार के साथ खिलाओ । बाबाजी का भण्डार अखुट है, यहाँ कभी कोई कमी नहीं आयेगी ।

दूसरा वर हुज़ूर ने माँगा था कि अगर मैं कभी गुस्से में आकर किसी से कुछ कह भी बैठूँ तो उसका नुकसान न हो। तीसरा यह कि मेरी सन्तान किसी के आगे हाथ न फैलाये । एक बार हुज़ूर ने बातचीत के दौरान में फ़रमाया कि मैं मालिक का शुक्रगुज़ार हूँ कि मेरी सन्तान कमाऊ और लायक है । खुद कमा कर खाती है और साध-संगत की मुफ़्त सेवा करती है । किसी के सामने हाथ नहीं फैलाती । चौथा वर बाबाजी ने यह दिया था कि जिसको भी हुज़ूर महाराजजी नाम बख्शेंगे उसकी पूरी-पूरी सँभाल होगी ।

इसी प्रसंग में हुज़ूर फ़रमाते थे कि बाबाजी महाराज के वचन थे, "बच्चू, यहाँ तेसा-कंडी* चलती ही रहेगी ।" बाबाजी के ये वचन सत्य साबित हुए हैं । जिस दिन बाबाजी महाराज ने डेरे में कोठरियाँ और नाम-घर बनाने की इजाज़त हुज़ूर को बख्शी, उसी दिन से 'तेसा-कंडी' चल रही है और निर्माण कार्य एक दिन के लिये भी नहीं रुका है । आज बढ़ते-बढ़ते यह स्थान एक विशाल कालोनी बन गया है । बाबाजी के वचन के अनुसार आज भी इमारतों का कार्य निरन्तर चल रहा है ।

उन दिनों डेरे में बहुत थोड़े से मकान थे और बाहर से आने वाली संगत सत्संगघर, नाम-घर, बरामदों, चौबारों आदि में ठहरती थी । कुछ आफ़िसर तथा पढ़े-लिखे व्यक्ति उस वक्त के पाँच-छः छोटे-छोटे कमरों में ठहरते थे। सब ज़मीन पर सोते थे और कमरों में रात को बिस्तर एक-दूसरे से बिलकुल सटा कर लगाने पड़ते थे । सुबह सारी संगत जंगल-पानी के लिये बाहर खोहों और कन्दराओं में जाती थी । नहाने के लिये या तो दरिया का किनारा था या कुएँ । खुद हुज़ूर महाराजजी भी प्रातः नित्य-क्रिया के लिये जंगल में जाते और कुएँ पर स्नान करते । बिजली तब तक नहीं आई थी । स्टेशन से डेरे पैदल ही आना पड़ता था और रास्ता खेतों में से था ।

जब हुज़ूर डेरे में आकर रहने लगे तो आपने दो कार्य हाथ में लिये । डेरे का विकास और सन्त-मत का प्रचार । जैसे-जैसे संगत बढ़ने लगी मकान बनने शुरू हो गये । डेरे के अंदर की सड़कें तैयार होने लगीं और संगत ने

* तेशा और करनी

सेवा करके स्टेशन से वड़ाइच ग्राम से कुछ ग्रागे तक सड़क बना दी। हुज़ूर ने ग्रास-पास के खेत खरीदे ग्रौर डेरे के विकास का क्रम शुरू हो गया। जितने भी मकान, सड़कें, ग्रादि निर्माण उस समय हुए सब हुज़ूर के ग्रपने निरीक्षण ग्रौर मार्गदर्शन में हुए। हुज़ूर स्वयं कई घण्टे बैठ कर ग्रपने सामने निर्माण ग्रादि कार्य देखते तथा संगत ग्रापकी उपस्थिति में प्रेम के साथ सेवा करती रहती।

जिस समय बाबाजी महाराज यहाँ ग्राकर रहने लगे, उस वक़्त वड़ाइच ग्रौर बलसराय के बीच की बहुत थोड़ी-सी ज़मीन में डेरा बना हुग्रा था। हुज़ूर महाराजजी ने धीरे धीरे वड़ाइच ग्रौर बलसराय के ज़मीदारों से डेरे के रुपये से बड़े प्यार के साथ ज़मीनें खरीदीं। जब १९५१-५२ में मुरब्बा-बन्दी हुई, उस वक्त डेरे की सारी ज़मीन इकट्ठी हो गई। ग्राज डेरे के चारों ग्रोर दीवार है ग्रौर ग्रब दीवार के ग्रन्दर करीब २०० एकड़ ज़मीन है। इसके ग्रतिरिक्त डेरे की दीवार के बाहर भी डेरे की काफी ज़मीन है। दीवार के बाहर ब्यास नदी की ग्रोर के एक छोटे से टुकड़े को छोड़ कर बाकी सब तरफ सड़क बन गई है।

एक बार हुज़ूर ने बात-चीत के दौरान में फ़रमाया, "भाई मैंने तो भजन-सुमिरन कुछ किया नहीं, मुझे तो बाबाजी महाराज ने किया कराया बख़्शा है।" भाई बन्तासिंह, जो पास ही खड़ा था बोला, "हुज़ूर! वह छः-छः ग्रौर नौ-नौ घण्टे का भजन, तीन-तीन घण्टे एक ग्रासन पर बैठे रहना, भूख, प्यास ग्रौर नींद की चिन्ता न करना, क्या किसी गिनती में ही नहीं है?" हुज़ूर ने फ़रमाया, "नाम बड़ी कीमती चीज़ है, ग्रगर सीस देकर भी मिल जाये तो भी सस्ती है।"

जब बन्तासिंह हुज़ूर की मेहनत, ग्रभ्यास ग्रौर साधना की बातें सुनाता तो रोमाँच हो जाता था। हुज़ूर सत्संग में ग्रक्सर फ़रमाया करते थे, "भजन करना जवानी की मौत मरना है। यह कायरों ग्रौर कमज़ोरों का काम नहीं। रातों को जागना, कम खाना, हर तरह की तकलीफ़ को सहना, मन को इच्छाग्रों से मोड़ना, यह सब कोई ग्रासान काम नहीं।" फिर फ़रमाते, "यह सब कुछ तभी होगा जब दिल में सतगुरु के प्रेम के सिवाय ग्रौर कोई प्यार बाकी न रहे। जीव एक-एक सांस की चौकीदारी करे ग्रौर देखे कि चित्त को गुरु के ग्रलावा कोई ग्रौर रूप या विचार तो नहीं सुहाता। मन की निज लाग ग्रन्तर में गुरु-चरणों में लगी रहे। बाहर संसार में केवल कर्तव्य मात्र को बरते, तभी कुछ काम बनेगा।" इसी प्रकार एक दिन हुज़ूर ने फ़रमाया,

"सुमिरन से इतना प्यार हो कि पल भर के लिये भी सुमिरन न बिसरे, पपीहे के समान आठों पहर रट लगी रहे। जिसे सुमिरन से प्यार नहीं उसे गुरु के इश्क की अभी हवा तक नहीं लगी। ज़बानी जमा-खर्च से मालिक नहीं मिलता। यह तो करनी का मार्ग है। जो सिर नहीं दे सकता, वह उसे पा भी नहीं सकता। जब तक इस दुनिया का प्यार नहीं छूटता, सतगुरु का प्यार जागे भी कैसे?"

हमारे मन में कई बार यह सवाल पैदा होता कि हुज़ूर तो खुद कुल मालिक, साक्षात सत्पुरुष तथा सचखण्ड व अनामी के स्वामी हैं और सन्त जन्म से ही सन्त होते हैं, फिर हुज़ूर को भजन-सुमिरन करने और इतना कष्ट उठाने की क्या ज़रूरत थी? और अब भी हुज़ूर अपना खाली समय भजन-अभ्यास में बिताते हैं, रात के दो बजे जाग कर भजन में बैठ जाते हैं; गुरु नानक साहिब, स्वामीजी, बाबाजी महाराज आदि सभी सन्त भजन करते रहे हैं। उन्हें इतना भजन करने की क्या ज़रूरत है? लेकिन हम में से किसी को हुज़ूर से यह प्रश्न पूछने का आम तौर पर साहस न होता। हुज़ूर का रोब ही कुछ ऐसा था कि उनसे ऐसे प्रश्न पूछने के लिए मुँह खुलता ही न था।

एक बार हम पाँच-छः सत्संगी हुज़ूर के कमरे में बैठे थे। अभी हुज़ूर तशरीफ़ नहीं लाये थे। रावलपिंडी के एडवोकेट लाला धनराज (जो आजकल देहली में हैं) के पिता लाला मैयादासजी भी मौजूद थे। वे बहुत समय तक हुज़ूर के मातहत नौकरी कर चुके थे। उन पर हमने यह सवाल हुज़ूर से पूछने के लिये ज़ोर दिया। उन्होंने हुज़ूर के तशरीफ़ लाते ही पूछ लिया, "हुज़ूर! आप क्यों भजन करते हैं? हुज़ूर को भजन करने की क्या ज़रूरत है?" पहले तो हुज़ूर ने टालने की कोशिश करते हुए फ़रमाया, "भजन सबको करना पड़ता है। भजन न करें तो और फिर क्या करें?" लेकिन लाला मैयादास कब पीछा छोड़ने वाले थे, बोले, "बाबाजी महाराज ने तो हुज़ूर को नाम देते वक्त ही रूहानियत की दौलत से भरपूर कर दिया था और फ़रमाया था कि यह आपकी अमानत मेरे पास थी, जो आपके हवाले करता हूँ। आखिरी दिनों में तो उन्होंने यह भी फ़रमाया था कि जो उनके बाद काम करेगा वह उनसे चौगुना तप-तेज लेकर आयेगा। फिर हुज़ूर क्यों भजन करने की तकलीफ करते हैं?"

बाबा निज़ामुद्दीन मुलतानवाले भी उस समय मौजूद थे। उन्होंने बाबा जैमलसिंहजी महाराज से नाम लिया था और बहुत पुराने सत्संगी तथा कमाईवाले महात्मा थे। हुज़ूर महाराजजी भी उनकी बहुत इज्ज़त करते थे।

लाला मैयादासजी का सवाल सुन कर बाबा निज़ामुद्दीन बोल उठे, "बाबूजी यह सब भजन-सुमिरन हमारे और आपके लिये किया जाता है। नज़ीर खुद मुजाहिदा* करके सन्त जीवों को सिखाते हैं कि मालिक से प्यार किस तरह करना चाहिये। अगर वे ख़ुद करके हमें न सिखायें तो हम सीख ही नहीं सकते।"

हुज़ूर ने हँस कर फ़रमाया, "करके दिखाने पर भी कोई बिरला ही करता है।" इस पर बाबा निज़ामुद्दीन ने कहा, "इसीलिये उनकी जगह हुज़ूर को करना पड़ता है।"

हुज़ूर हमेशा भजन-सुमिरन पर ज़ोर देते थे। आप स्वयं नियमपूर्वक भजन करते थे और संगत को भी भजन करने की प्रेरणा देते थे। सन् १९२० में जब मुझे कपूरथला रियासत में अच्छे ओहदे पर नौकरी मिली तो मैंने पत्र द्वारा हुज़ूर को इसकी सूचना दी तथा इस कृपा के लिये आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। उत्तर में हुज़ूर महाराजजी ने लिखा :—

अज़ीज़म (मेरे प्रिय) बाबू दरियाईलालजी, राधास्वामी ! हुज़ूर सतगुरु महाराज की दया पहुँचे। प्रेम-पत्र आपका आया। पढ़ कर खुशी हुई कि आप को आराम की जगह मिल गई। अगर मालिक ने आराम बख़्शा है तो आप पर लाज़िम (अनिवार्य) है कि अब भजन में लगो; क्योंकि बग़ैर भजन के जीव का कोई ठिकाना नहीं। आदमी दुनियावी कामों में तो मेहनत भी करता है, कोशिश भी करता है, ख़याल भी करता है। लेकिन जब भजन का वक्त आता है तो मुझको चिट्ठी लिख दी जाती है कि 'मुझसे भजन कराओ'। नहीं ! ऐसा नहीं चाहिए। यह गुरुमुखता नहीं है। चाहिए कि जैसे और कामों में गफ़लत नहीं की जाती ऐसे ही भजन में ग़फ़लत न की जावे। क्या अफ़सोस है कि भजन जो कि फर्ज़े-मुकद्दम (प्रमुख कर्तव्य) था, उसकी बिलकुल परवाह नहीं। जैसे और कामों की खातिर मालिक के चरणों में पुकार करते हो कि (वे) पूर्ण हों, ऐसे भजन की बाबत (सम्बन्ध में) बिलकुल ख़याल नहीं किया जाता। इसका कारण यह है कि दुनिया को तो सच समझा है और परमार्थ को बतौर दिल्लगी समझा है। जैसे और कामों को मेहनत और हठ से करते हो, वैसे ही भजन को भी नियम और प्रेम से करो। आज से आपको वाजिब (उचित व आवश्यक) है कि भजन के वास्ते वक्त मुकर्रर करो। वक्त की पाबन्दी (नियमितता) के बगैर भजन नहीं हो सकता। अगर नियम न पूरा हो तो रोटी भी हराम (अनुचित) समझो।

*स्वयं अभ्यास करके अपने दृष्टांत के द्वारा जीवों को सिखाते हैं।

मन इस तरह ही काबू आता है। यह मन को वश में करने का नुसखा है, जो तुमको लिखा जाता है। ऐ अज़ीज़, इस पर अमल करो और चलते, फिरते, जागते इसका ख़याल रखो। सब संगत की तरफ़ से राधास्वामी।

डेरा बाबा जैमलसिंह सावनसिंह
३-११-१९२०.

हुज़ूर का व्यक्तित्व

हुजूर की शान, उनके तेज और उनकी सुन्दरता का वर्णन तो कोई वर्तमान काल का बाल्मीकि, वेदव्यास अथवा गोस्वामी तुलसीदास ही कर सकता है। लम्बा कद, पतला सुडौल शरीर, कोमल अंग, लालिमा युक्त गौर वर्ण, कृपा, करुणा और मुसकान से पूर्ण प्रसन्न मुख, चौड़ा मस्तक, चेहरे पर रूहानी ज्योति और अधरों पर मृदु मुसकान। यही जी चाहता कि बस देखते ही रहें। नेत्र इतने उज्जवल, आकर्षक और रसपूर्ण मानों अमृत का झरना है, जिसमें से दया और मेहर की धाराएँ निरन्तर उमड़ती दिखाई देती थीं। ऐसा लगता था कि नेत्रों में तो बस अमृत ही अमृत है, जिसने आपकी ओर देखा मानो वह अमर हो गया। सुहावने मुखड़े की शोभा का वर्णन करने में तो स्वयं सरस्वती भी असमर्थ होगी। जब हुज़ूर बात करते तो मुख से जैसें फूल झड़ते।

हुज़ूर का स्वभाव हास्य-प्रिय था। जब कोई परिहास-पूर्ण बात सुनते तो आँख, नाक, मुख, मस्तक, अधर, अंग-अंग से हँसी फूट पड़ती—बच्चों जैसी सरल, निश्छल हँसी जिससे मुख लालिमा में चमक उठता। लम्बी, नुकीली नासिका के नीचे अधर को छूती हुई सफेद मूछें श्वेत निर्मल दाढ़ी से मिलती हुई मुख के रोब व जलाल को दुगुना कर देती थी। सामने आते ही राजाओं-राणाओं के सिर भी अदब से झुक जाते। बाएँ कपोल पर आँख से कुछ नीचे एक काला तिल था जिसकी खूबसूरती के सामने ख्वाजा हाफ़िज़ द्वारा पेश की गई कीमत यानी समरकन्द और बुख़ारा की बादशाहत भी तुच्छ प्रतीत होती थी। दाहिने गाल पर छोटा सा एक काला चिन्ह था जिसकी स्याही ने पास के दाढ़ी के कुछ रोम को भी स्याह रंगत दे रखी थी। मस्तक पर नाक की सीध में ऊपर की ओर पाँच सीधी रेख़ाएँ थीं। लम्बी बाहें घुटनों तक पहुँचती थीं। चरण-कमलों की सुन्दरता का तो क्या बखान करूँ। देखते ही जी करता था कि चूम लें और उनसे लिपट कर उन्हें हृदय में बसा लें। जब कभी उन पवित्र चरणों पर सीस धरने का सौभाग्य प्राप्त होता तो अन्तर का अन्धकार और मन का सब दुःख दूर हो जाता

तथा हृदय एकदम शीतल हो जाता और कई-कई दिनों बल्कि हफ़्तों तक उसके आनन्द का असर आत्मा पर छाया रहता।

सरकार के किस-किस अंग की शोभा का वर्णन करूँ ? जिसके एक रोम के सामने कोटि सूर्य-चन्द्र लज्जित हैं, उसके अंगों की महिमा का वर्णन क्या किया जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदासजी गुरु के चरण के एक नख के विषय में कहते हैं—

"स्री गुरु पद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हिय होती।।
दलन मोह तम हंस प्रकासू। बड़े भाग उर आवहिं जासू।।
उघरहिं बिमल बिलोचन हीके। मिटहिं दोष दुख भवरजनी के।।
जथा सुअंजन आंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।।
कौतुक देखहिं शैल बन, भूतल भूरि निधान।।"

अर्थात्, गुरु के चरणों के एक नख की ज्योति रत्नों और मणियों के समूह के प्रकाश के समान है। उनके चरणों के स्मरण से अन्तर में दिव्य-दृष्टि खुल जाती है। उनका सूर्य रूपी प्रकाश मोह रूपी अंधकार का नाश कर देता है। वह बड़ा भाग्यवान है जिसके अंतर में ये समा जायें। उनके प्रकाश से हृदय के नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी अंधेरी रात के दुःख व कष्ट दूर हो जाते हैं। जिन्होंने सतगुरु के चरणों की धूलि का अंजन अपने नेत्रों में डाला वे साधक सिद्ध और सुजान बन गये और वे अपने अंदर अनेक प्रकार की लीला देखते हैं।

हुज़ूर आम तौर पर सफ़ेद वस्त्र पहना करते थे। श्वेत पगड़ी, श्वेत जाकेट, कुरता और श्वेत पाजामा धारण किया करते थे तथा जब डेरे से बाहर जाना होता तो सफेद कोट पहन लेते। श्वेत पगड़ी और श्वेत वस्त्रों के साथ श्वेत दाढ़ी अत्यन्त भव्य और शोभायमान होती थी। हुज़ूर का व्यक्तित्व तो वैसे ही बहुत आकर्षक और मन को मोहने वाला था; लेकिन श्वेत वस्त्र उन पर सोने में सुहागे का काम करते। ऐसा रूप और जलाल बिरले ही देखने में आता है। दिल चाहता कि घण्टों अपलक दृष्टि से दर्शन करते ही रहें।

सन् १९१४-१५ की बात है। उस समय मैं जालन्धर मे वकालत करता था। मेरे एक मुसलमान मित्र चौधरी रहीम बख्श साहिब एम. ए., एल. एल. बी. भी वहाँ वकालत किया करते थे। आप बाद में ला कालेज लाहौर में प्रोफेसर हो गये थे और फिर प्रिंसिपल के पद से रिटायर हुए। आपके

मुर्शिद (गुरु) एक अच्छे पहुंचे हुए बुज़ुर्ग थे। एक दिन मैं और सरदार भगत-सिंह जी वकील हुज़ूर को पहुचाने स्टेशन गये। गाड़ी लेट थी। हुज़ूर ने प्लेट-फार्म पर टहलना शुरू कर दिया। चौधरी रहीमबख़्श और उनके मुर्शिद भी संयोगवश स्टेशन आये हुए थे। जब उनके मुर्शिद ने हुज़ूर को देखा तो वहीं एकदम खड़े रह गये और टकटकी लगा कर हुज़ूर को देखने लगे। हुज़ूर जिधर जाते, वे भी उधर ही मुंह कर लेते। पाँच-दस मिनिट यही हालत रही। आख़िर उनसे न रहा गया। हुज़ूर के पास आकर कहने लगे, "आपके चेहरे का नूरे-इलाही और रूहानी जलाल ऐसा प्यारा लगता है कि दिल चाहता है कि देखता ही रहूं।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "यह सब आपके हृदय की उदारता और पवित्रता है, वरना मुझमें तो कोई ख़ूबी नहीं।" इस पर वे बोले कि बुज़ुर्गों के मुख से ऐसे नम्रतापूर्ण वचन ही शोभा देते हैं। फिर जब तक ट्रेन न आई हुज़ूर से वार्तालाप करते रहे। दूसरे दिन चौधरी रहीमबख़्श ने बताया कि हज़रत कह रहे थे कि आपके महाराज साहिब फ़क़ीरों के लोक के शाहंशाह हैं।

प्रसिद्ध अमेरिकन सत्संगी डाक्टर जानसन जब जून १९३२ में डेरे में आये तो उन्होंने हुज़ूर के दर्शन के बाद अमेरिकन सत्संगियों को अपने एक पत्र में लिखा, "काश मैं उनका वर्णन कर सकता। पर क्या आपने कभी सूर्यास्त के सुन्दर दृश्य का वर्णन करने की कोशिश की है?——कोई शाहंशाह भी इतना रोबीला नहीं हो सकता, और शान भी ऐसी जिसमें चित्ताकर्षक सौम्यता और मधुर नम्रता भी हो। उनकी आवाज़ धीमी, स्पष्ट और मीठी है, मानों चाँदी की घण्टियाँ गूंज रही हों। उनकी मुसकान कृपा और करुणा से पूर्ण है और यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि उनके हृदय में सबके लिये केवल प्रेम-पूर्ण कृपा की भावना है। उनके पास एक घण्टा बैठने के बाद मैं केवल उनके अपूर्व स्वरूप के सिवाय और कुछ न सोच पाता था। उनकी वाणी का संगीतमय मिठास अभी भी मेरे अन्तर में गूंज रहा है। उनकी मौजूदगी में सम्पूर्ण वातावरण एक अनुपम प्रकाश से जगमगा रहा था।... उन्हें देखना चाहिये, उनका वर्णन असम्भव है। उनको देख कर मैं सब कुछ भूल गया हूं। उनकी सुन्दर छवि मेरे नेत्रों के सामने अभी भी घूम रही है। मैंने इससे पहले कभी ऐसा सुन्दर और आकर्षक चेहरा नहीं देखा। मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि मनुष्य की सन्तान में ऐसा भी कोई हो सकता है!"

हुज़ूर का भाषण आकर्षक, तर्कपूर्ण और प्रभावशाली होता था। आवाज़ मीठी, सुरीली और बुलन्द थी। दो-दो तीन-तीन घण्टे तक सत्संग फ़रमाते रहते और ज़रा भी थकान महसूस न करते। जिस समय सत्संग के लिए आकर बिराजते तो उनके अति सुन्दर और मोहनीय स्वरूप के दर्शन करके मलिन से मलिन हृदय भी गद्‌गद् हो जाते और अपवित्र आंखें भी उन्हें अपलक निहारने लगतीं। सत्संग के बीच में हुज़ूर जब कभी मुसकराते या हँसते तो ऐसा प्रतीत होता कि मानों अमृत की बौछार हो गई है और पूरा वातावरण रूहानी आनन्द और प्रसन्नता से परिपूर्ण हो जाता। आपका परम पावन सत्संग जन्म-जन्म के कुसंस्कारों को दूर कर देता था। हुज़ूर के सत्संग में आकर महा मलिन और विकारी जीवों में भी ऐसा परिवर्तन आता मानों वे जन्म से ही नेक थे। हुज़ूर के प्रेम-पूर्ण वचन श्रोताओं के मन को बेध लेते थे। सत्संग में अक्सर संगत के नेत्रों से जलधारा बहती दिखाई देती थी। घण्टों दर्शन करके भी संगत दर्शन की प्यासी ही रहती और नैन यही चाहते कि यह दिव्य सुहावना स्वरूप एक क्षण के लिए भी दूर न हो।

हुज़ूर महाराज जी के सत्संगों के विषय में महाराज चरनसिंहजी फ़रमाते हैं :—

"हुज़ूर महाराजजी के सत्संग आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। चालीस साल तक हज़ारों लोगों ने उन्हें संसार की सब वस्तुओं से बढ़ कर माना है। हुज़ूर के मुख से निकाला हरएक लफ़्ज़, प्रत्येक शब्द, उनके शिष्यों का जीवन और प्राण ही बन गया। उनके सत्संग आनन्द-विभोर करते थे, प्रेरणा देते थे, लोगों के मन और अन्तर को मोह लेते थे, उनके सब प्रश्नों का उत्तर देते थे, उनकी हर ज़रूरत को पूरा करते थे। उनका हरएक शब्द एक अचूक मरहम था जो संगत के दुखी व तृप्त हृदयों को शीतला प्रदान करता था। हरएक शब्द अमृत की बूँद था जो उनकी प्यासी आत्माओं को तृप्त करता था। बहुत बड़ी संख्या में संगत तल्लीनता के साथ उन्हें सुनती थी। स्त्री, पुरुष और बच्चे अपने आपको भूल कर पूर्ण शान्ति के साथ बैठे रहते, उनके चेहरे रूहानी ज्योति, प्रेम और शान्ति से चमकते थे। वह एक कभी न भुलाया जा सकने वाला नज़ारा था। महाराज जी की गम्भीर और मधुर वाणी सुनने वालों को अपने माधुर्य और मिठास से मोह लेती थी। प्रत्येक व्यक्ति आत्मिक चेतना, आन्तरिक स्फूर्ति और ताज़गी प्राप्त

करता था।"[1]

हुज़ूर का स्वभाव और उच्च चरित्र

पाँचवीं पातशाही गुरु अर्जुनदेवजी का वचन है—

हरि का सेवकु सो हरि जेहा ॥
भेदु न जाणहु मानस देहा ॥

अर्थात् हरि का सेवक हरि का ही रूप होता है, मनुष्य देह धारण की हुई है इसलिए उसमें और परमात्मा में भेद न करो। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, परमात्मा और उनके प्रिय सन्तों के बीच में केवल देह का आवरण दिखाई देता है, परन्तु अन्तर में उनमें कोई भेद नहीं। एक और महात्मा का कथन है, "हरि हरिजन दोई एक हहि, बिभ बिचार कछु नाहि।" परमात्मा और उसके प्यारे सन्त जन एक ही होते हैं, उनमें कोई भिन्नता नहीं है। अतएव हुज़ूर महाराजजी के स्वभाव और ऊँचे चरित्र का वर्णन करना मानों उस अनन्त, अपार, अलख व अगम के गुणों का उल्लेख करना है, जहाँ मन और बुद्धि की पहुँच नहीं।

हुज़ूर दया के सिन्धु, प्रेम के सागर, करुणा व कृपा के पुंज और मेहर के भण्डार थे। यदि आपको परोपकार और उदारता की खान तथा रहम व बख्शिश का खज़ाना कहा जाए तो गलत न होगा। जब कोई पापी या गुनहगार आपके सामने आता तो रहमत का सागर जोश में आकर उसके पापों के मैल को धो देता; क्षमा का वरद हस्त उसके सिर पर रख देते और फ़रमाते कि जीव भूलनहार है। जितना ज्यादा कोई पापी होता, उतनी ही प्रबल तरंग आपकी दया के सागर में उठती। जीव के सामने आते ही उसके भले-बुरे कर्म, पाप व पुण्य आपको ऐसे स्पष्ट दिखाई देते जैसे शीशे की बोतल में रखी वस्तु दिखाई देती है। परन्तु कोई कितना ही पापी या गुनहगार क्यों न हो, आप उसका कोई अवगुण कभी प्रकट न करते और न ही उससे कोई ताने का वचन या दिल दुखाने वाली बात कहते। मैंने हुज़ूर के मुख से कभी कोई आलोचना या ताने का वचन नहीं सुना। आप फ़रमाया करते थे, "सन्त जीवों के पाप नहीं देखते। अगर वे हमारे कर्मों की ओर देखें तो कोई भी जीव उनके पास ठहरने के लायक नहीं है।" हुज़ूर को कोई बुरा दिखता ही नहीं था। उनके हृदय में सबके प्रति दया और मेहर का भाव

---

१. हुज़ूर महाराज सावनसिंह के सत्संगों के अंग्रेजी संग्रह की भूमिका में से।

था। दूसरों के दोषों को ज़ाहिर न करना उनका स्वभाव था। आप अक्सर फ़रमाते, "सब इन्सान एक ही परमपिता के पुत्र और हमारे भाई है, बुरा किसको कहें!" हमेशा हिदायत देते, "किसी में बुराई मत देखो। सिर्फ उनके गुणों की ओर ध्यान दो। कोई इन्सान ऐसा नहीं जिसमें कोई न कोई गुण न हो। अगर किसी में हमें कोई गुण नज़र नहीं आता तो यह हमारी आँखों और हमारे हृदय का कसूर है। वरना मालिक तो हर घट में आप मौजूद है।"

बालक, बूढ़े, जवान, अमीर, गरीब, तन्दुरुस्त, बीमार, खूबसूरत, बदसूरत, सच्चरित्र व चरित्रहीन, सभी को हुज़ूर एक जैसी प्रेम भरी दृष्टि से देखते। दुधमुँहे शिशु से लेकर वयोवृद्ध बुज़ुर्ग तक प्रत्येक व्यक्ति यही समझता कि हुज़ूर उसी के हैं। छोटे बालक आपके चरणों से लिपट कर उतने ही प्रसन्न होते जितने कि गम्भीर बुज़ुर्ग आपके मुख से किसी जटिल समस्या की व्याख्या सुन कर। महाराजजी कोमल हृदय इतने थे कि किसी का दुःख नहीं देख सकते थे। किसी विपदाग्रस्त दुखिया के आते ही उसके सारे मन्दे कर्म आप उठा लेते, लेकिन कभी इस बात को ज़ाहिर न होने देते। अगर कोई ज़िक्र भी करता तो मना कर देते।

एक आपबीती घटना मुझे याद आ गई। जून का महीना था, १९११ या १९१२ में कोई छुट्टी का दिन था। मैं हुज़ूर के दर्शन के लिए डेरे आया और दोपहर के डेढ़-दो बजे के करीब यहाँ पहुँचा। उस समय सब लोग भोजन आदि करके अपनी कोठरियों के अन्दर बन्द हो चुके थे। जूते, कोट और पगड़ी उतार कर मैं बारादरी में एक छोटी-सी चटाई बिछा कर लेट गया और सिर के नीचे एक पक्की ईंट रख ली। यह बारादरी महाराजजी के निवास स्थान में लगी हुई थी। उसके तीन ओर बड़े-बड़े दरवाज़े और नीचे पक्की ईंटों का फर्श था। उस समय दोनों सत्संग-घर, बारादरी और चौबारों को छोड़ कर सत्संगियों के ठहरने के लिए और कोई स्थान नही बना था। हुज़ूर दोपहर के समय ऊपर की बारादरी से लगे पूर्व की ओर के कमरे में आराम के लिए तशरीफ़ ले जाते थे। हुज़ूर अठारह वर्ष लगातार पहाड़ी इलाकों में रह कर आये थे और यहाँ की सख्त गरमी में डेरे में रहने का आपका पहला ही वर्ष था।

मैं बारादरी में लेट तो गया, परन्तु भला चैन कहाँ और नींद कैसी? नीचे से धरती तप रही थी, ऊपर से आकाश आग बरसा रहा था। बारादरी के

दरवाज़ों में से लू के झोंके सायं-सायं करते तेज़ी से आ रहे थे और बारादरी बिलकुल भट्ठी बनी हुई थी। मेरा शरीर भुना जा रहा था। आँखें जल रही थीं, होंठ प्यास से सूख रहे थे, मैं आँखें बन्द किये पड़ा था कि क्या देखता हूँ कि हुज़ूर चिलचिलाती धूप में ऊपर चौबारे से उतर कर मेरे सिरहाने की ओर आकर खड़े हैं। मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा। हुज़ूर ने पूछा, "तुम यहाँ लू में क्यों पड़े हो? जल्दी उठो।" सतगुरु के अचानक दर्शन पाने की खुशी के साथ ही मैं हैरान भी था कि मेरे यहाँ लेटे रहने की सूचना हुज़ूर को ऊपर अपने बन्द कमरे में कैसे लगी।

मैं अपनी भावनाओं में डूबा हुआ था कि हुज़ूर ने भाई बन्तासिंह को आवाज़ देकर बुलाया और मेरे लिये चारपाई मंगवाई। हुज़ूर के निवास-स्थान के पीछे एक कच्ची कोठरी थी जिसका दरवाज़ा बारादरी में खुलता था। महाराजजी ने उसमें पानी छिड़कवा कर चारपाई बिछवाई। भाई बन्तासिंह ने उस पर एक दरी व खेस बिछाया और तकिया लाकर रखा। फिर हुज़ूर ने बन्तासिंह को हुक्म दिया कि ऊपर हुज़ूर के चौबारे में से सुराही का ठण्डा पानी लाकर मुझे पिलाये और एक छोटी सुराही में पानी भर कर मेरे पास रख दे। हुज़ूर के मोहक दर्शन और प्रेमपूर्ण वचनों से मेरा तन और मन शीतल हो गया। आँखों से कृतज्ञता के अश्रु बहे जा रहे थे। अपने जानीजान प्यारे सतगुरु को भेंट करने के लिये मेरे पास और क्या था। हृदय से हूक उठ रही थी कि हाय, उस फूल से कोमल शरीर को मुझ पापी के लिए इस सख्त गरमी में लू से तप्त दोपहर के समय इतना कष्ट उठाना पड़ा। आज भी जब सरकार की दया मेहर की, प्रेम और करुणा की बातें याद आती हैं तो दिल भर आता है, कण्ठ रुँध जाता है और आँसू सब्र का बांध तोड़ कर उमड़ आते हैं।

महाराजजी की सहन-शक्ति

महाराजजी की सहन-शक्ति अपार थी। गरमी का मौसम, दोपहर का समय, जेठ का महीना, कड़कती धूप, पर हुज़ूर थे कि छाते के बिना ही खेतों में खड़े होकर गेहूँ की कटाई की सेवा अपने सामने करवाते। हम लोग खड़े-खड़े थक जाते, कोई छाया में बैठने की जगह ढूँढते, परन्तु हुज़ूर सैनिक कमाण्डर की तरह डटे रहते। मन तो गुरु से भी चालाकी करने से बाज़ नहीं आता, थक तो जाता मैं खुद, लेकिन हुज़ूर से जाकर कहता कि हुज़ूर सुबह से धूप में खड़े हैं, अब ज़रा चलें और आराम फ़रमा लें। हुज़ूर मुसकरा

कर फ़रमाते, "अभी चलते हैं, बस अब थोड़ा सा काम बाकी रह गया है।" हुज़ूर की उपस्थिति का यह असर होता कि दो दिन का कार्य आधे दिन में पूरा हो जाता। न किसी को गरमी महसूस होती न सरदी। सभी सेवा करने वाले गुरु के प्रेमी, उनकी नज़र गुरु के स्वरूप पर लगी होती और हाथ मशीन के समान तेज़ी से काम करते रहते। एक बार की बात है, सरकार इसी तरह धूप में खड़े थे। मैंने छाता लगा कर आपके ऊपर छाया कर दी। परन्तु आपने बड़े मिठास के साथ कहा, "नहीं बेटा! मुझे इसकी कोई ज़रूरत नहीं। संगत भी तो धूप में सेवा कर रही है।"

इसी प्रसंग में एक बार की बात याद आ गई। हुज़ूर उन दिनों ऐबटाबाद में सरकारी नौकरी पर थे। एक बार गरमी के दिनों में आप वहां से डेरे के लिये चले। जब ब्यास स्टेशन पर उतरे तो दोपहर का समय था, तेज़ धूप थी और लू चल रही थी। उन दिनों स्टेशन से डेरा पैदल ही आना पड़ता था। हुज़ूर दोपहर की सख़्त धूप में डेरे की ओर चल पड़े। रास्ते में एक जगह छाया में कुछ देर आराम करने का ख़याल आया कि धूप कम होने पर आगे चलें। लेकिन दूसरे ही क्षण सोचा कि सोहनी ने एक इन्सान के प्रेम में अपनी जान की भी परवाह नहीं की। यह जानते हुए भी कि घड़ा कच्चा है और पानी में डालते ही गल जायेगा, उसके सहारे पानी में कूद पड़ी लेकिन इश्क़ के नाम को लाज न आने दी। हुज़ूर फ़रमाते थे कि यह याद करके आपके दिल में विचार आया कि मैं बाबाजी के दर्शन के लिए आया हूं। सोहनी ने तो एक मनुष्य के लिए प्राण दे दिए और मैं अपने सतगुरु दीनदयाल के दर्शन में ज़रा सी धूप और लू का विचार कर रहा हूं। यह सोचकर आप उसी समय चल पड़े।

उधर डेरे का हाल यह था कि बाबाजी महाराज ने उस समय, भर दोपहर को, अपनी कोठरी से निकल कर धूप में टहलना शुरू कर दिया। बाबाजी महाराज गरमी ज़्यादा महसूस किया करते थे और धूप में नहीं निकलते थे। बीबी रुक्को ने पूछा, 'महाराज! आपने तो सर्दियों में भी धूप बरदाश्त नहीं की। आज दोपहर की धूप में बाहर क्यों फिर रहे हैं?" बाबाजी ने कोई जवाब नहीं दिया और उसी प्रकार धूप में टहलते रहे। जब हुज़ूर डेरे से करीब एक फ़र्लांग की दूरी पर थे तब बाबाजी अपनी कोठरी में चले आए।

जब हुज़ूर डेरे में पहुंचे तो बीबी रुक्को ने हंसकर कहा, "भाईजी! मुझे

तो पहले ही पता लग गया था कि आप आ रहे हो।" हुज़ूर ने जवाब दिया, "हाँ, बीबीजी आप अन्तर्यामी महात्मा हैं, आपको सब कुछ पता है।" बीबी रुक्को बोलीं, "नहीं! बाबाजी एक घण्टे से धूप में टहल रहे थे, अभी-अभी अन्दर गये हैं। मुझे ख़याल आया कि आज किसी प्रेमी के लिये वह धूप अपने शरीर पर सही जा रही है। जब आपको आते देखा तो समझ गई।" हुज़ूर ने कहा, "इसीलिये जेठ की दोपहर की धूप भी मुझे ज़रा महसूस न हुई।"

हुज़ूर न सर्दी में ठण्ड की चिन्ता करते, न गर्मियों में गर्मी की। वर्षा हो या तूफान, जो कार्य करना होता उसे अवश्य करते। कोई ताक़त उसे करने से आपको रोक न सकती। बदबू या खुशबू की भी सरकार कभी परवाह न करते। एक बार हुज़ूर लंगर में प्रसाद पर दृष्टि डालने और रोटी पकाने वाली बीबियों को दर्शन देने गये। मैं सेवा में आपके साथ गया। जहाँ बीबियाँ बड़े-बड़े तवों पर रोटियाँ पका रही थीं वहाँ कुछ भट्टियों में से बहुत काला धुआँ निकल रहा था। संगत को दर्शन देने के लिये हुज़ूर को उसी धुएं के गुबार में खड़ा होना पड़ा। मेरा तो दम घुटने लगा और आँखों में पानी आ गया। अर्ज़ की, "हुज़ूर! यहाँ धुआँ बहुत है, ज़रा एक तरफ़ हो जाये।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "मुझे धुआँ कुछ नहीं कहता।" और वहीं खड़े रहे।

शिमला और डलहौज़ी की पहाड़ियों पर हुज़ूर के साथ चलते-चलते हम लोग तो थक कर चूर हो जाते, परन्तु सरकार इतनी तेज़ी व फुर्ती से चढ़ाई चढ़ते चले जाते कि युवा सैनिकों को भी परेड और पी. टी. के दिन याद आ जाते। मोटर की यात्रा में तो आपकी सहनशक्ति की कोई सीमा ही न थी। उदाहरणार्थ केवल एक बार का वृत्तान्त यहाँ देता हूं जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि हुज़ूर कितने कठिन परिश्रम के अभ्यस्त थे। एक बार जब आप एबटाबाद तशरीफ़ ले गये तब वहाँ से लौटते समय की बात है। हुज़ूर सुबह उठ कर स्नानादि से निवृत्त हुए और पहले एबटाबाद में सत्संग किया। सत्संग करते ही मोटर से रवाना होकर रावलपिंडी पहुंचे। यहाँ संगत के अनुरोध पर दो घण्टा सत्संग प्रदान किया। सत्संग के बाद वहाँ से रवाना होकर लायलपुर पहुंचे। लायलपुर जाने से पहले शाहदरा (लाहौर से चार मील पश्चिम में) जाना पड़ता था और फिर वहाँ से बार के रास्ते लायलपुर जाते थे। यह यात्रा तीन सौ मील से कुछ ऊपर ही होगी। लायलपुर पहुंच कर सत्संग किया। वहां से चल कर रात को दो-तीन बजे के करीब कपूरथला

पहुँचे जहाँ सवेरे पाँच बजे से किसी प्रेमी के घर में विवाहोत्सव था। हुजूर समय से पहले करीब साढ़े चार बजे वहाँ मौजूद थे। आनन्द कारज के बाद सुबह सात-आठ बजे चल कर आप जालन्धर आये। यहाँ आकर हुजूर ने उस मोटर ड्राइवर को, जिसे सरदार सेवासिंह ने हुजूर को रावलपिंडी से लाने के लिये (लायलपुर से) भेजा था, बिदा किया और उसे एक पगड़ी व ग्यारह रुपये इनाम में दिये। हुजूर नौकरों को इनाम देने में बहुत उदार थे। वह ड्राइवर कौम का पठान था, जलालाबाद (अफ़गानिस्तान) का रहने वाला था। बिदा के वक्त सलाम करके बोला, "बाबा! हम लोग को फिर भी याद करना। हम तीस साल का जवान आदमी नींद और थकान से बेहाल हो गया, मगर तुम तो न सोया, न खाया-पीया। चेहरे पर नूरे-इलाही बरसता है। तुम आदमी नहीं, खुदा का दीदार है।" उस समय हुजूर की आयु ८० वर्ष से ऊपर थी।

एक और वृत्तान्त देकर इस विषय को समाप्त करता हूँ। एक दिन हुजूर महाराजजी की तबियत ठीक नहीं थी। अत्यधिक परिश्रम की वजह से जुकाम और बुखार था। मेरा खयाल था कि आज सरकार सत्संग में तशरीफ़ नहीं ले जायेंगे। परन्तु इधर घड़ी ने शाम के चार बजाये और उधर आप सत्संग में जाने के लिये तैयार हो गये। हम लोगों ने हाथ जोड़ कर विनती की, "हुजूर, आज तबियत कुछ ठीक नहीं हैं, सत्संग में न पधारें।" हुजूर ने जवाब दिया, "नहीं, मेरी तबियत बिलकुल ठीक है, सत्संग में ज़रूर जाऊँगा।" परन्तु मैंने, बीबी रली तथा कुछ और सेवादारों ने दो-तीन बार हुजूर से आराम फ़रमाने की प्रार्थना की। इस पर हुजूर ने फ़रमाया, "इस शरीर से जितना काम ले लिया जाय, अच्छा है; एक दिन इसे आग के ही हवाले करना है। बाबाजी महाराज ने जो काम सौंपा है उसमें कोताही* नहीं करनी चाहिये।" जब हुजूर सत्संग में बिराजमान हुए तो मुख पर ऐसा तेज और आवाज़ में ऐसी गरज थी कि किसी को शक भी न हुआ कि हुजूर को तेज बुखार है। पूरे ढाई घण्टे सत्संग में अमृत-वर्षा करने के बाद हुजूर वापस अपनी कोठी में पधारे। मैं अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर ही रहा था कि एक व्यक्ति भागता हुआ आया और कहने लगा कि वह अभी आया है और हुजूर महाराजजी के दर्शन करना चाहता है। मैंने कहा, "भाई, आज हुजूर की तबियत ठीक नहीं है। अभी ढाई घंटा सत्संग में बैठ कर आये है; अब अँधेरा हो गया है, कल सुबह दर्शन कर लेना।" परन्तु वह आग्रह और हठ करता ही रहा कि उसे अभी दर्शन करके वापस

* ग़फ़लत या उपेक्षा।

जाना है, क्योंकि कल सुबह उसे मेरठ छावनी में अपने काम पर हाज़िर होना है। जब वह बहुत ज़िद करने लगा तो मुझे क्रोध आ गया और मैंने सख़्ती के साथ कहा, "बाबा, रहम करो सरकार पर, चन्द साल और जी लेने दो उन्हें।" और जबरदस्ती दरवाज़ा बन्द करके अन्दर से कुंडी लगा दी। उस समय उस व्यक्ति के चेहरे पर ऐसी उदासी और मायूसी छा गई कि मेरे पत्थर दिल को भी चोट सी महसूस हुई। परन्तु मैंने द्वार न खोला।

जब मैं ऊपर पहुँचा तो महाराजजी ने फ़रमाया, "एक शख़्स बहुत दूर से आया है, मुझ से मिलना चाहता है। जाओ दरवाज़ा खोल आओ।" मैंने अर्ज़ की, "हुज़ूर, एक शख़्स आया तो था, लेकिन मैंने उसे ऊपर आने से रोक दिया क्योंकि हुज़ूर बहुत थके हुए थे।" यह सुन कर हुज़ूर ने हुक्म दिया कि जाओ और उसे ऊपर ले आओ। मैंने नीचे आकर देखा तो वह व्यक्ति वहाँ न था। बाहर आकर देखा पर वह न मिला। मैंने रूढ़सिंह* की दुकान, बड़े सत्संग-घर के अन्दर व आस-पास, आफिस लाइब्रेरी आदि सब तरफ उसकी तलाश की, लेकिन वह न मिला। आख़िर निराश होकर वापस आ गया। जब ऊपर जाने लगा तो क्या देखता हूँ कि वह शख़्स हुज़ूर के बरामदे में एक खम्भे के सहारे खड़ा है। मैंने हाथ जोड़ कर उससे माफी मांगी और कहा कि चलो भाई, तुम्हें हुज़ूर याद कर रहे हैं। मैं तो सारे डेरे में तुम्हें तलाश कर आया। यह सुनते ही खुशी से उसकी आँखों में जल भर आया। साथ ही मेरे भी आँसू निकल पड़े। हम दोनों ऊपर आये।

हुज़ूर आराम कुर्सी पर बैठे उसका इन्तिज़ार कर रहे थे। मैंने सोचा कि हुज़ूर उसे दो-चार मिनिट देकर आराम के लिये चले जायेंगे। लेकिन जैसा कि हुज़ूर कभी-कभी फ़रमाया करते थे, 'सन्तों को आराम कहाँ? सन्तों की जागीर ही बेआरामी है।' उस व्यक्ति ने बड़ी दीनता के साथ नामदान के लिये विनती की और महाराजजी उसे उसी वक्त नाम देने को तैयार हो गये। मैंने सुझाव देने की कोशिश की कि बहुत देर हो गई है, हुज़ूर दूसरे दिन सुबह नाम बख़्श सकते हैं, परन्तु हुज़ूर ने हुक्म दिया कि सीढ़ियों का दरवाज़ा बन्द कर दो और किसी को ऊपर न आने दो। हुज़ूर ने उसे वहीं अपने पास बिठा कर नाम दे दिया और इतनी ज़्यादा तवज्जह दी कि मैं सोचने लगा कि बात क्या है? काफ़ी रात गये नाम देकर उठे और वह

---

* भाई रूढ़सिंह हुज़ूर के सर्विस के दिनों में आपका नौकर था और बहुत समय तक हुज़ूर की सेवा में रहा। रिटायर होकर डेरे में आने के बाद हुज़ूर ने भाई रूढ़सिंह को एक मिठाई, नमकीन आदि की दुकान डेरे में लगवा दी थी। वह अपने अन्त-समय तक डेरे में ही रहा।

शख्स मुझे अपना नाम व पता लिखा कर उसी वक्त स्टेशन चला गया। हुजूर नाम-दान के बाद स्नान अवश्य करते थे, चाहे गरमी हो या सरदी! उधर हुजूर स्नान के लिए गुसलखाने में गए, इधर मैं सीधा अपने कमरे मे आकर बिस्तर पर लेट गया। थकान और नींद की वजह से खाना खाने का भी होश न रहा।

कुछ दिनों के बाद हुजूर ने मुझे एक चिट्ठी पढ़ने को दी। उसमें समाचार था कि वह व्यक्ति नाम लेकर जाने के दस दिन बाद चोला छोड़ गया। उसकी अन्त समय में जो हुजूर ने सँभाल की उसका पूरा विवरण लिखा था। उसे केवल दो दिन बुखार आया। मृत्यु से कुछ समय पहले वह उठ कर बैठ गया और अपनी पत्नी तथा भाई से बोला, "इस समय मेरा अन्तर का पट खुल गया है। सतगुरु महाराज मेरे पास बैठे हुए हैं और कह रहे हैं कि 'तुम तैयार हो जाओ। हम तुम्हें लेने आये हैं'।" फिर उसने कहा, "अगर तुम मेरे सच्चे हितैषी हो तो मेरे बाद रोना मत और न किसी को रोने देना।" पहले तो घरवालों को उसकी बात का विश्वास न आया। कहने लगे कि लो, इसे एक दिन बुखार आया कि कहता है कि मेरे मरने की सूचना आ गई है। लेकिन जब उसने विश्वास दिलाया तो उसकी पत्नी ने पूछा, "तुम्हारे बाद मेरा क्या होगा?" उसने जवाब दिया, "तुम कोई फिकर न करना। सतगुरु महाराजजी की शरण में ब्यास चली जाना।" फिर अपने भाई से बोला, "अगर तुम जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाना चाहते हो तो जितनी जल्दी हो सके सीधे ब्यास चले जाना और नाम ले लेना।"

चिट्ठी पढ़ते हुए मेरी आँखें भर आईं। अब पता चला कि सतगुरु दीनदयाल ने उस दिन अस्वस्थ होते हुए भी उसे उसी वक्त नाम क्यों बख्शा था।

गर्मी, सर्दी, भूख, प्यास, बीमारी व तन्दुरुस्ती सब हुजूर के लिये समान थीं। कितने ही बीमार क्यों न हों अपने कर्तव्य में कभी ढील नहीं करते थे। हानि-लाभ की चिन्ता न थी, रुपये-पैसे के नुकसान की कभी परवाह न करते थे। हर हालत में राज़ी ब रज़ा रहते, मालिक की मौज में खुश रहते। खुशी और गम, हर्ष और शोक में अडोल रहते। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, हुजूर के बिचले साहबज़ादे सरदार बसन्तसिंहजी युवावस्था में ही चोला छोड़ गये थे, परन्तु इस दर्दनाक घटना से हुजूर का चित्त ज़रा भी न डोला। जब बसन्तसिंहजी बीमार थे तो हुजूर उनको लेकर डेरे आ रहे थे। साथ में बन्तासिंह था। हुजूर ने देखा कि हालत खराब हो रही है और अंत

समय निकट है। आपने सोचा कि अगर ऐसी हालत में डेरे में पहुँचेंगे तो बीबी रुक्को रोने-पीटने लगेगी और ज़िद करेगी कि इसे रख लो। हुज़ूर तो जो भी बाबाजी की मौज थी उसमें राज़ी थे। अतएव हुज़ूर रास्ते में एक सूखे नाले के पास छायादार पेड़ के नीचे रुक गये। जब अन्त समय आया तो बसन्तसिंहजी ने कहा कि बाबाजी महाराज आ गये हैं। इस पर हुज़ूर ने कहा, "जब बाबाजी महाराज आ गये हैं तो मैं तुझे खुशी के साथ भेजता हूँ।" बत्तीस वर्ष का जवान पढ़ा-लिखा पुत्र, ऊँची सरकारी नौकरी में लगा हुआ, पच्चीस-छब्बीस वर्ष की उसकी पत्नी और एक छोटा बच्चा हो तो किसका दिल नहीं टूटता। लेकिन हुज़ूर बिलकुल शान्त थे। आप कभी-कभी बताते थे कि "उस वक्त मैंने अपने आप की पड़ताल की तो देखा कि दिल में न रंज था, न खुशी। चित्त कोरे कागज़ के समान था।"

नेक कमाई

शुद्ध अन्न और नेक कमाई का हुज़ूर बहुत ख़याल रखते थे। आप अक्सर फ़रमाया करते थे कि मन की पवित्रता के लिये शुद्ध अन्न ग्रहण करना आवश्यक है, 'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन'। हुज़ूर हमेशा अपनी मेहनत व अपने हक़ की कमाई पर गुज़ारा करते। अपनी जायज़ आमदनी को छोड़ एक दाना भी किसी अन्य की कमाई का मुँह में न डालते और न ही कभी किसी से एक पैसे की चीज़ तक अपने निजी उपयोग के लिये स्वीकार करते। एक बार हुज़ूर को सोडा बाईकार्ब मँगवाना था। मुझे चार आने देकर फ़रमाया कि अगले इतवार को आते हुए इसका सोडा बाईकार्ब लेते आना। मैंने अर्ज़ की कि हुज़ूर, पैसे आकर ले लूँगा। परन्तु आपने फ़रमाया, "नहीं, अभी ले जाओ।" आप कभी किसी से कोई भेंट न लेते और न ही किसी के घर का कुछ खाते-पीते। जब कभी सत्संग या किसी और काम के लिये बाहर जाते तो खाना बनवा कर टिफ़िन में साथ ले जाते। अगर कहीं दो-चार दिन रहना होता तो खाना बनाने वाले नौकर को साथ ले जाते और वहाँ हमेशा अपना खाना उससे तैयार करवाते। आपके साथ रहने वाले भाई शादी आदि सेवादार भी किसी की कोई चीज़ न खाते। भाई गाँधी राम तो किसी का लाया हुआ प्रसाद तक नहीं लेते थे।

पूरी कीमत अदा किये बिना महाराजजी किसी से कोई वस्तु स्वीकार न करते थे। पहाड़ों की ओर से कुछ सत्संगी बड़े प्रेम से जब शहद वगैरह ले आते अथवा काश्मीर से सेब या क्वेटा और चमन से बादाम व अंगूर

आदि ले आते तो हुज़ूर लाने वाले को वस्तु के मूल्य से दुगने पैसे देते तब कहीं उसे स्वीकार करते, और कहते, "मुझे आपके प्यार की ज़रूरत व कद्र है, इन चीज़ों की ज़रूरत नहीं।" बीबी रली उन सत्संगियों से हमेशा कहती रहती कि हुज़ूर कुछ खाते तो हैं नहीं और व्यर्थ उनके दुगने पैसे खर्च होते हैं, इसलिये आगे से जब तक आपको किसी चीज़ के लिये लिखा न जाय कुछ न लाया करें। महाराजजी हमेशा आदेश दिया करते थे कि हमें ईमानदारी व हक़-हलाल की कमाई पर गुज़ारा करना चाहिये और फ़रमाते थे कि जो साधू किसी का एक दाना भी लेता है, वह देनेवाले के कर्मों का बोझ उठाता है और उसका बदला दिये बगैर नहीं छूटता। भेषधारी साधुओं, महन्तों, भेंट-पूजा करने वाले ग्रंथियों, मन्दिरों के पुजारियों तथा अन्य ऐसे लोगों को, जिनका गुज़ारा औरों की कमाई पर होता, हुज़ूर नाम नहीं देते थे।

एक बार एक मुसलमान फ़कीर साईं शरफ़ुद्दीन ने हुज़ूर की सेवा में बड़ी दीनता के साथ नामदान के लिये प्रार्थना की। उसने गले में टाट की कफ़नी पहनी हुई थी। हुज़ूर ने अस्वीकार कर दिया। उसके बहुत प्रार्थना करने पर आपने फ़रमाया, "नाम की कमाई के लिये हक़ हलाल की कमाई ज़रूरी है। जो आदमी अपनी रोटी आप नहीं कमाता उसे नाम देने से क्या फायदा?" दूसरे दिन साईं ने कफ़नी उतार फेंकी, साधारण कपड़े पहन लिये और कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी काटने का काम शुरू कर दिया। इस पर हुज़ूर ने उसे नाम बख्श कर अपने शिष्यों में शामिल कर लिया। नाम लेकर वह कहने लगा कि सच्चा कलमा मुझे अब मिला है और आज मैं असली मुसलमान हुआ हूँ। उसने मेहनत और लगन के साथ नाम की कमाई शुरू कर दी। कुल्हाड़ी लेकर दिन में बाज़ार में लकड़ी काटने की मज़दूरी करता और बाकी समय भजन में लीन रहता। बड़ा निडर आदमी था। अपनी बिरादरी में सबके सामने खुल्लमखुल्ला अपने सतगुरु की तारीफ करता और कहता, "जो किताबों से मुझे चालीस साल में न मिला, वह इस मुर्शिद ने चालीस दिन में दे दिया है।" जब मैं जालन्धर में वकालत करता था, वह कभी-कभी मुझे मिल जाता था। अब तो बहुत समय से उसे नहीं देखा है; शायद जीवन के बन्धन से छूट गया हो।

हुज़ूर सत्संग में अक्सर फ़रमाया करते थे कि सच्चा सतगुरु शिष्य की कभी एक पाई भी नहीं लेता। जो अपने शिष्यों के रुपये-पैसे से अपना या अपने परिवार का निर्वाह करता है वह गुरु नहीं, भिखारी है। गुरु दाता होता है। वह हक़-हलाल की कमाई से अपना गुज़ारा तथा अपने बाल-बच्चों

का पालन करता है और जो कुछ बचता है उससे साध-संगत की सेवा करता है। हुज़ूर गुरु नानक साहिब के ये वचन कई बार सुनाया करते थे :—

"गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ ॥ ताकै मूलि न लगीऐ पाइ ॥
घालि खाइ किछु हथहु देइ ॥ नानक राहु पछाणहि सेइ ॥"

अर्थात, जो गुरु और पीर कहला कर लोगों के आगे हाथ पसारता हो और उनके पैसों से पेट पालता हो, वह गुरु नहीं मंगता है। उसके पैरों में मत्था ही मत टेको। जो हक़ की कमाई करके अपने कुटुम्ब का पालन करता है और उसमें से साध-संगत की सेवा करता है, वही मालिक की प्राप्ति के मार्ग को पहचानने वाला होता है।

जितने भी उच्च कोटि के महात्मा हुए हैं सभी ने कोई न कोई काम करके अपना गुजारा किया है। कबीर साहिब सारी उमर ताना तनते रहे। रविदासजी ने जूतियाँ गाँठ कर गुज़ारा किया। नामदेवजी कपड़े रंगा करते थे। इसी प्रकार गुरु साहिबानों ने खेती आदि करके अपना निर्वाह किया। गुरु नानक साहिब ने करतारपुर में खेती की। गुरु अर्जुन साहिब का लगाया हुआ "छःहरटा" कुआँ अभी तक प्रसिद्ध है। बाबाजी महाराज ने सेना में नौकरी की, पेंशन पर अपना निर्वाह किया और संगत की मुफ्त सेवा की। हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने तो खुद दृष्टान्त बन कर दिखाया कि सन्त किस प्रकार अपनी मेहनत और अपनी कमाई पर गुज़ारा करते हैं। सन्तों की महान परम्परा और उच्च आदर्श का निर्वाह आज भी डेरे के सन्त सतगुरु बड़ी दृढ़तापूर्वक कर रहे हैं।

मौलाना रूम का यह कलाम हुज़ूर अक्सर सुनाया करते थे :—

बहरे ताअत लुक्मए बायद हलाल । ता ज़ अफ़ज़ायद तुरा रंजो मलाल।
लुक्मए के आँ नूर अफ़रोज़ो कमाल। आँ बवद आवर्दा अज़ कस्बे हलाल।
इल्मो हिकमत ज़ायद अज़ लुक्मा हलाल। इश्कोरिक्कत ज़ायद अज़ लुक्मा हलाल।
ज़ायद अज़ लुक्मा हलाल अन्दर दहाँ। मैल ख़िदमत अज़मे रफ्तन आँ जहाँ।
ज़ायद अज़ लुक्मा हलाल ऐ मह हुज़ूर। शौक दर दिल पाके तो दूर दीदा नूर।
चूँ ज़े लुक्मा तो हस्दबीनो दवाम। जहलो ग़फ़लत ज़ायद आं रा दाँ हराम।

अर्थात, खुदा की इबादत के लिये हलाल की रोटी ज़रूरी है, ताकि वह दुःख और कष्ट पैदा न करे। हलाल की रोज़ी से ज्ञान, प्रेम और विरह पैदा होते हैं। गुरु-सेवा का शौक और मालिक से मिलने की चाह हलाल की रोटी उत्पन्न करती है। तेरे पाक (पवित्र) दिल में शौक और आँखों में नूर पैदा होता है। ऐ मेरे दोस्त! जिस खाने से ईर्ष्या, आलस और अज्ञान बढ़े उसे

अनुचित कमाई जानो।

४. सत्संग-यात्राएँ तथा नाम का प्रसार

सन् १९१० में हुजूर के सत्संग शुरू करने से पहले पंजाब की यह हालत थी कि यहाँ असली रूहानियत लुप्त हो चुकी थी। गुरु नानक साहिब के शब्द-मार्ग की शिक्षा का प्रभाव क्षीण हो गया था। उनके बताये हुए अभ्यास के मार्ग और परमात्मा की प्राप्ति के आदर्श को लोग भूल चुके थे। गुरु साहिबों द्वारा प्रदर्शित सुरत-शब्द-योग के मार्ग और पाँच नाम के भेद का जानकार कोई न मिलता था। अनेक विद्वान सिख भी गुरु ग्रन्थसाहिब की शिक्षा को वेदान्त और योग के साथ मिलाने में बड़ाई समझते थे। कोई गुरु साहिबानों को वेदान्ती मानता तो कोई उन्हें योग-मार्ग का अनुयायी समझता। कोई कोई तो उन्हें देवी-देवताओं के उपासक बताते। सन्त-मत के जिस मूल सिद्धान्त की स्थापना करने के लिये गुरु साहिबों ने अपना पूरा जीवन बिता दिया और खुद अपने उदाहरण द्वारा जिस असलियत को साबित करने के लिये अपनी जान तक कुर्बान कर दी, उसकी ही जड़ पर कुल्हाड़ी चलनी शुरु हो गई थी। गुरु साहिबान तो पुकार-पुकार कर फ़रमाते रहे, 'मत को भरमि भुलै संसारि। गुर बिनु कोइ न उतरसि पारि।'[1] तथा 'बिनु गुर दाते कोइ न पाए, लख कोटी जे करम कमाए।'[2] लेकिन उनकी इस स्पष्ट शिक्षा, कि गुरु के बिना कोई मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, के बावजूद लोग गुरु धारण करने के विरुद्ध हो गये थे। गुरु-भक्ति और शब्द अभ्यास का कोई नाम तक न जानता था। अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव से पढ़े-लिखे युवक नास्तिकता और भौतिकता की ओर खिंचे जा रहे थे। कई लोग धर्म की ओर से मुख मोड़ रहे थे और परमात्मा से विश्वास उठ रहा था।

वर्षा से पहले आकाश पर श्याम वर्ण के घने बादल छा जाते हैं। उसी प्रकार पंजाब से गुरु साहिबों की शिक्षा को भूल कर लोग बाहरमुखी क्रियाओं में उलझ गये। जिस प्रदेश में गुरु साहिबों ने एक समय नाम का बीज बोया, वही उर्वर भूमि नास्तिकता, अंध-विश्वास और रूढ़िवाद की तपिश से बंजर हो गई। हुज़ूर महाराजजी उसे अपनी दया-मेहर से, सत्संग रूपी अमृत से सींच कर फिर से उपजाऊ बनाने में जुट गये। चालीस वर्ष तक आपने अथक परिश्रम करके गुरु साहिबों की धरती के गाँव-गाँव और घर-घर में एक बार फिर से नाम का होका दिया और सन्तों के विस्मृत हुए संदेश को देश के कोने-कोने में ही नहीं बल्कि दूर विदेशों तक में पहुँचाया।

---

१. आदि ग्रन्थ, पृ. ८६४। २. आदि ग्रन्थ, पृ. १०५७।

हुज़ूर ने सन् १९१० से ही डेरे के आस-पास के स्थानों में तथा वर्तमान पाकिस्तान के पहाड़ी इलाकों में सत्संग के लिये यात्रा करना शुरू कर दी। यद्यपि उन शुरू के दिनों में हुज़ूर का अधिकांश समय डेरे के निर्माण कार्यों और व्यवस्था आदि में लगता रहा, परन्तु आप जब भी समय मिलता सत्संग के लिये बाहर अवश्य जाते। उन दिनों अमृतसर में केवल ४-५, जालन्धर में ५ या ६ और कपूरथला में तीन सत्संगी थे। यही हाल पंजाब के अन्य शहरों और गांवों का था।

अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, अम्बाला, लाहौर आदि स्थानों में जब हुज़ूर पधारते तो किसी सत्संगी के घर में सत्संग होता था। गुरुवाणी का पाठ तो पंजाब में घर-घर में होता था, लेकिन वाणी के वास्तविक अर्थ का बोध किसी को न था। जब हुज़ूर महाराजजी ने गुरुवाणी के शब्द लेकर नाम, शब्द और देह-स्वरूप सतगुरु की महिमा समझानी शुरू की तो लोग आश्चर्य से पूछने लगे कि क्या इतने दिनों जिस वाणी को हम पढ़ रहे थे उस का असली अर्थ यह है? कई विद्वान सिख हुज़ूर से बहस करने आते। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते कि जी, आपने जो शब्द लिया है वह ग्रन्थसाहिब में है ही नहीं। हुज़ूर उन्हें बड़ी नम्रता और मिठास के साथ समझाते, ग्रन्थ-साहिब में से शब्द निकाल कर बताते। कई बार गुरु ग्रन्थसाहिब का दो-दो सौ बार पाठ कर चुकने वाले लोग हुज़ूर के पास आते और कहते कि 'शब्द' का अर्थ तो वह 'वचन' हैं जो गुरु साहिबान ने अपने मुख से फ़रमाये हैं। हुज़ूर उन्हें गुरु ग्रन्थसाहिब में से उद्धरण देकर समझाते कि जिस शब्द के द्वारा उत्पत्ति और प्रलय होता है[1], जो शब्द अथवा नाम खण्डों-ब्रह्माण्डों को आधार दे रहा है[2] वह कोई लिखने, पढ़ने या बोलने में आ सकने वाला लफ्ज़ नहीं है। हुज़ूर का समझाने का ढंग इतना स्पष्ट होता था कि उनकी तसल्ली हो जाती। एक बार रामसिंह नामक एक वृद्ध सिख हुज़ूर से मिला और बोला कि उसने आठ सौ बार गुरु ग्रन्थसाहिब का पूरा पाठ किया है। हुज़ूर ने कहा, "भाई साहब, मैं आपकी इज्ज़त करता हूँ। लेकिन यह बताइये कि कभी रूह अन्दर गई? अंदर प्रकाश हुआ?" वह बोला, "नहीं।"

जब हुज़ूर एबटाबाद, पेशावर, रावलपिंडी आदि शहरों में पधारते तो आपके सत्संग में सिख, आर्य समाजी, वेदान्ती, मुसलमान आदि सभी धर्मों के अनुयायी आते थे। हुज़ूर सबसे प्रेम के साथ मिलते और उनकी इज्ज़त

---

१ "उतपति परलउ सबदे होवै" (माझ म. ३, पृ. ११७)
२ "नाम के धारे खंड ब्रहमंड" (गउड़ी म. ५, पृ. २८४)

करते। जब कोई ग्रापसे बहस करने ग्राता तो ग्राप ग्रपनी बात बड़े प्रेम ग्रौर मिठास के साथ कह देते ग्रौर जो कुछ वह कहना चाहता उसे शान्तिपूर्वक सुनते। हुज़ूर के नम्र व्यवहार के फल-स्वरूप बहस साधारण वार्तालाप का रूप ले लेती। ग्राप न कभी ग्रपनी बात मनवाने के लिए ज़ोर देते, न उत्तेजित होकर तर्क करते। हर मिलने वाले पर हुज़ूर के माधुर्य, प्रेम, नम्रता ग्रौर प्रभावशाली व्यक्तित्व का गहरा ग्रसर पड़ता। एक बार एक मुसलमान पीर हुज़ूर से वज़ीराबाद में मिलने ग्राया। हुज़ूर ने उसके सवालों का जवाब दिया ग्रौर मौलाना रूम, शम्स तब्रेज़, हाफ़िज़ ग्रादि सन्तों के वचनों से ग्रपनी बात की ताईद की। दो-तीन घण्टे वार्तालाप होता रहा। जब वह उठा तो उसने झुक कर ग्रादाब किया ग्रौर उलटे पैरों इस प्रकार बाहर निकला कि हुज़ूर की ओर पीठ न हो जाये।

धीरे-धीरे पढ़े-लिखे नवयुवक भी सत्संग में ग्राने लगे। एक साहब जो पत्रकार थे, संयोग से ग्रमृतसर में किसी सत्संगी से मिलने गये। सन्त-मत की चर्चा हुई तो ब्यास ग्राने को तैयार हो गये। वेदान्त ग्रादि का ग्रध्ययन किया था, पत्रकार थे, प्रश्न पूछने ग्रौर तर्क करने का शौक था। रास्ते में कोई पचास-साठ सवाल लिख लिये। पहला सत्संग सुना तो कई सवालों का जवाब मिल गया। परन्तु मन न माना, सत्संग के विषय को लेकर कुछ ग्रौर सवाल नोट कर लिये। दूसरे दिन फिर सत्संग सुना, देखा कि ग्रधिकांश प्रश्नों के उत्तर मिल गये हैं। हुज़ूर से मिलने के लिये ग्रर्ज़ की। हुज़ूर ने ग्रपने कमरे में बुलाया। कहाँ से ग्राये हैं, कैसे ग्राये हैं ग्रादि पूछने के बाद हुज़ूर ने पूछा, "कुछ पूछना है?" उन साहब ने कहा, "हाँ, पूछना है।" हुज़ूर ने मुसकरा कर फ़रमाया कि जो कुछ पूछना हो पूछ लें। परन्तु एक तो वह ग्रपने ग्रधिकांश सवालों का जवाब पा चुके थे, दूसरे, बाकी सवाल भूल चुके थे। हुज़ूर ने उन्हें खामोश देखकर कहा, "ग्रपना कागज़ निकालो ग्रौर जो पूछना हो पूछ लो।" उनके सवाल तो कहाँ के कहाँ गये, ग्राँखों में ग्राँसू ग्रा गये, हाथ जोड़ कर बोले, "हुज़ूर, कृपा करें ग्रौर नाम बख्श दें।"

एक बार हुज़ूर सत्संग कर रहे थे। बीच में कुछ ग्रकालियों की पार्टी ग्राकर बैठ गई। हुज़ूर ने पूछा, "ग्रगर ग्रापको कुछ कहना हो तो मैं वाणी की व्याख्या बन्द कर दूँ।" उन्होंने कहा, "नहीं।" जब शब्द समाप्त हुग्रा तो वे बोले कि ग्रापके साथ कुछ बात करनी है। हुज़ूर ने फ़रमाया, "बहुत ग्रच्छा।" उन्होंने हुज़ूर की व्याख्या पर ग्रपने प्रश्न पूछने शुरू किये। हुज़ूर ग्रन्थसाहिब की वाणी का उदाहरण देकर उन्हें जवाब देने लगे। ग्राखिर उन

में से एक ने पूछा कि इसका क्या सबूत कि शब्द हमारे अन्दर बज रहा है ? हुजूर ने पूछा, "आप गुरु ग्रन्थसाहिब को मानते हैं ?" वह बोला, "बेशक मानते हैं ।" हुजूर ने फ़रमाया, "देखो गुरु ग्रन्थसाहिब का क्या कथन है :—

घर महि घरु दिखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु ।।
पंच सबद धुनिकार धुनि, तह बाजै सबदु नीसाणु ।।

इस पर उसने कहा, "जी, आपने जो कुछ बयान किया है, बिलकुल सच है और मैं मानता हूँ ।"

उन दिनों सन्तों के सच्चे मार्ग के भेद का लोगों को पता नहीं था । कई बार जब लोग हुजूर से नाम लेकर जाते तो घरवाले तथा बिरादरी वाले उन से नाराज़ होते और लड़ते । परन्तु जब वे खुद असलियत का पता लगाने आते तो यहीं के हो जाते । मध्य-प्रदेश के एक व्यापारी की धर्मपत्नी हुजूर से नाम लेकर गई । जब व्यापारी सज्जन को मालूम हुआ तो बहुत नाराज़ हुए । मार-पीट करने और घर से निकालने तक पर उतारू हो गये । इस पर पत्नी ने अर्ज़ की कि आप एक बार मेरे सतगुरु के दर्शन कर लें और सत्संग सुन लें, उसके बाद मेरे साथ जैसा चाहें सलूक कर सकते हैं । वे वर्षों से पूजा, पाठ आदि कर्म-काण्ड करते आये थे । पहले तो राज़ी न हुए, पर और घरवालों ने भी यही कहा तो हुजूर के दर्शन के लिये आये । एक सत्संग सुना तो हुजूर के चरणों में मस्तक नवा कर बोले, "महाराजजी ! मुझे माफ़ कर दें और नाम की दात बख्शें ।"

जब भी कोई सत्संगी हुजूर से अर्ज़ करता कि मेरे घरवाले परेशान करते हैं, तो हुजूर जवाब देते कि अपना भजन-सुमिरन करते रहो, सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार रखो और किसी से बहस न करो । मालिक सब ठीक करेगा । महाराजजी किसी को मन्दिर, गुरुद्वारा या गिरजा में जाने से नहीं रोकते थे । जब किसी दौरे में या विवाह आदि में हुजूर को किसी मन्दिर या गुरुद्वारा में जाना पड़ता तो आप बड़ी नम्रता से मत्था टेकते तथा बाकी लोगों के साथ ज़मीन पर बैठ जाते । एक बार किसी सत्संगी के सवाल करने पर हुजूर ने फ़रमाया कि हमें किसी धर्म की निन्दा या आलोचना नहीं करनी चाहिये, सबके प्रति आदर के भाव रखने चाहियें, और अपने सतगुरु का ध्यान करके मत्था टेक लेना चाहिये ताकि किसी भी धर्म के व्यक्ति के दिल को चोट न पहुँचे ।

पहाड़ों में चलेट एक छोटा सा कस्बा है । राजपूतों की बस्ती है । लोग शिकार के शौकीन और कर्मकाण्ड के दास थे । कुछ परिवारों को मुस्लिम

शासकों की ओर से मियाँ की पदवी बख़्शी हुई थी। वहाँ के मियाँ अमरसिंह, जो कि पलटन में हवालदार थे, की भेंट झेलम छावनी में हुज़ूर के एक प्रेमी सत्संगी पंडित झंडीराम से हुई। उनसे सन्त-मत के विषय में सुनकर वे डेरे आये और हुज़ूर महाराजजी से नाम ले गये। हिमाचल के पहाड़ी इलाकों में आप पहले सत्संगी थे। कुछ दिनों बाद मियाँ अमरसिंह के माता-पिता ने भी हुज़ूर की शरण में डेरे आकर नाम प्राप्त कर लिया। मियाँ साहब के बड़े भाई विरोध करते थे और सन्तों की आलोचना करते थे। वे भी एक बार केवल यहाँ का हाल देखने के ख़याल से डेरे आये और सत्संग सुना। बोले, "मैं नाम तो लेना चाहता हूँ, लेकिन दो शर्तें हैं। एक तो मैं शिकार नहीं छोड़ूँगा क्योंकि राजा रामचन्द्रजी भी शिकार करते थे और दूसरे मैं जाप करता हूँ सो उसे जारी रखूँगा।" इस पर हुज़ूर ने कर्म-सिद्धान्त समझाया कि किस प्रकार अपने कर्मों के फल से बड़े-बड़े विद्वान, महात्मा और अवतार भी नहीं बच सके हैं। आपने मांसाहार और शिकार का नतीजा बतलाया और फिर फ़रमाया, "रही आपके जाप की बात, सो मैं आपको जाप की सही और श्रेष्ठ विधि समझा सकता हूँ।" कुछ दिन और सत्संग सुन कर आपने एक दिन हुज़ूर से अर्ज़ की, "सच्चे पातशाह! मैं माँस-शराब छोड़ता हूँ। अब मेरी कोई शर्त नहीं है। मुझे नाम बख़्शें।" हुज़ूर ने नाम-दान बख़्श दिया।

मियाँ अमरसिंह तथा उनके परिवार की प्रार्थना पर हुज़ूर १९२६ में पहली बार चलेट तशरीफ़ ले गये। मोटर या बस का रास्ता तब नहीं था। पहाड़ों, नालों आदि से युक्त ऊबड़-खाबड़ रास्ते को हुज़ूर ने कहीं घोड़े पर सवार हो कर और कहीं पैदल तय किया। रास्ते में आनेवाले ग्रामों में दर्शन और सत्संग प्रदान करते हुए जब हुज़ूर चलेट पहुँचे तो लोग ख़ुशी से नाचने लगे, बैण्ड-बाजे के साथ हुज़ूर का स्वागत किया।

चलेट तीन मोहल्लों में बसा हुआ था। कुछ पुजारियों आदि के कहने में आकर दूसरे मोहल्ले के राजपूत खिलाफ हो गये। उन्होंने अपने मोहल्ले में रात को ढिंढोरा पिटवाया कि जो भी व्यक्ति सत्संग में जायेगा उसे पचास रुपये जुर्माना देना होगा। अगले दिन सत्संग में दूसरे मोहल्ले से कोई न आया, केवल स्वर्गीय जमादार लालसिंह की विधवा बीबी धर्मदेवी* जुर्माने

*बीबी धर्मदेवी से बाद में हुज़ूर ने बहुत सेवा ली। पहाड़ों में बीबी धर्मदेवी की प्रेरणा और व्यक्तिगत रहनी के फलस्वरूप सत्सग खूब फैला। हुज़ूर ने आपको कालू की बड़ के सत्संग घर की देख-भाल पर नियुक्त किया। बड़ी अभ्यासी, प्रेमी और नेक सत्संगी थीं। अभी कुछ ही वर्षों पहले चोला छोड़ा है।

की परवाह न करके आयी। बीबी धर्मदेवी की लगन और दृढ़ता को देख बाकी लोग भी जुर्माने की परवाह न कर के दूसरे दिन सत्संग में आ गये और हुजूर की दया से विरोध समाप्त हो गया।

इस प्रकार माँस-शराब के आदी, पूजा-पाठ और बलि की प्रथा में उलझे हुए राजपूतों के इलाके में हुजूर ने खुले शब्दों में निधड़क हो सन्त-मत का होका दिया। सीधे-सादे पहाड़ी लोग हुजूर के चरणों में आने लगे। हुजूर ने वहाँ कई स्त्री-पुरुषों को नाम-दान दिया।

हुजूर की नम्रता, प्रेम और सहिष्णुता के आगे विरोधी पिघल जाते थे। चलेट के जैसे ही बहोटा का हाल था। सन् १९१८ में इस इलाके के कुछ व्यक्ति हुजूर के विषय में सुन कर डेरे आये और नाम ले गये। वहाँ के लोग, जो कर्मकाण्ड में डूबे हुए थे, सत्संगियों का बहिष्कार करने लगे। यद्यपि हुजूर की दया से संगत धीरे-धीरे बढ़ने लगी और विरोध कुछ कम हो गया, फिर भी सत्संगी अपने आपको अलग रखते और यह प्रकट करने से डरते थे कि हम सत्संगी हैं। हुजूर से लोगों ने अपनी तकलीफ़ के बारे में अर्ज़ की। हुजूर ने बहोटा का दौरा रखा। रास्ते में सिंगियाँ, सन्तोखगढ़ आदि कई ग्रामों में हुजूर ने दो-दो तीन-तीन दिन ठहर कर सत्संग बख्शा। कई स्थानों पर पूरे दिन घोड़े की सवारी करके और कभी-कभी आठ-आठ दस-दस मील पैदल चल कर गये। सिंगियां में ७०० और सन्तोखगढ़ में ३०० स्त्री-पुरुषों को नाम बख्शा। बहोटा में भी हुजूर ने कुछ दिन ठहर कर सत्संग और नाम प्रदान किया। हुजूर की इन यात्राओं के फलस्वरूप आज इस इलाके में पन्द्रह-बीस हज़ार सत्संगी हैं। बहोटा में संगत ने अपनी सेवा से जो सत्संग-घर बनाया है वह पूरे इलाके में अपने ढंग का एक ही है तथा उस क्षेत्र की सबसे सुन्दर इमारत माना जाता है।

हुजूर बहोटा आदि स्थानों का कई बार दौरा रखते थे। एक बार हुजूर को बहोटा में एक साधू मिला। उसने वेदों-शास्त्रों के आधार पर हुजूर से बहस करनी शुरू कर दी। हुजूर शान्तिपूर्वक उसकी बात सुनते रहे। जब वह चुप हुआ तो हुजूर ने पूछा, "महात्माजी, आपकी रसाई कितनी है? क्या कभी अन्दर गये हो?" यह सुन कर वह हैरान हो गया। बोला, "अन्दर कहाँ?" हुजूर कई बार फ़रमाते थे कि विद्वान, पंडित, व्याख्याता और आलिम फाज़िल दूसरों को तो पोथियाँ पढ़-पढ़ कर समझाते हैं, लेकिन खुद कभी अन्दर नहीं जाते। घर तो अपना लुटा जा रहा है और चौकीदारी कर रहे हैं लोगों के घरों की! एक बार हुजूर ने बात-चीत के दौरान में

फ़रमाया कि आलिम खुदा के दरवाज़े के पहरेदार हैं। खुद तो अन्दर जा नहीं सकते और जो कोई कहता है कि मैं अन्दर गया हूँ तो मानने को तैयार नहीं होते।

पहाड़ों में सुजानपुर टिहरा में भी कुछ सत्संगी थे जो पंडितों और आर्य-समाजियों के विरोध की वजह से चुपचाप अभ्यास करते तथा डेरे आकर महाराजजी के दर्शन करते रहते। १९३९ में हुज़ूर ने सुजानपुर टिहरा का दौरा रखा। हुज़ूर कार से नदी के किनारे पहुँचे और नाव में बैठ कर सुजानपुर आये। उन दिनों सुजानपुर में तुलसीरामजी* नामक एक अभ्यासी महात्मा थे जिनका इस क्षेत्र में बहुत प्रभाव और सम्मान था। हुज़ूर की नाव नदी पार कर रही थी तब दूसरे किनारे पर हज़ारों की संख्या में स्त्री-पुरुष स्वागत के लिये खड़े थे। जब नाव पास आई तो लोगों ने देखा कि नदी के बिलकुल तीर पर महात्मा तुलसीरामजी खड़े हैं, हाथों में फूल हैं और सिर अदब से झुका हुआ है। जब हुज़ूर ने नाव से उतरकर आगे चरण बढ़ाये, तो तुलसीरामजी ने हुज़ूर के चरणों में मत्था टेका और फूल पेश किये, कुछ बोलने की कोशिश की लेकिन उनका गला रुँध गया था और आँखों से पानी बह रहा था। हुज़ूर ने पीछे हटते हुए दोनों हाथ जोड़ कर राधास्वामी की।

हुज़ूर के सत्संग के बाद रात को तुलसीरामजी दर्शन के लिये आये और हुज़ूर ने बड़े प्रेम के साथ आपसे बातचीत की। उसी दिन रात को पंडितों व पुजारियों ने तय किया कि अगले दिन सत्संग में हुज़ूर से बहस करके अपने पूजा-पाठ की महिमा साबित करनी चाहिये। दूसरे दिन सुबह हुज़ूर ने कबीर साहिब का शब्द 'कर नैनों दीदार महल में प्यारा है' लिया और अपनी व्याख्या में कर्मकाण्ड की असलियत तथा मनुष्य के शरीर में देवी-देवताओं की वास्तविक अवस्था समझाई। अपने प्रोग्राम के अनुसार पंडितों में से एक विद्वान ने उठ कर मूर्ति-पूजा के पक्ष में एक छोटा सा भाषण दिया और हुज़ूर से जवाब माँगा। हुज़ूर ने बड़े मिठास के साथ जवाब दिया कि असली हरि-मन्दिर मनुष्य का शरीर है। बाहर के मन्दिर तो हमें अंदर की ओर जाने का इशारा करते हैं। ये मनुष्य के द्वारा बनाये हुए हैं, नकल हैं, असल नहीं। असली मन्दिर इन्सान का वजूद है जिसे परमात्मा ने बनाया है और इसी में वह रहता है। इस असली हरि मन्दिर में हमें उसकी तलाश करनी चाहिये और यहीं वह मिलेगा। फिर हुज़ूर ने देह-स्वरूप गुरु की

*महात्मा तुलसीरामजी के गुरु सतरामजी थे जिन्होंने एक मुसलमान फ़कीर से दीक्षा ली थी।

ज़रूरत पर ज़ोर देते हुए फ़रमाया कि अगर विद्यार्थी किसी ऐसे महात्मा से पढ़ना चाहे जो हज़ारों वर्ष पहले गुज़र चुका है, या कोई व्यक्ति अपने मुकदमे का न्याय राजा वीर विक्रमादित्य से करवाना चाहे, या यदि कोई बीमार अपना इलाज धन्वन्तरी से करवाना चाहे तो आज यह कैसे हो सकता है।

हुज़ूर के स्पष्ट उत्तर ने पंडितों को सन्तुष्ट कर दिया। उनमें से कुछ तो हुज़ूर के चरणों में आ गये। परन्तु दो-तीन पंडित महात्मा तुलसीराम के पास गये और बोले, "आपको शर्म नहीं आती, आप ब्राह्मण होकर एक सिख के पैरों में मस्तक टेकते हो!" तुलसीरामजी ने आवेश के साथ उत्तर दिया, "ज़रा उस सिख को मेरी नज़र से देखो। तुम्हें क्या मालूम कि वह कैसी ऊँची हस्ती है!"

आज सुजानपुर टिहरा तथा आस-पास के ग्रामों में हज़ारों सत्संगी हैं। डेरे में हर भण्डारे पर सुजानपुर, बहोटा, बिलासपुर, हमीरपुर, परौर, मण्डी, नूरपुर आदि स्थानों के हज़ारों सत्संगी आते हैं। करीब-करीब सारा कांगड़ा ज़िला ही अब सत्संगी हो गया है।

दीवान तेजूमल भवनानी की प्रार्थना पर हुज़ूर महाराजजी करांची तशरीफ़ ले गये। उस समय सिंध में बहुत थोड़े से सत्संगी थे। पहले दिन सत्संग में हाज़री इतनी कम थी कि दीवान साहब मायूस हो गये। हुज़ूर से अर्ज़ की, "महाराजजी, सत्संग में बहुत कम लोग आये हैं। मेरा ख़याल है कि हुज़ूर के बारे में तथा सन्त-मत के प्रचार के लिये कुछ पर्चियाँ (पेम्फलेट) छपवा कर बँटवा दूँ ताकि लोगों को पता लग जाये।" हुज़ूर ने मुसकरा कर जवाब फ़रमाया, "दीवान साहब! ज़रा ठहरिये। आपके इश्तिहार की ज़रूरत नहीं। आपके इश्तिहार करने वाले आप ही आ जाएँगे।"

दूसरे दिन कुछ विरोधियों ने जगह-जगह परचे बाँटे कि करांची में राधास्वामियों के गुरु आये हैं और वे ग्रन्थसाहिब की वाणी का गलत अर्थ करते हैं; इसलिये उनके सत्संग में कोई न जाय। सिंधियों में गुरुवाणी का प्रचार तो घर-घर में था ही। परचे पढ़ कर लोग सत्संग में उत्सुकतावश आने लगे। अगले दिन सत्संग में पैर रखने की जगह न थी। अतएव उसके बाद सत्संग बाहर खुली जगह में करना पड़ा। उसके बाद सिंधियों ने बराबर डेरे आना और नाम लेना शुरू कर दिया और आज संगत में सिंधियों की संख्या बहुत बड़ी है।

हुज़ूर महाराजजी वर्तमान पाकिस्तान के इलाकों का दौरा कई बार करते थे। लाहौर, रावलपिंडी, लायलपुर, स्यालकोट, पेशावर, नौशहरा,

क्वेटा, मुलतान, करांची, गुजरांवाला, वज़ीराबाद, झेलम, मोण्टगुमरी, कालाबाग, एबटाबाद, आदि स्थानों में कई बार सत्संग के लिये तशरीफ़ ले जाते थे। इन स्थानों के रास्ते में आनेवाले छोटे-छोटे कस्बों और गांवों में भी रुक कर सत्संग फ़रमाते थे।

जब हुजूर १९३२ में कालाबाग पधारे तो आपके साथ जाने वाले सत्संगियों को पता चला कि हुजूर अपनी सरकारी नौकरी के दिनों में कितना कठिन परिश्रम करते थे। कालाबाग समुद्र की सतह से आठ-नौ हज़ार फीट की ऊँचाई पर स्थित है। एबटाबाद से जिस सड़क से हुजूर जा रहे थे वह अपनी नौकरी के दिनों में हुजूर ने ही बनवाई थी। इसका अधिकांश भाग पहाड़ों और चट्टानों को काट-काट कर बनाया गया था। उन दिनों हुजूर अपने. निवास-स्थान से मीलों दूर जाकर अपनी देख-रेख में सड़क बनवाते थे और पूरा दिन पहाड़ों में गुज़ारते थे। इस पूरे रास्ते पर हुजूर ने चिनार के वृक्ष लगवाये थे, जो अब बढ़ कर बहुत सुन्दर दिखाई देते थे। डॉक्टर जानसन ने, जो इस यात्रा में हुजूर के साथ थे, अपने पत्रों में इस दौरे का वर्णन किया है। आधे रास्ते में हुजूर तथा संगत एक खुले स्थान में रुके। यहाँ पानी का सोता था तथा राहगीरों के बैठने और सुस्ताने के लिए पहाड़ काट कर जगह बनाई हुई थी। यह सुन्दर स्थान हुजूर ने अपने सर्विस के दिनों में बनाया था। हुजूर कालाबाग में अपने बनाये हुए एक छोटे मकान में ठहरे। पत्थर का बना हुआ यह बंगला हुजूर की निजी सम्पत्ति था। यह कालाबाग की बस्ती से बिलकुल अलग एक निर्जन पहाड़ी पर बना था। तीन ओर गहरी खाई थी और चारों ओर का दृश्य बड़ा मनोरम था। हुजूर ने दोपहर को दो बजे सत्संग किया। दूर-दूर के पहाड़ी गांवों से संगत आई हुई थी। उन के चेहरे प्रेम से जगमगा रहे थे और नेत्रों से प्यार और खुशी के अश्रु बह रहे थे।

१४ अक्तूबर, १९३२ को डाक्टर जान्सन ने एक अभूतपूर्व दृश्य देखा। सुबह आठ बजे हुजूर ने कुछ छोटे बच्चों व लड़कों को अपने पास बिठा कर उन्हें धुन में बैठने का तरीका सिखाया तथा धुन बख्शी। ये सत्संगियों के बच्चे थे। वहाँ पाँच दिन सत्संग और नामदान के बाद हुजूर १८ अक्तूबर को वहाँ से उतर कर एबटाबाद आये। एबटाबाद अफ़ग़ानिस्तान के नज़दीक आखिरी अंग्रेज़ी छावनी थी। खैबर का दर्रा यहाँ से ज़्यादा दूर नहीं है। यहाँ हुजूर से कुछ ऐसे वृद्ध लोग मिले जो नौकरी के दिनों में आपके मातहत काम करते थे। यहाँ सत्संग में कुछ व्यक्तियों ने बाधा डालने की कोशिश

करते हुए बहस शुरू कर दी। परन्तु जब हुजूर ने बड़े प्यार से उनके सवालों का जवाब दिया तो वे शान्त हो गये। हुजूर डाक्टर जान्सन के साथ उस स्थान पर भी गये जहाँ बाबाजी महाराज ने उन दिनों आकर सत्संग किया था जब हुजूर यहाँ नियुक्त थे।

सत्संग में बहस या विरोध उन दिनों कोई नई बात नहीं थी। एक बार कालाबाग में कुछ अमीर सिख सत्संग में आये। उस दिन सत्संग के बाद प्रसाद बाँटा जा रहा था। सत्संग की निन्दा करने वालों ने प्रचार कर रखा था कि राधास्वामियों के सत्संग में जूठा प्रसाद बरताया जाता है। एक सिख ने प्रसाद लेने से पहले उठ कर पूछा, "जी, क्या यह प्रसाद जूठा है ?" हुजूर ने तनिक मुसकराते हुए फ़रमाया, "जूठा है भी और नहीं भी।" उसने कहा कि ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं। हुजूर ने जवाब दिया, "हाँ, हो सकती हैं। जिस समय हम (गुरुद्वारा में) अरदास करते हैं कि 'हे सच्चे पातशाह ! आप का प्रसाद तैयार है, आपको भोग लगे और आपका सीत प्रसाद आपकी संगत की रसना के लायक हो......' तो उस वक्त अगर गुरु साहब ने खाया तो जूठा है, और अगर गुरु साहब ने नहीं खाया तो प्रसाद बना नहीं। अब हम जब प्रसाद देते हैं तो उस वाहिगुरु अकाल पुरुष का ध्यान करते हैं कि तेरा प्रसाद तैयार है, तेरी साध-संगत की रसना के लायक होवे।" यह सुन कर उन लोगों को तसल्ली हो गई।

सन् १९३२ में कालाबाग के दौरे से पहले हुजूर रावलपिंडी तशरीफ़ ले गये। रावलपिंडी में हुजूर सत्संग घर में ठहरे जो कि वहाँ की बहुत सुन्दर इमारतों में गिना जाता था। हुजूर ने ६ अक्तूबर से ११ अक्तूबर तक वहाँ प्रतिदिन सत्संग प्रदान किया। सत्संग में हिन्दू और मुसलमान तो आते ही थे, धीरे-धीरे सिख भी आने लगे। अंतिम दो दिन तो सत्संग में सिखों की संख्या बहुत बढ़ गई। गुरु ग्रंथसाहिब की वाणी की स्पष्ट व्याख्या और महाराजजी का प्रभावशाली व्यक्तित्व उन्हें खींच कर लाने लगा। १२ अक्तूबर को सुबह हुजूर कालाबाग के लिये रवाना हो गये। चलने से पहले हुजूर ने फ़रमाया कि आप २४ अक्तूबर को दोपहर को वापस तशरीफ़ लावेंगे तथा शाम को रावलपिंडी में सत्संग करके २५ तारीख की सुबह छः बजे प्रस्थान करेंगे।

इधर सिखों के एक वर्ग में खलबली मच गई कि अगर ऐसे ही सत्संग होता रहा तो सब सिख राधास्वामी बन जावेंगे। अकाली नेताओं और गुरुद्वारों के ग्रन्थियों ने छिप कर मीटिंगें की और यह तय किया कि अब रावल-

पिंडी में सत्संग नहीं करने देंगे।

महाराजजी कालाबाग, एबटाबाद आदि स्थानों में सत्संग करके २४ अक्तूबर १९३२ को दिन के तीन बजे रावलपिंडी आये। शाम को सत्संग था। सत्संग में अकालियों का झुण्ड कृपाण और तलवार लेकर आ गया। वे लोग संगत के बीच में जगह-जगह बैठ गये। संगत में किसी के पास हथियार नहीं था। डाक्टर जान्सन अपने पत्रों में बताते हैं कि दो अकाली उनके दायें और बायें बैठ गये और तलवारें सामने रख लीं। हुजूर ने सत्संग से कुछ घण्टे पहले ही व्यवस्थापकों से फ़रमाया था कि सत्संग में पुलिस की व्यवस्था करवा लें। परन्तु उन लोगों ने इस पर ध्यान न दिया। जब हुजूर ने सत्संग शुरू किया तो एक-दो अकालियों ने खड़े हो कर हल्ला मचाना शुरू किया। सत्संगियों ने उन्हें शान्त करने की कोशिश की, लेकिन वे कुछ सुनने को तैयार न थे। बाकी हथियार-बन्द व्यक्तियों ने भी शोर मचाना शुरू कर दिया, उन्होंने तलवारें और कृपाण निकाल लीं, पर सत्संगी निडरतापूर्वक उन्हें समझाने का प्रयास करते रहे। शोर और खींच-तान होने लगी। ऐसा मालूम होने लगा कि काफी रक्त-पात होगा। परन्तु तभी पुलिस आ गई और ऊधम करने वाले लोग चुपचाप गायब हो गये। इस सब शोर-गुल में हुजूर महाराजजी अपने तख्त पर बिलकुल शान्त, स्थिर और अडोल बैठे थे। उस समय उनका ज्योतिर्मय मुख अपने रूहानी नूर में चमक रहा था। हुजूर से कुछ ही फीट के फासले पर तीन-चार व्यक्ति कृपाण निकाले खड़े थे, वे शोर तो मचा रहे थे, परन्तु आगे कदम उठाने का साहस न होता था। हुजूर के मुख पर कोई परेशानी के चिन्ह न थे। जिन्होंने उस समय हुजूर की ओर देखा, वे हुजूर के उन अनुपम दर्शनों को कभी न भूल सकेंगे। कुछ सत्संगियों ने बाद में बताया कि जितनी देर अकालियों का उपद्रव होता रहा, हुजूर के पीछे एक वृद्ध बुजुर्ग उन्हें दिखाई देते रहे। हुजूर ने फ़रमाया कि वे बाबाजी महाराज थे। सतगुरु सदैव अंग-संग हैं, उन्हें अपने प्रेमियों की रक्षा का पूरा खयाल रहता है।

जब शान्ति हो गई तो हुजूर ने अपनी शान्त मधुर वाणी में सत्संग शुरू किया। संगत की घबराहट दूर हो गई और ऐसा महसूस होने लगा मानो कुछ हुआ ही न हो। सत्संग के बाद हुजूर ने एलान किया कि सुबह सात बजे उसी स्थान पर सत्संग होगा। यह सत्संग हुजूर के प्रोग्राम में नहीं था। स्पष्ट था कि हुजूर विरोध, निन्दा और तलवारों के सामने भी सत्संग जारी रखना चाहते थे। दूसरे दिन सुबह के सत्संग में पूर्ण शान्ति थी, तथा सिक्खों

की उपस्थिति ग्रौर भी ग्रधिक हो गई थी। हुज़ूर झेलम, लायलपुर ग्रौर लाहौर होते हुए डेरे तशरीफ़ ले ग्राये।

उसके बाद रावलपिंडी में सत्संग खूब फैला ग्रौर कई प्रतिष्ठित सिख परिवार हुज़ूर के चरणां में ग्रा गये। जब हुज़ूर कुछ वर्ष बाद दोबारा रावलपिंडी तशरीफ़ ले गये तो सत्संग के बाद कुछ सत्संगियों ने हुज़ूर की प्रशंसा करते हुए कहा कि कुछ समय पहले हुज़ूर के सत्संग में ग्रकालियों ने सख्त विरोध किया था, ग्रब हुज़ूर की कृपा से सब शान्त हो गये हैं ग्रौर सत्संग ने खूब तरक्की की है। हुज़ूर ने प्रेम ग्रौर नम्रता के साथ उत्तर दिया, "भाई साहब, यह मेरी खूबी नहीं, गुरु नानक साहिब की वाणी की खूबी है जिसमें सच्ची रूहानियत की तालीम है।"

महाराजजी गरमी के मौसम में कुछ दिनों के लिये डलहौज़ी पधारते थे। यहाँ संगत भी ग्रा जाती थी तथा सत्संग, मुलाकात ग्रौर परमार्थ की चर्चा का कार्यक्रम चलता रहता था। सितम्बर १९४३ में डलहौज़ी में हुज़ूर ग्रस्वस्थ हो गये जिससे डाक्टर चिन्तित हो उठे। उन्होंने ज़ोर दिया कि किसी कम ऊँचाई वाले पहाड़ी स्थान पर महाराजजी को गरमी के दिन बिताने चाहियें। ग्रतएव इसके लिये गगरेट से ग्रागे भरवाईं ग्रौर चिन्तपुरनी के पास का स्थान चुना गया। इस स्थान का नाम कालू की बड़ है। चारों ग्रोर खाइयों से घिरे हुए इस स्थान में पहाड़ी के ऊपर एक बड़ा मैदान है जिसके एक किनारे पर बड़ का एक विशाल वृक्ष है। ग्रास-पास एक मील तक कोई बस्ती नहीं है। हुज़ूर ने इस स्थान को पसन्द किया ग्रौर कालू की बड़ की ज़मीन खरीदी गई। धीरे-धीरे यहाँ सत्संग-घर, लंगर तथा ग्रन्य मकान बनाये गये ग्रौर महाराजजी साल में दो तीन बार सत्संग के लिये यहाँ पधारने लगे। यह स्थान ग्रास-पास के क्षेत्र के लिये सत्संग का केन्द्र बन गया ग्रौर ग्राज कालू की बड़ के चारों ग्रोर के इलाकों में १५-२० हज़ार सत्संगी हैं। इस इलाके में राजपूतों, ब्राह्मणों तथा रामदासियों (हरिजनों) के ग्राम हैं। हुज़ूर ने कालू की बड़ में एक ऐसा स्थान बना दिया जहाँ सब लोग ग्रपने भेद-भाव भूल कर इकट्ठे हो कर सन्तों के रूहानी सन्देश का लाभ उठा सकें।

कालू की बड़ ही नहीं बल्कि पूरे कांगड़ा क्षेत्र में माँस-मदिरा का रिवाज था, देवी की पूजा ग्रौर पशु बलि का ज़ोर था ग्रौर छूग्राछूत की प्रबल भावना थी। हुज़ूर का रामदासियों के प्रति बहुत प्रेम था। ग्रापके सत्संगों ने सबको इकट्ठा कर दिया ग्रौर ग्राज सभी जाति के लोग लंगर में साथ बैठ कर भोजन करते हैं। हुज़ूर ने इस इलाके में रूहानियत का जो प्रवाह

चलाया उसका नज़ारा देखने लायक है। यहाँ के सत्संगी सरल-हृदय, प्रेमी और अभ्यासी हैं।

एक बार हुज़ूर महाराजजी जब कालू की बड़ तशरीफ़ ले गये थे, तो मास्टर तारासिंह, कुछ अकाली नेता तथा कुछ प्रतिष्ठित सिख हुज़ूर से मिलने के लिये आये। वे सत्संग में भी आये। हुज़ूर ने गुरु ग्रन्थसाहिब में से शब्द लिया। करीब दो घण्टे तक व्याख्या की। सत्संग में करीब बीस हज़ार स्त्री पुरुष उपस्थित थे। संगत एकदम खामोश और स्थिर बैठी थी। टकटकी लगी हुई थी और सब अपने आपको भूले हुए थे। सत्संग के बाद अकाली नेताओं ने हुज़ूर से कहा, "हम हैरान हैं कि ये सीधे-सादे पहाड़ी लोग गुरु ग्रन्थसाहिब की वाणी को समझते हैं और इस कदर खामोशी के साथ सुनते हैं। कइयों के तो आँखों से आँसू बहे जा रहे थे और ऐसा लगता था कि इन्हें अपने तन-बदन की भी सुध नहीं है।"

हुज़ूर ने हँस कर जवाब दिया, "गुरु नानक की वाणी के साथ तो मैंने प्यार पैदा कर दिया। अगर आपको ज़रूरत महसूस हो तो बाकी रहत आप सिखा लो।" फिर हुज़ूर ने प्यार के साथ समझाया कि गुरु नानक साहिब की वाणी को समझकर उस पर अमल करने से इन्सान सिख बनता है, बाहरी पहनावे से सिख नहीं बनता।

हुज़ूर अपने दौरों पर जहाँ कहीं भी लोग नाम-दान की याचना करते वहाँ नाम अवश्य बख्शते। कई बार पेड़ों के नीचे, मैदानों में, ऊँचे पहाड़ी स्थानों में या गांव से दूर खुले स्थान में नाम-दान देते थे। डॉक्टर जान्सन अपने एक पत्र में बताते हैं कि अप्रैल १९३३ के अपने एक दौरे में हुज़ूर ने चार हज़ार नौ सौ जीवों को नाम बख्शा। यह दौरा छोटे-छोटे गांवों का था।

उन दिनों सड़कें खराब थीं और कई स्थानों में तो थी ही नहीं। हुज़ूर पैदल, घोड़ों पर या लारी में इन स्थानों पर जाते। कई बार मोटर बिगड़ जाने के कारण रास्ते में घण्टों रुकना पड़ता और हुज़ूर अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचते ही सीधे सत्संग में तशरीफ़ ले जाते। जिज्ञासु, परिचित और सत्संगी इन दौरों पर हुज़ूर को दिन-रात घेरे रहते। रात को ११ और १२ बजे तक आप उनके सवालों का जवाब देते। जब आराम के लिये जाते तो उस वक्त भी संगत बाहर से आती रहती और रात-भर शब्द गाती रहती। हुज़ूर संगत की सेवा के आगे अपनी सुविधा का कभी ख़याल न करते और कई बार आपके साथ के लोग तथा व्यवस्था करने वाले भी भूल जाते कि हुज़ूर को आराम मिलना चाहिये। कई गांवों में एक छोटा सा कमरा या

कच्ची कोठरी होती, जिसमें बमुश्किल हुज़ूर की चारपाई आ पाती। जब हुज़ूर सब कार्य समाप्त करके रात को ११-१२ बजे आराम के लिये जाते तो जहाँ हुज़ूर ठहरते वहाँ के घरवाले मेज़मान रात को सोने से पहले मत्था टेकने आते। हुज़ूर उनसे बड़े प्रेम से मिलते, उनकी समस्याओं को सुनते और उन्हें समझाते। सुबह स्नान के लिये कई जगह स्नान-घर के स्थान पर होता था दो खाट अथवा मंजों को खड़ा करके बनाया हुआ स्नान-घर। खुले मैदान, मकान के पिछले दालान या खुली छत पर दो खाट को खड़ा करके उनके चारों ओर पतली चद्दर तान दी जाती थी। पहाड़ों में ऐसे कई स्थानों पर खुले में बने ऐसे बाथ-रूमों में हुज़ूर सुबह पाँच बजे स्नान करके छः बजे तक तैयार हो जाते थे। आपके साथ के लोग जब नहाने जाते तो बर्फ़ से ठण्डे पानी में बमुश्किल हाथ और मुँह धोकर आ जाते।

उन्हीं दिनों की बात है, हुज़ूर के सत्संगियों में पिसावा के रावबहादुर शिवध्यानसिंहजी बड़े प्रेमी सत्संगी थे। आप हुज़ूर से अर्ज़ करते कि हुज़ूर एक बार पिसावा भी सत्संग के लिये तशरीफ़ लायें। हुज़ूर फ़रमाते, "राव साहब, आपके यहाँ भी कभी चलेंगे।" रावसाहब दो-तीन बार अर्ज़ कर चुके पर वही जवाब मिलता रहता, पिसावा के प्रोग्राम की तारीख नहीं मिलती। एक बार रावसाहब हुज़ूर महाराजजी के साथ एक सत्संग के दौरे पर गये। वहाँ आपने हुज़ूर को एक कच्चे मकान की छोटी-सी कोठरी में ठहरते देखा। रावसाहब यह वृत्तान्त कई बार सुनाया करते थे। आपके दिल में ख़याल आया कि जब महाराजजी इस गरीब के कच्चे मकान की छोटी-सी कोठरी में ठहर सकते हैं, तो मेरे यहाँ आने में उज़्र करने का सवाल ही क्या हो सकता है जबकि हुज़ूर के लिये अच्छी हवेली और सजे हुए कमरे हाज़िर हैं। जब डेरे लौटकर आये तो महाराजजी से फिर पिसावा के लिये अर्ज़ की। हुज़ूर ने फिर टाल दिया। रावसाहब बड़े दुःखी हुए, आँखों में आँसू भर आये और रात को इसी सोच में मायूस होकर सो गये। रावसाहब बयान करते थे कि रात को महाराजजी ने स्वप्न में दर्शन दिये और फ़रमाया, "रावसाहब, आपको अपने महलों और कमरों का मान है, हमें क्या करना है इन सबसे!" दूसरे दिन सुबह रावसाहब हुज़ूर के सामने हाज़िर हुए, आँखों से आँसू बह रहे थे, गला रुँध रहा था, हाथ जोड़े हुए थे, बड़ी मुश्किल से बोले, "हुज़ूर! मुझे माफ करें। मुझे ग़रूर था कि..."। हुज़ूर ने बात पूरी न करने दी। बड़े प्यार के साथ उन्हें अपने पास बिठाते हुए रायसाहब मुंशीरामजी से फ़रमाया, "भाई, डायरी निकालो और पिसावा की तारीख लिखो।"

हुज़ूर का पिसावा का दौरा आपका उत्तर प्रदेश का पहला दौरा था। इस यात्रा का पूरा वृत्तान्त तथा रावबहादुर शिवध्यानसिंहजी के गुरु के प्रति प्रेम का हाल रायसायब मुंशीरामजी ने अपनी डायरी में लिखा है।

सन् १९११ से १९३२ तक हुज़ूर ने ज्यादा समय डेरे में ही व्यतीत किया। इस समय में आप डेरे के विकास की ओर अधिक ध्यान देते रहे। वैसे हुज़ूर सत्संग के दौरों पर भी जाते रहते थे, परन्तु १९३२ से १९४६ के बीच के दौरों के मुकाबले वे बहुत कम थे। हुज़ूर की सत्संग यात्राएँ अधिकतर उन इलाकों में होती थीं जो वर्तमान पाकिस्तान है। रावलपिंडी, लाहौर आदि बड़े शहरों में सत्संग-घर उस वक्त बन चुके थे, जब कि जालन्धर, लुधियाना आदि स्थानों में सत्संग-घरों की नींव भी नहीं रखी गई थी। इसी प्रकार वर्तमान पाकिस्तान के छोटे-छोटे शहरों और गांवों में भी सत्संग-घर बन चुके थे। लाहौर में तो हुज़ूर साल में तीन-चार बार सत्संग फ़रमाया करते थे। सरहदी सूबे के पेशावर, नौशहरा आदि शहरों तथा रास्ते में आनेवाले ग्रामों में हुज़ूर कई बार सत्संग के लिये गये थे। वहाँ सत्संगों में हिन्दू और सिख तो आते ही थे, मुसलमान और पठान भी काफी संख्या में आते थे।

पेशावर आदि सरहदी क्षेत्रों का अंतिम दौरा हुज़ूर ने नवम्बर १९४५ में किया था। इस दौरे में हुज़ूर ने लाहौर, गुजराँवाला, मुरीदकी कमोकी, वज़ीराबाद, गुजरात, झेलम, रावलपिंडी, हरिपुर, कालाबाग, नथियागली, एबटाबाद, पेशावर, शैंदो, जहाँगीरा, हज़रो, गुज्जरखान, सियालकोट, आदि स्थानों में सत्संग, दर्शन तथा नाम-दान दिया। इनमें से कई स्थानों में हुज़ूर के सत्संगों में काफी बड़ी संख्या में पठान भी आते रहे। हुज़ूर सभी धर्म के महात्माओं का आदर करते थे। पेशावर में शैंदो के बाबा जागीरसिंह जी हुज़ूर के पास आये और अपने गांव शैंदो पधारने की विनती की। हुज़ूर का अगले दो-दिन नाम-दान का प्रोग्राम था। परन्तु बाबा जागीरसिंहजी के हाथ जोड़ कर बार-बार अर्ज़ करने पर हुज़ूर ने दूसरे दिन दो-तीन बैठकों में नाम-दान का दो दिन का कार्यक्रम एक ही दिन में समाप्त किया और बाबा जागीरसिंहजी के साथ शैंदो तशरीफ़ ले गये। शैंदो में हुज़ूर के सत्संग में पठानों और मुसलमानों की उपस्थिति अधिक थी।

शैंदो से हुज़ूर हज़रो पधारे जहाँ आप बाबा बालकसिंहजी के स्थान पर बिराजमान महात्मा वज़ीरसिंहजी से मिले। बाबा बालकसिंहजी के पास बाबा जैमलसिंहजी महाराज अपनी खोज के दौरान में कई मील पैदल चल कर पाँच नाम के भेद की तलाश में आये थे। हुज़ूर के हज़रो पहुँचते ही

बाबा वज़ीरसिंहजी मिलने आये; बड़े प्रेम से मिले और हुज़ूर के प्रति बहुत प्रेम और आदर प्रकट किया। सत्संग में भी आये और सत्संग के बाद हुज़ूर की प्रशंसा में एक कविता सुनाई । हुज़ूर ने यहाँ ५० व्यक्तियों को नाम प्रदान किया।

श्री रामनाथ मेहता जो इस यात्रा में हुज़ूर के साथ थे यह वृत्तान्त सुनाते हैं। इस यात्रा में पेशावर के पास के एक छोटे से ग्राम में हुज़ूर एक दिन ठहरे। इस ग्राम में केवल पठानों की बस्ती थी। कई पठान आपके दर्शन के लिये आये। एक पठान सज्जन रात को हुज़ूर से चर्चा करने आये और सन्त-मत पर कई प्रश्न पूछे। हुज़ूर ने बड़े प्रेम से उनकी बातों का जवाब दिया और फ़ारस के सन्तों की वाणियों में से उद्धरण देकर साबित किया कि सन्त चाहे किसी कौम, मज़हब या मुल्क में क्यों न आये हों, हमेशा एक ही बात कहते हैं। हुज़ूर ने अन्दर के रूहानी मण्डलों के फारसी नाम बताये और समझाया कि सभी धर्मों की शरीयत अंतर के राज़ से खाली है। लेकिन हकीकत और मारफत सबकी एक ही है। करीब आधी रात तक यही चर्चा होती रही। आख़िर उन पठान सज्जन ने कहा कि आप जो कुछ फ़रमाते हैं वह दुरुस्त मालूम देता है, लेकिन इसका क्या सबूत है कि ख़ुदा के दीदार का जो रास्ता आप बतलाते हैं वह सही है ? इस पर हुज़ूर ने उन्हें सुमिरन करने का तरीका बताते हुए कहा कि इस तरीके से आप रोज़ दो घण्टे ख़ुदा के किसी भी नाम का ज़िक्र (सुमिरन) करिये, मांस-शराब से दूर रहिये और अगर आपको चालीस दिन अभ्यास करने के बाद मेरी बात का सबूत न मिले तो ब्यास आकर मुझे पकड़ लें।

वे सज्जन रूहानियत के शौकीन और धुन के पक्के थे। दूसरे दिन से हुज़ूर के बताये हुए अभ्यास में जुट गये। अभी एक महीना ही हुआ था कि वे एक दिन डेरे में हाज़िर हो गये। हुज़ूर के सामने पेश होने पर उन्होंने बताया कि अपने अभ्यास में उन्हें अब अंदर हुज़ूर के दर्शन होते हैं। उनके चेहरे पर रूहानी खुशी की रौनक और आँखों में प्रेम के आँसू थे और हुज़ूर से नाम-दान के लिये अर्ज़ कर रहे थे। सतगुरु दीनदयाल ने उन्हें नाम प्रदान कर दिया। सन् १९४७ के विभाजन के समय इस पठान सत्संगी ने शैदो, हजरो तथा आस-पास के इलाके के सत्संगियों की रक्षा की और उन्हें सही सलामत हिन्दुस्तान पहुँचने में मदद दी।

हुज़ूर के वर्तमान पाकिस्तान के दौरें अक्तूबर १९४६ तक होते रहे। नवम्बर १९४६ में हुज़ूर अस्वस्थ हो गये और २८ नवम्बर १९४६ के बाद

हुज़ूर को सत्संग के दौरे बन्द करने पड़े।

बाबाजी महाराज के जन्म-स्थान घुमान में हुज़ूर सत्संग के लिए कई बार तशरीफ़ ले जाते थे। घुमान की संगत के प्रति हुज़ूर का बहुत प्यार था। अपने सतगुरु के ग्राम की संगत होने के नाते आप उनको बहुत प्यार करते थे। घुमान में बाबाजी महाराज की कोठरी अभी भी उसी अवस्था में मौजूद है जैसी कि बाबाजी के समय में थी। हुज़ूर का घुमान का प्रोग्राम देखने लायक होता था। चारों ओर प्रेम और खुशी की लहर उमड़ उठती थी।

एक बार जब हुज़ूर घुमान तशरीफ़ ले गये तो घुमान के लोगों ने हुज़ूर के स्वागत में रेशमी कपड़े, बेल-बूटों की चादरें और फुलकारियें बिछाई हुई थीं। संगत के चेहरे खुशी और प्यार में चमक रहे थे। जब हुज़ूर सत्संग में आकर बिराजे तो हुज़ूर की ओर सबकी टकटकी लगी हुई थी। हुज़ूर संगत का प्रेम देख कर बहुत प्रसन्न हुए। सत्संग में हुज़ूर ने फ़रमाया, "मैं बाबाजी के गाँववालों का प्यार देख कर बहुत खुश हूँ। आप बाबाजी के बंस हो। मैं घुमान से बहुत खुश हूँ।......" इतना कहते-कहते हुज़ूर के नेत्रों से प्रेम के अश्रु बहने लगे और गला रुँध गया। संगत भी यह देखकर प्रेम-विभोर हो गई।

कुछ देर बाद संगत की ओर से एक सत्संगी ने अर्ज़ की, "सच्चे पातशाह! बाबाजी का मकान पुराना हो रहा है, उसे ठीक करके पक्का बनवा देवें।" इस पर हुज़ूर ने कहा, "मैं बाबाजी की याद में क्या नहीं बनवा सकता! मेरा बस चले तो पूरा मकान सोने का बना दूँ। लेकिन बाबाजी का हुक्म नहीं है।"

एक बार घुमानवालों ने हुज़ूर से विनती की, "सच्चे पातशाह! हम ज़मीदार (किसान) लोग हैं। मोटी अकल वाले हैं। हम सत्संग के उसूलों पर भी नहीं चल सकते, भजन-सिमरन तो क्या करना है। आप बख्शनहार हो, हमें बख्श लो।" हुज़ूर ने प्यार के साथ जवाब दिया, "आप तो बाबाजी के बंस हो। मैंने तो घुमान के कुत्ते को भी नहीं छोड़ना है, उसे भी ले जाऊँगा।"

घुमान ग्राम के सत्संगी और गैर-सत्संगी लोगों का हुज़ूर के प्रति बहुत-प्यार था। आज भी उनका यह प्यार वैसा ही बना हुआ है। घुमानवालों ने डेरे में बहुत सेवा की है और अब भी कर रहे हैं। जब भी कोई ज़रूरी काम या मेहनत और ज़िम्मेदारी का काम होता है तो खबर मिलते ही वे डेरे चले आते हैं और जब तक कार्य पूर्ण नहीं हो जाता यहीं रहते हैं। बाबाजी महाराज के वक्त की संगत की अब तीसरी पीढ़ी वहाँ चल रही है। पर उनका

डेरे और सतगुरु के साथ प्रेम वैसा ही है। घुमान के जैसे ही वडाला और मानको ग्रामों की संगत भी जब ज़रूरत होती है सेवा के लिये आ जाती है और तन-मन से डट कर सेवा करती है।

हुज़ूर उन छोटे-छोटे ग्रामों तक में जाकर सत्संग तथा नाम प्रदान करते रहते थे जो अब पाकिस्तान के सरहदी सूबे और पंजाब में स्थित हैं और जिनकी जन-संख्या चार-पाँच सौ से भी कम थी। हुज़ूर की उन अनेक यात्राओं का आज कोई विस्तृत वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है। सन् १९३३ की सर्दियों में एक दिन हुज़ूर अपनी कोठी से उतर कर सेवा में संगत को दर्शन देने जा रहे थे। सहसा लाइब्रेरी के पास एक काफी वृद्ध स्त्री ने आगे आकर महाराजजी को मत्था टेका। हुज़ूर ने उसको देख कर फ़रमाया, "माता, तूने १४ साल पहले खान्सपुर गांव में मुझसे नाम लिया था तभी डेरे आने की इजाज़त मांगी थी। १४ साल तू कहाँ रही ? तू राज़ी तो है ?" इतने वर्षों बाद भी सतगुरु द्वारा पहचाने जाने पर तथा महाराजजी के अपनत्वपूर्ण वचन सुनकर वह वृद्ध महिला ठगी सी खड़ी रह गई। उसकी दृष्टि हुज़ूर के प्रेमपूर्ण नेत्रों व उज्ज्वल मुख पर स्थिर थी और आँखों से आँसू बहे जा रहे थे। हुज़ूर ने प्यार के साथ उससे कुशल-मंगल पूछा। धीरे-धीरे उसने अपना वृत्तान्त सुनाया कि किस प्रकार पारिवारिक तथा आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह इतने वर्ष न आ सकी।

हम लोगों ने खान्सपुर ग्राम (जो कि अब पाकिस्तान में है) का नाम तक पहले न सुना था। इसी प्रकार अप्रैल १९३३ में जब हुज़ूर ने पहाड़ों की यात्रा की, उस समय कई छोटे-छोटे गांवों में जाकर सत्संग प्रदान किया। महाराजजी ने २ अप्रैल को डेरे से इस ३० दिन की लम्बी सत्संग-यात्रा पर प्रस्थान किया। जालन्धर, नवांशहर, जैजों, ललहली, सन्तोखगढ़, बनीबग्गी, खड्ड, कालसिंघी, दुस्साहड़ा, नैहरी, अम्ब, कोठेड़ा जसवालाँ, कलोह, सिगनई, नंगल, चलेट, गन्नू और अम्बोट में सत्संग तथा नाम प्रदान करने के उपरांत १ मई १९३३ को वापस डेरे तशरीफ़ लाये। इस पूरी यात्रा में आपने करीब-करीब रोज़ दो सत्संग प्रदान किये तथा ४९०० जीवों को नाम बख्शा।

हुज़ूर पंजाब से बाहर भी सत्संग के लिये पधारते रहते थे। उत्तर प्रदेश में पिसावा, बुलन्दशहर, खुर्जा, मेरठ आदि स्थानों में, मध्य-भारत में ग्वालियर, उज्जैन, देवास, इन्दौर आदि शहरों तथा देवली, चीड़ावत, कनासिया, बिलावली आदि ग्रामों में और महाराष्ट्र में बम्बई, पूना, सांगली, अमरावती आदि शहरों में सत्संग के लिये जा चुके थे। करीब-करीब सभी

स्थानों में नाम भी प्रदान किया था। इन सभी स्थानों में आज सत्संग-घर बन गये हैं और गांवों तथा दूर से आनेवाले सत्संगियों के लिए शेड, लंगर और अन्य सुविधाओं का निर्माण हो चुका है। देवली, कनासिया आदि छोटे छोटे गांवों में अस्सी-नब्बे प्रतिशत सत्संगी हैं और इन स्थानों में प्रतिदिन सत्संग होता है। यह सब हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी द्वारा डाले गये बीज हैं जो आज बढ़कर लहलहा रहे हैं।

हुज़ूर की सत्संग-यात्राओं का यहाँ क्रमवार तथा विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है क्योंकि रायसाहब मुंशीरामजी ने अपनी डायरी में हुज़ूर के दौरों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

सन् १९११ में जब हुज़ूर ने डेरे में आकर सत्संग शुरू किया उस समय सत्संगियों की संख्या बहुत थोड़ी थी। बाबाजी महाराज ने लगभग २४०० जीवों को नाम-दान दिया था। उन दिनों हर इतवार को सत्संग होता था जिसमें उपस्थिति २०० के करीब होती थी और छोटे सत्संग-घर में सभी लोग आ जाते थे। लेकिन हुज़ूर के सत्संग शुरू करने के कुछ समय बाद सत्संग में दिन दुगनी और रात चौगुनी तरक्की शुरू हो गई। सत्संगियों की संख्या बढ़ती गई और छोटे सत्संग घर में सबके बैठने को जगह न रही। अतएव उस सत्संग घर के बाहर पश्चिम की ओर के मैदान में सत्संग का प्रबंध किया जाने लगा। परन्तु कुछ ही समय बाद यह जगह भी कम पड़ने लगी। पहले हर इतवार को सत्संग होता था। फिर सप्ताह के स्थान पर हर पखवाड़े और बाद में मासिक सत्संग करना पड़ा। इस सत्संग में धीरे-धीरे चालीस-पचास हज़ार की हाज़िरी होने लगी। और आज तो मासिक सत्संगों में संगत की संख्या दो-तीन लाख से ऊपर हो जाती है।

सन् १९३३ में जब बड़ा सत्संग घर, बाबा जैमलसिंह हाल, का निर्माण शुरू हुआ तो उस समय दस हज़ार व्यक्तियों की उपस्थिति को पर्याप्त मान कर इसमें इतने ही लोगों के बैठने की जगह रखी गई। परन्तु इसके बनते-बनते ही संगत इतनी बढ़ गई कि हाल में सत्संग करना असम्भव हो गया। इस पर हुज़ूर ने फ़रमाया कि अब चाहे जितने बड़े हाल बनाये जायें, सत्संग तो मैदान में ही करने पड़ेंगे।

जैसे-जैसे संगत बढ़ने लगी कुछ रूढ़िवादी लोगों में घबराहट फैलने लगी। सन्त-मत के इस प्रबल प्रवाह को रोकने के लिए उन्होंने आलोचना, सत्संग के विरुद्ध प्रचार आदि शुरू किया, परन्तु इसका कोई असर न हुआ। आखिर कुछ जोशीले सिख नौजवानों ने "राधास्वामी मत विचारणी सभा"

नामक एक कमेटी बनाई। ये लोग सत्संग के समय तथा खास कर भण्डारों के दिनों में संगत को सत्संग में जाने से रोकने तथा सत्संग के विरुद्ध प्रचार करने की कोशिश करते थे। डेरे के सामने उन्होंने अपना अड्डा जमाया और बड़े-बड़े इश्तिहार लगा कर संगत को गुमराह करने की कोशिश करने लगे। सतगुरु तथा सन्तों के निर्मल रूहानी सन्देश के विरुद्ध जोशीले तथा कटुतापूर्ण भाषण और नारे लगाना आरम्भ कर दिया। परन्तु इसका कोई असर न होने पर उन्होंने ठीक सत्संग के समय कबड्डी तथा कुश्तियों का आयोजन शुरू किया।

संगत ने हुज़ूर महाराजजी से अर्ज़ की कि इन लोगों की कार्यवाही बरदाश्त से बाहर होती जा रही है। इस पर हुज़ूर ने फ़रमाया कि सब्र और धीरज से काम लो। इन लोगों के कार्य में कोई बाधा न डालो। अपना ख़याल सत्संग और अभ्यास की ओर रखो। साथ ही हुज़ूर ने आदेश दिया कि इन लोगों में से जो भी लंगर में खाना खाने आये उसे प्रेम के साथ भोजन कराया जाय तथा सत्संग में आने से उन्हें न रोका जाय।

भोजन के लिये और कोई स्थान न होने के कारण आन्दोलनकर्ता लंगर में खाना खाते। सेवादारों के प्रेम और सेवा की भावना, लंगर में मुफ़्त भोजन, भोजन की व्यवस्था, सत्संगियों के परस्पर प्रेम आदि से प्रभावित हो वे सत्संग में भी आने लगे। हुज़ूर के सरल व स्पष्ट सत्संगों के द्वारा गुरुवाणी का वास्तविक अर्थ समझने पर उनमें से कई नाम लेकर सत्संगी बनने लगे। कुश्ती, कबड्डी आदि देखने आने वाले लोग भी उत्सुकतावश सत्संग में आते और उनमें से कई नाम लेकर चले जाते। धीरे-धीरे विरोध समाप्त हो गया और आन्दोलन करने वालों ने उलटा असर होते देख कर अपना आन्दोलन बन्द कर दिया। कुछ समय बाद इस आन्दोलन के आयोजक हुज़ूर की सहिष्णुता, प्रेम और प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित होकर हुज़ूर के चरणों में आये और अपने व्यवहार के लिये क्षमा माँगी।

एक समय था जब पंजाब में सन्तों की शिक्षा तथा राधास्वामी नाम तक से कोई परिचित न था। आज हर शहर व ग्राम में अनेक सत्संगी हैं। पहले लोगों को इस नाम से एतराज था, परन्तु अब लोग राधास्वामी मार्ग के अनुयायी कहलाने में गर्व का अनुभव करते हैं। देह-धारी गुरु की आवश्यकता को लोग अब महसूस करने लगे हैं। पढ़े-लिखे लोगों में इस रूहानी शिक्षा के प्रति विशेष रुचि उत्पन्न हो गई है। हर सत्संग में सैंकड़ों की संख्या में शिक्षित वर्ग, अध्यापक, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, वकील व जज

८

शब्दाभ्यास की युक्ति सीख कर बड़े शौक और प्रेम से नाम की कमाई में लग रहे हैं। रूहानियत का प्रवाह आ गया है। सत्संगियों के पवित्र जीवन, सदाचार और नेक आचरण ने लोगों के दिलों पर गहरा प्रभाव डाला है और हर जगह सत्संग व रूहानियत की चर्चा होने लगी है। सन्त-मत के आलोचक भी अब इस बात को स्वीकार करते हैं कि सत्संगी शराब नहीं पीते, मांस नहीं खाते, रिश्वत नहीं लेते, ईमानदारी और नम्रता से जीवन बिताते हैं और किसी पशु या पक्षी को भी कष्ट नहीं पहुँचाते। यह सब हुज़ूर के सत्संगों तथा लम्बी श्रमपूर्ण सत्संग-यात्राओं का नतीजा है। हुज़ूर की दया-मेहर से सन्त-मत का प्रकाश संसार के कोने-कोने में पहुँच गया है और डेरा आज विश्व में रूहानियत का एक अनुपम केन्द्र बन गया है।

यह तो हुई बाहरी मेहर और कृपा की बात। जो आन्तरिक दया जीवों पर हो रही है उसका ज़िक्र कोई क्या करे! अन्तर में सतगुरु के ज्योतिर्मय स्वरूप के दर्शन, प्रकाश तथा रूहानी नज़ारे, धुन का प्रकट होना आदि निजी अनुभवों का वर्णन नहीं हो सकता। परन्तु इतना अवश्य है कि इन आंतरिक प्रसाद व कृपा का अनुभव करने वाले अनेक व्यक्ति संगत में मौजूद हैं। मरते समय जीवों की जो सँभाल होती है, उसकी मिसाल तो बहुत कम मिलती है। कलियुग का समय, न जीवों में संयम, न शरीर में बल, न मन में शक्ति और न हृदय में प्रेम और इस पर काम-क्रोध द्वारा छलनी की हुई बुद्धि! भजन-सुमिरन किससे होता है! परन्तु जीवों की सँभाल का यह हाल है कि जीव चोला छोड़ने से कई दिन पहले पुकार कर कह देते हैं कि सतगुरु महाराज अंतर में प्रकट हो गये हैं और फ़रमाते हैं कि तुम्हारा लेना-देना ख़त्म हो चुका है और अमुक दिन अमुक समय तुम्हें यहाँ से ले चलेंगे। और जीव प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए शरीर छोड़ जाते हैं। बड़े-बड़े सूरमा, पीर व महात्माओं के हृदय मौत के समय काँप उठते हैं, परन्तु सत्संगी उसका स्वागत करते हुए कहते हैं, 'जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द'। सतगुरु दीन-दयाल की महिमा का क्या बखान किया जाये।

५. कुछ विविध प्रसंग

माता किशन कौर जी का प्रयाण

माता किशन कौर जी का अपने पौत्र सरदार चरनसिंहजी के प्रति बहुत

प्यार था। आपकी इच्छा थी कि उनकी शादी देख कर जायें। जब जून १९४३ में सगाई हुई तो माताजी बहुत खुश हुईं और सरदार चरनसिंहजी से बोलीं कि अब शादी जल्दी कर ले। जब अपने पिता रायबहादुर शिव-ध्यानसिंहजी के साथ बीबी हरजीत कौर सगाई के बाद पहली बार डेरे आईं तो माताजी ने उन्हें अपनी गोद में बिठाकर बहुत प्यार किया। माताजी हुज़ूर महाराजजी से पूछा करतीं, "चरन की शादी कब करेंगे?" हुज़ूर जवाब देते, "तू अपना ख़याल इस ओर से निकाल ले। शादी आप ही हो जायेगी।"

माताजी ६-७ महीने डेरे में बीबी रली के पास रहती थीं। आप मार्च में आतीं और सितम्बर में वापस चली जातीं। सन् १९४४ में जब आईं तो अगस्त के तीसरे सप्ताह में बीमार हो गईं। बीमार होने से कुछ समय पहले आपने सरदार चरनसिंह जी से कहा, "मेरा ख़याल तो तेरी शादी देखकर जाने का था, लेकिन बाबाजी महाराज की मौज नहीं है।" फिर आपने चार सौ रुपये दिये और कहा, "इनसे कोई पसन्द की चीज़ लेकर मेरी तरफ़ से बहू को दे देना।"

बीमार होने से दो महीने पहले आपके घुटनों में दर्द रहने लगा। एक दिन जब महाराजजी ने पूछा कि क्या हाल है, तो आपने जवाब दिया कि गोड़े (घुटने) बहुत दुखते हैं। इस पर हुज़ूर ने हँसकर फ़रमाया, "लोगों से मत्थे भी तो तू ही टिकवाती थी।"

जिस वक्त बीमार थीं महाराजजी रोज़ दर्शन देने आते थे। कमज़ोरी की वजह से आप पलंग से उतर कर चरणों में मत्था नहीं टेक पाती थीं। अतएव अर्ज़ करतीं कि मत्था टेकना चाहती हूँ। आपके आग्रह पर हुज़ूर एक के बाद एक अपने दोनों चरण ऊपर उठा देते। माताजी बड़े भाव के साथ दोनों हाथों से चरण पकड़ कर अपना मस्तक उन पर रख देतीं। आप पिछले कई महीनों से जाने की इच्छा रखती थीं। हुज़ूर से अर्ज़ भी करती थीं। लेकिन हुज़ूर को पता था कि आपके दिल में अपने पौत्र की शादी देखने की इच्छा है, सो फ़रमाते कि बाबाजी से पूछ लो। अंतर में बाबाजी महाराज से अर्ज़ करतीं तो जवाब मिलता कि हमें कोई उज़्र (आपत्ति) नहीं है, लेकिन बाहर महाराजजी से पूछ लो। बाहर से हुज़ूर मना कर देते। जाने से तीन-चार दिन पहले हुज़ूर से नाराज़ हो गईं कि मुझे क्यों रोकते हो। आख़िर एक दिन जब हुज़ूर दर्शन देने पधारे तो इजाज़त दे दी और फ़रमाया, "अच्छा अब अन्दर ध्यान रखो।" आपका ख़याल अन्दर लग गया और रूह अंदर चली

गई। अंतिम समय तक यही हाल रहा।

७ सितम्बर १९४४ की सुबह जब श्री रामनाथ मेहता हुज़ूर के पास मत्था टेकने गये तो हुज़ूर ने एक तरफ ले जाकर उनसे फ़रमाया, "आज शाम को तुम्हारी अम्माजी चोला छोड़ देंगीं। तुम अभी लाहौर चले जाओ और वहाँ से मोतिया (मोगरा) के फूल और दूसरे खुशबूदार सफेद फूल ले आओ।" हुज़ूर ने यह भी बताया कि फूल कहाँ मिलेंगे, और कुछ अन्य सामान के लिये भी आदेश देते हुए कहा कि शाम को पाँच बजे वाली गाड़ी से सब सामान लेकर आ जाना। स्टेशन पर तुम्हारे लिये ताँगा भेज दिया जायेगा।

इतने में रामनाथजी मेहता ने देखा कि डाक्टर साहब हाथ में इंजेक्शन का पार्सल लिये हुए आ रहे हैं। उन्होंने हुज़ूर को इंजेक्शन बताये और कहा कि ये इंजेक्शन अम्माजी के लिये मँगवाये गये हैं और इनसे ज़रूर उन्हें फायदा होगा। हुज़ूर ने अम्माजी को इंजेक्शन देने की इजाज़त दे दी। जब डाक्टर साहब नीचे जा रहे थे तो रामनाथजी मेहता ने हुज़ूर से अर्ज़ की, "महाराजजी! आपने फ़रमाया है कि अम्माजी को आज चले जाना है। इस वक्त उनका खयाल अंदर लगा हुआ है। डाक्टर साहब उन्हें सुई चुभायेंगे और बड़े-बड़े इंजेक्शन देंगे। अब इस वक्त अम्माजी को क्यों परेशान किया जाये?"

इस पर हुज़ूर ने उत्तर दिया कि अगर डाक्टरों को इंजेक्शन न देने दें तो वे बाद में कहेंगे कि हम अम्माजी को बचा लेते पर महाराजजी ने पिचकारी नहीं लगाने दी। फिर हुज़ूर ने फ़रमाया, "डाक्टरों को अपना काम करने दो। तुम फ़िक्र न करो, अम्माजी का ध्यान ऊपर लगा हुआ है। जितनी मरज़ी इंजेक्शन दे लें, उनको कोई तकलीफ़ नहीं होगी।"

मेहता साहब तो उसी समय लाहौर के लिये रवाना हो गये। इधर शाम को चार बजे के करीब माता किशन कौर जी की साँस की गति बहुत धीमी हो गई। बीबी रली ऊपर महाराजजी के कमरे में गईं और अर्ज़ की कि अम्माजी का हाल कुछ ठीक नहीं दिखता। हुज़ूर सत्संग में जाने की तैयारी कर रहे थे, बोले, "कोई बात नहीं, मैं नहा कर आता हूँ।"

सन्त नहीं चाहते कि अन्त समय में जीव का खयाल बाहर की ओर आये, यहाँ तक कि उस समय खयाल बाहर देह-स्वरूप सतगुरु की ओर भी न जाये। सो हुज़ूर उसी समय नीचे न आये। जब स्नान करके नीचे आये तो माताजी चोला छोड़ गई थीं। बीबी रली ने कहा कि अमृतसर से लाल

रंग का शाल लाने के लिये आदमी भेज दिया जाये। हुज़ूर ने फ़रमाया कि शाल की ज़रूरत नहीं। मेरी सफेद चादर ओढ़ा कर ले चलना। इसी समय सत्संग की घण्टी बज गई। हुज़ूर ने बीबी रली से कहा कि संगत को खबर न देना, संगत को मैं खुद खबर दे दूँगा। हुज़ूर सत्संग में तशरीफ़ ले गये और हमेशा जैसे सत्संग शुरू फ़रमाया।

श्री रामनाथ मेहता शाहआलमी दरवाज़ा लाहौर से फूल खरीद कर शाम की ट्रेन से लौटे। स्टेशन पर ताँगा मौजूद था। आपने ताँगेवाले से पूछा कि डेरे का क्या हाल है? तो जवाब मिला कि सब ठीक है। यह सुन कर मेहता साहब घबराये कि जब मैं फूल तथा संस्कार का सामान लेकर ताँगे से उतरूँगा तो संगत क्या कहेगी। जब डेरे पहुँचे तो देखा कि हुज़ूर महाराजजी सत्संग कर रहे हैं। यह देख कर वे और भी परेशान हुए। सत्संग के अन्त में हुज़ूर ने संगत से कहा, "आपके माताजी आज चढ़ाई कर गये हैं, सो यहाँ से उठ कर चलें और संस्कार कर आयें।"

माताजी के पावन शरीर पर हुज़ूर की श्वेत चादर डाली गई। पवित्रता और निर्मलता के प्रतीक सुगन्धिमय श्वेत पुष्पों से अर्थी को सजाया गया। संस्कार ब्यास नदी के किनारे किया गया। हुज़ूर भी सारी संगत के साथ गये।

माताजी बड़ी सरल-हृदय और हँस-मुख महिला थीं। सबके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करती थीं और संगत को अपने बच्चों के समान प्यार करती थीं। उनका जीवन स्वच्छ और सादा था। रहनी बहुत ऊँची थी। जब बाबाजी महाराज ने यह निश्चय कर लिया कि उनके बाद हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी संगत की रहनुमाई करेंगे, तो उन्होंने एक दिन माता किशनकौर जी को अपने पास बुलाया, बड़े प्यार के साथ अपने चरणों में बिठाया और यह विचार प्रकट किया। साथ ही यह भी कहा कि "मैं चाहता हूँ कि अब से बाबू सावनसिंहजी ब्रह्मचर्य के साथ रहें। तुम्हारी क्या इच्छा है?" माताजी ने बड़ी नम्रता के साथ उत्तर दिया, "मैं आपके हुक्म में राज़ी हूँ। मेरी कोई इच्छा नहीं है।" इस पर बाबाजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए। फिर हुक्म फ़रमाया कि आज से बाबू सावनसिंह को पति-भाव से न देखना।

माताजी के मन में चिन्ता थी कि अगर बाबाजी हुज़ूर के कन्धों पर सत्संग और गुरु-गद्दी का भार डाल रहे हैं, तो मेरे बच्चों का क्या होगा? जब आपने यह भाव प्रकट किया तो बाबाजी महाराज ने बड़े प्यार के साथ आपके सर पर हाथ रखा और कहा, "बच्चू, उनकी कोई फिकर न कर। तेरे बच्चों का मैं ज़िम्मेवार हूँ।"

माताजी की उम्र उस समय ३५ वर्ष की थी। तीनों पुत्र अभी छोटे थे। सबसे छोटे सुपुत्र सरदार हरबंससिंहजी की उम्र तो चार-पाँच वर्ष की थी। माताजी ने उस दिन से हुज़ूर को कभी पति रूप में नहीं देखा। जब हुज़ूर ने गद्दी सँभाली तो आप उन्हें हमेशा गुरु के रूप में देखती रहीं। सारी उम्र गुरु के हुक्म में रहीं।

सरसा की ज़मीन

हुज़ूर महाराजजी का विचार था कि मौण्टगुमरी या सरगोधे में कुछ ज़मीन खरीद लें। जब बाबाजी महाराज से पूछा तो उन्होंने जवाब दिया कि यह बार (प्रदेश) तो कई दफ़ा उजड़ी है और कई दफा बसी है। मैं ज़मीन तुम्हें ऐसी जगह लेकर दूँगा जहाँ से तुम्हें हिलना नहीं पड़ेगा। फिर हुज़ूर ने सरसा में १९१२-१३ में शहर से पाँच-छः मील दूर ज़मीन खरीदी। उस समय यहाँ ज़मीन बहुत सस्ती थी।

जब हुज़ूर ने ज़मीन खरीदी उस समय इस ज़मीन में रेगिस्तान, टिब्बे और कँटीली जंगली झाड़ियाँ थीं। पानी का कहीं पता ही न था। ऐसी ज़मीन में खेती करना तो मेहनत का काम था ही, लेकिन वहाँ जाकर रहना भी कुछ कम हिम्मत का काम न था। चारों ओर वीरान था, साँप-बिच्छू की कोई कमी न थी और आस-पास के गाँवों में अराईं आदि जराइमपेशा लोगों की बस्ती थी।

कुछ समय बाद जब सरदार भगतसिंह और रायसाहब मुंशीराम के साथ हुज़ूर ज़मीन पर गये तो सरदार भगतसिंह ने कहा, "हुज़ूर, अगर कोई मुझे यहाँ मुफ्त ज़मीन दे तो भी न लूँ।" इस पर हुज़ूर ने हँस कर फ़रमाया, "ज़मीन की कदर ज़मीदार ही जानता है। मेहनत करने पर यह ज़मीन बहुत उपजाऊ साबित होगी।" आज हरियाना में यह सबसे अच्छा और उपजाऊ इलाका माना जाता है।

घर के लोग हुज़ूर से अर्ज़ करते कि "हुज़ूर, सिकन्दरपुर अराइयों का गाँव है। उनके साथ कैसे गुज़ारा कर सकेंगे?" हुज़ूर जवाब में फ़रमाते, "प्यार के साथ।" हुज़ूर का अपने परिवार के लोगों को यही आदेश था कि सबके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करो। उनके सुख-दुख का खयाल रखो, कठिनाई के समय में उनकी मदद करो। कुछ ही वर्षों में वे ही गाँव वाले हुज़ूर और हुज़ूर के परिवार के प्रति बहुत प्यार और आदर के साथ पेश आने लगे। जब हुज़ूर वहाँ जाते तो आस-पास के मुसलमान आपके पास आते और रात को ११-११ बजे तक बैठकर अपनी समस्याओं तथा परमार्थ के विषय में बातें

करते रहते।

शुरू-शुरू में सरदार बचिंतसिंह जी बहुत घबराते थे। एक बार हुज़ूर से बोले, "हुज़ूर ने कहाँ ज़मीन ले ली है! चारों ओर ग़ैर-सत्संगी हैं। इससे तो हम महिमासिंहवाला में ही अच्छे थे।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "फ़िक्र न करो। यहाँ का झाड़-झाड़ राधास्वामी बोलेगा।" हुज़ूर के ये वचन आज पूरे हो रहे हैं।

ब्यास नदी और डेरा

सरदार अमरसिंह ग्रेवाल जब भी महिमासिंहवाला से डेरे आते तो हुज़ूर महाराजजी को ग्राम के हाल-चाल बताते। एक बार उन्होंने हुज़ूर को बताया कि गाँव के कुछ लोगों ने महन्त मित्तसिंह से पूछा कि लोग बाबू सावनसिंह के साथ क्यों लगे रहते हैं? महन्त मित्तसिंह ने जवाब दिया, "मैं भी दो-तीन बार ब्यास गया हूँ। दरियाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि बाबू सावनसिंह के पास कोई जादू का ग्रन्थ है। उसको पढ़ कर जब वे किसी आदमी की ओर देखते हैं तो उस पर जादू हो जाता है और उसी वक्त वह उनके ज़ेर असर हो जाता है।"*

यह सुन कर महाराजजी ने फ़रमाया, "वह सच कहते हैं। गुरु नानक साहिब की वाणी से बड़ा जादू और कौन-सा है!"

फिर सरदार अमरसिंहजी ने बताया कि इन्हीं लोगों में चर्चा के दौरान में एक शख्स ने कहा, "इन्होंने ब्यास नदी के किनारे डेरा बनाया है। उस वक्त राधास्वामियों को देखेंगे जब दरिया आयेगा और सब-कुछ बहा ले जायेगा।"

इस पर हुज़ूर महाराजजी ने जोश के साथ कहा, "बाबाजी की ताकत क्या दरिया से कम है!"

पहले दरिया डेरे से लग कर बहता था। एक-दो बार नदी में कुछ दुर्घटनाएँ भी हो गईं थीं। उन दिनों संगत ब्यास नदी के दूसरे किनारे से लंगर के लिए बालन काट कर लाती थी। दरिया के किनारे लम्बा मोटा घास होता है जिसे काट कर पूरे साल के लिये रख लिया जाता है। संगत सुबह नावों में दरिया पार करके दूसरे किनारे पर जाती और घास काट कर नावों में भर कर शाम को लाती थी। हुज़ूर खुद खड़े रह कर यह सेवा करवाते थे। कई बार घास लाते-लाते रात के ग्यारह बज जाते थे और कभी-कभी पानी के बहाव, हवा के रुख और ज्यादा वज़न भर लेने से नावों को लाने में बड़ी तकलीफ होती थी। हुज़ूर खुद रात को देर तक बैठे रहते। एक बार

---

*प्रभाव में आ जाता है।

इसी तरह बहुत देर हो गई। एक सेवादार ने अर्ज़ की, "हुज़ूर, दरिया में पानी का ज़ोर था। किश्ती लाने में बहुत देर लग गई। दरिया की वजह से बहुत परेशानी होती है।" इस पर हुज़ूर ने फ़रमाया, "चलो कोई बात नहीं। अगर बाबाजी की मौज हुई तो दरिया हट जायेगा और बरेती* इस तरफ हो जायेगी।"

इसके बाद दरिया का रुख धीरे-धीरे बदल गया और दरिया डेरे से हट कर करीब दो मील दूर चला गया है। अब इसी किनारे से पूरी बालन आने लग गई है।

माफी ही माफी

कई चोर और डाकू हुज़ूर के दर्शन करके और सत्संग सुन कर अपने पाप-पूर्ण व्यवहार को त्याग देते थे। लाभसिंह नामक एक डाकू ने जब हुज़ूर का सत्संग सुना तो अपना सामान और ज़मीन बेच कर उन सब लोगों का रुपया-पैसा वापस किया जो उसने एक वक्त लूटा था। हुज़ूर से नाम की बख्शिश प्राप्त की और उसका जीवन ही पलट गया। घुमान ग्राम में एक बलवन्तसिंह नामक डाकू था। जब उसने हुज़ूर के दर्शन किये और नाम प्राप्त किया तो डाकू से महात्मा बन गया। हुज़ूर के हुक्म से सत्संग करता था। जो लोग किसी समय उससे नफरत करते थे, वे ही प्यार के साथ उसका सत्संग सुनने लगे।

एक बार इस इलाके में एक खूँख्वार डाकू पकड़ा गया। पुलिस सब-इन्स्पेक्टर उसे गिरफ़्तार करके ले जा रहा था। रास्ते में ब्यास आया। डाकू ने सब-इन्स्पेक्टर से कहा, "सुना है यहाँ एक बड़े ऊँचे फ़कीर रहते हैं। जब मुझे ले ही जा रहे हो तो रास्ते में दर्शन करवा दो।" सब-इन्स्पेक्टर ने सोचा कि इसमें हरज क्या है, हम सब भी दर्शन कर लेंगे। अतएव उसने जीप डेरे की ओर मोड़ ली। सब ने हुज़ूर के दर्शन किये। सब-इन्स्पेक्टर ने हुज़ूर से कहा, "इस बदमाश डाकू ने कई ज़ुल्म किये हैं। आप दुआ करें कि हमारा केस कामयाब हो और इसे फाँसी की सज़ा मिले।" हुज़ूर महाराजजी ने मुसकरा कर फ़रमाया, "भाई, जिस सरकार का मैं सेवक हूँ उसके दरबार में तो सिर्फ माफी ही माफी है।" उस डाकू पर केस चला किन्तु वह छूट गया और सीधा हुज़ूर की शरण में आया। सत्संग सुना, नाम लिया और अभ्यास करके डाकू से साधू बन गया।

---

* नदी के किनारे की रेतीली ज़मीन।

दर्शन बन्द हो गये

एक बार सत्संग में एक प्रौढ़ ग्रामीण बीबी ने खड़े हो कर अर्ज़ की, "सच्चे पातशाह ! मुझे रोज़ अंदर आपके दर्शन होते थे । पर कुछ दिन से बंद हो गये हैं।" हुज़ूर ने कहा, "बीबी, तुझसे कोई गलती हुई होगी।" इस पर उस बीबी ने कहा, "कुछ दिन हुए मेरा जवान लड़का गुज़र गया। मैंने सतगुरु की मौज मान कर धीरज रखा। पड़ौसियों ने ताने सुनाये, पर मैंने ज़रा रोना-पीटना न किया। फिर घरवालों के साथ उसके फूल लेकर हरद्वार गई। वहाँ लोकलाज के खयाल से मैंने भी पूजा की और पैसे चढ़ाये । उसी दिन से आपने अन्दर आना बन्द कर दिया।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "अच्छा, बीबी! कान पकड़ कि आगे से ऐसा नहीं करेगी।" उस बीबी ने अपने दोनों कान पकड़े और बड़ी सरलता के साथ कहा, "मैं कान पकड़ती हूँ। आप भी कान पकड़ो कि अब अन्दर से नहीं जाओगे।" उस सीधी-साधी बीबी के भोलेपन पर हुज़ूर खिलखिलाकर हँस पड़े और साथ ही सारी संगत भी हँस पड़ी।

एक प्रेमी हरिजन

घुमान ग्राम का लैहना नामक एक हरिजन बड़ा प्रेमी और अभ्यासी सत्संगी था। डेरे में सत्संग व दर्शन के लिये आता रहता था। सत्संग में सब से पीछे बैठा करता था, परन्तु कुछ लोग उसे देख कर थोड़ा अलग हट जाया करते थे। यह देख कर एक दिन हुज़ूर महाराजजी ने उसे हुक्म दिया कि आगे आकर बैठे। वह झिझका लेकिन दोबारा हुज़ूर के हुक्म देने पर वह आगे आकर एक तरफ बैठ गया। जब वह बैठा तो वहाँ बैठे कुछ पढ़े-लिखे प्रतिष्ठित लोग अपने कपड़े समेट कर उससे ज़रा अलग हट गये। इस पर भाई लैहना को तनिक हँसी आ गई, लेकिन वह चुप रहा। उसकी मुसकराहट देख कर हुज़ूर ने फ़रमाया, "लैहना ! तेरे दिल में जो बात उठ रही है उसे ज़ाहिर कर दे।" ये वचन सुन कर भाई लैहना ने हाथ जोड़ कर अर्ज़ की, "हुज़ूर ! मेरी फूस की कच्ची झोंपड़ी है, टूटी हुई खाट और फटी, मैली रज़ाई है। हुज़ूर इन्हें बतला दें कि जिस रब को ये ढूँढते फिरते हैं और जिस के पीछे-पीछे भागते हैं, वह खुद हर रात मेरी झोंपड़ी में आता है, मेरी फटी मैली रज़ाई ओढ़ता है और मेरी बुक्कल (पार्श्व) में बैठता है।"

६. डेरे में निर्माण-कार्य

जिस समय हुज़ूर महाराजजी ने बाबा जैमलसिंहजी महाराज के दर्शन किये, उस समय डेरे में केवल एक कच्ची कोठरी तथा छोटी सी छप्परी थी।

कोठरी में बाबाजी का निवास था और छप्परी में बीबी रुक्को रहती और खाना पकाती थी। बाबाजी के समय में ही हुज़ूर महाराजजी के खर्च पर ये दोनों कोठरियाँ पक्की बना दी गई थीं और बीबी रुक्को की कोठरी के पास एक कोठरी और बना दी गई थी। स्वामी सागर कुआँ, छोटा व बड़ा सत्संग-घर, चौबारा, कमरे और बरामदा बनवाने का वृत्तान्त पहले दिया जा चुका है। केवल यही निर्माण हुज़ूर महाराजजी की गद्दीनशीनी के समय मौजूद थे। जब हुज़ूर ने १९११ में पेंशन लेकर डेरे में रहना शुरू किया तो निर्माण कार्य की गति बहुत बढ़ गई। डेरे में निर्माण कार्य का क्रम ऐसा शुरू हुआ कि बाबाजी के वचन के अनुसार और हुज़ूर की दया मेहर से आज तक चल रहा है और चलता रहेगा।

१९११ के बाद सबसे पहले वह दो-मंज़िली कोठी तैयार हुई जिसकी निचली मंज़िल में इस समय पुस्तकालय है। उस समय यहाँ खेत थे और डेरे की सीमा इस ओर स्वामी-सागर कुएँ तक समाप्त हो जाती थी। पश्चिम में डेरे की सीमा उस चबूतरे तक थी जो कि रा. ब. गुलवन्तराय और रा. ब. शंकरदास के मकानों के सामने है। इस चबूतरे पर फुलाही के पेड़ हैं। फुलाही के इन पेड़ों की बाड़ उस समय कच्ची मिट्टी की २-२॥ फीट ऊँची डोली अथवा मंड पर थी। उन मकानों के सामने की जगह अब खाली पड़ी है, वहाँ से वड़ाइच ग्राम को रास्ता जाता था। यह रास्ता वड़ाइच के बीच में से होकर पगडंडी की शक्ल में खेतों में से होता हुआ नदी के किनारे-किनारे ग्राम बुड्डाथेह की ओर जाता था। धीरे-धीरे डेरे का विस्तार होने लगा और नये मकान बन कर तैयार होने लगे।

हुज़ूर स्वयं एक कुशल तथा अनुभवी इंजिनियर थे। डेरे की सब इमारतें सड़कें, सम्पूर्ण योजना और ले-आउट हुज़ूर का अपना बनाया हुआ था। हुज़ूर के समय में डेरे में जितनी भी इमारतें बनी सब हुज़ूर के अपने निरीक्षण में बनी हैं। आप स्वयं खड़े रह कर अपने सामने कार्य करवाते थे तथा खुद मिस्त्रियों और इंजिनियरों को समझाते कि अमुक कार्य अमुक प्रकार से करना है। सबसे सुन्दर निर्माण, जो पंजाब की दर्शनीय इमारतों में गिना जाता है, वह बड़ा सत्संग-घर है जिसका नाम 'बाबा जैमलसिंह हाल' रखा गया है। यह भव्य सत्संग-घर हुज़ूर की अपनी डिज़ाइन (रूपांकन) है। इसका पूरा प्लान हुज़ूर ने खुद बनवाया था। यह स्वर्णकलशों से सजा हुआ भवन देखने योग्य है। इसकी नींव ३० सितम्बर १९३४ को हुज़ूर महाराज-जी ने अपने कर-कमलों से रखी। शब्दों में इसकी शान व सुन्दरता का बखान

सम्भव नहीं।

इस अद्वितीय सत्संग-घर के शिलान्यास का दृश्य भी अनुपम था। संगत खुशी और प्यार में फूली नहीं समा रही थी। जब इसका निर्माण-कार्य शुरू हुआ तो हुज़ूर ने स्वयं नींव रखी तथा पहली पांच टोकरी मिट्टी अपने सर पर रख कर खुद डाली। रावलपिंडी वाले लाला राजाराम सराफ इस अवसर के लिए एक चांदी का तसला और सोने की करण्डी बनवा कर लाये थे। हुज़ूर ने अपने शुभ हाथों से नींव का पत्थर रखा और उस पत्थर तथा नींव की ईंटों की चुनाई स्वयं की। नींव में संगममर का एक सन्दूक रखा गया जिसमें हुज़ूर स्वामीजी महाराज की वाणी "सार बचन छन्द बन्द", तत्कालीन सिक्के और हुज़ूर के सेक्रेटरी राय हरनारायण साहिब द्वारा लिखा गया डेरे का संक्षिप्त इतिहास रखा गया। इस इतिहास के नीचे हुज़ूर ने अंग्रेज़ी में 'अप्रूवड' (स्वीकृत) लिख कर अपने हस्ताक्षर किये। सन्दूक के चारों ओर ईंटों की चुनाई हुज़ूर ने अपने हाथ से की।

इस भवन का निर्माण पूरी तरह महाराजजी के निरीक्षण में हुआ। आप प्रतिदिन सुबह सात बजे से ग्यारह-बारह बजे तक तथा शाम को तीन चार बजे से छः सात बजे तक मौजूद रह कर सब कार्य तथा सेवा अपने सामने करवाते थे। जब निर्माण के किसी अंश को मिस्त्री या इन्जिनियर न समझ पाते तो हुज़ूर अपने सामने ईंटें रखवा कर छोटे रूप में कच्चा ढाँचा बना कर उन्हें समझाते। इस सत्संग-घर के निर्माण में संगत ने बड़े उत्साह के साथ सेवा की तथा बहुत-सा कार्य सेवा से पूर्ण किया गया। हुज़ूर संगत की प्रेम-पूर्ण सेवा देख कर बहुत प्रसन्न होते। महाराजजी सेवा पर हमेशा ज़ोर देते थे और फ़रमाया करते थे कि सेवा नकद सौदा है, सेवा करने वाला कभी घाटे में नहीं रहता।

शिलान्यास के समय जो भाषण दिये गये उन सबका यहाँ उल्लेख करना सम्भव नहीं। फिर भी राय हरनारायणजी तथा हुज़ूर महाराजजी के भाषण और डेरे के विषय में छोटा-सा लेख जो नींव में रखा गया है यहाँ दिये जाते हैं।

राय हरनारायण साहिब का भाषण

श्री हुज़ूर महाराजजी साहब और साध-संगत जी!

१. सबसे पहले मैं संगत से माफ़ी माँगता हूँ कि कल शाम आपको यह सूचना दी गई थी कि हुज़ूर परमपिता महाराजजी कल सुबह पहली अक्तूबर

को सात बजे नींव का पत्थर रखेंगे और मासिक सत्संग डेरे में (आज) किया जावेगा। बाद में विचार करने पर यह उचित प्रतीत हुआ कि दो जगह शामियाने लगाने और फर्श बिछाने के बजाय एक ही स्थान पर दोनों का प्रबन्ध किया जाय। यह आम रिवाज है कि जिस स्थान पर ऐसे शुभ व पवित्र कार्य सम्पन्न हों, वहाँ प्रसाद बाँटा जाय। अतएव प्रबन्धकों ने संगत को बिना मुँह मीठा कराये बिदा करना ठीक न समझा। इसके अतिरिक्त यह बात भी थी कि जिस स्थान पर हुजूर का तख्त लगाया गया है, यह वही स्थान है जहाँ सत्संग-घर के निर्माण के बाद हुज़ूर का तख्त हमेशा रखा जायेगा। इन सब बातों का विचार करते हुए रात को डेढ़ बजे हुज़ूर ने स्थान का निरीक्षण करके और संगत पर विशेष दया करके प्रबंधकों की इस प्रार्थना को स्वीकार किया।

२. जैसा कि आपको कल बताया गया था, हुज़ूर बाबा जैमलसिंहजी महाराज सन् १८८९ में सैनिक सेवा से रिटायर हुए और उसके बाद वड़ाइच व बलसराय ग्रामों के बीच इस स्थान पर अभ्यास करते रहे। आप एक सप्ताह के लिये ब्यास स्टेशन से रोटी लाकर पेड़ से लटका देते और जब भूख लगती तो उसमें से कुछ टुकड़े तोड़ कर नदी के जल में भिगो कर खा लिया करते थे। सन् १८९१ में हुज़ूर बाबाजी महाराज ने इस डेरे की बुनियाद डाली। उस समय इस जगह पर केवल एक कच्ची कोठरी मौजूद थी। हुज़ूर बाबाजी महाराज १८९४ में कोहमरी तशरीफ़ ले गये और वहाँ हुज़ूर बाबा सावनसिंहजी महाराज को नाम-दान बख्शा। हुज़ूर बाबा सावनसिंहजी ने बाबाजी महाराज के जीवन-काल में एक छोटा सत्संग-घर, एक बड़ा सत्संग-घर, 'स्वामी सागर' नामक एक कुआँ और सत्संगियों के लिए एक पक्की बैरेक का निर्माण करवाया।

३. बाबाजी महाराज हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी को अपना जानशीन नियुक्त करके १९०३ में ज्योति-ज्योत समा गये। अब आप देखते हैं कि डेरे में सैंकड़ों मकान लाखों रुपयों की लागत से बन चुके हैं। सत्संग का संदेश देश के विभिन्न भागों में और खासकर पंजाब के कोने-कोने में पहुँच चुका है। जो उन्नति डेरे ने हुज़ूर महाराजजी के समय में की है इसका इतिहास लिखने के लिये एक बहुत बड़े ग्रन्थ की ज़रूरत होगी। हुज़ूर महाराजजी साठ हज़ार व्यक्तियों को नाम-दान बख्श चुके हैं। हुज़ूर ने होशियारपुर ज़िले में एक महीने के दौरे में लगभग पाँच हज़ार जीवों को काल के पंजे से छुड़ा कर दयाल देश का भागी बनाया है।

४. हुज़ूर महाराजजी के परम पावन स्वरूप का जिसने एक बार दर्शन कर लिया वह पार हो गया। जिन व्यक्तियों को हुज़ूर का अन्तर में परिचय प्राप्त हुआ है, वे जानते हैं कि हुज़ूर कितने खण्डों-ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं। गुरु को समझना कोई आसान काम नहीं। केवल वही व्यक्ति गुरु को समझ सकता है जिसे वे यह दात बख्शें। सुजाखे को अन्धा कभी नहीं पकड़ सकता जब तक कि सुजाखा अन्धे को खुद अपना हाथ न पकड़वाये। हम लोग अंधे हैं। गुरु सुजाखा है, वह अन्तर में देखता है। हम लोग मन के विकारों में बरतते हैं और मन के कहे सब काम करते हैं। यही वजह है कि हमें पूरा विश्वास नहीं आता। मुबारक हैं आप जिन्हें पूरे गुरु के दर्शन प्राप्त हो गये। मुबारक है यह युग जब कि स्वयं सत्पुरुष देह धार कर अपको दर्शन दे रहा है। जिन्होंने इस समय परमपिता हुज़ूर महाराजजी—जो सतलोक और अनामी देश के मालिक हैं—की शिक्षा को मानकर उसके अनुसार आचरण किया, वे चौरासी के चक्कर से निकल कर सचखण्ड के अधिकारी हो गये। हुज़ूर के गुणों के एक अंश का वर्णन करना भी मानों सागर को गागर में बन्द करना है।

५. आपको मालूम है कि पहले दो भण्डारे हुआ करते थे—एक गरमियों में और एक सर्दियों में—जिनमें सात-आठ हज़ार व्यक्ति उपस्थित हुआ करते थे। ऐसे अवसरों पर प्रबन्ध में जो कठिनाइयाँ होती हैं, उनका खयाल रखते हुए भण्डारों के स्थान पर मासिक सत्संग का प्रबन्ध किया गया, जो अंग्रेज़ी महीने के आखिरी इतवार को होता है। अब प्रत्येक (मासिक) सत्संग स्वयं भण्डारे जैसा हो गया है। सब सत्संगियों को गुरु के लंगर से खाना मिलता है, जिसके लिये उनसे कुछ नहीं लिया जाता। जो सत्संगी अपनी इच्छा से सेवा-निधि में दे जाता है, वही महीने भर खर्च किया जाता है। उस रुपये से न हुज़ूर को कोई वास्ता है, न किसी और को। खर्च में न तो कभी कमी पड़ी, न ही इतना इकट्ठा हुआ कि किसी और काम में लाये जाने की बात सोची जाये। जैसा कि कबीर साहिब फ़रमाते हैं—

"कबीरा इतना माँगहु, जा में कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साध न भूखा जाय॥"

डेरे में कुछ व्यक्तियों को छोड़, जो बाग और मवेशियों की देखभाल करते हैं, कोई वेतन पाने वाला नहीं है। डेरे में करीब ७० या ८० साधू रहते हैं, जो सतगुरु-सेवा की भावना से प्रेरित होकर डेरे में सेवा करते हैं और बाकी समय भजन व अभ्यास में बिताते हैं।

६. अभी जो सत्संग-घर डेरे में हैं वे बहुत समय से सत्संग के लिये छोटे साबित हो चुके हैं। अरसे से सत्संग शामियानों के नीचे किया जा रहा है। परन्तु एक सबसे बड़ी कठिनाई जो अब महसूस होने लगी थी वह यह थी कि संगत को बैठने और सोने के लिये स्थान काफी न था। अतएव हुज़ूर महाराजजी ने, जो नेकी, दया और पवित्रता की सजीव मूर्ति हैं, दया फ़रमा कर यह तीसरा सत्संग-घर बनवाने का निर्णय किया। इसका खर्च लगभग एक लाख पचास हज़ार रुपया होगा। यह १००'×१४०' लम्बा-चौड़ा होगा और इसकी आकृति अंग्रेज़ी के 'T (टी) के समान होगी। इसका लकड़ी का बना एक नमूना बाबू गज्जासिंह साहिब इन्जीनियर इंचार्ज ने अपने मकान के दरवाज़े पर रखा हुआ है।

७. यह भवन पंजाब की दर्शनीय इमारतों में से एक होगा। आप इस के उद्घाटन के अवसर पर भी ऐसे ही उपस्थित होंगे जैसे कि आज शिलान्यास के समय आये हैं। सबसे अधिक धन्यवाद के पात्र बाबू गज्जासिंह साहिब हैं। वे मिलिट्री वर्क्स में एस. डी. ओ. हैं। आप अभी छुट्टी पर आये हुए हैं और शीघ्र ही सेवा-निवृत होकर आने वाले हैं। आप बालब्रह्मचारी हैं, आपने शादी नहीं की और सारी उमर भजन-सुमिरन में बिताई है। अब आप डेरे में रह कर इस नये सत्संग भवन को बनवा रहे हैं। धन्यवाद के दूसरे अधिकारी हैं रायबहादुर नारायणसिंह। आप उनकी उम्र को देखें, स्वास्थ्य को देखें, परन्तु उससे उनके सतगुरु-प्रेम का अनुमान नहीं लग सकता। आप भी प्रेम की मूर्ति हैं और इस काम के लिये डेरे में ठहरे हुए हैं। यद्यपि उनकी तन्दुरुस्ती उनको इज़ाजत नहीं देती, लेकिन प्रेम के वश हो हिम्मत कर रहे हैं। ऐसी-ऐसी हस्तियों को देख कर विश्वास होता है कि इमारत जल्दी पूरी हो जायेगी। मैं उन प्रेमी सत्संगियों के अलग-अलग नाम नहीं ले सकता जो मिस्तरी, क्लर्क, ओवरसियर आदि के रूप में इस कार्य में मदद दे रहे हैं और जिन्होंने अपने हाथों से सेवा करके लाभ उठाया है। मैं सामूहिक रूप से उनको धन्यवाद देता हूँ। इसके अतिरिक्त करीब १६० सत्संगी पन्द्रह दिन से कार्य कर रहे हैं, वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे कहा गया है कि बहुत संक्षेप में कहूँ। अतएव अब मैं अत्यन्त दीनता व आदर पूर्वक हुज़ूर महाराज परमपिता की सेवा में प्रार्थना करता हूँ कि हुज़ूर अपने पवित्र हाथों से इस रस्म को अदा फ़रमाएँ।

तुम सलामत रहो हज़ार बरस,
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार।

परम संत पूर्ण धनी हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी का भाषण

इस शुभ अवसर पर हुजूर ने एक छोटा-सा भाषण दिया, जो इस प्रकार है :—

"निवेदन है कि मैं इस ख़ुशी का बयान नहीं कर सकता जो मेरे जैसे कामी, क्रोधी, तुच्छ जीव को इस रस्म को अदा करने में होगी । यह मेरी ताकत और लियाकत नहीं है, बल्कि उस महापुरुष (बाबाजी महाराज) का काम है जिसने अपनी सारी उमर अभ्यास में गुज़ार दी ।

"मेरे पिता को साधुओं से मिलने का शौक था । वे चाहते थे कि कोई पूर्ण महात्मा मिले । सिख परिवार का सदस्य होने के कारण मैंने सात साल की उम्र में ग्रन्थसाहिब को पढ़ना शुरू कर दिया । मुझे वेदान्त का शौक भी था । मेरी संगति हर मजहब के बुजुर्गों के साथ थी । मैं किसी भेद-भाव या पक्षपात के साथ नहीं, बल्कि प्यार के साथ हर धर्म के बुज़ुर्गों से मिलता था । मुझे चाव था कि आर्य, सनातन, सिख, मुसलमान या किसी भी कौम का हो, कोई पूरा महात्मा मिले, चाहे भंगियो में मिले । बाईस वर्ष खोज में बीत गये, मगर ऐसा मनचाहा महात्मा न मिला जो मेरे सवालों का संतोष-पूर्ण जवाब देता । कई कमाई वाले महात्मा मिले । मैंने कहा कि कुछ बताइये । उन्होंने जवाब दिया, अभी समय नहीं आया, समय आयेगा । आखिर वह समय आ गया । मैं कोहमरी में एक्स. ई. एन. के बंगले से काम करके आ रहा था कि महाराजजी* एक शिष्य के साथ मेरे पास से गुज़रे । महाराजजी ने उससे कहा कि हम इस आदमी के लिये (यहाँ) आये हैं । हमारा इस के साथ पिछले जन्म का सम्बन्ध है। वह हँस कर कहने लगा कि इसने तो 'फतह' भी नहीं बुलाई । महाराजजी ने फ़रमाया, 'इस बेचारे को क्या पता । आज से चौथे दिन यह हमारे पास आयेगा ।' सो बाबू काहनसिंह हेड-क्लर्क ने मुझसे कहा कि आप साधुओं के खोजी हो, आजकल एक पूर्ण महात्मा कोहमरी में आये हुए हैं । आओ दर्शन कर लो । उनकी कृपा से मैं बाबाजी महाराज के दर्शनों को गया । मेरे बाईस वर्षों के सवाल और संशय सब हल हो गये । चार दिन के बाद नाम के लिए अर्ज़ की । उन्होंने कहा, 'और सोच समझ ले ।' जब मैं पहले पढ़ी हुई पुस्तकों की ओर ध्यान करता तो तरह तरह के संकल्प पैदा होते । फिर एक दिन की छुट्टी ली और सत्संग की बरकत (प्रसाद) से सब संकल्प दूर हो गये । मुझे नाम बख्शा गया ।

"महाराज बाबाजी ने विवाह नहीं किया । सारी आयु अभ्यास में

---

* बाबा जैमलसिंहजी महाराज ।

बिताई। आगरा जाकर नाम लिया। चौंतीस वर्ष पलटन में रहे। चौंतीस वर्ष अभ्यास किया। ग्यारह वर्ष यहाँ (डेरे में) अभ्यास किया। कभी-कभी कहते थे कि दुनिया में समझायें किस को? मेरे कहने का मतलब है कि यह ताकत मेरी नहीं, जो कुछ हो रहा है उस महात्मा की कमाई की बरकत है, यह सब उसी कमाई का जहूर है। मैं तो जमीदार (कृषक) के 'डरावने' की तरह हूँ, जिसे कि वह जमीन में लगा छोड़ देते हैं। बाकी सब कुछ बाबाजी महाराज आप कर रहे हैं, मैं तो बतौर सेवक हूँ और उस महापुरुष का शुक्रिया अदा करता हूँ जिन्होंने साध-संगत की जूतियाँ झाड़ने की सेवा मुझे बख्शी है।"

अपने महान सतगुरु के ये गुरु-भक्ति, प्रेम और अत्यन्त नम्रतापूर्ण वचन सुन कर संगत भाव-विभोर हो गई, गले रुँध गये और नेत्र भर आये। इस छोटे किन्तु हृदय-स्पर्शी भाषण के बाद सतगुरु दीन-दयाल ने अपने पवित्र कर-कमलों से सत्संग-घर की नींव रखी।

नींव के पत्थर पर लेख

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय

आज दिन इतवार पन्द्रह आसोज संवत् १९८१ विक्रमी, तारीख ३० सितम्बर, १९३४ को इस राधास्वामी सत्संग-घर की नींव का पत्थर परम सन्त पूरन धनी सतगुरु बाबा सावनसिंहजी महाराज, गद्दीनशीन डेरा बाबा जैमलसिंहजी महाराज, ने अपने पवित्र कर-कमलों द्वारा स्थापित किया। राधास्वामी अर्थात सन्तमत के प्रवर्तक पहले गुरु परम सन्त पूरन धनी सेठ शिवदयालसिंहजी—प्रसिद्ध नाम हुजूर राधास्वामी साहिब—आगरा निवासी के बाद बाबा जैमलसिंहजी दूसरे गद्दीनशीन (हुए) और उनके बाद बाबा सावनसिंहजी महाराज तीसरे सन्त-सतगुरु हुए।

इस डेरे की बुनियाद परम सन्त पूरन धनी सतगुरु बाबा जैमलसिंहजी महाराज ने विक्रम संवत १९४८ में रखी।

(इसी आशय का एक लेख अंग्रेजी में भी लिख कर रखा गया।)

निम्नलिखित लेख सारबचन छन्द-बंद, फोटो, सिक्के आदि के साथ सत्संग-घर की नींव में रखा गया :—

लेख

परम पुरुष पूरन धनी हुजूर स्वामीजी महाराज ने, जिनका असल नाम सेठ शिवदयालसिंह था, पन्नी गली शहर आगरा के एक प्रतिष्ठित सेठ खत्री घराने में जन्माष्टमी के दिन २५ अगस्त सन् १८१८ को जन्म लिया। आपके

सत्संग घर : नींव रखने का दृश्य

सत्संग घर
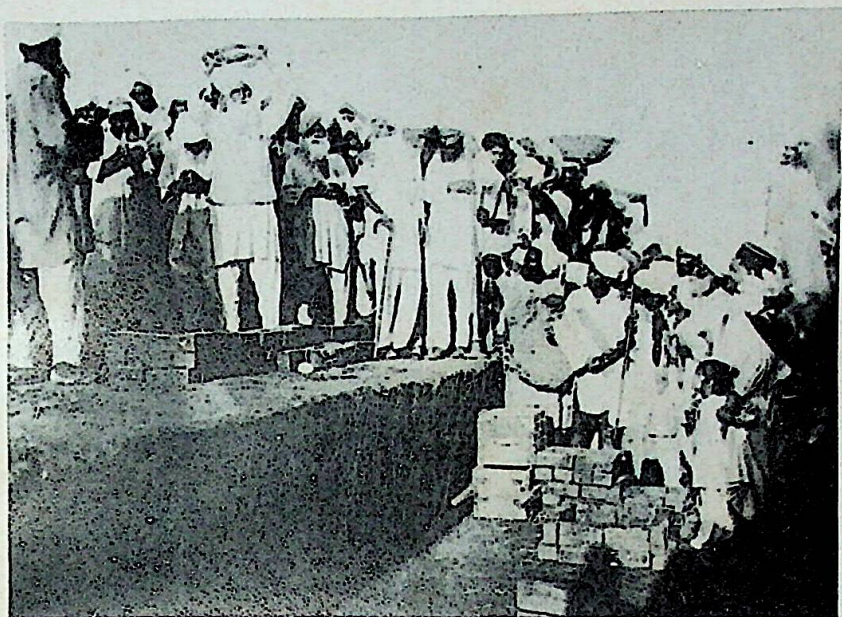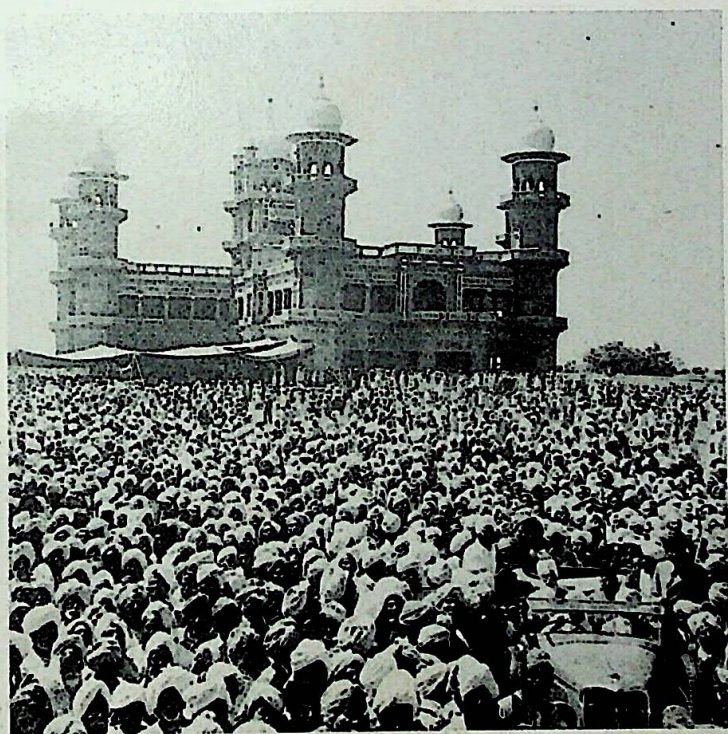
पिता का नाम सेठ दिलवालीसिंहजी था। आपके दादा सेठ मलूकचन्दजी रियासत धौलपुर में दीवान के पद पर शोभित थे। आपकी माताजी का नाम महामाया था, जो हाथरस वाले तुलसी साहब की बड़ी भक्त थीं। आपकी शादी कस्बा फरीदाबाद, ज़िला गुड़गावाँ के एक माननीय खत्री घराने में हुई थी। आपकी धर्मपत्नी का नाम नारायणदेवीजी था, जो बाद में राधाजी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। आपकी कोई सन्तान नहीं थी।

स्वामीजी महाराज ने छोटी उमर में ही सबसे ऊँचे परमार्थ का समझाना-बुझाना शुरू कर दिया था। आप लगभग सत्रह वर्ष तक अपने मकान के कमरे में, जो कि दालान के अन्दर था, सुरत-शब्द-योग का अभ्यास करते रहे। दो-दो दिन तक आप उस कमरे से बाहर नहीं निकलते थे और न ही इस समय में आवश्यक प्राकृतिक क्रियाओं की ओर तवज्जह होती थी। जनवरी सन् १८६१ में बसन्त पंचमी के दिन स्वामीजी महाराज ने पन्नी गली आगरा में आम सत्संग जारी फ़रमाया और सुरत-शब्द-योग के गूढ़ भेद को जो कुछ समय से गुप्त और पोशीदा हो गया था, फिर से जन-साधारण के लिये प्रकट किया और इस प्रकार जीवों पर दया व उपकार किया। स्वामीजी महाराज के समय में हर धर्म व सम्प्रदाय के लोगों ने तथा विभिन्न भेषों के मुखियाओं ने आपके उपदेश से लाभ उठाया। स्वामीजी महाराज १५ जून, सन् १८७८ को परम धाम सिधारे।

स्वामीजी महाराज के बाद सत्संग का काम रायबहादुर सालगराम ने, जो उत्तर-प्रदेश में पोस्टमास्टर-जनरल थे, पीपलमण्डी में और राधाजी तथा सेठ प्रतापसिंहजी (जो स्वामीजी महाराज के छोटे भाई थे) ने पन्नी गली और स्वामी बाग में जारी रखा। पंजाब में सत्संग की सेवा बाबा जैमलसिंहजी महाराज से ली गई, जो स्वामीजी महाराज के सेवकों में प्रमुख थे।

बाबाजी महाराज ज़िला गुरदासपुर के घुमान ग्राम में सन् १८३९ में एक जाट सिख परिवार में प्रकट हुए। उनके पिता का नाम सरदार जोधसिंह और माता का नाम बीबी दया कौर जी था।

बाबा जैमलसिंहजी महाराज

गुरु ग्रन्थसाहिब के अध्ययन से बाबाजी महाराज को पाँच शब्द तथा नाम का पता लगा। उसकी तलाश में आप विभिन्न सम्प्रदायों और पंथों के महात्माओं से मिलते रहे, परन्तु कोई उन्हें सन्तोषजनक उत्तर न दे सका। इसी खोज में, जब आप अठारह वर्ष के थे, हृषिकेश पहुँचे। वहाँ से तपोवन गये। वहाँ एक साधू ने आपको बताया कि आगरा शहर में पूर्ण सन्त-सतगुरु प्रकट हुए हैं जो पाँच शब्द का भेद बता

सकेंगे, जिसके बारे में आपने आदि-ग्रन्थसाहिब में पढ़ा है। यह जानकारी प्राप्त करके बाबाजी महाराज आगरा की ओर चल पड़े और बहुत तलाश करके स्वामीजी महाराज के निवास-स्थान का पता लगाया। कई दिन सत्संग के बाद जब बाबाजी के सब सन्देह दूर हो गये तो उन्होंने स्वामीजी से नाम का उपदेश लिया और स्वामीजी के हुक्म से आगरा में सिख पलटन नम्बर २४ में भरती हो गये। जो भी अवकाश बाबाजी को नौकरी से मिलता उसे वे भजन-सुमिरन में लगाते। पलटन में चौंतीस वर्ष नौकरी करने के बाद और स्वामीजी के सत्संग से भरपूर होकर सन् १८८९ में पेंशन पाकर ब्यास नदी के किनारे बलसराय और वड़ाइच ग्रामों के बीच में, जहाँ अब डेरा बाबा जैमलसिंह है, एक छोटी-सी कुटिया बना कर सुरत-शब्द-योग के अभ्यास में लीन हो गये।

बीबी रुक्को (जो बाबाजी महाराज की सेवा में रहा करती थी) के अनुरोध पर इसी स्थान पर सन् १८९१ में डेरे की बुनियाद डाली। अक्तूबर १८९४ में बाबाजी महाराज ने बाबू सावनसिंहजी को, जो कोहमरी में सब-डिवीज़नल अफ़सर मिलिट्री वर्क्स के पद पर थे, नाम बख़्शा। बाबू सावनसिंह जी ने बाबाजी महाराज के समय में एक छोटा सत्संग घर ३०'×१५' और एक बड़ा सत्संग-घर ५६'×२०' और एक कुआँ (बनाम स्वामी-सागर) डेरे में बनवाये। बाबाजी महाराज २९ दिसम्बर, १९०३ को बाबू सावनसिंहजी को अपना जानशीन नामज़द करके ज्योति-ज्योत समा गये।

बाबा सावनसिंहजी ने ५ सावन संवत १९१५ विक्रमी तदनुसार २० जुलाई सन् १८५८ को ग्राम महिमासिंहवाला, ज़िला लुधियाना के एक उच्च तथा प्रतिष्ठित जाट ग्रेवाल खानदान में जन्म लिया। आपके पिताजी का नाम सरदार काबलसिंहजी और माता जी का नाम जीवनीजी था। आपके पिता फ़ौज में सूबेदार-मेजर के पद पर सुशोभित थे। आप गूजरवाल ग्राम के स्कूल में एन्ट्रेन्स तक शिक्षा प्राप्त करके फ़ौजी स्कूल फरुखाबाद में शिक्षक के तौर पर दो वर्ष कार्य करते रहे। फिर सन् १८८४ में आप थामसन कालेज आफ़ इंजिनियरिंग, रुड़की में इंजिनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने के लिये दाखिल हुए और परीक्षा पास करने के बाद सन् १८८६ में मिलिट्री वर्क्स नौशहरा में नौकर हो गये। आप बाबा जैमलसिंहजी महाराज के ज्योति-ज्योत समाने के बाद १९०३ में गद्दी-नशीन हुए। आप नौकरी के समय में भी सत्संग के लिए डेरे तशरीफ़ लाया

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी

करते थे। मिलिट्री वर्क्स विभाग में बहुत सफलतापूर्वक नौकरी करने के बाद सन् १९११ में सब-डिवीज़नल अफ़सर के पद से पेंशन पाई और उस समय से निरन्तर डेरे में रह कर सत्संग सम्बन्धी महान कार्य कर रहे हैं। आपके द्वारा साठ हज़ार से अधिक स्त्री-पुरुष सुरत-शब्द-योग का अनमोल प्रसाद प्राप्त कर चुके हैं। सत्संग का सन्देश उत्तर प्रदेश, सरहद्दी सूबा, बम्बई, कलकत्ता, मध्य-भारत तथा खास तौर पर पंजाब में पहुँच चुका है। यहाँ तक कि अमेरिका में भी हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के अनेक सेवक पाये जाते हैं।

सत्संग के विस्तार के कारण डेरे में इस समय सैंकड़ों पक्के मकान कई लाख रुपयों की लागत से बन चुके हैं। डेरा ब्यास रेलवे स्टेशन से २॥ मील दूर है। सन् १९३२ से पहले एक कच्चा रास्ता नदी के किनारे वड़ाइच ग्राम से होकर डेरे को आता था। अब एक सीधी कच्ची सड़क वड़ाइच ग्राम के बाहर से डेरे तक सत्संगियों के खर्च से बनाई गई है। अब उसको पक्का करने के बारे में विचार किया जा रहा है। पुराने दोनों सत्संग-घर सत्संग के लिये छोटे साबित हो चुके हैं। अतएव इस नये सत्संग-घर (जिसका आकार १४०′×१००′ है) की नींव का पत्थर ३० सितम्बर, १९३४ को हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने रखा है।

डेरे के बीच में एक बड़ा ऊँचा मकान है जिसका कलस दूर से दिखाई देता है। यह मकान स्वर्गीय लाला मंगतराय पुलिस इन्स्पेक्टर ने बनवाया था। लाला मंगतराय बाबा जैमलसिंहजी महाराज के अन्तिम सत्संगी थे और १९११ में पुलिस सेवा से निवृत्त होकर १९२६ तक हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी के साथ डेरे और संगत की सेवा (सेक्रेटरी के रूप में) करते रहे। उनके चोला छोड़ने के बाद यह सेवा इन पंक्तियों के लेखक (रायसाहब लाला हरनारायण, रिटायर्ड एक्स्ट्रा एसिस्टेण्ट कमिश्नर) से ली जा रही है। डेरा खरीदी हुई ज़मीन में बनाया गया है और नये सत्संग घर का निर्माण बाबू गज्जासिंह साहब (सब-डिवीज़नल आफ़िसर मिलिट्री वर्क्स) और रायबहादुर सरदार नारायणसिंह ठेकेदार, देहली की निगरानी में हो रहा है। इस समय मासिक सत्संग हर महीने के आखिरी इतवार को होता है, जिसमें लगभग पन्द्रह हज़ार सत्संगी आते हैं। उनके खाने-पीने का प्रबन्ध सतगुरु के लंगर से किया जाता है।

सुरत-शब्द मार्ग के सिद्धांत

सुरत-शब्द मार्ग कोई नया रास्ता नहीं है। यह अभ्यास का वह तरीका है जो सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग में परम्परा से चलता आया है। न इसको कोई बदल सकता है और न इसमें कोई काट-छाँट

कर सकता है। जब यह मार्ग गुप्त हो जाता है तो सन्त-महात्मा आकर उसे फिर से चालू कर देते हैं। कबीर साहब, गुरु नानक देव, पलटू साहब, दादू, मौलाना रूम, शम्स तब्रेज़ आदि महात्मा इसी मार्ग का भेद प्रकट करनेवाले थे। इस मार्ग का किसी सम्प्रदाय, धर्म, जाति या देश से सम्बन्ध नहीं है। हर स्त्री व पुरुष इस नियामत का हकदार है। कुल मालिक एक है और उससे मिलने का तरीका भी एक ही है। वह मालिक घट-घट में व्याप्त है और पूरे सतगुरु के द्वारा मिल सकता है। जब तक पूरे सतगुरु से मिलाप न हो उस शब्द का पता नहीं लगता। हिन्दू इसे नाद या शब्द कहते हैं, मुसलमान इसे कलामे-रब्बानी या कलमा कहते हैं। गुरु साहब इसको गुरुवाणी, सच या हुक्म कहते हैं, ईसाई 'वर्ड' या 'कलाम' कहते हैं। विभिन्न सन्तों ने कुल मालिक को विभिन्न नामों से याद किया है। कबीर साहब उसको अनामी कहते हैं। गुरु नानक देव जी उसे स्वामी या निराला कहते हैं। स्वामीजी महाराज ने उस को राधास्वामी के नाम से पुकारा है। राधा से तात्पर्य आदि सुरत अर्थात् आत्मा से है और स्वामी से तात्पर्य कुल मालिक या आदि शब्द से है। इस-लिये स्वामीजी ने कुल मालिक का नाम राधास्वामी रखा।

लेखक के हस्ताक्षर—हरनारायण
(पेंशन प्राप्त एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर) एप्रूवड (स्वीकृत)
सेक्रेटरी—डेरा बाबा जैमलसिंह (हस्ताक्षर) सावनसिंह
३० सितम्बर, १९३४

७. विदेश में नाम का प्रचार

सन् १९११ सन्त-मत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण वर्ष है। भारत के एक सिख सत्संगी सरदार केहरसिंह केनेडा में केनेडियन स्टीमशिप लाइन्स में नौकर थे। १९११ में आपकी नियुक्ति केनेडियन पेसेफिक रेलरोड में हो गई। अपने कार्य के सिलसिले में आपको अमेरिका के उत्तर-पूर्वी तट पर स्थित वाशिंगटन स्टेट में भी जाना पड़ता था। यहाँ एक दिन शाम को सरदार केहरसिंह कहीं पैदल जा रहे थे कि रास्ते में पोर्ट एंज़लस (वाशिंगटन स्टेट) में रहने वाले एक अमेरिकन दम्पत्ति—डाक्टर और श्रीमती ब्राक—की दृष्टि आप पर पड़ी। उन्होंने देखा कि इस हिन्दुस्तानी सरदार के पीछे एक सफेद पगड़ी पहने, सफेद दाढ़ीवाले बुज़ुर्ग हैं, जिनका मुख अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक और ज्योतिर्मय है। वे अपने आपको रोक न सके और उन्होंने सरदार केहर-सिंह से पूछा, "ये आपके सिर पर दिखाई देने वाले दिव्य पुरुष कौन हैं?" यह

प्रश्न सुन कर केहरसिंह कुछ क्षण के लिये हैरान रह गये, फिर हुजूर महाराज जी की मौज समझ कर बोले, "ये मेरे सन्त-सतगुरु बाबा सावनसिंह जी महाराज हैं।"

परन्तु डॉक्टर और श्रीमती ब्राक इतनी सी बात से सन्तुष्ट न हुए। इस पर सरदार केहरसिंह ने उन्हें सन्त-मत तथा हुजूर महाराजजी के विषय में बताना शुरू किया। उनकी जिज्ञासा बढ़ती गई और वे सरदार केहरसिंह से बराबर मिलने लगे। कुछ दिनों में नाम के लिये उन दोनों के हृदय में इतनी तड़प उठी कि कहने लगे कि कैसे भी हो हमें नाम दिलाओ। हिन्दुस्तान तो हम जा नहीं सकते। इस पर सरदार केहरसिंह ने हुजूर को उनके बारे में पत्र लिखा। जवाब में सतगुरु दीन-दयाल का हुक्म आया कि डॉक्टर ब्राक और उनकी पत्नी को मेरी तरफ से नाम दे दो। सतगुरु की आज्ञा मानकर सरदार केहरसिंह ने उन्हें हुजूर की ओर से नाम दिया। इसके कुछ दिनों बाद सरदार केहरसिंह तो हिन्दुस्तान आ गये, लेकिन परमार्थ के अभिलाषी धीरे-धीरे डाक्टर ब्राक के पास आने लगे। डॉक्टर ब्राक को हुजूर ने अमेरिका में नाम देने के लिये अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

डॉक्टर ब्राक और उनकी पत्नी ने यह सेवा करीब बीस वर्ष तक की। कभी-कभी जब कोई जिज्ञासु उनके पास नहीं आ पाता तो ये अपने स्थान से दो-दो हज़ार मील लम्बा सफर करके उसके पास जाते। नाम देने से पहले वे हुजूर को नाम माँगने वाले का पूरा हाल लिख कर भेजते और जवाब में हुज़ूर की स्वीकृति मिलने पर नाम देते।

सन् १९३१ में डॉक्टर जान्सन एक अमेरिकन सत्संगी महिला श्रीमती जूलिया मेक्विलकिन के यहाँ आकर ठहरे। श्रीमती मेक्विलकिन की उम्र उस समय अस्सी वर्ष की थी और पन्द्रह-बीस साल पहले नाम ले चुकी थीं। डॉक्टर जान्सन उस समय एक सच्चे रूहानी मार्ग-दर्शक की खोज में थे। मेडिसन (चिकित्सा-विज्ञान) में डॉक्टरी (एम. डी.) पास कर चुके थे, ईसाई धर्म में भी डॉक्टर (डी. डी.) थे और ईसाई धर्म के प्रचारक पादरी बन कर एक बार हिन्दुस्तान भी आ चुके थे। पर इन सबमें कहीं सन्तोष नहीं मिला था। श्रीमती मेक्विलकिन ने जब सन्त-मत के विषय में कुछ बताया तो डॉक्टर जान्सन ने नाम के लिये इच्छा प्रकट की। डाक्टर ब्राक से सम्पर्क किया। हुजूर से स्वीकृति मिलने पर २१ मार्च, १९३१ को डॉक्टर जान्सन को श्री ब्राक के ज़रिये नाम-दान मिल गया।

उसी वर्ष श्री हारवे मेयर्स को भी नाम मिल गया। मेयर्स को महाराज

जी ने अपना प्रतिनिधि बनाया और उनके द्वारा अमेरिका में सत्संग शुरू हो गया। डाक्टर जान्सन को तो अपने सतगुरु से मिलने की तड़प थी। १९३२ में हुजूर से इजाजत मिलने पर अपनी बहुत अच्छी मेडिकल प्रेक्टिस, अपना निजी चिकित्सालय, मकान आदि सब छोड़ कर हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गये। जब डॉक्टर जान्सन के पुराने साथियों और परिचितों ने सुना कि वे किसी महात्मा की शरण में भारत जा रहे हैं तो बड़े हैरान हुए। कई लोगों ने उन्हें रोकने की कोशिश की, समझाया कि वहाँ न जाओ, वहाँ क्या रखा है, और दर्जनों पत्र लिखे। परन्तु डॉक्टर जान्सन की आन्तरिक अवस्था और लगन का उन लोगों को क्या अनुमान हो सकता था! लम्बी समुद्री यात्रा तय करके जब डॉक्टर जान्सन डेरे आये तो ऐसे आये कि आजीवन वापस जाने का नाम न लिया। डेरे में हुजूर के चरणों में रहे, खूब अभ्यास किया और सन् १९३९ में यहीं चोला छोड़ा।

यहाँ आकर डॉक्टर जान्सन ने दो पुस्तकें लिखीं। एक तो है उन पत्रों का संग्रह जो उन्होंने भारत से अमेरिकन सत्संगियों को लिखे, और दूसरी पुस्तक है सन्त-मत के सिद्धान्तों पर एक अध्ययनपूर्ण ग्रन्थ "दि पाथ आफ़ दि मास्टर्स"। इस समय तक विदेश के सत्संगियों व जिज्ञासुओं के लिए संत-मत की कोई पुस्तक अंग्रेजी में नहीं थी। हुजूर के द्वारा सत्संगियों और जिज्ञासुओं को लिखे गये पत्र ही उनके लिए एक-मात्र सन्त-मत का साहित्य था और कई बार वे हुजूर के पत्रों के अंशों को आपस में पढ़ते थे। इसी समय सरदार सेवासिंह (सेशन जज) ने सारबचन वार्तिक का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया और हुजूर की इजाज़त से वह भी प्रकाशित किया गया।

इंग्लैंड निवासी कर्नल सेण्डर्स जो कि ब्रिटिश सेना में एक अफ़सर थे, १९३७-३८ में हिन्दुस्तान में नियुक्त थे। वे १९३८ में हुजूर के चरणों में आये और नाम-दान प्राप्त किया। जब दिसम्बर, १९४३ में कर्नल सेण्डर्स वापस इंग्लैंड जाने लगे तो हुजूर ने उन्हें वहाँ के लिये अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। कुछ ही दिनों बाद इंग्लैंड में कर्नल मार्टिन और मिस रुग को नाम मिला और इस प्रकार इंग्लैंड और योरोप में सत्संग शुरू हुआ। कर्नल सेण्डर्स ने अंग्रेजी में एक छोटी पुस्तिका "इनर वायेस" (अन्तर की आवाज़) लिखी जो सन्त-मत के जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी सिद्ध हुई।

दक्षिण अफ्रीका में भी सन्त-मत का प्रारम्भ १९३५ और १९४० के बीच में हुआ। सर कॉलिन गार्बेट* पंजाब शासन में मुख्य-सचिव तथा अर्थ विभाग

* सर कालिन गार्वेट का अगस्त १९७२ में ९१ वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया है।

के आयुक्त थे। वे हुज़ूर के सम्पर्क में आये और सन्त-मत के विषय में पता चला। बाइबिल का गहरा अध्ययन किया हुआ था और रूहानी बातों में रुचि थी। जब हुज़ूर महाराजजी के दर्शन किये और सन्त-मत का पता चला तो विश्वास हो गया कि यही वह मार्ग है जिसका इशारा बाइबिल में है। हुज़ूर ने सर कॉलिन को नाम बख़्शा। इन्हीं दिनों में मेजर ई. पी. लिटिल और डाक्टर लेण्डर को भी नाम मिला। ये तीनों सज्जन रिटायर होने के बाद दक्षिण अफ्रीका में जाकर बस गये और इनके ज़रिये वहाँ सन्त-मत का प्रारम्भ हुआ। डॉक्टर लेण्डर लायलपुर कृषि कालेज में प्राचार्य (प्रिन्सिपल) थे। सरदार बहादुर जगतसिंहजी उन दिनों आपके कालेज में प्रोफ़ेसर थे। सरदार बहादुरजी के ऊँचे चरित्र, प्रेम-पूर्ण व्यवहार और पवित्र जीवन से डॉक्टर लेण्डर बहुत प्रभावित हुए और उनके ज़रिये ब्यास आकर हुज़ूर महाराजजी से नाम प्राप्त किया।

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी ने जो विदेशों में नाम की शुरूआत की और जो बीज बोया, वह आज फल-फूल कर एक विशाल वृक्ष का रूप ले रहा है। इसका पूरा विवरण आगे दिया जायेगा।

हुज़ूर के फ़ोटो

सत्संगी कई बार हुज़ूर से फोटो उतरवाने के लिये विनती करते थे। परन्तु हुज़ूर इजाज़त नहीं देते थे। हुज़ूर फ़रमाते कि लोग फोटो की पूजा करने लगेंगे और बाहरमुखी हो जावेंगे। विदेश से भी सत्संगी हुज़ूर के फोटो की याचना करते और पत्र लिखते रहते थे। एक बार एक विदेशी सत्संगी ने हुज़ूर का एक रेखा-चित्र बना कर भेजा और लिखा कि अन्दर मुझे इस स्वरूप के दर्शन हुए हैं। तब लोगों ने हुज़ूर से विदेश के सत्संगियों के लिए फोटो उतरवाने के लिये प्रार्थना की। हुज़ूर ने दया करके उनको भेजने के लिये फोटो उतरवाया। परन्तु धीरे-धीरे उस फोटो की प्रतियाँ हिन्दुस्तान में भी सत्संगियों ने लेनी शुरू कर दीं। जब प्रसिद्ध फोटोग्राफर बन्धु श्री रामचन्द्र मेहता और श्री रामनाथ मेहता सत्संगी बने तो हुज़ूर ने दया करके अपने फोटो लेने की आम इजाज़त बख़्श दी। लेकिन हुज़ूर हमेशा फ़रमाते थे कि फोटो की पूजा या फोटो का ध्यान नहीं करना चाहिये, बल्कि फोटो ऐसे रखना चाहिये जैसे घर के किसी बुज़ुर्ग या किसी मित्र की फोटो रखते हैं।

दोनों मेहता बन्धुओं ने हुज़ूर की मूव्ही फोटो भी लीं और उनकी मेहरबानी से आज संगत हुज़ूर महाराजजी की फिल्म देख कर अपनी याद ताजा कर लेती है।

८. डेरे का प्रबन्ध तथा हुज़ूर के वसीयतनामे

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के समय में डेरे ने बहुत उन्नति की तथा डेरे में और बाहर, सत्संग की काफी जायदाद हो गई। हुज़ूर दीन-दयाल ने इस जायदाद तथा डेरे में सेवा में आने वाली वस्तुओं व रकम का कभी अपने खुद के लिये अथवा अपने परिवार के लिये उपयोग नहीं किया। रूहानी दृष्टि से और सन्त-मत की परम्परा के अनुसार हुज़ूर इस समस्त सम्पत्ति के एक-मात्र स्वामी थे। परन्तु उन्होंने इसे हमेशा संगत की धरोहर के रूप में रखा, इसकी सँभाल की तथा इसकी वृद्धि और विकास में योग दिया। इतना ही नहीं बल्कि हुज़ूर अपनी निजी कमाई में से रुपया, सामग्री आदि बराबर सत्संग की सेवा में देते रहे तथा स्वयं अपनी सेवा द्वारा तन, मन और धन की सेवा का आदर्श स्थापित किया। इस सबको व्यवस्थित तथा कानूनी रूप देने के लिये हुज़ूर ने समय-समय पर वसीयतें बनाईं जिन्हें यहाँ दिया जा रहा है।

(१) ७९ वर्ष की आयु में महाराजजी ने ३० नवम्बर, १९३७ को अपनी पहली वसीयत बनाई जिसे उसी दिन रजिस्टर भी करवा दिया। इस वसीयत में हुज़ूर ने अपनी व्यक्तिगत या निजी सम्पत्ति तथा रूहानी सम्पत्ति का विवरण दिया और अपनी निजी सम्पत्ति की अपनी सन्तान के पक्ष में वसीयत कर दी; और अपनी रूहानी अथवा परमार्थी सम्पत्ति के विषय में हुज़ूर ने लिखा कि इस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी वह व्यक्ति होगा 'जिसे मैं एक अलग वसीयत के द्वारा डेरा बाबा जैमलसिंह में अपने स्थान पर जानशीन मुकर्रर करूँगा।' पूरी वसीयत इस प्रकार है:—

मैं, सावनसिंह (आयु लगभग ७९ वर्ष), आत्मज सरदार काबलसिंह, जाति जाट, निवासी डेरा बाबा जैमलसिंह, तहसील व ज़िला अमृतसर का हूँ। मैं दो प्रकार की सम्पत्ति का स्वामी व धारक हूँ। पहली मेरी निजी और पैतृक चल व अचल सम्पत्ति है जो मुझे अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में मिली है अथवा जो मैंने अपनी तनखाह व सरकारी पेंशन से अर्जित की है। ये सम्पत्तियाँ ग्राम महिमासिंहवाला ज़िला लुधियाना तथा सिकन्दरपुर रसूलपुर, कासनखेड़ा आदि, तहसील सरसा, ज़िला हिसार में स्थित हैं। दूसरी प्रकार की चल और अचल धार्मिक (परमार्थी) सम्पत्ति है जो या तो मुझे अपने गुरुसाहिब दिवंगत महाराज जैमलसिंह साहिब से उत्तराधिकार में मिली है या जो मैंने डेरा बाबा जैमलसिंह के गद्दीनशीन के रूप में उस धन से बनाई है जो राधास्वामी मत के, उपरोक्त डेरा के, सत्संगी समय-समय

पर भेंट देते रहे हैं। दूसरे प्रकार की सम्पत्ति का विवरण निम्नलिखित है।

(१) ग्राम बलसराय और वड़ाइच में डेरा बावा जैमलसिंह की चार-दीवारी के अन्दर स्थित कुल मकान व खुली जमीन।

(२) सत्संग-घर बड़ा व अन्य मकान, ज़मीनें व भूभाग (प्लाट) जो उपरोक्त डेरा बाबा जैमलसिंह की दोवार के बाहर बलसराय व वड़ाइच ग्रामों की सीमा में स्थित हैं।

(३) ग्राम वड़ाइच व बलसराय में स्थित कुल ज़मीनें।

(४) ग्राम बुड्डाथेह में स्थित कोठी व ज़मीनें (जो ब्यास रेलवे स्टेशन के सामने हैं)।

(५) कोठी मय ज़मीन व अहाता, मोहल्ला रघुनाथपुरा, शहर अमृतसर।

(६) कोठी मय ज़मीन व अहाता, रावो रोड, लाहौर।

(७) शहर रावलपिंडी, मोहल्ला गन्दानाला में स्थित सत्संग-घर और उससे लगी हुई दुकानें मय अहाता।

(८) ज़मीन और मकान, ग्राम घुमान, ज़िला गुरदासपुर।

(९) वह सब रुपया जो विभिन्न बैंकों में मेरे नाम पर जमा है, सिवाय उस रुपये के जो सत्संगियों का मकान बनाने के उद्देश्य से अमानत के रूप में जमा है और जिसका विवरण डेरा के कागज़ात में मौजूद है।

(१०) मोंटगुमरी में स्थित कोठी और उसका अहाता।

(११) कोठी मय अहाता कालाबाग़ नथियागली, ज़िला एबटाबाद में जिसकी भूमि के स्वामी ज़मीदार लोग हैं।

(१२) शहर झेलम में स्थित सत्संग-घर और उसका अहाता।

ऊपर लिखे मकानों और सम्पत्ति प्रकार दो के सिवाय बाकी तमाम चल व अचल सम्पत्ति मेरी निजी और पैतृक सम्पत्ति है जो कि पहली प्रकार की सम्पत्ति में शुमार होगी। मैं चाहता हूँ कि मेरे बाद किसी प्रकार का विवाद न हो। इसलिये मैं पूरे होश और हवास में, अपनी मरज़ी व खुशी से खुद यह वसीयत करता हूँ कि मेरी मृत्यु के बाद मेरी ऊपर लिखी पहली प्रकार की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी मेरी सन्तान होगी, अर्थात् दो पुत्र सरदार बचिंतसिंह व सरदार हरबंससिंह और एक पौत्र सरदार सतनामसिंह मेरी जाति में प्रचलित कानून और रिवाज़ के अनुसार इस सम्पत्ति के बराबर हिस्सों के स्वामी होंगे।

मेरी दूसरी प्रकार की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी और स्वामी वह व्यक्ति

होगा जिसे मैं एक अलग वसीयत के द्वारा डेरा बाबा जैमलसिंह में अपने स्थान पर गद्दीनशीन नामज़द व मुकर्रर करूँगा। वह मेरी तरह दूसरी प्रकार की सम्पत्ति का पूर्ण रूप से स्वामी होगा और उसे मेरी ही तरह उसके हस्तांतरण के पूरे अधिकार प्राप्त होंगे।

डेरा बाबा जैमलसिंह में कई सत्संगियों ने मकानों का निर्माण किया है। वे सब मेरे स्वामित्व और कब्ज़े की जगह पर मेरी इजाज़त से इस शर्त पर बनाये गये हैं कि जब तक मैं या मेरे बाद कोई उत्तराधिकारी जो उपरोक्त डेरा में वक्त का गद्दीनशीन हो, उन सत्संगियों को या उनकी सन्तान को जो उपरोक्त डेरा के गद्दीनशीन के अनुयायी हों, डेरा में निवास करने योग्य समझें तब तक वे निवास कर सकते हैं अन्यथा उन्हें निवास का कोई अधिकार नहीं होगा और मैं या मेरा जानशीन जिस समय चाहें उनको बेदखल कर सकते हैं। इस प्रकार बेदखल किये जाने पर उन सत्संगियों का या उनके उत्तराधिकारी अथवा नामज़द व्यक्ति का इन मकानों या इनके मलबा की कीमत पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं रहेगा। यदि कोई सत्संगी या उसका उत्तराधिकारी अपने बनाये हुए मकान को उपरोक्त डेरा के किसी दूसरे सत्संगी को हस्तांतरित करना चाहे तो मेरी इजाज़त या मेरे बाद मेरे जानशीन की इजाज़त से, जो हस्तांतरण के समय उपरोक्त डेरा में गद्दीनशीन हो, हस्तांतरित कर सकता है। राधास्वामी मत के अन्य केन्द्रों से मेरे बिरादराना सम्बन्ध हैं, किन्तु उनमें से किसी का कोई सम्बन्ध मेरी दूसरी प्रकार की (परमार्थी) सम्पत्ति से नहीं है और न ही मेरा कोई सम्बन्ध उनकी सम्पत्ति से है। इसी प्रकार किसी अन्य जाति या धर्म वालों का कोई सम्बन्ध मेरी दूसरी प्रकार की (परमार्थी) सम्पत्ति से नहीं है। यह डेरा और इससे सम्बन्धित जायदाद मेरे एक-मात्र स्वामित्व की सम्पत्ति है और मेरे बाद मेरे द्वारा नामज़द जानशीन की भी एक-मात्र स्वामित्व की सम्पत्ति होगी। अतः यह वसीयत लिख दी है कि सनद रहे।

३० नवम्बर, १९३७	(हस्ताक्षर) सावनसिंह
गवाह :—	गवाह :—
(हस्ताक्षर) हरनारायण	(हस्ताक्षर) कालासिंह
रिटायर्ड ई. ए. सी.	रिटायर्ड आनरेरी केप्टन,
डेरा बाबा जैमलसिंह	नूसी

(२) पाँच वर्ष बाद जब यह देखा गया कि परमार्थी सम्पत्ति में और वृद्धि हो चुकी है तो हुज़ूर ने २६ अप्रैल १९४२ को एक पूरक (कोडिसिल)

वसीयत की । यह वसीयत ७ जुलाई १९४२ को रजिस्टर की गई । इस पूरक वसीयत के द्वारा उस सब परमार्थी सम्पत्ति को, जो पहली वसीयत के बाद प्राप्त की गई थी, और जो हुजूर के जानशीन को उत्तराधिकार में मिलने वाली थी, पहली वसीयत में दी गई परमार्थी सम्पत्ति की सूची में शामिल कर दिया गया। यह पूरक वसीयत इस प्रकार है :—

मैं सावनसिंह आत्मज सरदार काबलसिंह, जाति जाट, शिष्य हुजूर महाराज बाबा जैमलसिंहजी, राधास्वामी, डेरा बाबा जैमलसिंह, तहसील व ज़िला अमृतसर का निवासी हूँ और पूर्णतया स्वस्थ शरीर और पूरे होश हवास में यह लिखता हूँ कि मैंने एक वसीयतनामा तारीख ३० नवम्बर १९३७ में लिख कर रजिस्ट्री करवाया हुआ है । क्योंकि मैंने उपरोक्त वसीयतनामा लिखने के बाद खरीद वगैरह के द्वारा धार्मिक सम्पत्ति प्राप्त की है और नई खरीदी हुई भूमि पर पहले की तरह ब्यास के सत्संगियों के लाभ के लिये मकान बनाये हैं, इसलिये इस सम्पत्ति के संबन्ध में एक पूरक वसीयत करना उचित समझता हूँ जो निम्नलिखित है :—

(१) डलहौज़ी में स्थित एल्समीयर और कोज़ीनुक नामक दो कोठियाँ और उनका अहाता और उनसे सम्बन्धित ज़मीन तथा मकान । यह सम्पूर्ण सम्पत्ति मेरे निवास, सत्संग, उपदेश और भजन-सुमिरन के लिये इस्तेमाल होती है ।

(२) मुलतान में स्थित सत्संग-घर मय इमारतों व उनसे सम्बेन्धित ज़मीनों के ।

(३) कोठी ग्राम परौर, ज़िला कांगड़ा में तथा उससे संबन्धित ज़मीन मकान और भूभाग ।

(४) वे सब सत्संग-घर जो होशियारपुर और कांगड़ा के ज़िलों में स्थित हैं और उनसे सम्बन्धित सब अधिकार ।

(५) डसकाह, ज़िला सियालकोट में स्थित सम्पत्ति व सत्संग-घर ।

(६) गुजराँवाला में स्थित सम्पत्ति व सत्संग-घर ।

(७) सियालकोट में स्थित सम्पत्ति तथा सत्संग-घर ।

यह कुल सम्पत्ति मेरे सत्संग, उपदेश व इबादत के लिये प्रयोग में लाई जाती है । इस सम्पत्ति के साथ अन्य धार्मिक संपत्ति की तरह ,जिसका वर्णन पिछली वसीयत में आ चुका है, मेरी सन्तान का कोई संबन्ध नहीं होगा । मेरे बाद इसका स्वामी मेरे द्वारा नामज़द किया हुआ जानशीन होगा और उसे उपरोक्त संपत्ति से सम्बन्धित वे समस्त अधिकार प्राप्त होंगे जो मुझे

मेरे जीवनकाल में प्राप्त हैं। शब्द-सनेही, सचखण्ड अनामी के वासी सन्तों की यह रीति अनादि काल से चली आई है कि उनके शिष्य अर्थात उनके चिताये हुए सत्संगी उन्हें कुल मालिक का रूप समझते हैं और इसलिये सम्पूर्ण धार्मिक सम्पत्ति जो उनके नाम में हो उनके स्वामित्व की सम्पत्ति होती है, जिसके सम्बन्ध में उनको उसके हस्तान्तरण के पूरे अधिकार होते हैं तथा किसी को भी उनके पूर्ण तथा व्यापक अधिकारों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता। किन्तु ऐसे सन्त, स्वामी होते हुए भी इस सम्पत्ति अथवा इससे प्राप्त आय का अपने निजी या व्यक्तिगत कार्य के लिये उपयोग नहीं करते, बल्कि अपने सत्संगियों के आध्यात्मिक उद्धार व लाभ के लिए इस सम्पत्ति व इससे प्राप्त आय का प्रयोग करते हैं। मेरे सतगुरु बाबा जैमलसिंहजी महाराज, जिनकी डेरा बाबा जैमलसिंह यादगार है, उन्हीं पूर्ण सन्तों में से हैं, और उनकी लाइन अब तक चल रही है और आगे भी सिलसिलेवार चलेगी। चुनांचे मेरा भी यही तरीका चला आया है कि मैं अपना और अपनी सन्तान का निर्वाह निजी आय, पेंशन और अपनी कृषि-भूमि तथा अन्य व्यक्तिगत सम्पत्ति की आय से करता आया हूँ। इस संपत्ति का विवरण पिछली वसीयत में दिया जा चुका है। मेरे स्वामित्व की धार्मिक संपत्ति को या उसकी आमदनी को मेरे निजी, व्यक्तिगत या संतान के खर्च के लिये कभी प्रयोग में नहीं लाया गया है। अतः यह पूरक वसीयतनामा लिख दिया कि सनद रहे और बवक्त ज़रूरत काम आये।

तारीख २६ अप्रैल, १९४२ (हस्ताक्षर) सावनसिंह

२६-४-४२

लिखने वाला :—

(हस्ताक्षर) हरनारायण

रिटायर्ड अतिरिक्त सहायक कमिश्नर,

डेरा बाबा जैमलसिंह।

गवाह :—

वसीयतकर्ता ने यह वसीयत मेरे सामने लिखवाई और मेरे सामने हस्ताक्षर किये।

(हस्ताक्षर)	(हस्ताक्षर)
मुन्शीराम, एम. ए.	बालकराम
रिटायर्ड पी. सी. एस	पी. सी. एस.

वसीयतकर्ता ने यह वसीयत मेरे सामने लिखवाई और मेरे सामने

हस्ताक्षर किये ।

(हस्ताक्षर) चन्द्र बंसी
रिटायर्ड सिविल सर्जन
२६-४-४२

सितम्बर १९४७ में ९० वर्ष की आयु में "दुनियावी कारोबार से छुटकारा पाकर अपना समय भजन-सुमिरन में बिताने के लिए" ताकि हुज़ूर को "आराम और सुविधा प्राप्त हो", हुज़ूर महाराजजी ने डेरे तथा उससे सम्बन्धित संस्थाओं की व्यवस्था और प्रबन्ध के लिये एक बड़ी विचारपूर्ण और व्यापक योजना बनाई। इस उद्देश्य से हुज़ूर ने तीन कमेटियां नियुक्त कीं। पहली मैनेजिंग कमेटी (प्रबन्धकारिणी समिति) थी जिसके अध्यक्ष (प्रेसीडेण्ट) स्वयं महाराजजी तथा उपाध्यक्ष (वाइस-प्रेसीडेण्ट) सरदार बहादुर जगतसिंहजी थे। डेरा तथा उससे सम्बद्ध देश और विदेश की सब संस्थाओं के नियंत्रण और प्रबन्ध के लिये यह प्रमुख प्रबन्ध-कारिणी समिति थी। राय साहिब मुंशीराम को इसका सेक्रेटरी और कोषाध्यक्ष नियुक्त किया गया। सरदार हरबंससिंह, सरदार बचिंतसिंह और मलिक राधाकिशन इसके सदस्य थे। दूसरी कमेटी जो हुज़ूर ने बनाई, वह एडमिनिस्ट्रेटिव कमेटी अर्थात् प्रशासकीय समिति थी। इसके पच्चीस सदस्य थे जिन्हें डेरे के अलग-अलग कार्य सुपुर्द किये गये थे। हुज़ूर महाराजजी इसके भी अध्यक्ष तथा सरदार बहादुर जी उपाध्यक्ष थे। इस कमेटी के सदस्य मैनेजिंग कमेटी के निर्देशन और नियंत्रण में अपना कार्य करते थे और मैनेजिंग कमेटी को इसके सदस्यों को घटाने, बढ़ाने या बदलने का पूरा अधिकार था। तीसरी एक साधारण सलाहकार समिति थी जिसके ५६ सदस्य भारत के विभिन्न भागों से लिये गये थे। इस कमेटी के भी हुज़ूर महाराजजी अध्यक्ष और सरदार बहादुर जगतसिंहजी उपाध्यक्ष थे।

इस ऐतिहासिक दस्तावेज़ के अन्त में हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी का निम्नलिखित आदेश है:—"कि उनके देहान्त के बाद भी यह प्रबन्ध जारी रहेगा और उनके बाद सरदार बहादुर जगतसिंह इन तीनों कमेटियों के अध्यक्ष होंगे और समस्त धार्मिक तथा परमार्थी अचल सम्पत्ति उनके नाम में रहेगी और वह उनकी निजी या व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं समझी जायेगी।"

यह पूरा दस्तावेज़ मलिक राधाकिशन खन्ना, एडवोकेट हाईकोर्ट, के अपने हाथ से लिखा गया है और गवाह के रूप में इस पर मलिक राधाकिशन खन्ना तथा लाला मुन्शीरामजी के हस्ताक्षर हैं। हुज़ूर महाराजजी ने

इस दस्तावेज़ के हर पृष्ठ पर तथा अन्त में हस्ताक्षर किये हैं।

डेरे के प्रबंध और प्रशासन की योजना

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी, सन्त-सतगुरु डेरा बाबा जैमलसिंह, के आदेश के अनुसार राधास्वामी संस्था और कालोनी जो डेरा बाबा जैमलसिंह के नाम से जानी जाती है, और सब ज़मीनें, मकान, सत्संग-घर और कुल चल और अचल सम्पत्ति जो इस संस्था से सम्बन्धित है, जो पूरे हिन्दुस्तान या विदेश में कहीं भी स्थित हो, उससे सम्वन्धित सभी प्रकार के कार्य के प्रबन्ध तथा प्रशासन के लिये निम्नलिखित योजना तैयार की गई है :—

महाराजजी की अध्यक्षता में तीन कमेटियाँ बनाई जायें जो इस प्रकार हों :—

(१) जनरल कमेटी (साधारण समिति)
(२) एडमिनिस्ट्रेटिव कमेटी (प्रशासकीय समिति)
(३) मैनेजिंग कमेटी (प्रबन्ध-कारिणी समिति)

(१) जनरल कमेटी के सदस्यों के नाम संलग्न तालिका नं. १ में दिये गये हैं। इस कमेटी का कार्य परामर्श देना होगा और इसकी बैठक वर्ष में कम से कम एक वार होगी, परन्तु अध्यक्ष (प्रेसीडेण्ट) के आदेश से अधिक बार भी हो सकती है। इसके उपाध्यक्ष (वाइस-प्रेसीडेण्ट) सरदार बहादुर जगतसिंह, रिटायर्ड प्रोफेसर कृषि कालेज, होंगे और जो श्री हुजूर महाराज जी की अनुपस्थिति में अध्यक्ष होंगे । राय साहिब लाला मुन्शीराम इस कमेटी के सेक्रेटरी होंगे।

(२) एडमिनिस्ट्रेटिव कमेटी के सदस्यों के नाम संलग्न तालिका नं. २ में दिये गये हैं। महाराजजी इस कमेटी के अध्यक्ष होंगे और सरदार बहादुर जगतसिंह इसके उपाध्यक्ष होंगे। रायसाहिब लाला मुन्शीराम इस कमेटी के सेक्रेटरी होंगे। यह एडमिनिस्ट्रेटिव कमेटी प्रमुख सेवादारों से निर्मित होगी जो उनको सुपुर्द किये गये विभागों के प्रधान माने जायेंगे और अपने-अपने विभागों के सुचारु, कुशल और ईमानदारी-पूर्ण कार्य करने के लिये उत्तर-दायी होंगे, ताकि ये विभाग राधास्वामी सत्संग, डेरा बाबा जैमलसिंह तथा इसके अनुयायियों के लिये और सत्संग की सम्पत्ति के लिये अधिक से अधिक लाभ-प्रद हो सकें। इस कमेटी के विभिन्न सदस्यों को दिये जाने वाले कर्तव्यों का ब्योरा संलग्न तालिका नं. २ में दिया जा रहा है। यदि इस कमेटी का कोई सदस्य अन्य सदस्यों से सलाह लेना चाहे तो ले सकता है। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष अपनी इच्छा से इस पूरी कमेटी की या इसके एक भाग की मीटिंग

जब चाहें और जिस कार्य के लिये चाहें बुला सकते हैं।

(३) डेरा बाबा जैमलसिंह की राधास्वामी संस्था, उससे सम्बद्ध सभी अन्य संस्थाओं और उसके अधिकार की सारी सम्पत्ति से सम्बन्धित सभी धार्मिक तथा लौकिक कार्यों के लिये मैनेजिंग कमेटी मुख्य प्रशासक मानी जायेगी। एडमिनिस्ट्रेटिव कमेटी, बिना किसी अपवाद या छूट के सभी बातों में मैनेजिंग कमेटी के आदेश और नियंत्रण में कार्य करेगी; जबकि आर्थिक और रुपये-पैसे सम्बन्धी सभी मामलों पर मैनेजिंग कमेटी का एक-मात्र अधिकार होगा।

इस मैनेजिंग कमेटी के सदस्य होंगे :—

१. हुज़ूर महाराजजी	प्रेसीडेण्ट (अध्यक्ष)
२. सरदार बहादुर जगतसिंह	वाइस-प्रेसीडेण्ट (उपाध्यक्ष)
३. राय साहब लाला मुन्शीराम	सदस्य
४. सरदार हरबंससिंह	सदस्य
५. सरदार बचिंतसिंह	सदस्य
६. श्री राधाकिशन खन्ना, एडवोकेट	सदस्य

राय साहिब मुन्शीराम इस कमेटी के सेक्रेटरी और कोपाध्यक्ष होंगे और सही तथा नियमित रूप से हिसाब रखने, रुपये-पैसे और आर्थिक मामलों के उचित प्रबन्ध तथा आफिस चलाने और आवश्यक रजिस्टर तथा पुस्तकें रखने के उत्तरदायी होंगे।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने आगे यह भी आदेश दिया है कि उनके देहान्त के बाद भी यह प्रबन्ध जारी रहेगा और उनके बाद सरदार बहादुर जगतसिंह इन तीनों कमेटियों के अध्यक्ष होंगे तथा समस्त अचल सम्पत्ति, धार्मिक या रूहानी सम्पत्ति के रूप में, उनके (सरदार बहादुर जगतसिंह के) नाम में रहेगी और वह उनकी निजी या व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं समझी जायेगी।

२०-९-४७	(हस्ताक्षर) सावनसिंह
गवाह :—	गवाह :—
(हस्ताक्षर) राधाकिशन खन्ना	(हस्ताक्षर) मुन्शीराम
एडवोकेट	रिटायर्ड पी. सी. एस.

तालिका नं. १

जनरल कमेटी के सदस्यों के नाम :—

१. मैनेजिंग कमेटी के सभी सदस्य

२. एडमिनिस्ट्रेटिव कमेटी के सभी सदस्य
३. बख्शी चाननशाह, एसिस्टेण्ट कमीश्नर ग्राय-कर
४. लाला रामनाथ लूथरा, डी. सी.
५. लाला प्रभुदयाल, सब-जज
६. मेहता रंगलाल, काटन क्लाथ कण्ट्रोलर
७. श्री रामेश्वर दयाल माथुर, पी. सी. एस.
८. सरदार बचित्तरसिंह, पी. सी. एस.
९. राव बहादुर शिवध्यानसिंह
१०. बाबू हेमचन्द्र, देहली
११. सरदार गुरबख्शसिंह, देहली
१२. लाला नन्दलाल, बार-एट-लॉ
१३. भगत कुन्दनलाल
१४. मेहता ईशरसिंह, देहली

१५. लाला रामोशाह १६. लाला बलदेव सहाय १७. लाला दीना नाथ १८. लाला बाबू राम	लखनऊ
१९. लाला ग्ररूड़ चन्द २०. लाला ब्रजलाल २१. लाला ग्रमरनाथ २२. लाला नाथूराम भटनागर २३. प्रो. गोरांलाल	ग्रमृतसर
२४. श्री एस. एस. भार्गव, देहरादून	
२५. श्री ग्रमरनाथ भार्गव, देहली	
२६. श्री साधूसिंह २७. श्री दलीपसिंह २८. श्री बलवन्तसिंह	घुमान
२९. श्री बूढ़सिंह ३०. श्री ग्रर्जुनसिंह ३१. श्री किशनसिंह लम्बरदार	वीला
३२. श्री चननसिंह	वड़ाइच

३३. श्री रामसिंह	वडाला
३४. श्री रामू मल ३५. श्री गैंडा राम	बुलन्दशहर
३६. श्री टी. टी. भवनानी ३७. दीवान लीला राम	कराँची
३८. बाबा सोमनाथ ३९. श्री ढोंढी राम	बम्बई
४०. सरदार प्रतापसिंह डोगरा ४१. प्रो० लेखराज ४२. श्रीमती धरम देवी ४३. श्री प्रेमसिंह ४४. श्री देवराज ४५. आर. एस. ज्ञानचन्द ४६. पंडित लालचन्द	ज़िला होशियारपुर
४७. ठाकुर दयालसिंह ४८. श्री नरोतचन्द ४९. लाला भगतराम ५०. लाला करतारचन्द ५१. सूबेदार वकीलसिंह ५२. मास्टर सरवनसिंह ५३. दफादार नन्दसिंह ५४. श्री बन्नूराम ५५. श्री किशन दयाल ५६. श्री प्यारासिंह	ज़िला काँगड़ा

(हस्ताक्षर) सावनसिंह

तालिका नं० २

एडमिनिस्ट्रेटिव कमेटी के सदस्यों के नाम तथा उनके सुपुर्द कार्य

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी प्रेसीडेण्ट (अध्यक्ष)	सम्पूर्ण नियंत्रण और देख-रेख।
सरदार बहादुर जगतसिंह वाइस-प्रेसीडेण्ट (उपाध्यक्ष)	हुज़ूर महाराजजी के नाम में डेरा बाबा जैमलसिंह में स्थित सभी खेती की ज़मीनों और डेरा बाबा

	जैमलसिंह में, भारत तथा विदेश में स्थित सभी अचल सम्पत्ति के इंचार्ज (ग्राम सिकन्दरपुर, रसूलपुर थेहड़ी, कासनखेड़ा और दड़बी, ज़िला हिसार में, सत्संग-घर सरसा में तथा ग्राम महिमासिंहवाला, ज़िला लुधियाना में स्थित ज़मीनों को छोड़कर जो कि हुज़ूर महाराजजी की निजी और व्यक्तिगत सम्पत्ति है); साथ ही समस्त आर्थिक और धन-सम्बन्धी मामलों में संयुक्त रूप से उत्तरदायी ।
राय साहब लाला मुन्शीराम सेक्रेटरी	आर्थिक और धन-सम्बन्धी मामलों के इंचार्ज और सब हिसाब-किताब तथा रेकार्ड आदि रखने के उत्तरदायी ।
सरदार हरबंससिंह (सुपुत्र हुज़ूर महाराजजी)	सब आर्थिक और धन-सम्बन्धी मामलों में संयुक्त रूप से उत्तरदायी ।
सरदार बचिंतसिंह (सुपुत्र हुज़ूर महाराजजी)	सब आर्थिक तथा धन-सम्बन्धी मामलों में संयुक्त रूप से उत्तरदायी ।
श्री राधाकिशन, एडवोकेट	सब आर्थिक तथा धन-सम्बन्धी मामलों में संयुक्त रूप से उत्तरदायी तथा सब कानूनी कार्य के ज़िम्मेदार ।
लाला त्रिलोक चन्द	इंजिनीयरिंग और भवन-निर्माण सम्बन्धी कार्यों के इन्चार्ज व उत्तरदायी ।
डाक्टर दीवान चन्द	इन्चार्ज स्वास्थ्य और चिकित्सा विभाग ।

स. हज़ारासिंहजी	स्वास्थ्य और चिकित्सा विभाग के संयुक्त रूप से उत्तरदायी ।
भाई शादी जी	इंचार्ज वर्कशाप और मशीनों का कार्य ।
स. कृपालसिंह	डेरा में आने वाले सत्संगी यात्रियों के निवास की व्यवस्था के इंचार्ज और सत्संग करने तथा परमार्थी साहित्य के लिये संयुक्त रूप से ज़िम्मेदार ।
स. जगतसिंह जाट वड़ाइच वाले	सरदार बहादुर जगतसिंह के आदेश और नियंत्रण में कृषि-सम्बन्धी कार्य ।
स. गोपालसिंह लट्ठा	कपड़ों के स्टोर के इन्चार्ज तथा कृपालसिंह के अधीन सत्संगी यात्रियों की आवास-व्यवस्था के ज़िम्मेदार ।
स. गुलाबसिंह बाबा रामेश्वर }	सत्संग करने के लिये संयुक्त रूप से ज़िम्मेदार ।
स. गोकुलसिंह	सत्संग करने के लिये संयुक्त रूप से ज़िम्मेदार; राय साहब लाला मुन्शीराम के आदेश और नियंत्रण में रसद-विभाग के इंचार्ज ।
मलिक हरीराम लाला दीवान चन्द लाला जगन्नाथ }	लंगर के सब कार्यों के संयुक्त रूप से इंचार्ज व उत्तरदायी ।
सूबेदार मेजर शिवसिंह सी बी. आई.	इंचार्ज पहरा, निगरानी व सुरक्षा डेरा बाबा जैमलसिंह ।
पं. साधुराम वकील	इंचार्ज सेवा-समिति, डेरा बाबा जैमलसिंह ।
खलीफा नियामत राय रा. ब. गुलवन्त राय }	कानूनी कार्य तथा अफसरों से मुलाकात करने के लिये संयुक्त

	रूप से ज़िम्मेदार ।
बीबी लाजो	महिला सत्संगियों के निवास व आराम की व्यवस्था की इंचार्ज ।
बीबी रक्खी	लंगर में भोजन बनवाने की इंचार्ज ।

(हस्ताक्षर) सावनसिंह

हुज़ूर महाराजजी ने इस योजना को २४ सितम्बर १९४७ को एक वसीयतनामा द्वारा अपनी स्वीकृति और समर्थन प्रदान कर दिया । यह वसीयतनामा निम्नानुसार है :—

मैं सावनसिंह आत्मज सरदार काबलसिंह, जाट ग्रेवाल, गद्दीनशीन राधास्वामी सत्संग, डेरा बाबा जैमलसिंह, तहसील व ज़िला अमृतसर का हूँ और अपने पूरे होश-हवास में, बहुत सोच-विचार के बाद लिखता हूँ कि मेरी निजी तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति ग्राम महिमासिंहवाला तहसील व ज़िला लुधियाना और ग्राम सिकन्दरपुर, रसूलपुर थेहड़ी, कासनखेड़ा, दड़बी, तहसील सरसा, ज़िला हिसार में स्थित है जिसके लिये मैं अलग वसीयत अपनी संतान के नाम कर चुका हूँ और उस वसीयत के अनुसार मेरी सन्तान मेरे बाद उस समस्त सम्पत्ति की पूरी मालिक होगी । एक सत्संग-घर सरसा में बना हुआ है । इसकी आधी भूमि जो शहर की ओर है वह परमार्थी सम्पत्ति है और दूसरा आधा भाग जो पश्चिम की ओर है वह मेरे पुत्र सरदार हरबंससिंह की निजी सम्पत्ति है । इस सत्संग-घर का हर प्रकार का प्रबन्ध व नियंत्रण मेरी सन्तान के अधिकार में रहेगा ।

उपरोक्त सम्पत्ति के अलावा बहुत-सी परमार्थी सम्पत्ति, चल व अचल, भूमि व मकान डेरा बाबा जैमलसिंह, ग्राम बलसराय और वड़ाइच, ज़िला अमृतसर में मेरे नाम है; और बैंकों में रुपया व खाते मेरे नाम में हैं । इसी प्रकार सत्संग-घर तथा उनसे सम्बन्धित सब प्रकार की सम्पत्ति शहर व ज़िला अमृतसर, लाहौर, गुजरांवाला, झेलम, रावलपिंडी, मोंटगुमरी, मुलतान व लायलपुर में, नथियागली व जिला हज़ारा में, शहर व जिला सियालकोट और डलहौज़ी, घुमान तथा गुरदासपुर जिले के अन्य ग्रामों में, सांगला हिल्स, जड़ाँवाला और शेखुपुरा ज़िले में तथा ज़िला होशियारपुर व कांगड़ा के विभिन्न स्थानों में, शहर व ज़िला जालन्धर, दिल्ली, क्वेटा (बलूचिस्तान) और सिंध में हैं । इस सम्पत्ति से मेरी सन्तान का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

मैं १९०३-१९०४ से अब तक राधास्वामी सत्संग की सेवा बतौर गद्दी-

नशीन के करता चला आया हूँ और अब मेरी आयु लगभग ९० वर्ष की हो गई है। वृद्धावस्था के कारण मैं सब कार्यों की स्वयं देख-रेख नहीं कर सकता। इसलिये मैंने तीन कमेटियाँ नियुक्त की हैं। इनमें से एक मैनेजिंग कमेटी है जिसका अध्यक्ष मैं स्वयं हूँ और उपाध्यक्ष सरदार बहादुर जगतसिंह, रिटायर्ड प्रोफेसर, कृषि कॉलेज लायलपुर हैं। इस कमेटी के सदस्य भी मैंने नियुक्त कर दिये हैं जिनके नाम अलग से अंग्रेज़ी में दर्ज हैं। रुपये-पैसे का सारा हिसाब-किताब इस मैनेजिंग कमेटी के हाथ में होगा और डेरा बाबा जैमल-सिंह से सम्बन्धित सब बातों पर, सम्पत्ति व विभिन्न स्थानों में स्थित सत्संग-घरों और राधास्वामी सत्संग डेरा बाबा जैमलसिंह से संबन्धित सम्पूर्ण कारोबार पर इस कमेटी का नियंत्रण होगा।

डेरे के खास कार्यकर्ताओं की एक और कमेटी, जिसका नाम एडमिनिस्ट्रे-टिव कमेटी है, मैंने अंग्रेज़ी के अलग लेख के द्वारा स्थापित की है। इस कमेटी के सदस्यों के नाम और उनके कर्तव्य मैंने अंग्रेज़ी में लिख कर दर्ज कर दिये हैं। यह कमेटी अपना सब कार्य मैनेजिंग कमेटी के आदेश और नियंत्रण में करेगी। मैनेजिंग कमेटी को इस कमेटी के सदस्यों को कम करने, बढ़ाने या बदलने का अधिकार होगा।

इन दोनों कमेटियों के अतिरिक्त एक जनरल कमेटी परामर्श देने के लिये स्थापित की गई है जिसके सदस्यों के नाम अलग से अंग्रेज़ी में दर्ज हैं। ये तीनों कमेटियां अपना-अपना कार्य मेरे जीवन-काल में मेरी अध्यक्षता और निगरानी में करेंगी और मेरे बाद इन तीनों कमेटियों के अध्यक्ष सरदार बहादुर जगतसिंह होंगे जिनके नाम मेरे बाद समस्त धार्मिक सम्पत्ति, जिसका विवरण ऊपर दिया गया है, हस्तांतरित होगी और सरकारी कागज़ात व रेकार्ड में भी उनके नाम दर्ज की जायेगी। किन्तु यह सम्पत्ति, सरदार बहादुर की निजी और व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं समझी जायेगी।

मैंने यह प्रबन्ध अपने जीवन-काल में दुनियावी कारोबार से छुटकारा पाकर अपना समय भजन-सुमिरन में बिताने के लिये किया है ताकि मुझे आराम और सुविधा मिले। मेरे बाद भी यह प्रबन्ध जारी रहेगा और ये तीनों कमेटियाँ अपना-अपना कार्य करती रहेंगी।

दिनांक २४-९-४७ (हस्ताक्षर) सावनसिंह

गवाह—	गवाह—
(हस्ताक्षर) मुन्शीराम	(हस्ताक्षर) राधाकिशन खन्ना
रिटायर्ड पी. सी. एस.	एडवोकेट

- इन वसीयतों को पढ़ने से स्पष्ट होगा कि (१) हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी अपने जानशीन की नियुक्ति में किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश नहीं रखना चाहते थे और ३० नवम्बर १९३७ तथा २६ अप्रैल १९४२ की अपनी वसीयतों द्वारा साफ़ ज़ाहिर कर चुके थे कि हुज़ूर अपना जानशीन एक अलग वसीयत के द्वारा मुकर्रर करेंगे। (२) हुज़ूर अपनी परमार्थी अथवा रूहानी सम्पत्ति के विषय में स्पष्ट घोषणा करना चाहते थे कि उनके बाद यह सम्पत्ति उनके रूहानी उत्तराधिकारी के नाम होगी, ताकि इस संपत्ति को लेकर किसी प्रकार की कानूनी दुबिधा न हो तथा हुज़ूर के जानशीन के नाम पर इसके हस्तान्तरण में कोई बाधा न आये। (३) इन दस्तावेज़ों द्वारा हुज़ूर ने अपनी समस्त परमार्थी सम्पत्ति की उस व्यक्ति के हक में वसीयत कर दी जिसे आप अपना जानशीन बनाना चाहते थे तथा जिसका अब केवल नाम ज़ाहिर करना ही बाकी था।

सन् १९३७ और १९४२ की वसीयतों के सन्दर्भ में डेरे के प्रबन्ध की योजना और २४ सितम्बर १९४७ की वसीयत को पढ़ने से प्रकट होता है कि महाराजजी ने इन दोनों दस्तावेज़ों के द्वारा साफ इशारा कर दिया था कि आपके बाद सरदार बहादुर जगतसिंहजी गद्दीनशीन होंगे। इस प्रकार तारीख २० मार्च १९४८ की हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी की अन्तिम वसीयत* हुज़ूर के पूर्व-निश्चय की स्वाभाविक अभिव्यक्ति थी।

९. हुज़ूर की दया-मेहर की कुछ साखियाँ

हुज़ूर महाराजजी के अपार सामर्थ्य, करुणा, दया और कृपा का वर्णन कोई क्या कर सकता है। यहाँ उनकी दया-मेहर की कुछ साखियों का उल्लेख किया जा रहा है।

गंगू डाकू की साखी

कुल मालिक जब सन्त-सतगुरु का रूप धारण करके जीवों के उद्धार के लिये जगत में आता है तो जीवों के अवगुणों और पापों के मैल की ओर दृष्टि नहीं करता। प्रायः सभी सन्तों के समय में चोर, डाकू व गुनहगार उनके सत्संग में आये और नाम के प्रसाद से उनकी काया पलट गई। भूमिया चोर, बिधीचन्द डाकू, सज्जन ठग, कौड़ा उर्फ राक्षस, आदि कुछ नाम ऐसे हैं जो सन्तों की साखियों में उल्लेख होने के कारण प्रसिद्ध हो गये हैं। परन्तु ऐसे अनेक और भी हैं जो गुमनाम ही रहे और जिनकी संख्या बहुत बड़ी है।

* यह वसीयत आगे यथा-स्थान दी जाएगी।

हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज की दया और करुणा का तो यह हाल था कि मानो चुन-चुन कर पापी व गुनहगारों का उद्धार करने के लिए ही आये हों। हुज़ूर ने स्वयं भी एक बार फ़रमाया था कि मेरे हिस्से में तो स्वामीजी ने बड़े ही सख्त कर्मों वाले जीव दिये हैं। यहाँ गंगू नामक एक डाकू का वृत्तान्त दिया जा रहा है, जिसमें हुज़ूर की अनोखी दया-मेहर प्रकट होती है।

गंगू डाकू का नाम पंजाब के लोग बहुत समय तक नहीं भूलेंगे। यहाँ का पुलिस-विभाग तो उसे हमेशा याद रखेगा। एक समय उसकी ऐसी धाक थी कि उसका नाम लेते ही लोगों में भय छा जाता था। गंगू गुरदासपुर ज़िले की बटाला तहसील में बीजा-चक ग्राम का निवासी और जाति का जाट था। उसका असली नाम गंगासिंह था। उसका कद लम्बा और शरीर सुडौल था। बचपन से ही वह निडर और बहादुर था। वह डाकू कैसे बना यह भी एक लम्बी कहानी है।

एक बार जब उसकी उम्र १९-२० वर्ष की थी, वह अपने गाँव के दो और युवकों के साथ पलटन में भरती होने के लिये चल पड़ा। संयोगवश वह श्रीहरगोबिन्दपुर के थाने के सामने से निकला। उस समय थानेदार साहिब थाने के बाहर एक पेड़ की छाया में किसी केस की जांच-पड़ताल कर रहे थे और इस सिलसिले में एक व्यक्ति की बुरी तरह पिटाई कर रहे थे। उसकी चीखें सुनकर गंगासिंह से न रहा गया। वह और उसके साथी उस ओर चल पड़े। वहाँ उनका कोई काम न था, लेकिन होनहार को कौन रोक सकता है। चला था पलटन में भर्ती होने, परन्तु भाग्य उसे कहाँ ले गया। पास जाने पर गंगासिंह और उसके साथियों ने देखा कि जिस व्यक्ति को मार पड़ रही है वह उन्हीं के गाँव का एक हरिजन है, जिसे पुलिस ने चोरी के केस में पूछ-ताछ के लिये पकड़ लिया है। उसे लोहे की कील वाले जूतों और डंडों से पीटा जा रहा था।

गंगासिंह ने थानेदार से पूछा कि इसे क्यों पीटा जा रहा है? इस पर थानेदार ने उसे गालियाँ देते हुए कहा कि "यह क्या तुम्हारा बाप या दादा लगता है? अगर इससे हमदर्दी है तो इसकी जगह तुम आ जाओ।" थानेदार ने गंगू को एक साधारण किसान का लड़का समझा था, उसे गंगासिंह के स्वाभिमान और साहस का पता न था। गंगासिंह गालियाँ बरदाश्त न कर सका। उसने अपने हाथ की सोटी उठाई और थानेदार पर वार कर दिया और उस हरिजन युवक से कहा, "उठ, बेवकूफ! क्यों पड़ा हुआ मार खा रहा है!" यह सुनते ही वह उठ खड़ा हुआ। इधर पुलिस ने भी गंगासिंह पर

लाठी से वार किया । गंगासिंह और उसके साथियों ने भी लाठियाँ उठा लीं। पुलिस वाले पिट कर भाग गये तथा थानेदार बेहोश होकर गिर पड़ा।

इस घटना के बाद ये सब लोग छिप गये। पुलिस ने बहुत तलाश की, मगर उन्हें पकड़ न सके । तब से पुलिस और गंगासिंह में ठन गई और धीरे-धीरे वह गंगासिंह से गंगू डाकू बन गया। उसके बाद थानों और डाकखानों पर हमले शुरू कर दिये। उसका एक गिरोह बन गया और पुलिस ने उसे पकड़ने का इनाम घोषित किया। गंगू की बुद्धि बहुत तेज़ थी, समय पर ऐसी चाल सूझती कि पुलिस दंग रह जाती। बन्दूक चलाने में उसका निशाना अचूक था। तीन-चार बार पुलिस की हिरासत तथा जेल की मज़बूत कोठरियों से भाग चुका था। शीघ्र ही उसकी चालाकी, निडरता और निर्दयता की अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हो गईं।

गंगू को नाम मिलने का वृत्तान्त भी दिलचस्प है। हुज़ूर महाराजजी उन दिनों हर संक्रान्ति को अमृतसर जाकर सत्संग फ़रमाते थे। एक संक्रान्ति के दिन हुज़ूर मजीठा रोड से होकर अपनी कार में सत्संग करने जा रहे थे। रास्ते में तांगे, रिक्शा, साइकिल, मोटर तथा पैदल जाने वालों की बहुत भीड़ थी। जब हुज़ूर की कार मजीठा रोड से सत्संग-घर की ओर मुड़ी तो एक व्यक्ति हुज़ूर की मोटर के आगे गिर पड़ा। चालक ने कार रोक ली और हुज़ूर कार से नीचे उतरे कि देखें क्या बात है। एक शराबी कार के सामने पड़ा था, लेकिन सौभाग्यवश उसे कोई चोट नहीं आई थी। हुज़ूर ने उस व्यक्ति के एक साथी की मदद से उसे उठाने की कोशिश की। लेकिन वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। कुछ सत्संगियों ने जो कार के पास इकट्ठे हो गये थे, उसे रास्ते से एक ओर कर दिया। शराबी तब पूरे होश में न था, लेकिन हुज़ूर का तेजस्वी चेहरा और शाहंशाही रोब उस पर प्रभाव किये बग़ैर न रहा। वह पूछने लगा कि मोटर में कौन था। उसके साथी ने, जो ख़ुद भी थोड़े नशे में था, जवाब दिया कि यह राधास्वामियों का रब (परमात्मा) है और कहते हैं कि यह लोगों को नरक से बचाता है। शराबी (गंगू) ने कहा, "हाँ, लगता भी रब ही है। चलो उसके पास चलें।"

सत्संग-घर के बरामदे में हुज़ूर आराम कुर्सी पर विराजमान थे। हमें गंगू के आने का तब पता चला जब वह अचानक आकर महाराजजी के चरणों में गिर पड़ा और सिर हुज़ूर के चरणों में रख दिया। उसने हुज़ूर के चरण अपनी बाहों में पकड़ लिये और बोला, "तू रब है, मुझे बचा ले।" हुज़ूर ने उत्तर दिया, "नहीं, मैं रब नहीं हूँ। मैं तो एक साधारण इन्सान हूँ।" पर

उसने हुज़ूर के चरण पकड़े रखे और बार-बार प्रार्थना करने लगा कि मुझे बख्श लो। उसकी आँखों से आँसू बहे जा रहे थे। हुज़ूर ने करुणापूर्ण मुस्कान के साथ उसे उठाया और सत्संग के लिए पंडाल में तशरीफ़ ले गये।

शाम को नामदान के समय गंगू भी नाम मांगने वालों की पंक्ति में खड़ा था। सौ के लगभग अभिलाषियों में से कुछ को लौटा दिया गया, परन्तु गंगू को अंदर भेज दिया गया।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "तुम को माँस व शराब छोड़ना पड़ेगा।"

उसने कहा, "शराब तो मेरी घुट्टी में है, मैं तो इसे छोड़ नहीं सकता। आप ही दया करके छुड़वा दें।"

फिर हुज़ूर ने पूछा, "तुम्हारी आमदनी का क्या ज़रिया है?"

उसने जवाब दिया, "चोरी और डकैती।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "यह भी छोड़ना होगा। कोई ईमानदारी का काम शुरू करो।"

"सब-कुछ मुझे मंजूर है, लेकिन मुझे भूखा न मारना," गंगू ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया। यह कह कर वह फिर हुज़ूर के चरणों में गिर पड़ा। हुज़ूर ने उसे नाम बख्श दिया।

इसके बाद उसने सिर्फ एक बार चोरी की। नाम लेने के कुछ समय बाद वह गुरदासपुर ज़िले में अपने एक रिश्तेदार की लड़की की शादी में गया। वहाँ जो कुछ उसके पास था खर्च कर दिया। रात को वह एक साहूकार के घर में घुस गया और उसकी लोहे की पेटी का ताला तोड़ा। सौ-सौ के नोटों का एक पुलिन्दा हाथ में लिया ही था कि ऊपर से पेटी का लोहे का भारी ढक्कन उसकी बाहों पर आ पड़ा। उसकी बाहों में चोट आई और हाथ भी अन्दर फँस गये। वह पेटी बनाई ही कुछ इस ढंग से गई थी कि कोशिश करने पर भी वह उसमें से हाथ न निकाल सका। आखिर वह थक कर बेबस हो गया और भाग निकलने की सब आशा छोड़ दी। सहसा उसने देखा कि महा-राजजी सामने खड़े हैं। पेटी में से उसके हाथ छुड़ा कर सतगुरु ने फ़रमाया, "तुमने वादा किया था कि कभी चोरी नहीं करोगे! अब अपनी जान बचा कर भाग जाओ। यह सब यहीं पड़ा रहने दो।" इसके बाद उसने कभी चोरी नहीं की।

नाम लेने के बाद जिस दिन वह अपने गांव आया तो उसके साथी शाम को शराब की महिफ़ल जमाने के लिये इकट्ठे हो गये। पहले तो वह इंकार करता रहा, लेकिन साथी कब मानने वाले थे। उसने अनुनय किया, हाथ भी

जोड़े, लेकिन वे न माने। उन्होंने तय किया कि उसके हाथ-पैर पकड़ कर चार आदमी उसे ज़मीन पर लिटा दें और शराब की बोतल उसके मुँह में उँडेल दी जाय। अवसर की कठिनाई को देखकर आखिर गंगू उनका साथ देने को राज़ी हो गया। सबने अपने-अपने गिलासों में शराब भर कर पीना शुरू कर दिया। गंगू ने अभी गिलास मुँह से लगाया ही था कि सतगुरु हुज़ूर महाराजजी सामने प्रकट हुए और बोले, "अपना वादा याद कर!"

गंगू एकदम उठ खड़ा हुआ, शराब का गिलास ज़मीन पर दे मारा और फौरन बाहर निकल आया। शीघ्र ही वह एक बन्दूक लेकर वापस आया और अपने साथियों से बोला, "तुम जानते हो कि मेरा निशाना अचूक है और मैंने कभी अपनी हुक्म-उदूली बरदाश्त नहीं की है। इसलिए जहाँ हो वहीं चुपचाप बैठे रहो और खामोशी से मेरी बात सुनो। अगर कोई हिला भी तो गोली मार दूँगा।"

कोठरी में मरघट की सी चुप्पी छा गई। गंगू ने कहा, "हमने आज तक इकट्ठे चोरी और डकैती का जीवन बिताया है। लेकिन अब मुझे एक महात्मा मिल गये हैं, जिनकी एक दृष्टि ने मेरी काया ही पलट दी है। मैंने वादा किया है कि अब शराब नहीं पीऊँगा, कोई गुनाह नहीं करूँगा और नेकी का जीवन बिताऊँगा। आज हमारा यह गिरोह खत्म होता है। तुम लोग भी इस पाप के जीवन को छोड़ कर किसी शहर में जाकर नेकी के साथ अपनी रोज़ी कमाओ। मैं इतना ज़रूर कहूँगा कि कम से कम एक बार ब्यास जाकर मेरे सतगुरु के दर्शन ज़रूर करना।"

उसके बाद गाँववालों ने या उसके साथियों ने उसे कभी न देखा। गुमनाम रह कर वह जीवन व्यतीत करता रहा। छिप कर वह कभी-कभी हुज़ूर के दर्शन और सत्संग के लिए डेरे अवश्य आता था। उसके बाद के उसके जीवन का अधिक पता नहीं। परन्तु इतना अवश्य पता है कि उसकी काया पलट गई थी और वह भजन-सुमिरन खूब करता था।

सन् १९४८ में हुज़ूर महाराजजी के ज्योति-ज्योत समाने के बाद जीना व्यर्थ समझ कर गंगू ने अपने आपको पुलिस के हवाले कर दिया। उस पर केस चला। उसके विरुद्ध हत्या, चोरी, डकैती आदि कई इल्ज़ाम लगाये गये। अन्त में फाँसी की सज़ा हुई जिसकी हाइकोर्ट ने भी पुष्टि कर दी। उसे फाँसी पर लटकाने के लिये अम्बाला जेल में पहुँचाया गया। वह जेल में भी निरन्तर भजन करता रहा। उसके फाँसी पर लटकाये जाने से कुछ दिन पहले जेलखानों के इंस्पेक्टर-जनरल अम्बाला जेल का निरीक्षण करने आये।

जब वे गंगू की कोठरी के आगे से निकले तो जेलर से बोले कि यह बड़ा भयानक अपराधी है। यह कई बार जेल से भाग चुका है । इस पर बड़ी कड़ी निगरानी रखनी चाहिये। इंस्पेक्टर-जनरल के चले जाने के बाद गंगू ने जेलर से कहा, "देखो, भाग तो मैं इस बार भी जाता और भागने की सब तैयारी भी कर चुका था, लेकिन मेरे सतगुरु ने ऐसा करने से मना कर दिया है। कल रात गुरु महाराज ने दर्शन दिये और कहा कि अब तुम्हारा अन्त समय आ गया है, अब भागने का विचार न करो।" फिर गंगू ने कहा, "अगर तुम्हें विश्वास नहीं होता तो यह देख लो, कोठरी के पीछे की खिड़की की सलाखें मैंने काट रखी हैं कि जब चाहूँ, उन्हें निकाल सकूँ। तुम्हारे अफ़सर के सामने मैं यह बात कहना चाहता था, पर यह सोच कर चुप रहा कि बराबर निगरानी न करने के अपराध में तुम्हारा कोई नुकसान न हो जाए।" यह सुन कर जेलर साहब ने उसे धन्यवाद दिया।

तीन दिन बाद उसे फाँसी दी जाने वाली थी। ये तीन दिन उसने भजन में बिताये। सुबह जब जेल के डाक्टर ने उसका निरीक्षण किया तो पाया कि उसका वज़न दो पाउण्ड बढ़ गया था । उस समय वह अत्यन्त प्रसन्न था। उसकी नाड़ी की गति बिलकुल सामान्य थी; न दिल में कोई धड़कन थी और न कोई घबराहट के चिन्ह थे ।

फाँसी से पहले जब उससे अन्तिम इच्छा पूछी गई तो गंगू ने कहा, "मेरे शरीर को ब्यास डेरा बाबा जैमलसिंह पहुँचा देना और मेरा संस्कार वहीं करना।"

मजिस्ट्रेट ने पूछा, "कोई और इच्छा हो तो बोलो।"

गंगू ने जवाब दिया, "और कोई इच्छा नहीं है। मैंने तो मनुष्य-जन्म का लाभ नहीं उठाया। लेकिन धन्य है मेरा सतगुरु बाबा सावनसिंह जिसने मुझ जैसे पापी को तार दिया ।" फिर वह सतगुरु दीन-दयाल का ध्यान करते हुए फाँसी के तख्ते पर चढ़ गया। उस समय खुशी से उसका चेहरा चमक रहा था । अपने हाथ से फाँसी का फन्दा गले में डाल लिया और फाँसी देने वाले से बोला, "लो भाई, अब तुम अपना काम कर लो।"

मजिस्ट्रेट, जेलर तथा डॉक्टर से उसके अन्तिम शब्द थे, "अगर कभी हो सके तो ब्यास जाकर देहधारी परमात्मा के दर्शन ज़रूर करना । धन्य सतगुरु बाबा सावनसिंह! धन्य सतगुरु!"

फाँसी के बाद गंगू के शव को डेरे लाया गया । यह सन् १९४९ की बात है। सरदार बहादुर महाराजजी के आदेश से उसका अंतिम संस्कार

यहीं किया गया।

बाबू बुआदास की साखी

ब्यास रेलवे स्टेशन पर एक बार बाबू बुआदास नामक नये स्टेशन-मास्टर नियुक्त होकर आये। वे अनुशासन-प्रिय तथा कायदे कानून के बड़े पक्के थे। नियमों का पालन है तो अच्छा लेकिन कभी-कभी किसी अच्छी बात का हद से ज्यादा होना भी परेशानी का कारण बन जाता है। संगत उनकी सख्ती और कायदे की पाबन्दी से घबराने लगी। बाबू बुआदास के आने के कुछ ही समय बाद पहाड़ों की संगत ने हुजूर महाराजजी से अर्ज़ की, "हुजूर, यह जो नया स्टेशन मास्टर आया है, यह यात्रियों को बहुत तंग करता है। हमें सत्संग सुनते देर हो जाती है और भाग कर बड़ी मुश्किल से गाड़ी के समय स्टेशन पहुँचते हैं, लेकिन हमें टिकिट नहीं मिलता है। अगर हम पटरियों पर से जाते हैं तो यह हमें पुलिस को सौंप देता है। पहला स्टेशन मास्टर बहुत अच्छा आदमी था।" इस पर हजूर ने फ़रमाया, "कोई बात नहीं, स्टेशन मास्टर को समझा देंगे।"

उसके कुछ ही दिन बाद की बात है, एक इतवार का सत्संग था। संयोगवश बाबू बुआदास एक अफसर के साथ सत्संग का 'मेला' देखने डेरे आ गये। बुआदास ऊँची जाति के ब्राह्मण थे। जब वे डेरे पहुँचे तो मैं दफ्तर के बाहर बरामदे में बैठा था। स्टेशन मास्टर साहब ने अपना तथा अपने अफसर का परिचय कराया और बोले, "आज हमारी छुट्टी का दिन था, हमने सोचा चलो मेला देख आयें।" फिर सत्संग के विषय में पूछते रहे। गुरु की आवश्यकता पर बातचीत होती रही। एक घण्टे के वार्तालाप के बाद उन्होंने यह निर्णय दिया, "हम तो ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण खुद दुनिया के गुरु होते हैं। उन्हें कोई गुरु धारण करने की आवश्यकता नहीं।"

मैं इसके उत्तर में कुछ कहने ही लगा था कि हुजूर अपनी कोठी से निकल कर हमारी ओर आ गये। हुजूर ने बाबू बुआदास की ओर दया-मेहर से परिपूर्ण पैनी दृष्टि डाली। मैंने अर्ज़ की कि ये ब्यास के स्टेशन-मास्टर साहिब हैं। हुजूर ने फ़रमाया, "हाँ, मुझे मालूम है। इन्हें कुछ चाय वगैरह भी पिलाई या नहीं ?" मैंने कहा, "हुजूर, बातों में कुछ पूछने का खयाल न रहा।" हुजूर ने कहा, "इन्हें चाय पिलाकर सत्संग में ले आओ।"

दोनों ने बड़े ध्यानपूर्वक सत्संग सुना। खास कर स्टेशन मास्टर तो बुत बना बैठा रहा। हुजूर ने शब्द की महिमा और गुरु भक्ति के दो शब्द लिये। हुजूर ने सत्संग इस तरह शुरू किया मानो बरामदे में हुए वार्तालाप के समय

हुज़ूर मौजूद हों। अगर मैं इस बीच सारा समय स्टेशन-मास्टर के साथ न रहा होता तो वे अवश्य सोचते कि मैंने पूरे वार्तालाप का ज़िक्र हुज़ूर से पहले ही कर दिया है। सत्संग से लौटने पर वे मुझसे पूछने लगे, "महाराज को हमारी बातों का पता कैसे लग गया? उन्होंने वही विषय लिया जिस पर हम बात-चीत कर रहे थे। कई बार तो ऐसा हुआ कि जो सवाल मेरे दिल में उठ रहे थे, महाराजजी उनका साथ-साथ ही जवाब देते रहे।" मैंने कहा, "इसका जवाब तो आप महाराजजी से ही पूछें। मैं तो इतना कह सकता हूँ कि जो कुछ आपको कल या परसों पूछना है, वह भी उन्हें मालूम है।" इस पर बाबू बूआदास ने आश्चर्य के साथ पूछा, "महाराजजी तो ज़रूर अन्तर्यामी प्रतीत होते हैं, लेकिन आपको यह कैसे पता चल गया कि मुझे कल और परसों भी सत्संग में आना है?" मैंने उत्तर दिया, "केवल यही नहीं, बल्कि कुछ दिनों में आप नाम भी लेंगे।" उन्होंने कहा, "नहीं, नाम तो मैं नहीं लूँगा। हाँ, कल और परसों सत्संग सुनने का निश्चय मेरे अफ़सर ने कर लिया है, क्योंकि वह दो दिन यहाँ और ठहरेंगे और वे चाहते हैं कि ब्यास आने का यह लाभ ज़रूर उठायें।"

दूसरे दिन सत्संग में हुज़ूर ने फ़रमाया, "देखो, दुनिया में कितनी भूल चल रही है। लोग कहते हैं कि स्त्री का पति ही उसका गुरु है, कोई दूसरा गुरु धारण करने की उसे ज़रूरत नहीं। लेकिन यह नहीं सोचते कि अगर पति खुद शराबी, कबाबी, मूर्ख और अज्ञानी हो तो वह स्त्री को कैसे पार उतारेगा? वह तो ख़ुद डूबा हुआ है, स्त्री को भी साथ ही नरक में ले जायेगा। इसी तरह कुछ बड़े समझदार व बुद्धिमान लोग इस विचार में अपना अकाज कर लेते हैं कि हम तो ब्राह्मण हैं और खुद दुनिया के गुरु हैं, हमको गुरु धारण करने की आवश्यकता नहीं। लेकिन जिस मल्लाह के लड़के ने नौका चलानी तक न सीखी हो, वह यात्रियों को तूफानी दरिया से पार कैसे ले जा सकेगा? वह तो नौका को मँझदार में ही डुबा देगा। दस जमात अंग्रेज़ी की पढ़कर दफ्तर में नौकर हो गये और दिन-रात काम में ऐसे डूबे रहे कि सर उठाने की फ़ुरसत तक न मिली। खुद अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई देखने का समय तक नहीं मिलता। वे दूसरों को क्या ज्ञान देंगे! जिसने खुद किसी शहर का रास्ता नहीं देखा है, वह दूसरों को राह कैसे दिखायेगा?"

इस सत्संग ने बाबू बुआदास के सब सन्देह तथा भ्रम के मैल को हृदय से निकाल दिया। अब प्रतिदिन शाम को स्टेशन से साइकिल पर सत्संग में आना उनका दैनिक नियम हो गया। एक दिन वे मुझ से बोले, "आपकी

भविष्यवाणी सच होने वाली है। मेरा विचार नाम लेने का हो गया है। जो सच्ची बात है उसे स्वीकार करने से इन्कार नहीं करना चाहिये।"

बाबू बुग्रादास को नाम मिल गया। नाम तो और भी सैंकड़ों व्यक्ति ले जाते हैं, लेकिन उनकी तो काया ही पलट गई। वह पहले वाले बुग्रादास न रहे। खूब भजन करने लगे। दिन-रात, जब भी सरकारी काम से फुरसत मिलती, भजन में जा बैठते। अपनी ड्यूटी के वक्त भी मन को सुमिरन में लगाये रखते। गुरु के ध्यान में मस्त रहते। कुर्सी पर बैठे-बैठे कभी-कभी शब्द इतने ज़ोर से गूँज उठता कि आँखें बन्द हो जातीं और कलम हाथ की हाथ में रह जाती। मन इतना निर्मल और नम्र हो गया कि अपने मातहतों को ऊँची आवाज़ से न बुलाते। उन दिनों कई बार स्टेशन-मास्टर खुद रात की ड्यूटी नहीं देते थे और अपने मातहतों के ज़िम्मे यह ड्यूटी लगा देते। परन्तु अब बुग्रादास अपनी ड्यूटी खुद अदा करते तथा अपने मातहतों की सुविधा का हमेशा खयाल रखते। अब यात्रियों की शिकायतें दूर हो गईं। आप हर बात में उनकी मदद करते और उनकी सुख-सुविधा का हद से ज्यादा खयाल रखते। इस बारे में एक छोटी-सी घटना का उल्लेख किया जाता है।

एक दिन शाम की गाड़ी से अम्बाला का एक जैण्टलमेन सत्संगी ब्यास स्टेशन पर उतरा। स्टेशन पर उस समय कोई कुली न था। गाड़ी चली गई और प्लेटफार्म खाली हो गया। वह बाबू बड़ी मुश्किल से सामान उठा कर ताँगों के खड़े होने के स्थान तक आया, लेकिन उस समय वहाँ कोई ताँगा मौजूद न था। उन दिनों ताँगे बहुत कम थे। बाबू परेशान हो रहा था कि क्या करे। इतने में उधर से बुग्रादासजी घूमते हुए निकले। उन्होंने बाबू को परेशान देख कर पूछा कि उसे कहाँ जाना है? बाबू ने जवाब दिया कि उसे डेरे जाना है, सत्संग के लिये आया है। बुग्रादासजी बोले, "मुझे भी डेरे जाना है, मैं आपका सामान ले चलता हूँ।" उनकी उस वक्त छुट्टी थी और वे साधारण कपड़े पहने हुए थे। सत्संगी बाबू ने समझा कि कोई साधारण कृषक है। पूछा कि सामान उठाने का क्या लोगे? बुग्रादास ने जवाब दिया, "जो आप देंगे, ले लूँगा।"

बुग्रादास उसकी पेटी और बिस्तरा सर पर रख कर चल पड़े। थोड़ी दूर चले कि थक कर रुक गये; थोड़ा ठहरे और फिर चल पड़े। इस तरह रुकते-रुकते मुश्किल से एक मील तय किया होगा कि पसीने में भीग गये और थक कर रुक गये। उधर वह बाबू डेरे पहुँचने के लिये जल्दी मचा रहा था। रुकते-रुकते, बाबू के सख्त वचन सुनते हुए करीब आधा रास्ता तय किया

होगा कि उधर से हुज़ूर का सेवक सोहन आता हुआ दिखाई दिया । पास आने पर उसने स्टेशन-मास्टर साहब को पहचान लिया और उनसे सामान ले लिया । सोहन बोला, "मुझे पता न था कि हुज़ूर मुझे स्टेशन की ओर क्यों भेज रहे हैं । अब पता चला कि क्या बात थी ।"

अम्बाला वाले बाबू को जब पता चला कि उनका सामान उठाने वाला व्यक्ति स्टेशन-मास्टर है, तो बहुत लज्जित हुए और माफी माँगने लगे । बुआदास बोले, "माफी माँगने की कोई बात नहीं । यह तो मेरा सौभाग्य है कि सतगुरु के प्रेमी की सेवा का मौका मिला ।" जब डेरे पहुँचे तो हुज़ूर बाबू बुआदास की प्रतीक्षा कर रहे थे । अम्बाले वाले सज्जन से पूरा हाल सुन कर हुज़ूर बुआदास से बहुत प्रसन्न हुए ।

एक बार स्टेशन-मास्टर साहब सत्संग के लिये शाम को पाँच बजे डेरे आये । सत्संग सुन कर अन्तर में कुछ ऐसी लगन लगी और प्रेम जागा कि सत्संग से उठते ही डेरे के एक कमरे में जाकर भजन में बैठ गये । वृत्ति अन्तर में लग गई और तन-बदन की सुध न रही । उधर जब बुआदास रात को नौ बजे तक स्टेशन न पहुँचे तो सहायक स्टेशन मास्टर डेरे आया। उसने उन्हें उठाने की कोशिश की पर उनका ख़याल बाहर न आया । आखिर दस बजे उसने हुज़ूर महाराजजी की सेवा में प्रार्थना की, "हुज़ूर, आज स्टेशन मास्टर साहब की रात की ड्यूटी है । शाम से ही स्टेशन पर ट्रैफिक इंस्पेक्टर आया हुआ है । वह एक अनुशासन-प्रिय अंग्रेज़ है और स्वभाव का बहुत कठोर है ।"

हुज़ूर ने फ़रमाया कि बुआदास को अभी भजन से उठाकर कहो कि फौरन स्टेशन पहुँच जाएँ और मोटर ड्राइवर से कहो कि उनको मोटर में छोड़ आये । सहायक स्टेशन मास्टर ने कहा कि हम उन्हें उठाने की काफी कोशिश कर चुके हैं, कई बार पास जाकर आवाज़ दे चुके हैं, परन्तु वे उठते ही नहीं हैं । इस पर महाराजजी ने फ़रमाया, "अच्छा, बैठा रहने दो, जो होगा देखा जायेगा ।"

सहायक स्टेशन मास्टर जब हुज़ूर के पास से आया तो बहुत चिन्तित था। कहने लगा, "स्टेशन मास्टर तो अब ज़रूर बर्खास्त कर दिया जायेगा । मैं भी उसकी जगह काम नहीं कर सकता, क्योंकि ट्रैफिक इन्स्पेक्टर को मालूम है कि आज की मैंने छुट्टी ली हुई है और स्टेशन के सब हिसाब-किताब व रजिस्टरों वगैरह के सन्दूक की चाबी भी बाबू बुआदास के पास है ।" लोगों ने कहा कि अब साहब सो गया होगा । उसने जवाब दिया कि साहब सोने

वाला व्यक्ति नहीं है। वह तो हमेशा आता ही रात के समय है और अपनी जाँच कई बार रात को बारह बजे शुरू करता है।

उस रात सहायक स्टेशन-मास्टर भी डेरे में ही रह गया। स्टेशन जाकर साहब का सामना करने का साहस उसमें न था। रात भर अंग्रेज़ ट्रैफिक-इन्स्पेक्टर की शक्ल उसकी आँखों के आगे घूमती रही। सुबह होते ही उसने बुआदास को उठाया और उनको स्टेशन ले जाने लगा। परन्तु बुआदास कहने लगे कि वे महाराजजी के दर्शन किये बिना नहीं जाएँगे। हुज़ूर सवेरे देर तक भजन किया करते थे। जब आठ बजे बाहर पधारे तो बुआदासजी को हुक्म दिया कि जल्दी अपने काम पर जाओ। अपनी ड्यूटी से कभी गैर हाज़िर नहीं रहना चाहिये। प्रसाद लेकर बाबू बुआदास चल पड़े।

जब दस बजे के करीब स्टेशन पहुँचे तो देखा कि साहब अभी वेटिंगरूम में ही था। स्टेशन-मास्टर साहिब मुँह-हाथ धोकर अपना ड्रेस पहन कर दफ़्तर में आ बैठे। रजिस्टर निकाल कर मेज़ पर रख लिये और रात की अपनी गैर-हाज़िरी के परिणाम का इन्तिज़ार करने लगे।

जब साहब दफ़्तर में आया तो बाबू बुआदास ने उनके सामने रजिस्टर आदि रखते हुए कहा, "कृपया रजिस्टर, रेकार्ड वगैरह की जांच कर लें।"

यह सुन कर साहब आश्चर्य के साथ उनकी ओर देखने लगा। फिर बोला, "अब कौन-से रजिस्टर बाकी हैं? सब रजिस्टर तो तुमने कल रात को बता दिये। मैंने उन पर रिमार्क (टिप्पणी) भी लिख दिये हैं।" यह सुन कर बाबू बुआदास की आँखों में सतगुरु के प्रति प्रेम और शुक्राने के अश्रु भर आये। चुपचाप दफ़्तर से बाहर चले आये।

टिप्पणी में उसने लिखा था, "मैंने इस क्षेत्र के सभी स्टेशन-मास्टरों में बाबू बुआदास का काम बहुत अच्छा, ईमानदारी-पूर्ण और त्रुटि-हीन पाया। यह किसी बड़े पद के योग्य है।" बड़े अफ़सर उसकी रिपोर्ट की बहुत कद्र करते थे। एक महीने के बाद बाबू बुआदास को पत्र मिला कि तुम्हें उच्च (सीनियर) ग्रेड देकर किसी बड़े स्टेशन पर नियुक्त करने का सुझाव है, सो बताओ कि कौन-सा स्टेशन लेना चाहते हो। परन्तु बाबू बुआदास ने उत्तर दिया कि वे ब्यास से बदली नहीं कराना चाहते। इस पर उनको ब्यास स्टेशन पर ही अगली ग्रेड दे दी गई।

अब तो बाबू बुआदास का यह हाल था कि अपने आप को गुरु का नौकर ही समझते। सत्संगियों की सेवा ही मानो अब उनकी 'सरकारी ड्यूटी' बन गई थी। अगर कोई सत्संगी रात की गाड़ी से उतरते तो उन्हें अपने घर

ले जाते और उनके खाने-पीने का प्रबन्ध करते । सत्संग के लिये जाते समय कभी किसी की गठरी उठा लेते तो कभी किसी का बच्चा। गर्मी के मौसम में स्टेशन के दोनों ओर ठण्डे पानी और शरबत की छबील लगा देते । वेतन का काफी अंश संगत की सेवा में खर्च कर देते । एक बार उनके परिवार के लोगों ने महाराजजी की सेवा में शिकायत की तो हुज़ूर ने जवाब दिया कि परमार्थ में खर्च करने से धन घटता नहीं, बल्कि बढ़ता है । इसके कुछ ही दिनों बाद उनका पुत्र भी स्टेशन-मास्टर के पद पर नियुक्त हो गया ।

बाबू बुग्रादास का एक छोटा सा वृत्तान्त और देकर इस साखी को समाप्त किया जाता है । शायद महायुद्ध के दिन थे या बाद में किसी और वजह से मिट्टी के तेल की बहुत कमी हो गई थी । डिप्टी कमिश्नर की परमिट के बगैर किसी को तेल नहीं मिलता था, और वह भी एक परिवार के लिये महीने में मुश्किल से कुछ बोतलें ही मिलती थीं । इधर डेरे में बाबा जी महाराज के भण्डारे का समय आ गया और उधर तेल खत्म हो गया । बिजली उन दिनों थी नहीं । अमृतसर से आदमी लौट आया कि डिप्टी कमिश्नर ने सिर्फ एक कनस्तर देना मंजूर किया है । सत्संग के प्रबन्धक बड़ी कठिनाई में थे कि बीस-पच्चीस हज़ार आदमियों के लिए रोशनी का प्रबन्ध कैसे होगा ? उनको अँधेरे में भोजन कैसे कराया जायेगा ? उनके रहने के स्थानों में तथा सड़कों व चौक में रोशनी कैसे होगी ?

बाबू बुग्रादास को इस परेशानी का पता लगा । उन्होंने पूछा कि भण्डारे के समय कितने कनस्तर तेल की ज़रूरत होगी ? भंडारी ने बताया कि अगर बारह कनस्तर मिल जायें तो थोड़ा बहुत गुज़ारा हो जायेगा । कमरों में जलाने के लिये मोमबत्तियाँ मँगा लेंगे । स्टेशन-मास्टर के स्टोर में स्टेशन पर लालटेनों के लिये छः कनस्तर मौजूद थे। बुग्रादास ने दूसरे दिन ढिलवाँ, हमीरा, करतारपुर और बुटारी के स्टेशन-मास्टरों से अनुरोध करके कुछ समय के लिये आठ कनस्तर उधार मँगवा लिये । इस प्रकार चौदह कनस्तर इकट्ठे करके डेरे में पहुँचा दिये । भंडारा आराम से हो गया । लेकिन बात काफी फैल गई थी । करतारपुर के किसी बाबू ने बड़े अफ़सरों को गुमनाम चिट्ठी लिख कर इस बात की सूचना दे दी । अतएव स्टोर चेक करने के लिये इन्स्पेक्टर आ गया । अब बाबू बुग्रादास के पास इन स्टेशन-मास्टरों के टेलीफोन आने लगे । किसी स्टेशन-मास्टर का बेटा आ गया, किसी का कोई विश्वसनीय आदमी आ गया कि फौरन कनस्तर लौटाओ या कुछ प्रबन्ध करो, वरना सब कैद हो जायेंगे ।

11

अब बुआदासजी के पास सिवाय भाग कर गुरु-चरणों में आने के और क्या चारा था ! जब यहाँ आकर हुज़ूर की सेवा में इस बात की सूचना दी तो हुज़ूर बहुत नाराज़ हुए। फ़रमाया, "सरकारी चोरी करके चीज़ें लाना कहाँ की अक्लमन्दी है ! तुम लोग डेरे को भी बदनाम करते हो और खुद भी मुसीबत में फँसते हो। अब इस मामले में क्या हो सकता है ! जाओ और जिस तरह से भी हो सकता है इन्तिज़ाम करो।"

बेचारा बाबू क्या इन्तिज़ाम करता, मिट्टी का तेल कहीं मिलता नहीं था। दूसरे स्टेशनों वाले गालियाँ दे रहे थे कि इस भलेमानस ने हमें अच्छा फँसाया। खैर, जब बाबू बुआदास वापस स्टेशन पर पहुँचे तो इन्स्पेक्टर आकर बैठा हुआ था। बाकी स्टेशनों पर चेकिंग (जाँच) कर आया था। बुआदास को देख कर बोला, "किसी बदमाश ने झूठी खबर देकर मुझे परेशान किया है। सभी स्टेशनों का स्टोर पूरा निकला है।" बाबू बुआदास ने सोचा कि बेचारों ने कहीं इधर-उधर से कोशिश करके कमी पूरी कर ली होगी। उन्होंने इंस्पेक्टर से कहा, "साहब, मेरे स्टोर में तो छः कनस्तरों की कमी है।"

स्टोर का दरवाज़ा खोल कर वह इन्स्पेक्टर को अन्दर ले गये। इन्स्पेक्टर ने जाँच की तो पाया कि कनस्तर पूरे मौजूद थे। बोला, "कनस्तर तो सब बराबर हैं।" बाबू बुआदास ने कहा, "साहब, आपने शायद खाली कनस्तरों को भी गिन लिया है। मैं आपको धोखा नहीं देना चाहता।" लेकिन जब कनस्तरों को उठा कर देखा गया तो सब भरे थे। इन्स्पेक्टर ने कहा, "हम जानते हैं, तुम बहुत ईमानदार शख्स हो। हम झूठी रिपोर्ट देने वाले को पकड़ने की कोशिश करेंगे और उस पर सख्त कारवाई की जायेगी।"

इधर इन्स्पेक्टर वापस गया और उधर बाबू बूआदास डेरे की ओर भागे। आकर हुज़ूर की सेवा में पूरी घटना सुनाई। 'धन्य सतगुरु, धन्य सतगुरु' कहता जाता था। ज़मीन से सर नहीं उठाता था। कृतज्ञता व प्रेम के आँसू बह रहे थे। हुज़ूर ने कहा, "भाई, मुझे तो इस बात का कुछ पता नहीं। वह दया करने वाली कोई और ही ताकत है।" फिर कुछ क्षण मौन रह कर फ़रमाया, "ऐसी बातों का शोर नहीं मचाना चाहिये।"

साखी बटाला शहर के एक मौलवी साहब की

एक बार बटाला शहर की एक मुसलमान महिला, जिसका नाम बीबी हरमत था, कुछ सत्संगी बीबियों के साथ संयोगवश डेरे आई। कुछ दिन सत्संग सुना और जाते समय महाराजजी से नाम भी लें गई। नाम लेते समय जब उस बीबी ने बताया कि वह मुसलमान है तो हुज़ूर ने पूछा, "बीबी,

तेरे घर वाले तुझे परेशान तो नहीं करेंगे ?" उसने बड़ी दिलेरी से जवाब दिया, "मैं तो रब का नाम ले रही हूँ । रब का नाम लेना कोई गुनाह तो है नहीं कि मुझे लोग परेशान करें !" हुज़ूर उसके जवाब से बहुत खुश हुए और नाम प्रदान कर दिया।

वह बीबी हिम्मत वाली और मेहनती थी। वापस घर आकर बड़ी लगन के साथ नियमपूर्वक भजन-सुमिरन करने लगी । असल में तो भजन और अभ्यास है भी मेहनती लोगों का काम ! नाज़ुक मिजाज़ और दुर्बल व्यक्ति क्या भजन करेंगे ! भजन तो मन को रोकना और जवानी की मौत मरना है। बीबी हश्मत ने खूब मेहनत की। उसने अपने घर में माँस-मछली बनाने से इन्कार कर दिया । सतगुरु की कृपा से उसके पति ने भी कोई खास एतराज़ न किया और घर में शान्ति बनी रही।

जिस बाग में हश्मत बीबी का पति काम करता था वहाँ एक मौलवी साहब रहते थे। एक दिन पूछने लगे कि बहुत दिन से हश्मत बीबी को नहीं देखा, वह राज़ी तो है न ? पति ने जवाब दिया कि वह राज़ी है और अब दिन-रात अल्लाह की इबादत में लगी रहती है। बातचीत में मौलवी साहब को पता चला कि वह माँस और अंडा नहीं खाती है और उसने एक सिख महात्मा को अपना गुरु बना लिया है। मौलवी और पंडित तो शरीयत और कर्मकाण्ड के कैदी होते ही हैं। वे भला इस बात को कैसे बरदाश्त करते ? मौलवी साहब ने उसके पति के कान भरना शुरू कर दिया । धीरे-धीरे उसके दिल पर मौलवी साहब की बातों का असर होने लगा। घर में अशान्ति पैदा हो गई और हश्मत बीबी को घर वाले परेशान करने लगे। कुछ दिन बाद बात यहाँ तक बढ़ गई कि मौलवी साहब ने कह दिया कि इन दोनों का निकाह ही कायम नहीं रह सकता और हश्मत बीबी के पति को चाहिए कि उसे तलाक देकर घर से निकाल दे।

हश्मत बीबी बाल-बच्चों वाली प्रौढ़ स्त्री, करे तो क्या करे और जाये तो कहाँ जाये ? बहुत दुःखी और परेशान होकर गुरु के पास आई और अश्रु-पूर्ण नेत्रों सहित हुज़ूर को सारा हाल सुना दिया। हुज़ूर ने उसे दिलासा दिया और फ़रमाया, "कोई बात नहीं। भजन-सुमिरन करती रहो। पति को मिठास से समझाने की कोशिश करो और उनके कहने के अनुसार काम करो।" हश्मत बीबी वापस घर आ गई। आगे का वृत्तान्त मौलवी साहब के शब्दों में दिया जाता है, जैसा कि उन्होंने खुद मुझे सुनाया था :—

"मैं रात की नमाज़ के बाद अपनी कोठरी का दरवाज़ा बन्द करके और

रोशनी गुल करके नफ़्ल पढ़ने लगा। अभी मैंनें नफ़्ल शुरू की ही थी कि कोठरी में एकाएक बिजली जैसी तेज़ रोशनी हो गई और उसमें से एक शख़्स निकला जिसकी सफेद दाढ़ी थी, कद लम्बा था और सफेद लिबास पहने था। उसका जमाल और जलाल ऐसा था कि उस पर निगाह न ठहरती थी। उसको देख कर मैं घबरा गया और कलमा, नमाज़ वगैरह सब भूल गया। मैंने डरते हुए उनसे हाथ जोड़ कर अर्ज़ की, 'साहब ! आप कौन हैं, और क्या चाहते हैं ? मैंने आपका क्या बिगाड़ा है ?' उस बुजुर्ग ने जवाब दिया, 'तू ख़ुदा के अज़ीज़ बन्दों को परेशान करता है। सुबह होते ही हश्मत बीबी और उसके ख़ाविन्द के पास जाकर उनसे माफ़ी माँगो। अपनी ग़लती का एतिराफ़[1] करो और उन दोनों के हमराह[2] हमारे पास पहुँचो।' इतना कह कर वह बुजुर्ग गायब हो गये। मेरे दिल पर अजीब हैरानी और दहशत[3] छा गई। नींद गायब हो गई, उस बुजुर्ग की सूरत आँखों के सामने घूमती रही।

"दूसरे दिन सुबह मैं रात के वाकयात के बारे में सोच ही रहा था कि सामने से हश्मत बीबी और उसका ख़ाविन्द आते हुए नज़र आये। उन्हें देख कर मेरे जिस्म में कँपकँपी सी आ गई। उनके हाथों में गठरी तथा कुछ सामान था, ऐसा मालूम होता था कि कहीं सफ़र पर जा रहे हैं। उनके नज़दीक आने पर मैं कुछ बोलता कि उसके पहले ही वे बोल उठे, 'मुर्शिद के दरबार में हाज़िर होने का हुक्म हुआ है। आपका क्या ख़याल है ?' मैंने फौरन कहा, 'मैं भी आपके हमराह चलूँगा।' मेरे इस जवाब से उनको ज़रा भी हैरानी न हुई। बल्कि हश्मत बीबी ने मुस्कराते हुए कहा, 'मुर्शिद का ऐसा ही हुक्म था।' मेरे दिल में ख़याल आया कि शायद रात के वाकयात का इन्हें पता है। मैं उसका ज़िक्र करने लगा था कि हश्मत ने कहा, 'रात को मुर्शिद मेहरबान का दीदार हासिल हुआ था। उन्होंने फ़रमाया है कि मौलवी साहब को साथ लेकर हमारे पास आओ। हमने मौलवी साहब को समझा दिया है।'

"अभी हम डेरे से कुछ फासले पर ही थे कि हुज़ूर महाराज साहब चन्द सत्संगियों के साथ आते हुए दिखाई दिये। उनकी ओर देखा तो देखता ही रह गया। वही सफेद दाढ़ी, लम्बा कद और सफ़ेद लिबास था। पास आने पर मुझे देख कर ज़रा सा मुसकराए और फ़रमाया, 'मौलवी साहब ! आप आ गये, बहुत अच्छा किया।'

"हश्मत बीबी व उसके ख़ाविन्द ने महाराज के सामने सिजदा किया।

---

१. स्वीकार करना। २. साथ। ३. डर।

लेकिन महाराज ने पैर पीछे हटा लिये। मैं किसी इन्सान का सिजदा करना शरह (धर्म) के खिलाफ़ मानता था। लेकिन उस वक्त मैं अपने आपको भूल चुका था, और उस फ़कीर का रोब भी कुछ ऐसा था कि मेरा सर खुद-ब-खुद झुक गया। हैरानी की बात यह थी कि हुज़ूर ने अपने कदम भी परे न किये। मेरे सर का कदम मुबारक को छूना था कि मुझे अपने आप का होश ही न रहा। एक न बयान की जा सकने वाली खुशी दिल पर छा गई। हुज़ूर ने फौरन अपने हाथों से मेरा सर ऊपर कर दिया। लेकिन मेरा दिल चाहता था कि उन कदमों से लिपट जाऊँ।

"हुज़ूर ने मुझे एक मुसलमान सत्संगी मियाँ चिराग़दीन के हवाले कर दिया और कहा, 'ये हमारे पुराने वाकिफ हैं। इनका अच्छी तरह ख़याल रखना।' मगर मेरा अब ख़याल क्या रखना था! मैं तो मियाँ चिराग़दीन की कोठरी में पहुँचते ही चारपाई पर लेट गया। किसी से बात करने को जी न चाहता था।

"दूसरे दिन मुर्शिदे-कामिल ने हमें नाम बख़्श दिया और चौदह तबक[1] का हाल वाज़ा[2] कर दिया। हकीकत के रास्ते पर लगा दिया। समझते क्या थे और असलियत क्या निकली। फिर अब तो आपके सामने भला-चंगा बैठा हूँ। बस अब मुर्शिद ही सब-कुछ है, उनके अलावा और कुछ नहीं।"

सरदार गुरदयालसिंह डी. एस. पी. की साखी

(उनके अपने शब्दों में)

मुझे हुज़ूर महाराजजी ने पहली मार्च १९३६ को दया करके नाम-दान बख़्शा था। हुज़ूर की मेहरबानियों की तो कोई गिनती ही नहीं हो सकती, लेकिन उनकी विशेष दया की एक साखी यहाँ लिखता हूँ।

भारत का बँटवारा होने और पाकिस्तान बनने के समय की बात है। उस वक्त मैं झंग में डिस्ट्रिक्ट इन्स्पेक्टर पुलिस के पद पर नियुक्त था। झंग ज़िले में उस समय जो लूट-मार, हत्या व बर्बरता के काण्ड हुए उनका यहाँ ज़िक्र करने की ज़रूरत नहीं। मैं जुलाई १९४७ के अन्तिम सप्ताह में कुछ दिन की छुट्टी लेकर हुज़ूर के चरणों में हाज़िर हुआ। बाल-बच्चे भी मेरे साथ थे। देश के खराब हालात को देखते हुए मैंने हुज़ूर से पूछा कि नौकरी पर वापस झंग जाऊँ या नहीं? हुज़ूर ने कुछ सेकिण्ड के लिए आँखें बन्द कर लीं और कुछ सोचने लगे। फिर हुक्म फ़रमाया, "अच्छा, जो होगा देखा जायेगा। नौकरी पर चले जाओ, लेकिन बाल-बच्चों को साथ न ले

१. लोक। २. प्रकट।

जाओ। गुरु को हमेशा याद रखना। तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा।" ये हुज़ूर के मुझे आखिरी दर्शन थे। हाय! अगर यह उस समय पता होता कि हुज़ूर को जल्दी ही इस मात-लोक से चले जाना है, तो कभी चरणों से दूर न होता, नौकरी का चाहे कुछ भी होता।

मैं डेरे से चल कर मोगा पहुँचा। वहाँ घरवालों ने मेरे साथ झंग जाने की काफी ज़िद की। लेकिन मैंने हुज़ूर के हुक्म का पालन करते हुए उन्हें साथ ले जाने से साफ इन्कार कर दिया। मोगा से अकेला ही चल पड़ा और बस द्वारा फिरोज़पुर होता हुआ लाहौर पहुँचा। शहर में सन्नाटा छाया हुआ था। बाज़ार बन्द थे। लाहौर एक उजड़ी हुई बस्ती का नमूना पेश कर रहा था। लूट-मार व दंगे हो रहे थे और लोगों के घर-बार जलाये जा रहे थे। लेकिन हुज़ूर ने मुझे ऐसा हौसला और विश्वास प्रदान किया था और मेरी ऐसी रक्षा की कि मुझे किसी प्रकार के भय का अनुभव न हुआ। मैं महसूस करता था कि कोई ताकत लोहे के कवच की तरह मेरे शरीर और प्राण की रक्षा कर रही है। मैं बिलकुल निडरतापूर्वक रेल के द्वारा लायलपुर होता हुआ झंग पहुँच गया। वहाँ भी आतंक छाया हुआ था। १५ अगस्त को पाकिस्तान बना। मैंने हिन्दुस्तान में नौकरी करने का चुनाव किया था। १५ अगस्त बीत गया, लेकिन मुझे अपने उच्चाधिकारियों की ओर से कोई आदेश न मिला कि क्या करूँ और कहाँ जाऊँ। झँग ज़िले में हिंसा और लूट की आग ऐसी भड़की कि हमारे लिये जान बचाना मुश्किल हो गया।

मैं 'सेशन हाऊस' और डिप्टी कमिश्नर की कोठी के पास ही एक किराये के मकान में रहता था। हथियारों से लैस होकर मैं अपने मकान के अन्दर बन्द हो गया और भाग्य की ओर देख रहा था कि अब क्या होता है। पुलिस के जवान भी इस लूट-मार में खूब भाग ले रहे थे। २५ अगस्त १९४७ की सुबह मेरे मकान पर एक हिन्दू सिपाही आया और प्रार्थना करने लगा कि उसकी पत्नी व बच्चे बहुत खतरे में हैं, उनकी जान बचाई जाये। मैंने उनको बचाने के लिए अपने मकान का दरवाज़ा थोड़ा सा खोल दिया। मेरा दरवाज़ा खोलना था कि मुसलमानों का एक बड़ा झुण्ड मेरे मकान के अन्दर घुस आया। उनके पास लाठी, तलवार तथा अन्य खतरनाक हथियार थे। उन्होंने मेरे मकान को लूटना शुरू कर दिया। दो कान्स्टेबल जो मेरे मातहत रह चुके थे, मेरी ओर इशारा करके बोले कि पहले इस सिख की बोटी-बोटी उड़ा दो। उस वक्त मेरे होश-हवास उड़ गये। कुछ

नहीं सूझता था कि क्या करूँ और कैसे जान बचाऊँ। ठीक उसी समय सतगुरु दीन-दयाल का स्वरूप मेरे सामने प्रकट हुआ और उन्होंने फ़रमाया, "सरकारी पिस्तौल तुम्हारे पास है। उसे निकाल कर सबको डरा दो। तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा।"

मैं एक मेज पर चढ़ गया। अपनी सरकारी पिस्तौल तान कर ललकार कर कहा, "आ जाओ! मरने से पहले तुम्हारे एक दर्जन आदमी मार कर मरूँगा।" एक-दो फायर भी मैंने उनके पैरों की तरफ कर दिये। गोली चलते ही वह सारा झुण्ड भाग गया। बड़ा नाजुक मौका था। मैंने फिर मकान का दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया। दो घण्टे बाद फौज का हथियार-बन्द दस्ता आया और मेरे मकान पर घेरा डाल दिया। उस फौजी दस्ते का अफ़सर एक बलूची कर्नल था। उसने मेरे हथियार ले लिये और कहा कि तुम्हें दफ़ा ३०२ के अन्दर हत्या के जुर्म में गिरफ़्तार किया जाता है। मुझे सीधा जेल ले जाया गया और एक बैरेक में अकेला बन्द कर दिया गया। मैं हैरान था कि मुझे क्यों कैद किया जा रहा है। बाद में मालूम हुआ कि मेरा घर लूटने वालों ने कहीं से एक लाश लाकर अधिकारियों के सामने पेश की और मेरे विरुद्ध उस शख्स के कत्ल का इलजाम लगाया। मैंने उस पूरी घटना की एक लिखित रिपोर्ट तैयार की और अपने एस. पी. (सुपरिंडेण्ट पुलिस) को भेजने के लिये पेश की। परन्तु बाद की घटनाओं ने साबित कर दिया कि यह रिपोर्ट एस. पी. साहब के पास न पहुँची।

उन दिनों ज़िले का एस. पी. मिस्टर जी. राइन एक शरीफ व नेक अंग्रेज था। दंगा शुरू होने के एक-दो दिन पहले ही उसे आई. जी. पुलिस ने किसी जरूरी काम से लाहौर बुला लिया और वह कुछ दिनों तक वहीं व्यस्त रहा। वापस आने पर उसने दंगा रोकने की भरपूर कोशिश की, लेकिन सफलता न मिली। यह एस. पी. मुझ पर बड़ा मेहरबान था। मैंने उससे मिलने की इच्छा प्रकट की, परन्तु मुझे मिलने न दिया गया।

जेल में मुझे और जो तकलीफें थीं, वे तो थीं ही, लेकिन चाय के बिना बड़ी परेशानी थी। मैं चाय पीने का बहुत आदी था, दिन में दो-तीन बार तो अवश्य पीता। अब चाय न मिलने से जो हाल हुआ उसका बयान ही नहीं कर सकता, सुबह अगर चाय न मिलती तो कब्ज हो जाती। मैंने जेल अधिकारियों से निवेदन किया कि मेरी अगस्त की तनखाह मँगवा कर मेरे खर्च पर मुझे चाय दी जाये। परन्तु उन दिनों क्या हिन्दू और [illegible] मुसलमान सभी में सहानुभूति और मनुष्यता की भावना खतम हो चुकी थी। चाय न

मिलने से सारा दिन तबियत गिरी-गिरी सी रहती। स्वास्थ्य भी गिरने लगा और जोड़ों में दर्द होने लगा। लेकिन शुक्र है कि इस कैद ने चाय की बुरी आदत तो कुछ समय के बाद छुड़ा दी।

मेरे एक दोस्त ने मिस्टर राइन को मेरी कहानी सुनाई। उसने मुझे छुड़ाने की कोशिश की, लेकिन सफलता न मिली। कुछ समय तक तो मुझे यह आशा रही कि पश्चिम पंजाब में मेरे मित्र और लायलपुर में रहनें वाले रिश्तेदार मेरी मदद को आयेंगे। परन्तु पूरे पंजाब में दंगे शुरू हो गये थे और हिन्दू व सिक्ख पाकिस्तान से और मुसलमान हिन्दुस्तान से जान बचा कर भाग रहे थे। धीरे-धीरे जेल से छूटने की मेरी सब उम्मीद खत्म हो गई। मुझे बतलाया गया कि हत्या के जुर्म में मुझ पर मुकदमा चलेगा। बहुत चिन्ता और परेशानी में दिन बीत रहे थे। अब तो यह हालत थी कि न कोई दोस्त न साथी, न मददगार न रिश्तेदार, न कोई स्नेही और न कोई मेहरबान नज़र आता था। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देता था। जेल से मुक्ति या जान बचाने का कोई उपाय नहीं दिखता था। मैं इतना घबराया कि कुछ कह नहीं सकता। मैंने जेल अधिकारियों से प्रार्थना की कि मुझे अदालत में पेश किया जाये। जवाब मिला कि तुम्हारा अदालत में पहुँचना भी मुश्किल है, रास्ते में ही लोग मार देंगे। मैं अब क्या कर सकता था? रो-रोकर मालिक से प्रार्थना करता रहा कि हे मालिक! अब इस ज़िन्दगी का खात्मा कर दे।

सतगुरु की दया से मुझे नाम तो १९३६ में ही मिल गया था। परन्तु न तो मैंने भजन किया था, न अन्दर कोई रसाई थी। सुरत भला कैसे सिमटती जब कि भजन-सुमिरन के प्रति इतनी लापरवाही रही हो, बल्कि गुरु के हुक्म की पाबन्दी से भी कभी-कभी बाहर हो जाता था। उस समय दिल में बड़ा अफ़सोस हुआ कि धिक्कार है मेरे जीवन को! इतने महान सतगुरु मिले, परन्तु मैंने कोई सेवा न की; न गुरु से प्यार किया और न उनके हुक्म की तामील की। मौत सामने नज़र आ रही थी। मगर 'अब पछताये होत क्या, जब चिड़ियां चुग गईं खेत'। मैंने अब तक जो कुछ किया वह अपने मन और बुद्धि के अनुसार किया था। गुरु की दया-मेहर और उनकी करुणा व कृपा का मुझे क्या ज्ञान था!

सितम्बर के अन्तिम दिन थे। मैं रात को अपनी बैरेक में दुःखी व परेशान बैठा था। नींद का कहीं पता न था। गहरी चिन्ता व घबराहट की हालत में मैं सोने के लिए बने हुए मिट्टी के चबूतरे पर लेट गया।

दिल में ज़ार-ज़ार रो रहा था। बेहद दुःखी था। अचानक क्या देखता हूँ कि हुज़ूर महाराजजी अपने आकर्षक सुन्दर स्वरूप में मेरे सामने प्रत्यक्ष खड़े हैं। आँखों से प्रेम की नूरी किरणें निकल रही हैं। अपने मधुर स्वर में फ़रमाया, "घबराने की ज़रूरत नहीं। सब खैरियत रहेगी।" यह फ़रमाकर तुरन्त अदृश्य हो गये। मैं हैरान था कि बात क्या है। मैं सो नहीं रहा था, इसलिये यह स्वप्न नहीं हो सकता था। खैर, इस घटना से मुझे धीरज बँधा, घबराहट बहुत कम हो गई और दिल में कुछ शान्ति आई।

जेल में इसी प्रकार दिन बीतते गये। दुःख में गुरु खूब याद आता है। जब गुरु याद आये तो दुःख-दर्द कहाँ रह सकता है! जेल में मुझे 'सी' क्लास दी गई थी। एक दिन संयोगवश डिप्टी कमिश्नर, पुलिस सुपरिंडेण्ट और एक राजकीय सदस्य सैयद यूसुफ़शाह बैरिस्टर, जेल के निरीक्षण के लिए आये। जब मेरे पास आये तो एस. पी. ने कहा कि यह व्यक्ति डिप्टी सुपरिंडेण्ट पुलिस था और एक नेक व लायक अफ़सर था। इसे कम से कम 'बी' क्लास तो मिलनी चाहिए। इस पर वे तीनों सहमत हो गये और मुझे 'बी' क्लास मिल गई। यह भी मेरे सतगुरु की कृपा से ही हुआ, नहीं तो 'सी' क्लास में ही पड़ा सड़ता रहता।

दिल्ली के प्रसिद्ध सर्जन डाक्टर जोशी को डाक्टर कुरेशी नामक एक व्यक्ति ने गोली से मार डाला था। डाक्टर कुरेशी को फाँसी की सज़ा सुनाई गई थी और हाईकोर्ट में भी सज़ा की पुष्टि हो चुकी थी। पाकिस्तान सरकार उसे बचाना चाहती थी। एक दिन सैयद यूसुफ़शाह आये और बतला गये कि कैदियों के तबादले की बातचीत दोनों सरकारों के बीच चल रही है। कुछ दिनों बाद समाचार मिला कि दोनों सरकारों ने कैदियों के तबादले पर समझौता कर लिया है और हमें बहुत जल्दी ही हिन्दुस्तान भेज दिया जायेगा। मैं बहुत खुश हुआ। मन फूला न समाता था। खुशी की लहर सारे शरीर में दौड़ रही थी।

२ या ३ नवम्बर, १९४७ को सूर्यास्त के बाद मैं रोज़ के जैसे भजन में बैठ गया। थोड़ी देर बाद इस बार फिर अचानक हुज़ूर महाराजजी ने दर्शन दिये और फ़रमाया, "अभी एक साल के करीब और जेलखाने में रहना पड़ेगा।" यह हुक्म फ़रमा कर हुज़ूर फिर गायब हो गये। इस बार भी मेरी आत्मा सिमटी नहीं थी। हुज़ूर ने एक अजीब सी हालत पैदा करके यह दर्शन दिया था। जल्दी ही अपने देश पहुँचने की खुशी तो खत्म हो गई लेकिन सतगुरु के दर्शन की खुशी भी कुछ कम न थी। हुज़ूर की मौज पर

राज़ी हो गया। दिन बीतते गये। मैंने बहुत से पत्र हुज़ूर महाराजजी तथा घर वालों को लिखे, परन्तु किसी का जवाब न आया।

दोनों सरकारों के अफसर कैदियों के आदान-प्रदान का विवरण तैयार करने में लगे थे। मार्च के अन्त में निर्णय हुआ कि ४ अप्रैल, १९४८ से तबादला शुरू हो जायेगा। इस बीच मुझे महाराजजी का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था, "मैंने तुम्हारे सब पत्रों के उत्तर दिये हैं। अगर नहीं मिले तो कोई चिन्ता न करो। मालिक पर भरोसा रखो और भजन-सुमिरन करते रहो।" इस पत्र को पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मार्च, १९४८ में मेरा छोटा भाई मेजर सरदारासिंह मुझसे मिलने आया। उसने बताया कि हुज़ूर बहुत बीमार हैं। इससे मेरे मन में बड़ी चिन्ता पैदा हो गई। ३ अप्रैल को मेरे मित्र डाक्टर देवराज हाण्डा मुझसे मिलने बोर्स्टल जेल लाहौर में आये। उन्होंने हुज़ूर के चोला छोड़ने का भयानक और दर्दनाक समाचार सुनाया। मेरी सारी उम्मीदें खाक में मिल गईं। मैं महसूस करने लगा कि मैं पूरी तरह से तबाह हो गया हूँ। अब मेरा कोई हमदर्द व मददगार न रहा। मेरी हालत एक असहाय विधवा जैसी हो गई।

४ अप्रैल, १९४८ आ गया। बहुत से कैदियों को हिन्दुस्तान भेजने के लिये जेलखाने से बाहर रेलवे स्टेशन पर पहुँचाया गया। लेकिन उनमें मेरी बारी न आई। उनकी गाड़ी करीब आठ बजे चली गई। दिन के दस बजे के करीब जेल के अफसरों ने मुझे तथा कई और कैदियों को हुक्म दिया कि फौरन तैयार हो जाओ, तुम सबको हिन्दुस्तान भेजा जायेगा। चीफ सेक्रेटरी की खास सिफारिश तुम्हारे लिये आई है। हमारा खाना बन रहा था, करीब-करीब तैयार हो गया था, लेकिन हमने पका-पकाया खाना वहीं छोड़ दिया और कहा कि अब हिन्दुस्तान जाकर ही खाना खायेंगे। मेरे मन में एक-दो बार यह विचार अवश्य आया कि सतगुरु महाराजजी के वचन तो कुछ और ही थे। लेकिन जो बात मन की ख्वाहिश के खिलाफ़ हो, मन उसे रद्द करने की कोई न कोई वजह ढूँढ ही लेता है। जेल की ड्योढ़ी में आकर हम चलने का इन्तिज़ार करने लगे। यहाँ आकर जेल के वार्डरों की हरकतों, उनके इशारों और चेहरों के भाव से दिल में शक होने लगा कि कहीं मामला कुछ और ही न हो। साथ ही हुज़ूर के वचन भी याद आ गये कि अभी करीब एक साल और जेल में काटना पड़ेगा। मैंने अपने साथियों से कहा कि कुछ हेरा-फेरी दिखाई पड़ती है। उन सब ने मुझे डाँट दिया और बोले कि पुलिस वाले हमेशा वहमी होते हैं। खैर, इन्तिज़ार में शाम के छः

बज गये । तब कहीं कैदियों को ले जाने वाली लारी ग्राई । हमें इस लारी में बन्द कर दिया गया ग्रौर बताया गया कि यह लारी हमें सीधे हिन्दुस्तान ले जायेगी । उसमें पाँच कैदी पहले से बैठे थे, जिन्हें सेंट्रल जेल से लाया गया था । मेरे साथी खुशी से फूले न समाते थे। परन्तु मैं कुछ निराश था ग्रौर सोच रहा था कि गुरु के वचन कैसे टल सकते हैं । लारी जी. टी. रोड पर होती हुई रावी के पुल पर जा चढ़ी ग्रौर पश्चिम की ग्रोर जाने लगी । मेरे साथी रोने लगे । उनको शक हो गया कि हमें कत्ल करने के लिये ले जाया जा रहा है । मैं हँस पड़ा ग्रौर उन्हें तसल्ली दी कि चिन्ता न करो । एक पुलिस के सिपाही ने, जो एक समय मेरा मातहत रह चुका था, बताया कि हमें रावलपिंडी की सेंट्रल जेल में ले जाया जा रहा है । डाक्टर कुरेशी तथा कुछ ग्रन्य मुसलमान कैदी ग्रभी पाकिस्तान नहीं पहुँचे थे । हमें उस वक्त छोड़ा जायेगा जब डाक्टर कुरेशी यहाँ पहुँच जायेगा । ग्राधी रात के करीब हम भूखे-प्यासे सेंट्रल जेल रावलपिंडी पहुँचे । रात को हमें जेल के ग्रस्पताल में रखा गया । सुबह हमें ग्रौर भी हिन्दू व सिख कैदी मिले जो जल्दी ही हिन्दुस्तान जाने की ग्रास लगाये बैठे थे । हमारे ग्राने से उनके दिलों में निराशा छा गई ग्रौर ऐसा लगने लगा कि कैदियों का तबादला जल्दी नहीं होगा ।

५ ग्रप्रैल को हमें जेलखाने की तंग व ग्रँधेरी कोठरियों में बन्द कर दिया गया। हम सब बड़े दुःखी थे । हमारी हालत उस पक्षी जैसी थी जो शिकारी के जाल में से निकल कर फिर उसमें फँस गया हो । उस रात को जब मैं सो रहा था हुज़ूर ने एक ग्रजीब कृपा की । मुझे ग्रब तक पता न था कि शब्द-धुन की ग्रावाज़ कैसी है ग्रौर उसका ग्रसल ठिकाना कहाँ है । उस रात बड़े घड़ियाल ग्रथवा घण्टे को गूँजती हुई ग्रावाज़ ग्रपने ग्राप मस्तक के ग्रन्दर सुनाई देने लगी । इसमें मेरी किसी प्रकार की कोशिश ग्रथवा हुज़ूर से प्रार्थना का योग न था । मैं हर रोज़ नियमपूर्वक भजन में बैठता तो था, लेकिन मन ग्रपनी उधेड़-बुन में ही लगा रहता था । उस दिन उस रहमत के शब्द ने सारा दुःख-दर्द दूर कर दिया ग्रौर उसके बाद फिर किसी समय वहाँ मेरे मन में चिन्ता न ग्राई । मुझे हुज़ूर महाराजजी के पौत्र सरदार नगेन्द्रसिंह ने "गुरुमत सिद्धान्त" ग्रौर "शब्द की महिमा के शब्द" नामक दो पुस्तकें भेजीं जिन्हें मैं शौक से पढ़ता रहा ।

मैंने हुज़ूर महाराजजी के एक सत्संग में सुना था कि सत्संगी को ग्रपने सतगुरु के सिवाय ग्रौर किसी के ग्रागे मत्था नहीं टेकना चाहिए । मुझे यह

सूचना मिल गई थी कि हुज़ूर महाराजजी सरदार बहादुर जगतसिंहजी को अपना जानशीन नियुक्त फ़रमा गये हैं। लेकिन मैंने सोचा कि गुरु तो हमारे चले गये, अब हमें ब्यास जाकर क्या करना है, वहाँ अब हमारा कौन है? अगर हमारे सतगुरु वहाँ होते तो उनके चरणों में गिर कर अपना हाल सुनाते। वे अपना जानशीन तो मुकर्रर कर गये हैं, लेकिन यह सिर जो हुज़ूर के चरणों में झुक चुका है, और किसी के आगे अब कैसे झुकेगा। मैं अपने गुरु के अलावा और किसी के आगे झुकना न चाहता था। सोचता था कि जब हमारा प्रियतम चला गया तो उसके साथ हम भी मिट गये और हमारा प्रेम भी गया। अक्सर मुहम्मद बूटा का यह पद पढ़ा करता था—

"ग़ामन गमाँ दा कौन होवे इको यार दर्दी सो भी नस्स गया।
पई बंदगी न कबूल मेरी सिजदा करदियाँ मथड़ा घिस गया।
कीते लख हज़ार ते कई तरले जानी इक न दिले दी दस गया।
मुहम्मद बूटा बेपरवाह सोहना सानू रोंदियाँ देख के हस गया।"

(अर्थात् मेरे गम को दूर करने वाला अब कौन हो, जब कि मेरे कष्ट को जाननेवाला जो एक प्रियतम ही था वह भी छोड़ गया। सिजदा कर-कर के मेरा मस्तक घिस गया लेकिन मेरी बंदगी उसके दर पर कबूल न हुई। मैंने लाखों हज़ारों प्रार्थनाएँ कीं, विलाप किया, लेकिन प्रियतम दिल की बात कह कर न गया। मुहम्मद बूटा कहता है कि वह सोहना बेपरवाह प्रियतम मुझे रोते हुए देख कर हँसता हुआ चला गया।)

हुज़ूर के बिछोह का ख़याल निरन्तर बना रहता, परन्तु कुछ चारा न था। सोचता था कि गुरु के इतने मेहरबान होते हुए भी न देह-स्वरूप का लाभ उठाया और न उनके हुक्म का पालन किया। यह दुःख मुझे हर वक्त सताता रहता। एक रात ३ बजे रोज़ जैसे भजन में बैठा। लेकिन मेरी विचित्र हालत हो गई। हुज़ूर महाराजजी अपने नूरी स्वरूप में प्रकट हो गये। उनके मुख के चारों ओर प्रकाश का मण्डल था जिसमें से किरणें निकल रही थीं। चमचमाती ज्योतिर्मय पोशाक थी। रोम-रोम से अद्वितीय प्रकाश की किरणें निकल रही थीं। बड़ी देर तक यह सुहावना आकर्षक दृश्य सामने रहा। फिर वह स्वरूप धीरे-धीरे बदलने लगा और सरदार बहादुर महाराजजी के वैसे ही ज्योतिर्मय स्वरूप में परिवर्तित हो गया। इस बीच में हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी ने अपने पवित्र मुख से वचन फ़रमाये, "यह शरीर भी मेरा ही है। देखो, धोखा न खाना।" कुछ देर बाद यह दृश्य समाप्त हो गया। मुझे बेहद खुशी हुई। सुबह होते ही क्षमा-याचना

का एक पत्र सरदार बहादुर महाराजजी की सेवा में लिखा और इस घटना का पूरा वृत्तान्त एक अलग पत्र में सरदार बचितसिंह साहिब (हुजूर महाराज बाबा सावनसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र) को लिखा। अब हौसला हो गया। मैं फूला न समाता था, मेरा रंग बदल गया। मेरा भाग्य पलट गया। सब दुःख भूल गया। अब तो बस यही कामना थी कि जल्दी से जल्दी जाकर हुजूर सरदार बहादुरजी के चरणों में सर रख दूँ। सरदार बहादुर महाराजजी को फिर दूसरा पत्र लिखा कि शब्द सुनाई नहीं देता और न ही भजन बनता है। हुजूर का जवाब आया, "भजन सुमिरन बिना नाग़ा करते रहो। यह ख़याल न करो कि शब्द सुनाई देता है कि नहीं। मालिक जब ठीक समझेगा और जैसा उचित समझेगा कर देगा।"

फिर कुछ समय हम वापस बोर्स्टल जेल लाहौर में रखे गये। आखिर ३ या ४ नवम्बर, १९४८ को हमें लाहौर से फिरोज़पुर लाया गया और वहाँ मुक्त कर दिया गया। मैं ऊपर अर्ज़ कर चुका हूँ कि झंग जेल में हुजूर ने दर्शन बख्श कर फ़रमाया था कि अभी एक साल के करीब और जेल में रहना पड़ेगा। ये वचन नवम्बर, १९४७ में फ़रमाये गये थे। मैं नवम्बर १९४८ में पूरे एक साल के बाद छूटा।

यहाँ यह बताना उचित होगा कि जेल के कर्मचारी कई बार कहा करते थे कि इस सिख को गिरफ़्तार नहीं करना चाहिए था, इसे तो गिरफ्तारी से पहले ही मार देना चाहिए था। लेकिन 'राखे राम तो मारे कौन।' यह सतगुरु की अपार दया थी कि मैं जेल ले जाया गया और इससे मेरी जान बच गई।

फिरोज़पुर से मैं सीधा ब्यास हुजूर सरदार बहादुरजी महाराज के पवित्र चरणों में मत्था टेकने पहुँचा और उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त किया। हुजूर मुझसे बड़ी दया और कृपा के साथ मिले। इतना प्रेम प्रकट किया कि मैं वर्णन ही नहीं कर सकता। शाम को मैं सत्संग में हाज़िर हुआ। यह ५ नवम्बर १९४८ की बात है। हुजूर सरदार बहादुर साहिब ने सत्संग शुरू किया। मैं बिलकुल सामने बैठा था। क्या देखता हूँ कि तख़्त पर सरदार बहादुर जगतसिंहजी महाराज के बजाय हुजूर बाबा सावनसिंहजी महाराज देह-स्वरूप में बिराजमान हैं। मैं हैरान रह गया। आँखों में आँसू भर आये। साथ ही ऐसी खुशी और प्रसन्नता हुई कि कुछ कह नहीं सकता। अन्य कई सत्संगियों ने भी यह दृश्य देखा। बाद में कुछ अन्य अवसरों पर भी यह दृश्य देखने में आया।

सरदार बचिंतसिंह साहिब से मिलने पर पता चला कि मेरा पत्र उनको मिला और उन्होंने उसे सत्संग में पढ़ कर सुनाना चाहा, परन्तु सरदार बहादुरजी महाराज ने ऐसा न करने दिया और पत्र खुद ले लिया।

(हस्ताक्षर) गुरदयालसिंह

तारीख १६-४-१९४९ डिप्टी सुपरिंटेण्ड पुलिस,
हिसार

१०. डेरे के कुछ सेवक व सेविकाएँ

(१) **भाई-शादी** :—भाई शादी का जन्म धालीवाल ग्राम के एक छोटे मुस्लिम परिवार में हुआ था। लड़कपन से ही इनको कुश्ती और व्यायाम का शौक था। आपको कुश्ती सिखाने वाले पहलवान ने इस शर्त पर शिष्य बनाया कि गाँव से बाहर सोना और औरतों से दूर रहना। आपने आजीवन विवाह नहीं किया। आपको मशीनी कार्य का शुरू से शौक था। होतीमर्दान में कुछ समय आपने एक पुल के निर्माण के समय एक अंग्रेज़ अफ़सर के नीचे काम किया और मैकेनिक का कार्य सीखा। फिर अमृतसर में एक मुसलमान मिस्तरी के यहाँ आइल-इन्जिनों पर काम किया और वहाँ रह कर एक कुशल मिस्तरी बन गये। जब भी आप अपने गाँव आते, तो उद्दण्ड लड़कों के साथ मिल कर ऊधम मचाते। २०-२२ वर्ष की उम्र से आप ज्यादा समय अपने ग्राम में बिताने लगे। ग्राम में तथा आस-पास के स्थानों में लोगों की चीज़ें व रुपये-पैसे छीन लेना, धौंस देना और मार-पीट करना उनका रोज़ का काम हो गया। शरीर से बलवान और स्वभाव से निडर तो थे ही। लोग उनसे डरने लगे। यह उद्दण्डता ही उन्हें सतगुरु की शरण में ले आई। कई बार ब्यास जाने वाले राहगीरों को भी शादी मियाँ रास्ते में परेशान करते और उनका सामान छीन लेते। एक दिन भाई मेलाराम नामक एक सत्संगी ने हुज़ूर महाराजजी से अर्ज़ की कि धालीवाल ग्राम की ओर से आने वाली संगत को एक शैतान नौजवान बहुत परेशान करता है। इस पर महाराजजी ने फ़रमाया कि इस बार वह कुछ शरारत करे तो उससे डेरे आने के लिये कहना।

कुछ दिन बाद मेलाराम डेरे आ रहा था। रास्ते में भाई शादी मिल गये। रोक कर सामान लूटने और मार-पीट करने को तैयार हो गये। मेलाराम बोला, "भाई, मैं तो कमज़ोर इन्सान हूँ, तेरा मुकाबला नहीं कर सकता। अगर मुकाबला करना हो तो मेरे गुरु के पास डेरे में जा। वे बहुत

ताकतवर हैं।" इस चुनौती को भाई शादी ने फौरन स्वीकार किया और डेरे जाने का निश्चय कर लिया। कुछ ही समय बाद एक दिन भाई शादी सठियाला ग्राम से कुश्ती देख कर वापस लौट रहे थे। डेरे के पास से निकले तो भाई मेलाराम की चुनौती याद आ गई। अपने साथियों के साथ डेरे में आये। उस समय लाइब्रेरी के पास के छोटे से मैदान में सत्संग हो रहा था। अपने साथियों सहित वह भी बैठ कर सुनने लगे। जब सत्संग समाप्त हुआ, सूर्यास्त होने वाला था। धालीवाल डेरे से ५-६ मील था, अतएव शादी के साथी वापस चलने की जल्दी करने लगे। परन्तु महाराजजी के दर्शन करके शादी की तो हालत ही कुछ बदल गई थी। महाराजजी से मिलने की इच्छा जाग उठी थी। अपने साथियों से बोले, "वली-अल्लाह के मुकाम पर आकर उनसे बगैर मिले जाना मुनासिब नहीं है।"

यह सुनकर शादी के उस्ताद ने, जो उसका चाचा भी लगता था, नाराज़ होकर जल्दी चलने के लिये कहा। शादी जाना चाहता नहीं था और न ही अपने उस्ताद को नाराज़ करना चाहता था। कुछ देर इसी दुबिधा में खड़ा रहा। परन्तु जब साथियों ने ज़ोर दिया और उस्ताद ने क्रुद्ध हो चलने का हुक्म दिया तो उदास मन से चल पड़ा। लेकिन सतगुरु का हाथ तो इतना लम्बा है कि आठों द्वीप, नौ खण्ड और चौदह तबक उसकी पहुँच में हैं। खण्डों-ब्रह्माण्डों पर उसकी नज़र पड़ रही है। वह घट-घट की जानता है। "चींटी के पग नेवर बाजे, वह भी साहब सुनता है।" जब वह किसी जीव को अपनी ओर खींचना चाहता है तो उसकी रहमत को कौन रोक सकता है। किसी ने कहा है, 'कीड़ा थाप देवे बादशाही'। अभी ये लोग कुछ कदम ही चले थे कि सामने से सतगुरु महाराजजी आते हुए मिले। भाई शादी सबसे आगे थे। हुज़ूर दीन-दयाल ने उस पर वह मेहर-भरी दृष्टि डाली जिसके बारे में कबीर साहब ने फ़रमाया है, 'मेरा मारा फिर जिये तो हाथ न गहूँ कमान।' हुज़ूर ने शादी के उस्ताद से कुछ बात की तथा फ़रमाया कि इस वक्त अँधेरे में कहाँ जाओगे, कल चले जाना। परन्तु उसने जवाब दिया कि उनका गाँव पास ही है, कुछ ही देर में पहुँच जायेंगे।

शादी ने महाराजजी से कोई बात न की, लेकिन सतगुरु का आकर्षक स्वरूप मन में समा गया। ग्राम में चैन न मिला और तीन दिन बाद बगैर किसी से कुछ कहे वह डेरे में आ गया और ऐसा आया कि फिर लौट कर कभी न गया। उस समय शादी की उम्र २३-२४ वर्ष की होगी। शाम को सत्संग सुना। हुज़ूर ने सत्संग में फ़रमाया कि जो लोग पराया धन लूटते हैं

उन्हें सजा भुगतनी पड़ती है और अपने किये का पूरा-पूरा बदला चुकाना पड़ता है। पूरे सत्संग में शादी की आँखों से आँसू बह रहे थे। दूसरे दिन हुज़ूर से नाम की याचना की। हुज़ूर ने नाम की दौलत बख़्श दी और नाम पाकर भाई शादी की काया ही पलट गई। उद्दण्डता का स्थान गुरु के प्रेम और दीनता ने ले लिया। खूब अभ्यास किया और हमेशा हुज़ूर के साथ रहे।

एक बार गाँव से खबर आई कि माँ बीमार है। भाई शादी अपनी माँ की खबर लेनें चल पड़े। परन्तु आधे रास्ते से वापस लौट पड़े। जिस दिन सतगुरु के चरणों में आये थे, सब-कुछ छोड़ आये थे। सतगुरु से एक दिन के लिये भी दूर होना मंजूर न था। अतएव वापस आ गये। रात को भाई शादी हुज़ूर के कमरे के दरवाज़े पर सोते थे। रात को हुज़ूर ने आप को आवाज़ दी और फ़रमाया, "शादी ! तुम्हारी माता चोला छोड़ गई है। सतगुरु ने उसकी सँभाल कर ली है।"

भाई शादी एक बहुत अच्छे मिस्तरी और मेकेनिक थे। लेथ मशीन, आइल एंजिन व ट्रेक्टरों को चलाने व सुधारने में कुशल थे। एक बार आप महाराजजी के साथ लाहौर गये। वहाँ से एक टूटा-फूटा आइल-एंजिन बहुत कम दाम में ले आये। कुछ दिनों में उसे सुधार कर चालू कर दिया और उससे डेरे में बिजली लगा दी। एक बार सुलतानपुर से २५० रुपयें में एक बेकार व टूटा हुआ ट्रेक्टर खरीद लाये और उसे ऐसा दुरुस्त किया कि कई साल तक डेरे में उसे खेती के काम में लाया जाता रहा। इसी प्रकार आप टूटे हुए एन्जिन सस्ते भाव में खरीद कर उन्हें दुरुस्त करके बेच देते थे। डेरे में उनकी एक आटा पीसने की मशीन लगी हुई थी। इन कार्यों से आप को अपने खर्च से अधिक आमदनी हो जाती थी।

आप अपनी कमाई पर गुज़ारा करते रहे। अपने खाने-पीने का बहुत खयाल रखते। कभी किसी से कोई चीज़ न लेते। जब कहीं बाहर जाते तो किसी के यहाँ खाना तो दूर, शरबत या लस्सी तक न पीते। अपना खाना बाज़ार से अपने पैसों से लेकर खाते। जब हुज़ूर महाराजजी के साथ दौरों पर जाते तो हुज़ूर की अपनी निजी रसोई में खाते। बटाले के मुसलमान लुहार भाई शादी के मशीनों के ज्ञान की कद्र करते और उनको फकीर दोस्त समझकर उनकी इज्ज़त करते। वे कई बार भाई शादी से कहते कि हमारे साथ रहो और काम करो। तुम्हारी वजह से हज़ारों रुपयों की कमाई हो सकेगी और तुम भी खूब कमा सकोगे। कुछ कारखाने के मालिकों ने उन्हें अच्छे वेतन पर नौकरी देना चाहा पर उन्होंने जवाब दिया, "अब इस बादशाह

की नौकरी छोड़कर और कहीं जाने को दिल नहीं करता। जो तनखाह मुझे इस दरगाह से मिल रही है, वह और कोई नहीं दे सकता।" भाई शादी ने गुरु की सेवा को ही मुख्य रखा और ज़िन्दगी भर सतगुरु का साथ न छोड़ा।

कई बार अच्छे मुसलमान घरानों से विवाह के पैगाम आते। परन्तु आप विवाह करना स्वीकार न करते। यदि हम लोग कभी उनसे शादी करने को कहते तो जवाब देते, "मैं तो खुद शादी हूँ, और शादी क्या करूँ।" स्त्रियों से आपको सख्त नफरत थी। आपके पवित्र जीवन के लिये यह द्रोह कवच के समान था। आपका पूरा जीवन अपने सतगुरु की सेवा, गुरु के प्रेम और भजन-सुमिरन को समर्पित था। सतगुरु से एक दिन का विछोह भी व्याकुल कर देता था। यदि किसी कार्य से अकेले बाहर जाना पड़ता तो उसी दिन वापस आ जाते। आपके भजन-सुमिरन के विषय में राय साहिब मुन्शीराम-जी अपनी डायरी में लिखते हैं, "जब हम इकट्ठे सतगुरु के साथ दौरे पर जाया करते तो वे (शादी) और मैं एक कमरे में ठहरा करते। रात को जब देखो भजन में अपनी चारपाई पर बैठे हैं।......मैंने उनको सोते कम ही देखा।"

शादी पढ़े-लिखे बिलकुल न थे, मगर उनको आन्तरिक ज्ञान था। जब रूहानियत से सम्बन्धित बातें करते तो आपकी बुद्धिमत्ता और गहराई का पता चलता। गुरु की साखियाँ, गुरु की महिमा व गुणगान करने पर आते तो अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे आश्चर्य सहित सुनते रहते। गुरु के चमत्कारों के वृत्तान्त भी उन्हें खूब याद थे। हर समय सतगुरु के साथ अंग-रक्षक की तरह रहते। जब कहीं हुज़ूर बाहर सफर पर मोटर में जाते तो शादी ड्राइवर के पास वाली सीट पर बैठ जाते। हुज़ूर अपने कमरे में होते तो शादी बाहर बरामदे में चटाई बिछा कर बैठे रहते। सतगुरु दीनदयाल की भी आप पर बेहद दया थी।

एक बार सिकन्दरपुर से सरसा आते समय रास्ते में शादी का पैर एक साँप पर पड़ गया। साँप ने फौरन डस लिया। साँप ऐसा ज़हरीला था कि इसका काटा हुआ कम ही बचता है। कुछ ही क्षणों में भाई शादी ज़मीन पर गिर पड़े और उनका रंग काला पड़ गया। हुज़ूर महाराजजी घोड़े पर बैठे आगे जा रहे थे। जब हमने उन्हें सूचना देना चाहा तो शादी ने रोक दिया। जब मैंने हुज़ूर से अर्ज़ करना ज़रूरी बताया तो शादी ने कहा, "किस लिये? कि वे आकर मेरा ज़हर अपने ऊपर ले लें? नहीं, हुज़ूर से न कहना।" और वे बेसुध हो गये, शायद मर ही गये। हुज़ूर कुछ आगे निकल गये थे परन्तु अचानक हुज़ूर ने पीछे मुड़ कर देखा और हमें परेशान देख कर हमारी ओर

लौट आये। हुज़ूर ने उसी समय नीम की एक टहनी लाने का हुक्म दिया। मगर वहाँ नीम का पेड़ तो क्या, किसी तरह का पेड़ आस-पास न था। दूर एक छोटी झाड़ी देख कर हुज़ूर ने फ़रमाया कि अच्छा, उसी की एक टहनी काट लाओ। टहनी को लेकर हुज़ूर ने उसे शादी के शरीर पर ऊपर से नीचे फेरना शुरू कर दिया और फ़रमाया "मैंने सुना है इस तरह टहनी फेरने से साँप का ज़हर उतर जाता है।" कोई दस मिनिट में भाई शादी ने आँखें खोल दीं।

होश आने पर शादी खुश होने के बजाय नाराज़ हुए। उनकी आँखों में आँसू भर आये। पहले मुझसे शिकायत की कि हुज़ूर को क्यों खबर दी। फिर हुज़ूर महाराजजी से फ़रियाद की, "सच्चे पातशाह ! क्या मैं इस लायक था कि मेरा ज़हर अपने ऊपर लेते ? मुझे मर क्यों न जाने दिया ? मेरे जैसी हज़ारों जानें भी हुज़ूर के एक रोम पर कुर्बान हो जायें तो कम हैं।"

जब हुज़ूर ने सिकन्दरपुर (सरसा) में ज़मीनें खरीदीं तो भाई शादी भी हुज़ूर के साथ वहाँ जाते तथा ट्रैक्टर आदि चलवाते। बाद में शक्कर के कारखाने में मशीनों की देखभाल में भी वे बहुत मदद किया करते थे। सतगुरु के परिवार के प्रति आपको अगाध प्रेम था। राय साहिब मुन्शीराम जी के शब्दों में "गुरु की सन्तान पर जान देते थे। गुरु की सन्तान से खुशी-खुशी मिलते। उनके यहाँ खाना खाकर व चाय पीकर खुश होते। उनकी खुशी व खुशहाली व उन्नति देख कर ऐसे खुश होते जैसे कि उनको खुद दौलत मिल गई हो। आप अक्सर कहा करते थे कि सरदार चरनसिंहजी से हुज़ूर को बहुत सेवा लेनी है।"

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के महाप्रयाण के बाद भाई शादी का मन उदास हो गया। यद्यपि सरदार बहादुरजी महाराज और उनके बाद मौजूदा सरकार हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी के चरणों में भी भाई शादी की गहरी प्रीति थी, फिर भी अपने देह-स्वरूप सतगुरु का वियोग वे बहुत महसूस करते थे।

सन् १९५२ में जब महाराज चरनसिंहजी एक बार सरसा जा रहे थे तो भाई शादी उनकी सेवा में आये और अर्ज़ की, "ये चार हज़ार रुपये मेरे जमा थे, इन्हें आप सेवा में दे देना। मेरी एक आटे की मशीन है, उसे बीबी रली को दे देना।" इस पर हुज़ूर ने फरमाया, "जाने की इतनी जल्दी क्या है ? और कुछ वक्त ठहरो।" तो उन्होंने कहा कि उनका अब इस दुनिया में रहने को मन नहीं करता। फिर शादी ने हँसते हुए कहा, "मैंने बीबियों

से नफरत तो बहुत की। पर संस्कार तो डेरे वाले बीबियों के घाट पर ही करेंगे।"

इस पर हुज़ूर ने कहा, "ऐसी क्या बात है, मैं आकर किसी और जगह संस्कार करवा दूँगा।"

भाई शादी कुछ देर खामोश रहे, फिर बोले, "हुज़ूर! कोई आपका रास्ता नहीं देखेंगे। पहले ही संस्कार कर देंगे।" इसके बाद शादी ने हुज़ूर को बड़े प्रेम और भाव के साथ मत्था टेक कर बिदा ली।

१५ नवम्बर १९५२ की अर्ध-रात्रि के समय कुछ दिन की बीमारी के के बाद भाई शादी इस संसार को छोड़ कर अपने प्यारे सतगुरु के चरणों में लीन हो गये। बीमारी में ज़्यादा समय उनका ख़याल अन्दर ही लगा रहता था। जब हाल पूछते तो कहते कि अन्दर से बाहर आने को जी नहीं चाहता। भाई शादी के प्रयाण के समाचार का तार मिलते ही मौजूदा सरकार सिकन्दरपुर से कार द्वारा डेरे के लिये रवाना हो गये। परन्तु प्रबन्धकों ने हुज़ूर के पहुँचने से पहले ही संस्कार कर दिया था।

यहाँ कुछ ऐसी बीबियों का उल्लेख करना भी उचित होगा, जिन्होंने अपनी सारी उम्र, सांसारिक सुखों को ठुकरा कर, डेरे और सतगुरु की सेवा में बिता दी।

(२) **बीबी रुक्को** :—आपके नाम से तो सत्संगी परिचित हैं और आपका इससे पहले भी ज़िक्र किया जा चुका है। आप बड़ी कमाई वाली सत्संगी और गुरु-भक्त थीं। छोटी उम्र से ही, दुनिया के झंझटों में न पड़ कर प्रभु-भक्ति में लग गई थीं। कई वर्ष आप पूज्य माताजी (हुज़ूर स्वामीजी महाराज की धर्मपत्नी) की सेवा में रह कर अभ्यास करती रहीं। बाबा जैमलसिंहजी महाराज के पेंशन लेकर रिटायर होने पर माताजी ने आपको बाबाजी महाराज के साथ पंजाब भेज दिया था। बड़ी दृढ़-चरित्र, निडर और साहसी महिला थीं। आवाज़ बुलन्द किन्तु बहुत मीठी थी। **गाने** का शौक था, गुरु-भक्ति के शब्द इस प्रेम और भाव के साथ गातीं कि सुनने वालों के नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा प्रवाहित हो जाती। शुरू-शुरू में कई बार बाबाजी महाराज के सत्संग में आप पाठ करती थीं। हाज़िर जवाबी में कुशल व भजन-सुमिरन के प्रभाव से बातचीत में बेबाक अथवा निडर थीं। सत्तर-पचहत्तर **वर्ष वर्ष** की आयु में भी हिम्मत और

फुर्ती पेंतीस-चालीस वर्ष की महिलाओं जैसी थी। आपने बाबाजी महाराज और संगत की बहुत सेवा की। खाना बनाना, पानी भर कर लाना, लंगर में भोजन बनाना आदि कार्य बड़े प्रेम से किया करती थीं। बाबाजी महाराज के चरणों में अगाध प्रेम और श्रद्धा थी तथा उन्हें स्वामी जी महाराज का रूप ही मानती थीं।

आपके तप, तेज तथा अनुशासन-प्रियता की कई कथाएँ मशहूर हैं। यहाँ अपनी आप-बीती वार्ता सुनाता हूँ। बहुत समय पहले की बात है। तब मैंने नाम लेकर डेरे आना शुरू किया ही था। अच्छे सुन्दर कपड़े पहनने का शौक था। एक बार मैं अपनी पत्नी के साथ सत्संग के लिये डेरे में आया। सुबह का समय था। मैं नीले रंग का विलायती सूट और सर पर हैट पहने था। मेरी पत्नी ने रेशमी वस्त्र तथा गहने पहने हुए थे। बीबी रुक्को ने मेरी पत्नी का स्वागत इन वचनों से किया, "डेरे में बेटी बन कर आया कर। बहू बनने के लिये क्या अपने घर में वक्त कम मिलता है?" और उसके ज़ेवर उतरवा दिये।

बीबी रुक्को सादे रहन सहन के लिये प्रेरणा देती थीं, और चाहे कोई कितना ही अमीर आदमी हो उससे साधारण सत्संगी का सा ही व्यवहार करतीं और सेवा की महिमा बताती थीं।

एक थानेदार साहिब की घटना भी उल्लेखनीय है। बाबा जैमलसिंहजी महाराज के चोला छोड़ने के बाद बीबी रुक्को अकेली डेरे में रहा करती थीं। अभी हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी पेंशन लेकर यहाँ तशरीफ़ नहीं लाये थे। एक दिन सवेरे जब नित्य-क्रिया से निवृत्त हो जंगल से वापस आईं तो क्या देखती हैं कि एक थानेदार साहिब बारादरी में (जो हुज़ूर बाबाजी महाराज की कोठरी से जुड़ी हुई पश्चिम की ओर थी और अब हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज के निवास-स्थान में उसकी चारदिवारी में आ गई है) आपकी चारपाई पर लेटे हैं। वर्दी का लम्बा बूट उतार कर नीचे रखा है और कमरबन्द, पिस्तौल व कारतूस का पट्टा सिरहाने रखा है। सर से पगड़ी उतारी हुई है और दो पुलिस के सिपाही नीचे चटाई बिछा कर बैठे हैं। बीबी रुक्को ने थानेदार व सिपाहियों के व्यवहार को अपने गुरु के घर की बेअदबी माना। फिर भी उन्होंने पूछा कि वह किस लिये आया है और किसके हुक्म से चारपाई, सिरहाने और चटाई का उपयोग कर रहा है? जवाब में थानेदार ने रुखाई के साथ बताया कि वह थानेदार है और उसे

किसी के हुक्म या इजाज़त की ज़रूरत नहीं। यह सुनते ही बीबी रुक्को ने गरज कर कहा, "तेरी यह हिम्मत ! तुझे मेरे गुरु के दरबार की बेअदबी का हौसला कैसे हुआ ?" आप डेरे से बाहर जाते समय हाथ में एक पतली छड़ी रखती थीं। उसे उन्होंने थानेदार के ऊपर तान लिया। बीबी रुक्को के तेजस्वी नेत्र और लाल चेहरे को देख तथा उग्र वाणी को सुन थानेदार काँपने लगा और दूसरे ही क्षण अपने बूट, कमरबन्द आदि वहीं छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। पीछे-पीछे उसके सिपाही भी भाग गये। थानेदार साहिब भागते हुए जब वड़ाइच ग्राम पहुँचे तो वहाँ के लम्बरदार उन्हें इस हाल में देखकर बड़े हैरान हुए। उनके साथ जाकर पगड़ी, कमरबन्द और पट्टा लाने का सुझाव दिया, परन्तु थानेदार साहब को फिर से बीबी रुक्को के सामने जाने का साहस न हुआ। उधर बीबी रुक्को का गुस्सा भी कुछ ही क्षणों में उतर गया। आपने एक चरवाहे के हाथों थानेदार साहब की पगड़ी, बूट, पट्टा व कमरबन्द गांव में भेज दिया।

बीबी रुक्को का रोब ही कुछ ऐसा था कि लोगों को उनसे बहस करने का साहस न होता। अन्तिम छः महीनों में आपकी नज़र कमज़ोर हो गई थी। अन्तिम दिनों में (सन् १९३३-३४) आप अमृतसर में सरदार गण्डासिंह के यहाँ थीं। सरदार साहब की धर्मपत्नी जो बीबी रुक्को के अन्तिम समय में पास थीं, सुनाती थीं कि जिस दिन बीबी रुक्को चोला छोड़ने वाली थी, उस दिन सवेरे बोलीं कि आज मुझे चले जाना है। आखिरी वक्त उन्होंने बताया कि बाबाजी महाराज तथा महाराज सावनसिंहजी, दोनों के दर्शन अन्तर में हो रहे हैं। बहुत खुश थीं और चेहरा खुशी से लाल हो रहा था।

हुज़ूर महाराजजी ने मोटर भेज कर बीबी रुक्को के शरीर को डेरे मँगवाया तथा यहाँ संस्कार किया।

(३) **बीबी रली** :—आपके पिता भाई मिलखीरामजी जालन्धर ज़िले के मिट्ठापुर ग्राम के निवासी थे और बाबा जैमलसिंहजी महाराज के सबसे पहले सेवकों में से एक थे। बीबी रली आपकी इकलौती पुत्री हैं। छोटी उम्र में ही आपको नाम मिल गया था। नौ-दस वर्ष की आयु में आपका विवाह हुआ और कुछ ही माह बाद पति का मुख देखने से पहले ही विधवा हो गईं। बस फिर सारी उम्र गुरु की सेवा और भजन-सुमिरन में बिता दी। हुज़ूर महाराजजी के निजी रसोई-घर का इन्तिज़ाम आपके सुपुर्द था, जहाँ हुज़ूर के पास आने वाले सभी संभ्रान्त व्यक्ति आपके मेहमान होते। आप बड़े प्रेम से खाना बनातीं। जिस प्रेम के साथ आप सबकी सेवा

करतीं उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है । आपको हुज़ूर महाराजजी के परिवार के बालक प्यार से बुआजी कह कर पुकारते थे । धीरे-धीरे सारी संगत ही आपको आदरपूर्वक बुआजी कहने लगी । आपकी आवाज़ बड़ी मधुर है । यद्यपि संगीत किसी से न सीखा था फिर भी जो लय या धुन एक बार सुन लें उसे उसी लय या सुर में सुना देती हैं । पलटू साहिब की कुण्डलियाँ, तुलसी साहिब की वाणी और ग्रन्थसाहिब के शब्द बड़े प्रेम से पढ़ कर सुनाती हैं । अब भी आपकी आवाज़ में वही मिठास और लय मौजूद है । हुज़ूर बड़े महाराजजी से लेकर हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी तक आप डेरे के सन्त-सतगुरु साहिबान की सेवा करती आई है। मौजूदा सरकार महाराज चरनसिंहजी तो बाल्यावस्था से डेरे में बीबी रली के पास रहे है और एक तरह से आपने ही उनका पालन-पोषण किया है। हुज़ूर तथा हुज़ूर के परिवार के सदस्य आपका बहुत आदर करते हैं और हुज़ूर आपकी राय की बहुत कद्र करते है ।

(४) **बीबी रक्खी** :— आप एक ऊंचे दर्जे की अभ्यासी सत्संगी थीं । आपके पिता सरदार मंगलसिंहजी जालन्धर ज़िले के ग्राम बड़ापिंड में दर्ज़ी का काम करते थे । छोटी उम्र में ही आप विधवा हो गईं और डेरे में रहने लगीं । सारा दिन भजन-सुमिरन, सत्संग, सेवा और वाणी के पाठ में व्यस्त रहतीं । अभ्यास खूब करतीं थीं और सतगुरु की कृपा से अंतर में अच्छी रसाई प्राप्त कर ली थी । अभ्यास का यह हाल था कि कई-कई दिन खयाल बाहर न आता था । सन् १९१८ में तो यह हाल था कि छः सात महीने आपका ख़याल अधिकांश समय अन्तर में ही लगा रहा, दीन-दुनिया का कोई होश न था, न खाने की सुध न पीने की, न किसी से बात-चीत न बोल-चाल । हुज़ूर सुबह और शाम दोनों वक्त आपके पास जाते और राधास्वामी बुला कर आपका हाल पूछते। अपने सामने दूध के कुछ चम्मच मुँह में डलवा आते । एक बीबी हर समय आपके पास मौजूद रहती । कई महीने बाद जब सुरत का अन्तर में ठहराव पक गया तो धीरे-धीरे हुज़ूर महाराजजी ने आपके ख़याल को बाहर लाना शुरू किया । इसमें भी कई महीने लग गये। बाद में यह अवस्था हो गई कि सारी रात भजन में बैठी रहतीं । अब 'दस्त ब कार' (हाथ काम में) भी होते तो 'दिल ब यार' (दिल प्रीतम में) ही रहता । गुरु हर समय अंग-संग रहते । जब आँखें बन्द करतीं गुरु को अन्तर में साक्षात पातीं ।

एक बार का वृत्तान्त है । उस समय आपकी रूह अन्तर में जानी शुरू हुई थी । एक दिन हुज़ूर कमरे के बाहर बैठे कुछ लोगों से वार्तालाप कर

रहे थे। बीबी रक्खी हुज़ूर की कोठरी की दीवार के सहारे बैठी हुई थीं। आँखें बन्द थीं और ख़याल अन्तर की ओर था। एकाएक बीबी रली ने, जो इनके पास ही बैठी थीं, शोर मचाया, "महाराजजी! देखिये. इसे क्या हो गया है!" हुज़ूर ने उठ कर देखा कि बीबी रक्खी के चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई है और रंग हल्दी जैसा पीला पड़ गया है; बिना हिले-डुले पड़ी हैं। हुज़ूर ने आवाज़ देकर बुलाया, लेकिन कोई जवाब न दिया। इस पर हुज़ूर ने अपना हाथ उसके सिर पर रखा और पूछा कि क्या बात है? बोली, "मैं नरक में चली गई हूं।" हुज़ूर ने कहा, "सुमिरन की तरफ ध्यान दो।" जबाव दिया, "सुमिरन बिलकुल याद नहीं रहा।" हुज़ूर ने पूछा, "शब्द सुनाई देता है?" बोलीं, "बिलकुल नहीं।" तब महाराजजी ने हुक्म दिया, "मेरी आवाज़ तो सुनाई देती है। इसे पकड़ कर इसके पीछे-पीछे चली आओ।" कुछ देर बाद बीबी रक्खी होश में आईं तो बोलीं, "बैठे-बैठे मेरा ख़याल अन्दर चला गया। एक ओर से चीखने-चिल्लाने की दर्द भरी आवाज़ें आ रही थीं। आवाज़ें सुन कर मैं उस ओर गई तो पता चला कि नरक के अन्दर चली आई हूँ। आस-पास के दर्दनाक हाल देख कर मैं बहुत घबरा गई, मेरा लहू सूख गया। आगे हुज़ूर को मालूम ही है।"

काफी समय हुआ बीबी रक्खी चोला छोड़ चुकी हैं। संगत आपकी बहुत इज्ज़त करती थी।

(५) **बीबी लाजो** :—आप जालन्धर के पास की एक बस्ती की रहने वाली थीं। आपके पिता अच्छे साहूकार थे। आप भी छोटी उम्र में विधवा हो गई थीं। हुज़ूर की कई साल तक बड़े प्रेम से सेवा करती रहीं। लेकिन अमीर घराने और माता-पिता की लाड़ली बेटी होने की वजह से आपमें कुछ अहं-भाव ज़रूर था। अक्सर अन्य बीबियों से आपका झगड़ा रहता था। सरदार बहादुर महाराजजी के गद्दी पर बिराजमान होने के समय आप डेरा छोड़ कर चली गईं।

११. अन्तिम दिन

हुज़ूर महाराजजी ने अपने जाने से बहुत समय पहले से ही इस मर्त्य-लोक को त्यागने के इशारे देने शुरू कर दिये थे। हुज़ूर के स्वास्थ्य का ख़याल करके जब कोई निकट सेवादार कुछ देर आराम फ़रमाने के लिये कहता तो आप फ़रमाते कि "अब यह शरीर वृद्ध हो चुका है। अब मैं जवान शरीर में

आऊँगा।" जून १९४७ के शुरू में हम लोग दफ्तर में हुज़ूर के पास बैठे थे। हुज़ूर ने पिछले दो मासिक सत्संगों के बाद नाम-दान नहीं दिया था। बातों ही बातों में ज्ञानी कर्मसिंहजी ने बताया कि अब तक हुज़ूर ने एक लाख पच्चीस हज़ार तीन सौ पिचहत्तर (१,२५,३७५) जीवों को नाम बख़्श कर उनका उद्धार किया है।

यह सुन कर हुज़ूर ने फ़रमाया, "अभी क्या हुआ है! अभी तो रूह में से पूनी भी नहीं कती है।" फिर एक क्षण मौन रह कर बोले, "चलो मैंने तो गुज़ारा कर लिया। मेरे बाद आयेगा उसका क्या हाल होगा।"

यह अन्तिम वाक्य सुन कर हम सहम गये। वैसे हमने कुछ वर्षों पहले भी एक दो बार हुज़ूर के मुख से यही बात सुनी थी, परन्तु इस बार हुज़ूर ने इस ढंग से बात कही कि हमारे दिल दहल उठे। सब खामोश रह गये। हुज़ूर ने हमें खामोश देख फिर फ़रमाया, "कोई वक्त था जब पंजाब में लोग 'राधास्वामी' नाम से नफरत करते थे। अब जगह-जगह यही नाम गूँज रहा है। अब तो पहाड़ी इलाकों में भी स्थान-स्थान पर सत्संग-घर बन गये हैं। ये वही डोगरा और राजपूत हैं जो हमेशा गुरु साहिबों का विरोध करते रहे। अब ये ही प्रेमी सत्संगी हैं और आपके सत्संग की सेवा में सबसे बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते हैं।"

अगस्त १९४७ में भारत का विभाजन हो गया। विभाजन के सात-आठ महीने पहले से ही दोनों इलाकों में झगड़े, लूट-मार, दंगे, आदि शुरू हो गये थे। लोग बे-घर हो रहे थे, माल-असबाब आदि छोड़ कर जान बचाने की फिक्र में हिन्दू हिन्दुस्तान की ओर तथा मुसलमान पाकिस्तान की ओर भाग रहे थे। पाकिस्तान के इलाकों में सत्संगियों की बहुत बड़ी संख्या थी। कोई बड़ा शहर ऐसा न था जहाँ सत्संगी न हों। छोटे-छोटे पहाड़ी इलाकों में तो हज़ारों सत्संगी थे। लाहौर, रावलपिंडी, लायलपुर, मुलतान, एबटाबाद, सियालकोट, आदि स्थानों में तो सुन्दर सत्संग-घर थे ही, परन्तु झेलम, हजरो, कालाबाग, वज़ीराबाद, नौशहरा, मोंटगुमरी, गुजराँवाला आदि स्थानों में भी सत्संग की ज़मीन और सत्संग-घर थे। विभाजन से पहले हुज़ूर के अधिकांश सत्संगी पाकिस्तान की ओर के क्षेत्र में थे।

हुज़ूर साल डेढ़ साल पहले से ही आनेवाले वक्त की ओर इशारा कर रहे थे। कभी-कभी आप फ़रमाते थे कि ज़बरदस्त आँधी आने वाली है,

लेकिन बाबाजी सत्संगियों की रक्षा करेंगे। जब हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के इलाकों से जगह-जगह दंगे, लड़ाई-झगड़े और लूट-मार के समाचार आने लगे तो हुज़ूर ने सत्संगियों को हुक्म दिया कि किसी से दुश्मनी न करो, अपने दिल में किसी के प्रति वैर का भाव न लाओ। किसी को न छेड़ो। सबके साथ प्यार करो। मालिक के दरबार में तो किसी का दिल दुखाना भी बहुत बड़े पाप में शुमार होता है।

डेरे में आस-पास के गाँवों व शहरों से भाग-भाग कर मुसलमान आने लगे। हुज़ूर ने उन्हें बड़े प्यार और हमदर्दी के साथ डेरे में ठहराया। उनकी बात सुनी, उन्हें दिलासा दिया। लंगर में दोनों समय भोजन के साथ ही रुपये-पैसे और कपड़ों आदि की मदद भी की। उन्हीं दिनों मुसलमानों द्वारा सताये गये सत्संगी शरणार्थी भी पाकिस्तान की ओर से आ रहे थे। उन्हें भी डेरे में शरण दी गई। उस समय हिन्दू शरणार्थी और मुसलमान शरणार्थी अपनी दुश्मनी भूल कर यहाँ साथ रह रहे थे। हुज़ूर के हुक्म से सेवादार दोनों कौमों के लोगों की प्यार के साथ देख-भाल करते और उन्हें हर तरह का आराम देने की कोशिश करते। रात-रात भर लंगर चलता और आने वाले शरणार्थियों को मुफ़्त खाना खिलाया जाता था।

जब मुसलमान शरणार्थी यहाँ से जाने का प्रोग्राम बनाने लगे तो हुज़ूर ने उनसे कहा कि जब तक आपको पाकिस्तान तक ले जाने के लिये कोई मिलट्री का साथ न मिले, यहाँ से न जाओ। यहाँ आप बेफ़िक्र होकर खुशी से ठहरो। दो-तीन बार उनके पास समाचार आये कि अमुक ट्रेन शरणार्थियों को लेकर लाहौर जा रही है, परन्तु हुज़ूर ने उन्हें जाने से रोक दिया।

ब्यास स्टेशन से आगे हुज़ूर स्वयं मोटर में एक मुस्लिम शरणार्थी शिविर में तशरीफ़ ले गये। उस केम्प की रक्षा बिलोची रेजीमेंट के हथियार-बन्द सैनिक कर रहे थे। हुज़ूर अपनी मोटर केम्प के बीच में ले गये और रेजीमेंट के आफिसर से मिले। हुज़ूर ने फ़रमाया, "आप घबरायें नहीं। हिम्मत रखें। मालिक की यही मौज है। जो गरीब मुसलमान आपके पास हैं, इनकी सँभाल रखो, इन्हें दिलासा दो और प्यार के साथ ले जाओ। ब्यास में भी कई मुसलमान हमारे यहाँ ठहरे हुए हैं, उन्हें भी पूरी हिफाज़त के साथ और बड़े प्यार के साथ ले जाओ।"

हुज़ूर के ये प्रेम-पूर्ण वचन सुन कर उस मुसलमान सैनिक अफसर ने बड़े अदब के साथ झुक कर हुज़ूर को आदाब किया और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

जब बलूची सैनिकों के ट्रक डेरे में मुसलमान शरणार्थियों को लेने आये तो संगत ने उन्हें बड़े प्यार के साथ बिदा किया। उसके बाद पाकिस्तान से उनके कई पत्र आये जिनमें उन्होंने हुज़ूर की कृपा और संगत के प्यार की बहुत तारीफ़ की। कुछ मुसलमान तो जाने को राज़ी न हुए और डेरे में ही रह गये और अब तक यहीं हैं।

पाकिस्तान में कई मुसलमान सत्संगी भी थे। वे विभाजन के बाद वर्षों तक सत्संग और दर्शन के लिये ब्यास आते रहे। १९६५ के युद्ध के बाद दोनों देशों की सीमा पर रोक हो जाने पर उनका आना बहुत कम हो गया।

सिकन्दरपुर ग्राम में तथा आस-पास के अन्य ग्रामों में बहुत मुसलमान रहते थे। दंगे शुरू होने पर वे भी भाग-भाग कर सिकन्दरपुर में हुज़ूर की कोठी में आने लगे। हुज़ूर के छोटे सुपुत्र सरदार हरबंससिंह साहिब ने उन्हें अपने यहाँ ठहराया। यहाँ भी उन्हें भोजन तथा अन्य आवश्यक सामान मुफ्त दिया गया। हुज़ूर को जब यह पता चला तो बहुत खुश हुए और अपने पुत्र तथा पौत्रों को सन्देश भेजा कि किसी के साथ दुश्मनी न करो, सबको प्यार के साथ अपने यहाँ रखो, उनकी हर तरह से हिफाज़त करो और जब तक उनके पाकिस्तान जाने की बिलकुल सुरक्षापूर्ण व्यवस्था न हो जाये उन्हें अपने यहीं रखो। अतएव सरदार हरबंससिंहजी ने उन्हें करीब तीन महीने अपने यहाँ रखा तथा उनके भोजन आदि की मुफ्त व्यवस्था की। जब इस क्षेत्र में वातावरण कुछ शान्त हुआ तो आपने उन्हें राजस्थान के रास्ते से पाकिस्तान भेजा। जाते समय उन्हें रास्ते के लिये आटा, दाल आदि राशन दिया तथा कई मील तक अपने आदमियों को उन्हे पहुँचाने भेजा। पाकिस्तान पहुँचने पर उनमें से कई लोगों ने अपने पहुँचने के समाचार के पत्र लिखे और हुज़ूर के परिवार के प्रेम-पूर्ण व्यवहार के प्रति बहुत आभार प्रकट किया।

हुज़ूर ने वर्तमान पाकिस्तान के इलाकों में चालीस वर्षों तक जगह-जगह जाकर सत्संग और नाम का जो बीज बोया था, वह विभाजन के समय तक बढ़ कर एक विशाल फलता-फूलता वृक्ष हो गया था। कुदरत की तेज़ आँधी ने उसे उखाड़ दिया, लेकिन उसी आँधी ने उसके बीज को इतनी दूर-दूर तक फैलाया कि वे हिन्दुस्तान के हर प्रान्त और हर शहर में पहुँच गये। पाकिस्तान से निकले हुए सत्संगी हिन्दुस्तान में चारों ओर फैल गये और उनके सम्पर्क में आकर सन्तमत सारे देश में फैल चुका है। इनमें कई लोग भारत से बाहर लंका, इण्डोनेशिया, सिंगापुर, हांगकांग, जापान आदि सुदूर पूर्व के

देशों में तथा अमेरिका, इंग्लैंड और वेस्ट इंडीज़ आदि मुल्कों में पहुँच गये। आज इन सभी स्थानों में अनेक सत्संगी हो गये हैं ।

पाकिस्तान बना, सत्संगियों के घर तबाह हुए, परन्तु उनकी रक्षा हुई। दूर-दूर के इलाकों से निकल-निकल कर वे सतगुरु की कृपा से हिन्दुस्तान में सुरक्षित आ गये। सतगुरु दीन-दयाल की रक्षा और सँभाल का उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया। कदम-कदम पर खतरों के बावजूद उनकी रक्षा हुई। सतगुरु की दया-मेहर के जो अनुभव उन्हें हुए उनका अगर ज़िक्र किया जाये तो कई पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। परन्तु कर्मों का कर्ज़ चुकाना ही पड़ता है। संगत पर आने वाले कर्मों के प्रहार को रहम-दिल सतगुरु ने अपने ऊपर झेल कर उन्हें बचा लिया।

नवम्बर १९४६ में हुज़ूर जब सिकन्दरपुर तशरीफ़ ले गये थे, तभी हुज़ूर की तबियत खराब हो गई। सम्भव है कि हुज़ूर का स्वास्थ्य कुछ दिन पहले से ही ठीक न रहा हो, परन्तु डाक्टरों को इसका पता नवम्बर में लगा। हुज़ूर अक्तूबर में गुजराँवाला, वज़ीराबाद, लाहौर और लायलपुर का दौरा और उसके कुछ ही दिनों बाद परौर और कांगड़ा का दौरा कर चुके थे। नवम्बर के प्रथम सप्ताह में हुज़ूर ने कोट-हाकमराय का दौरा किया और दूसरे सप्ताह में आनन्दपुर तथा रोपड़ का । इसके बाद हुज़ूर २६ व २७ नवम्बर को लाहौर तशरीफ़ ले गये। यह हुज़ूर का पाकिस्तान के क्षेत्र का अन्तिम दौरा था। २८ नवम्बर को आप मोटर द्वारा सिकन्दरपुर तशरीफ़ लाये। उसी दिन पता लगा कि हुज़ूर का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इसके बाद हुज़ूर का स्वास्थ्य अन्तिम समय तक ऐसा ही रहा। तकलीफ कभी कम और कभी ज़्यादा हो जाती थी। डाक्टर इलाज करते रहे लेकिन पूरा फायदा न हुआ। अस्वास्थ्य, कष्ट और कमज़ोरी के बावजूद हुज़ूर ने तीन-चार महीने अपने सत्संग का कार्यक्रम जहाँ तक हो सका चालू रखा। १२ दिसम्बर १९४६ को हुज़ूर सिकन्दरपुर से सुबह साढ़े सात बजे रवाना होकर शाम को सात बजे के करीब डेरे पहुँचे। तबियत ठीक न होते हुए भी हुज़ूर ने रास्ते में सरसा, मलोट, मुक्तसर, कोटकपूरा, पंजग्राईं, बाड़ियाँ, मोगा, लुधियाना, फिल्लौर, फगवाड़ा, जालन्धर और कपूरथला में रुक कर संगत को दर्शन दिये। दिसम्बर भण्डारे में हुज़ूर ने हमेशा जैसे सत्संग, सेवा, मुलाकात और नाम-दान का कार्य पूर्ण किया।

संगत को पता चल गया था कि हुज़ूर की तबियत ठीक नहीं है और

डॉक्टर लोग चिन्तित हैं। लेकिन हुजूर को कितनी सख्त तकलीफ है इसका उन्हें अन्दाज़ा न था। दिसम्बर के भण्डारे के बाद जब हुजूर सेवादारों को प्रसाद देने गये तो वहाँ एक पुराने सेवादार ने अर्ज़ की, "सच्चे पातशाह! ऐसी मौज फ़रमावें कि बीमारी हुजूर के शरीर पर कभी न आये।" हुजूर ने जवाब दिया, "अगर तुम्हारे पास कोई शख्स अपनी बीमारी या मुसीबत या गरीबी की कहानी सुनाये तो क्या तुमको रहम न आयेगा ? क्या तुम नहीं चाहोगे कि उसकी तकलीफ दूर हो जाये ?"

जनवरी १९४७ में हुजूर सिकन्दरपुर तशरीफ़ ले गये। तबियत में कोई फायदा नज़र नहीं आ रहा था। विभाजन के पहले ही उपद्रव शुरू हो गये थे। दंगों और लूटमार की दर्दनाक खबरें आ रही थीं। सतगुरु ने सत्संगियों की कैसे-कैसे रक्षा की इसके वृत्तान्त लोग खुद सुनाते थे या पत्रों में लिख रहे थे। १६ फरवरी को हुजूर ने ओटो की ओर का दौरा रखा। वहाँ भैणी-साहिब के नामधारियों ने गुरु ग्रन्थसाहिब का पाठ रखा था और हुजूर से इस अवसर पर पधारने के लिये बहुत विनती की थी। सफर और थकावट की वजह से १७ फरवरी को तकलीफ फिर बढ़ गई। लेकिन हुजूर हमेशा की तरह काम करते रहे और चलते-फिरते रहे। २७ फरवरी को हुजूर वापस डेरे पधारे। इस बार भी महाराजजी ने रास्ते में जगह-जगह रुक कर संगत को दर्शन दिये।

६ मार्च, १९४७ को हुजूर ने सुबह वीला बजू में और शाम को घुमान में सत्संग प्रदान किया। डॉक्टर हुजूर को दवाइयाँ और इन्जेक्शन आदि दे रहे थे। जब कमज़ोरी बढ़ जाती तो हुजूर कुछ आराम कर लेते, वरना सत्संग में बैठना व लोगों से मिलना बराबर जारी था। १९ अप्रैल, १९४७ को हुजूर सिकन्दरपुर तशरीफ़ ले गये और २४ अप्रैल को वापस डेरा में आ गये। यह हुजूर का सिकन्दरपुर का अन्तिम दौरा था। सिकन्दरपुर के इस तथा इससे पहले के दौरों में हुजूर वहाँ अपनी कोठी ग्रेवाल-हाउस के निर्माण-कार्य का निरीक्षण करते रहते। आप खुद सामने बैठ कर कार्य करवाते और परिवार के लोगों से फ़रमाते कि मकान का अन्तिम अंश जल्दी पूरा कर लो, मुझे ज़्यादा वक्त नहीं है। एक बार हुजूर के सुपुत्र सरदार हरबंससिंहजी ने आपसे अर्ज़ की, "चरनसिंह तो वकालत की वजह से बाहर रहते हैं और कप्तान पुरुषोत्तमसिंह फौज की नौकरी की वजह से। इतना बड़ा मकान मुझ अकेले के किस काम आयेगा ?" इस पर महाराजजी ने फ़रमाया, "मेरी संगत कहाँ ठहरेगी ?"

उन्हीं दिनों की बात है। एक दिन डेरे में हुज़ूर ने श्री गोपालसिंह लट्ठा को चालीस रुपये दिये और फ़रमाया, "कई साल पहले मेरे दफ़्तर में एक अर्दली था, उसने ये रुपये मेरे पास रखे थे। एक बार वह छुट्टी लेकर गया और फिर लौट कर नहीं आया। मैं उसका रास्ता देखता रहा। उसके रिश्तेदारों और वारिसों की बहुत तलाश की कि रुपया उसके बाल-बच्चों को दे दूँ। मगर कोई पता न चला। अब ये रुपये ले जाकर रायसाहब (मुन्शीरामजी) को दे दो कि सेवा में जमा कर लें।"

अप्रैल, मई, और जून के माहवारी सत्संग हमेशा जैसे हुए। हुज़ूर यथा-सम्भव आफिस, डाक तथा डेरे का कार्य देखते रहे। लेकिन तबियत में कोई सुधार न हुआ। जुलाई में संगत ने हुज़ूर का जन्म-दिन मनाया। परन्तु वातावरण उदासी का था। सितम्बर १९४७ के शुरू में तो हुज़ूर ने अपने जाने के बारे में इशारे देने शुरू कर दिये। १७ सितम्बर, १९४७ के दिन आसोज की संक्रान्ति का सत्संग था। सत्संग की समाप्ति पर हुज़ूर ने फ़रमाया, "मैंने सारी उम्र अपनी हक़-हलाल की कमाई पर गुज़ारा करके बाबाजी महाराज के हुक्म की तामील की है। संगत का एक पैसा भी कभी अपने निजी काम में इस्तेमाल नहीं किया; बल्कि कभी सत्संग से अपने निजी काम के लिये बतौर कर्ज़ भी नहीं लिया। बाहर सत्संग करने जाने के लिये डेरे की मोटर का इस्तेमाल ज़रूर किया है या हो सकता है कि कभी बाग से सब्ज़ी लेकर बीबी रली ने बना ली हो। इन दोनों के लिये मैं संगत से माफी माँगता हूँ। मुझे किसी से अगर कुछ लेना है तो वह छोड़ता हूँ। अगर किसी का मुझे कुछ देना हो तो वह बता दे और ले लेवे।" फिर फ़रमाया, "जिस किसी को मैंने कभी कुछ नर्म-गर्म कहा हो वह मुझे माफ़ कर दे।"

ये वचन सुन कर संगत में सन्नाटा छा गया। आँखों में आँसू भर आये, संगत बहुत घबरा गई। दूसरे दिन हुज़ूर की इस बात का पता चलने पर आस-पास से काफी संगत आ गई। सबके चेहरों पर उदासी छाई हुई थी और आँखें भीगी थीं। हुज़ूर उन दिनों अपनी कोठी में ऊपर से सुबह संगत को दर्शन देते थे। दर्शन के समय लम्बरदार जगतसिंह ने हुज़ूर से ऊपर जाकर अर्ज़ की, "सच्चे पातशाह! आपके वचन सुन कर संगत घबरा गई है। आप अपने वचन मोड़ लें और संगत से फ़रमायें कि सब ठीक है।" हुज़ूर ने ऊपर से संगत को दर्शन दिये और फ़रमाया, "मैंने तो जो कुछ कहना था, कह दिया है, जगतसिंह लम्बरदार मुझसे झूठ बुलवाना चाहता है। मैं तो बाबाजी की मौज में राज़ी हूँ।"

दोपहर के बाद हुज़ूर ने अपनी किताबों की अलमारी में से पुस्तकें छांटना शुरू किया। आपने जो पुस्तकें अपने रुपयों से खरीदीं थीं, उन्हें अलमारी में रख लिया, बाकी सब पुस्तकों को डेरा के पुस्तकालय में भेज दिया।

२० सितम्बर, १९४७ को हुज़ूर ने मालिक राधाकिशनजी, रायसाहब मुन्शीरामजी तथा कुछ अन्य सत्संगियों को बुलाया और डेरे की व्यवस्था के विषय में एक व्यापक और विचारपूर्ण योजना[1] बनाई। इसके अनुसार हुज़ूर ने तीन कमेटियां बनाईं जिसका ज़िक्र पहिले आ चुका है।[2] हुज़ूर महाराजजी इन तीनों कमेटियों के प्रेसीडेण्ट (अध्यक्ष), तथा सरदार बहादुर जगतसिंहजी वाइस प्रेसीडेण्ट (उपाध्यक्ष) थे। हुज़ूर ने इस योजना के अन्त में स्पष्ट शब्दों में फ़रमाया कि हुज़ूर के "देहान्त के बाद भी यह प्रबन्ध जारी रहेगा और उनके बाद सरदार बहादुर जगतसिंह इन तीनों कमेटियों के अध्यक्ष होंगे तथा समस्त अचल सम्पत्ति धार्मिक या रूहानी सम्पत्ति के रूप में सरदार बहादुर जगतसिंह के नाम में रहेगी और वह उनकी निजी या व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं समझी जायेगी।"

यह पूरा दस्तावेज़ मलिक राधाकिशन खन्ना, एडवोकेट हाईकोर्ट, के अपने हाथ से लिखा गया है और गवाह के रूप में इस पर मलिक राधाकिशन खन्ना तथा लाला मुन्शीरामजी के हस्ताक्षर हैं। हुज़ूर महाराजजी ने इस दस्तावेज़ के प्रत्येक पृष्ठ पर तथा अन्त में हस्ताक्षर किये हैं। हुज़ूर ने २४ सितम्बर, १९४७ को एक वसीयतनामा करके इस योजना को अपनी स्वीकृति और समर्थन प्रदान कर दिया। इस योजना तथा वसीयतनामा से यह स्पष्ट हो गया कि हुज़ूर ने अपने बाद सरदार बहादुर जगतसिंहजी को अपना जानशीन बनाना तय कर लिया है।

२९ सितम्बर, १९४७ को सुबह डाक्टरी जाँच और इलाज के लिए हुज़ूर मोटर द्वारा अमृतसर तशरीफ़ ले गये। हुज़ूर की तकलीफ बढ़ती जा रही थी, कमज़ोरी भी काफी थी। अमृतसर में भी स्वास्थ्य में लाभ न हुआ और सब चिन्तित हो उठे।

अमृतसर में हुज़ूर सत्संग-घर में ठहरे हुए थे। सत्संग-घर के कमरे, हाल, दालान और मैदान पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों से भरे हुए

---

१. देखें पृष्ठ १४२। २. देखें पृष्ठ १४४-१४५।

थे। अधिकांश लोग तो घरों से बगैर रुपये-पैसे या सामान के निकल पड़े थे। जब पाकिस्तान में उनके घरों पर हमला हुआ और लूट-मार शुरू हुई तो वे जैसे बैठे थे उसी हालत में पिछले दरवाज़ों से भाग निकले थे। दूर-दूर के इलाकों से भी सत्संगियों के कुशलपूर्वक आने की खबरें आ रही थीं। कालाबाग, एबटाबाद, पेशावर आदि स्थानों से संगत किस प्रकार निकल कर हिन्दुस्तान आई इसका वर्णन सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। इस सब विपत्ति में किस प्रकार हुज़ूर ने उनकी रक्षा की, किस प्रकार दूर-दूर के स्थानों में प्रकट होकर उन्हें निकाला, दिलासा व हिम्मत दी, इसका हाल शरणार्थी सुनाते रहते थे। अमृतसर के सत्संग-घर में भी हुज़ूर के हुक्म से लंगर जारी था। इतनी कमज़ोरी और तकलीफ़ में भी हुज़ूर का सत्संगियों की ओर ही ख़याल था। दिन में दो-तीन बार उन्हें दर्शन देते और पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों से बराबर मिलते रहते, उनका हाल सुनते और उन्हें धीरज बँधाते।

हुज़ूर के पौत्र सरदार चरनसिंहजी साहिब उन दिनों सरसा में वकालत करते थे। हुज़ूर ने उन्हें अपने पास अमृतसर बुला लिया। हुज़ूर के स्वास्थ्य तथा डाक्टरों की चिन्ता को देख कर सरदार चरनसिंहजी ने हुज़ूर के इलाज के लिये प्रसिद्ध होमियोपेथ डाक्टर स्मिथ को जिनेवा से बुलाने का विचार किया। परिवार के सदस्यों से राय लेकर आपने हुज़ूर की इजाज़त प्राप्त करके डाक्टर स्मिथ को आने के लिये तार भेजा।

अमृतसर में हुज़ूर का स्वास्थ्य कुछ सुधरने लगा। २४ दिसम्बर को हुज़ूर अमृतसर से डेरे तशरीफ़ ले आये क्योंकि २९ तारीख को बाबाजी महाराज का भण्डारा था और हुज़ूर बाहर से आने वाली संगत को निराश नहीं करना चाहते थे। तबियत पहले से कुछ ठीक थी, परन्तु कमज़ोरी बहुत ज़्यादा थी। मोटर के सफ़र की थकावट के बावजूद, हुज़ूर ने डेरे पहुँचते ही कार से उतर कर सत्संग में संगत को कुछ समय के लिये दर्शन दिये।

२९ दिसम्बर को हुज़ूर भण्डारे के सत्संग में तशरीफ़ लाये, परन्तु सत्संग नहीं किया। बाबू गुलाबसिंहजी ने सत्संग किया। सत्संग के बाद हुज़ूर की ओर से एक घोषणा पढ़ कर सुनाई गई, जिसमें हुज़ूर ने अपने पिछले १३-१४ महीनों की बीमारी का पूरा हाल संगत को बताया। हुज़ूर ने संगत को यह घोषणा एक पत्र के रूप में लिखी थी, जिसके कुछ अंश नीचे दिये

जाते हैं :—

"प्यारे भाई साहिबान और हुजूर महाराजजी की प्यारी संगत, आज भण्डारा का दिन है जिसको हम हर साल बड़ी खुशी से मनाया करते हैं। लेकिन अफ़सोस, इस साल मालिक की मौज ने दुनिया को काफ़ी बेचैन किया है, क्योंकि लोग दुःखी होकर घरों से निकाले गये। किसी को असबाब लाना मिला, किसी को नहीं। मैं इस बात का अफ़सोस करता हूँ, मगर मालिक की मौज के आगे कोई चारा नहीं, बरदाश्त करना ही पड़ता है। अगरचे दुनिया ने दुःख पाया है, मगर इन १४ महीनों में संगत को दुःखी देख कर मैंने भी कोई सुख नहीं पाया।...मेरे सतगुरुजी ने मेरी इस बीमारी में कोई बेहतरी देखी होगी और कोई न कोई बोझ उतारा होगा।"

इसके आगे हुजूर ने नवम्बर, १९४६ में जब आप सरदार बचिंतसिंहजी की पौत्री के विवाह के समय सरसा गये थे तब से जो तकलीफ़ शुरू हुई उसका पूरा हाल बयान किया और इलाज आदि का विवरण देते हुए फ़रमाया कि जब कोई इलाज कारगर साबित न हुआ तो "मैं मालिक की रज़ा पर राज़ी हो गया, और उस अरसा तक सत्संग का काम जितना मुझसे हो सका करता रहा।" फिर हुज़ूर ने सितम्बर १९४७ में अमृतसर जाने, वहाँ तकलीफ़ बहुत बढ़ जाने और डाक्टरों के इलाज आदि का पूरा ब्यौरा दिया। जिन डाक्टरों, सत्संगियों तथा बीबियों ने इन दिनों हुज़ूर की सेवा की, उनके प्रति आभार प्रकट करने के बाद हुज़ूर ने लिखा कि चूँकि हुज़ूर आम सत्संगियों से मिल नहीं सकते इसलिये उनसे माफ़ी चाहते हैं।

२९ दिसम्बर को डॉक्टर पैरी स्मिथ जिनेवा से डेरे आ पहुँचे। आपने दो दिन हुज़ूर का मुआयना करने तथा बीमारी का पूरा हाल समझने के बाद इलाज शुरू किया। डॉक्टर स्मिथ तब से अन्तिम समय तक महाराजजी का इलाज करते रहे। आपने बड़ी लगन, सेवा-भाव और प्रेम के साथ इलाज किया और हुज़ूर आपसे बड़े प्रसन्न हुए। हुज़ूर ने अपने पौत्र सरदार चरनसिंहजी साहब को हुक्म दिया कि डॉक्टर स्मिथ की डेरे में पूरी देख-भाल करें। एक दिन हुज़ूर ने आपसे फ़रमाया, "कहीं ऐसा न हो कि डॉक्टर स्मिथ को मेरे बाद कोई पूछे ही नहीं, इसलिये मेरे बाद डॉक्टर स्मिथ का ख़याल रखना और इनको हिन्दुस्तान में जो भी जगह ये देखना चाहते हैं, वे दिखाना और जब जाना चाहें तो बड़े प्यार और इज़्ज़त के साथ भेजना।"

हुज़ूर के इस आदेश के अनुसार सरदार चरनसिंहजी डॉक्टर स्मिथ को शिमला, देहली, आगरा आदि स्थान दिखाने ले गये तथा खुद जहाज़ पर

चढ़ा कर आये।

दिसम्बर १९४७ में अमृतसर से वापस आने के बाद हुज़ूर अन्तिम समय तक डेरे में ही रहे। बीमारी के दिनों में आप सुबह-शाम संगत को ऊपर अपनी कोठी में से दर्शन प्रदान करते थे। कुछ-कुछ सत्संगियों से मिलते भी रहते तथा उनकी समस्याओं को सुन कर जवाब देते। कई बार डॉक्टर स्मिथ को सन्त-मत के विषय में कुछ न कुछ बताते रहते और उनके प्रश्नों का उत्तर देते। बीमारी के दिनों में भी हुज़ूर के प्रोग्राम में था—संगत को दर्शन, मुलाकात चाहने वाले सज्जनों से मिलना, सेक्रेटरी के साथ डेरे की व्यवस्था सम्बन्धी बात-चीत, डाक आदि देखना और अन्त में रात को सोने से पहले परिवार के सदस्यों तथा निकट सत्संगियों से मिलना।

हुज़ूर अपने जाने का इशारा कई दिनों से कर रहे थे। एक बार बीबी रली ने आपसे विनती की कि हुज़ूर को कमज़ोरी ज्यादा है, इसलिये थोड़ी-थोड़ी देर में कुछ खुराक लेना चाहिये। हुज़ूर ने उत्तर दिया, "नहीं! अब यह चोला पुराना हो गया है। अब मैं जवान चोले में आऊंगा।"

हुज़ूर की इस बीमारी के समय में अक्तूबर १९४७ से २ अप्रैल, १९४८ तक मौजूदा सरकार सरदार चरनसिंहजी आपकी सेवा में रहे। हुज़ूर की बीमारी के इन अन्तिम छः महीनों में आप ही परिवार के एक-मात्र सदस्य थे जो निरन्तर हुज़ूर महाराजजी के पास रहे और बहुत सेवा की। इसी प्रकार डॉक्टर हज़ारासिंह और श्री सोहनसिंह भण्डारी भी हुज़ूर की बीमारी के समय में निरन्तर साथ रहे और अन्तिम समय तक बड़े प्रेम के साथ हुज़ूर की सेवा करते रहे।

२० मार्च, १९४८ को हुज़ूर महाराजजी ने सरदार बहादुर जगतसिंहजी को अपना जानशीन मुकर्रर किया तथा उनके हक़ में वसीयतनामा कर दिया। सरदार बहादुर जगतसिंहजी अपने प्रेम, भक्ति, नम्रता, ऊँची कमाई, पवित्र रहनी आदि गुणों के लिये पहले ही प्रसिद्ध थे। हुज़ूर के इस निर्णय को समस्त डेरे वासियों तथा सेवादारों ने बड़े प्रेम से स्वीकार किया। कई अभ्यासी सत्संगियों को तो पता था कि सरदार बहादुरजी को संगत की रहनुमाई और जीवों की सँभाल का भार सुपुर्द किया जायेगा। वसीयत रायसाहिब मुन्शीरामजी से लिखवाई गई। आप पिछले कई वर्षों से हुज़ूर के सेक्रेटरी थे। गवाहों के रूप में हुज़ूर के ज्येष्ठ सुपुत्र सरदार बचितसिंहजी तथा पौत्र सरदार चरनसिंहजी ने हस्ताक्षर किये। वसीयत पर डॉक्टर स्मिथ ने भी दस्तखत किये और हुज़ूर के पूर्ण सचेत और सजग होने को

प्रमाणित किया।

नीचे लिखी पंक्तियाँ रायसाहिब मुन्शीरामजी की डायरी में से दी जाती हैं जो इस विषय पर अच्छा प्रकाश डालती हैं :—

"कल २० मार्च, १९४८, शनिवार की सुबह हुज़ूर की ओर से मुझे दफ़्तर में हुक्म पहुँचा कि वसीयत लिखने के लिये महाराजजी ने याद किया है। मैं जल्दी-जल्दी वहाँ गया तो सरदार बहादुर जगतसिंह को वहाँ कमरे में मुँह व सर ढके हुए बैठे देखा, जैसे कोई भजन में बैठा हो। सरदार बचिंतसिंह व सरदार चरनसिंह उसी कमरे में खड़े थे। मैं अगले कमरे में चला गया, जहाँ हुज़ूर का पलंग था। वहाँ डॉक्टर स्मिथ को मौजूद पाया। हुज़ूर ने फ़रमाया कि हमारी वसीयत लिखकर लाओ। मैंने पूछा कि किसके हक़ में लिखूँ ? तो हुज़ूर ने उत्तर दिया, 'जगतसिंह के नाम'। इस पर मैं दफ़्तर में वापस आ गया और आकर हुज़ूर के पहले दो वसीयतनामे, जो कि डेरे की जायदाद से सम्बन्धित अन्य दस्तावेज़ों के साथ डेरे की सेफ़ (तिजोरी) में मौजूद थे, उनकी जाँच की। उनको देखने से पता चला कि ज़्यादा लम्बी-चौड़ी वसीयत लिखने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि इन दो वसीयतनामों में हुज़ूर अपनी खानदानी अर्थात निजी और परमार्थी सम्पत्ति के विषय में विस्तृत आदेश दे चुके थे। सिर्फ़ उनके जानशीन का नाम लिखना तथा नामज़द करना बाकी रह गया है। अतएव एक छोटी-सी वसीयत लिख कर मैं हुज़ूर की सेवा में हाज़िर हुआ। वहाँ डॉक्टर स्मिथ, हुज़ूर के पुत्र सरदार बचिंतसिंह तथा पौत्र सरदार चरनसिंह मौजूद थे। मैंने वह वसीयतनामा हुज़ूर को पेश किया। दोपहर का समय था। हुज़ूर पलंग पर लेटे हुए थे। उनको उठाकर बिठाया गया और उन्होंने ऐनक लगा कर वसीयतनामा दो बार पढ़ा। फिर मुझे हुक्म दिया कि इसको पढ़ कर सबको सुनाओ। मैंने सब उपस्थित व्यक्तियों को पढ़ कर सुना दिया और वह दस्तावेज़ वापस हुज़ूर को दे दिया। सरदार चरनसिंह के पास हुज़ूर का फाउण्टेनपेन था। उन्होंने हुज़ूर को दस्तखत करने के लिये पेश किया तो डॉक्टर स्मिथ अपना पेन हुज़ूर को पेश करते हुए बोले, 'यह गौरव मुझे प्राप्त करने दो।' इस पर महाराजजी ने डॉक्टर साहब का पेन लेकर उससे वसीयतनामे पर दस्तखत किये। बाद में डॉक्टर साहब से हम लोगों ने कहा कि इस पर आप बतौर डॉक्टर तस्दीक करें कि हुज़ूर के होश-हवास दुरुस्त हैं। अतएव उन्होंने तस्दीक कर दी। फिर सरदार बचिंतसिंह व सरदार चरनसिंह ने उस पर बतौर गवाह दस्तख़त किये और हुज़ूर ने पड़ताल करने के बाद वह वसीयत मुझे दे दी।

"२९ मार्च, कल इस महीने का आखिरी इतवार था। मासिक सत्संग व हुज़ूर की बीमारी के कारण बहुत संगत डेरे में आई हुई थी। शनिवार की रात को मेरा बीबी रली व सरदार बचिंतसिंह का यह विचार हुआ कि अब जब कि हुज़ूर ने अपनी जगह सरदार बहादुर जगतसिंह को वसीयत लिख कर मुकर्रर कर दिया है और इसकी खबर खास-खास सत्संगियों को हो चुकी है, इसलिये बेहतर होगा कि इस बात की सूचना कल इतवार को मासिक सत्संग में संगत को कर दी जाये। इस विचार पर सलाह करने के लिये हमने दफ़्तर के कमरे में मलिक राधाकिशन एडवोकेट, मुलतान और सरदार कृपालसिंह को बुलाया। सरदार बहादुर को भी बुलाया गया था, मगर वह न आये। उस समय यह सुझाव रखा गया कि कल जब सरदार कृपालसिंह इतवार का सत्संग खत्म करें तो यह घोषणा कर दें कि हुज़ूर ने अपना जानशीन सरदार बहादुर जगतसिंह को वसीयतनामा द्वारा नियुक्त कर दिया है। इस पर मलिक साहब व सरदार कृपालसिंह ने यह एतराज़ किया कि यह घोषणा सुन कर संगत रोती हुई घरों को जायेगी; सिर्फ यह कह दिया जाये कि हुज़ूर ने अपना जानशीन नियुक्त कर दिया है। अतएव सत्संग की समाप्ति पर सरदार कृपालसिंह ने यह घोषणा कर दी।"

यद्यपि घोषणा में सरदार बहादुर जगतसिंहजी का नाम न दिया गया, फिर भी संगत को हुज़ूर के जानशीन के नाम का पता लग गया और सत्संग के कुछ ही समय बाद हुज़ूर के उत्तराधिकारी का नाम हर सत्संगी की ज़बान पर था। हुज़ूर की अन्तिम वसीयत इस प्रकार है :—

मैं सावनसिंह आत्मज सरदार काबलसिंह, जाति जाट ग्रेवाल, गद्दीनशीन डेरा बाबा जैमलसिंह, तहसील और ज़िला अमृतसर, इस दस्तावेज़ के द्वारा नीचे लिखी वसीयत करता हूँ :—

इस वसीयत से पहले, मैंने अपनी निजी सम्पत्ति और सत्संग की जायदाद के बारे में वसीयतें कर दी हैं, परन्तु अभी तक किसी को अपनी जगह डेरा में अपने बाद गद्दीनशीन के बतौर नामज़द नहीं किया था। इसलिये अब मैं अपने पूरे होश-हवास में और अपनी मरज़ी से सरदार बहादुर जगतसिंह, एम. एससी. रिटायर्ड प्रोफेसर एग्रीकलचरल कालेज, लायलपुर को डेरा बाबा जैमलसिंह तथा इससे सम्बन्धित सभी सत्संगों के लिए अपना जानशीन नियुक्त करता हूँ। जो कार्य मैं करता रहा हूँ वे सभी कार्य मेरे बाद सरदार साहब करेंगे।

अतएव यह वसीयतनामा लिख दिया कि सनद रहे और बवक्त-ज़रूरत

काम आये ।

डेरा बाबा जैमलसिंह,
तारीख २० मार्च, १९४८

ब-कलम
मुंशीराम
सेक्रेटरी

वसीयत-कर्ता के हस्ताक्षर
सावनसिंह

गवाह :—
बचितसिंह
(हुज़ूर महाराजजी के ज्येष्ट पुत्र)

गवाह :—
चरनसिंह
(एडवोकेट)

वसीयत पर डॉक्टर स्मिथ का नोट :

वसीयत-कर्ता ने, जिनका मैं इलाज कर रहा हूँ, मेरे सामने यह दस्तावेज़ स्वयं दो बार पढ़ा और आपके सेक्रेटरी लाला मुंशीराम ने भी उन्हें पढ़ कर सुनाया । वसीयत-कर्ता सरदार सावनसिंह ने इस पर दस्तखत मेरी मौजूदगी में किये हैं । मैं प्रमाणित करता हूँ कि वसीयत-कर्ता अपने पूरे होश-हवास में हैं और उन्होंने अपनी खुद की मरज़ी से इस पर दस्तखत किये हैं ।

(हस्ताक्षर) डॉ. पैरी स्मिथ,
निवासी—जिनेवा (स्विटज़रलैण्ड)
दोपहर १ बजकर ३० मिनिट,
२० मार्च, १९४८

सील—रजिस्ट्रार
जालन्धर
(हस्ताक्षर) गुरबचनसिंह
सब-रजिस्ट्रार

३१ मार्च की रात को हुज़ूर ने भाई भानसिंहजी पाठी को बुलाया और स्वामीजी महाराज का यह शब्द पढ़ने का हुक्म दिया, "धाम अपने चलो भाई, पराये देश क्यों रहना ।" हुज़ूर की कोठी के नीचे संगत लगातार बैठी रहती थी । जब संगत ने ऊपर से इस शब्द के वचन सुने तो सब का दिल निराश और मायूस हो गया कि हुज़ूर सतगुरु दीन-दयाल ने धुरधाम चले जाने का इरादा पक्का कर लिया है । यद्यपि डॉक्टरों ने उम्मीद छोड़ दी थी और वे जवाब दे चुके थे, फिर भी संगत आस लगाये बैठी थी कि शायद हुज़ूर मौज बदल दें । इतने महीनों की बीमारी से हुज़ूर का शरीर दुर्बल हो गया था, लेकिन जब हुज़ूर ऊपर खिड़की में से संगत को दर्शन प्रदान करते थे तब कई प्रेमी सत्संगियों को हुज़ूर के चेहरे पर वही तेज और जलाल दिखाई देता था जो कि तन्दुरुस्ती के दिनों में हुज़ूर के दर्शन की विशेषता

थी। इसलिए उनका मन कब मान सकता था कि हुज़ूर उनके बीच कुछ ही समय के लिये हैं।

हुज़ूर के महाप्रयाण का डॉक्टर स्मिथ ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उसका अनुवाद आगे दिया जा रहा है, इसलिये इस प्रसंग में यहाँ अधिक नहीं लिखा जा रहा है।

२ अप्रैल, १९४८ की सुबह से ही संगत हुज़ूर की कोठी के बाहर जमा थी। जब ऊपर से हुज़ूर महाराजजी के पौत्र सरदार चरनसिंहजी नीचे आये तो उनका चेहरा देख कर ही संगत समझ गई कि हुज़ूर महाराज अपने निज घर प्रयाण कर गये हैं। सारा वातावरण रुदन, आहों व सिसकियों से भर गया।

सबने यह विचार किया कि संस्कार एक दिन बाद किया जाय ताकि बाहर से आने वाली संगत भी अन्तिम दर्शन कर सके। परन्तु कुछ देर बाद यह खबर आई कि डेरे आती हुई संगत ने जब हुज़ूर की बिदाई का दर्दनाक समाचार सुना तो एक-दो सत्संगी रास्ते में ही दरिया में छलांग लगा कर मर गये। इसी प्रकार डेरे के कम्पाउंडर रामेश्वर ने ज़हर खाकर प्राण त्याग दिये। जब ये समाचार ऊपर हुज़ूर की कोठी में पहुँचे तो सरदार बहादुर महाराजजी जोकि घर वालों तथा निकट के सत्संगियों के साथ हुज़ूर के शरीर के पास बैठे हुए थे, उठे और हुज़ूर के चरणों में मत्था टेका तथा हुक्म दिया कि आज ही संस्कार कर दो। लिहाज़ा उसी समय संस्कार की तैयारी शुरू हो गई।

जब हुज़ूर के पवित्र शरीर को अर्थी पर सजा कर बाहर ब्यास नदी की ओर ले जाने लगे तो सारा डेरा सिसकियों व रुदन से भर गया। हर वर्ग के स्त्री-पुरुष, अमीर, गरीब, बूढ़े, जवान, सभी बिलख-बिलख कर रो रहे थे। और तो और छोटे बच्चे भी उदास और दुःखी दिखाई दे रहे थे। तार, टेलीफोन आदि से संगत को सूचना मिल गई और देहली तथा अन्य बड़े-बड़े शहरों से सत्संगी हवाई जहाज़, मोटर आदि से आ गये। न जाने इतनी भीड़ कैसे इकट्ठी हो गई कि डेरे में तिल रखने को भी जगह न रही। चारों ओर केवल विलाप और रुदन के स्वर सुनाई देते थे। ऐसा लगता था कि प्रकृति भी रो रही है, क्योंकि तेज़ आँधी शुरू हो गई और इतनी धूल उड़ने लगी कि आकाश में अँधेरा छा गया।

संस्कार के लिये ब्यास नदी के किनारे डेरे से दो-तीन मील दूर स्थान चुना गया। जब चिता तैयार हो गई तो हुज़ूर के सबसे बड़े पुत्र सरदार बचिंतसिंहजी ने सरदार बहादुर महाराजजी से कहा कि चिता को अग्नि आप

देवें। चूँकि यह कार्य घरवालों का और वह भी सबसे बड़े पुत्र का होता है, सरदार बहादुरजी ने मना कर दिया। इस पर सरदार बचिंतसिंह ने कहा, "आप ही हुज़ूर महाराजजी के असली पुत्र हैं, आप ही संस्कार करें। हमारे दुनियादारी के रिश्ते से आपका रिश्ता बहुत ऊँचा है।" इस पर सरदार बहादुरजी महाराज ने संस्कार किया।

जब सरकार के भौतिक शरीर को अग्नि की भेंट करके लौटे तो हमें डेरा सुनसान और वीरान नज़र आ रहा था। जिस मधुर समीर से यह उद्यान हरा-भरा हो रहा था, वह बन्द हो गई थी। अब तो चारों ओर पतझड़ का साम्राज्य था। बाहर उजड़ा हुआ बाग था तो अन्तर में थी गहरी उदासी और सूनापन। सबकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग रही थी। लोग एक दूसरे का मुँह ताकते और बहके-बहके से फिर रहे थे। आत्मा शरीर की क़ैद में पड़ीं तड़प रही थी और उसे तोड़ कर निकल जाना चाहती थी।

४ अप्रैल को फूल चुनने का कार्य हुआ। जिस स्थान पर संस्कार किया गया था, उसे फूल चुनने के बाद बिलकुल साफ़ कर दिया गया। फूल और राख के साथ तीन-तीन फीट मिट्टी भी नदी में प्रवाहित की जा चुकी थी और उसके स्थान पर दूसरी मिट्टी भर कर जगह को समतल कर दिया गया था। परन्तु वहाँ सेवादारों ने लम्बे बाँस वग़ैरह गाड़ कर, उनमें झंडियें आदि लगा दी थीं ताकि दूर से उस स्थान का पता लग जाये। संगत ने वहाँ मत्था टेकने जाना शुरू कर दिया और कई लोगों का ख़याल था कि हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी की स्मृति में उस स्थान पर कुछ निर्माण किया जाय। लेकिन हुज़ूर महाराजजी हमेशा फ़रमाया करते थे कि उनके जाने के बाद उनकी समाधि न बनाई जाय। अचानक ही दो दिन बाद ज़ोर की आंधी आई, झंडियां उड़ गईं, बांस उखड़ कर बह गये और उस स्थान का कोई चिन्ह न बचा। ढूंढने पर भी संगत उस जगह का पता न लगा सकी। हुज़ूर महाराजजी के महान कार्य, सन्त-मत के उच्च आदर्शों को समर्पित उनका निर्मल जीवन, उनकी नेक रहनी, उनके पवित्र तथा प्रेरक वचन, उनके अपार प्रेम और असीम दया-मेहर के वृत्तान्त और अपने आदेशों व शिक्षा के अनुरूप मिसाल के रूप में पेश उनकी अपनी ज़िन्दगी ही हमारे लिये उनकी असली यादगार है।

हुज़ूर ने अपना पूरा जीवन परमार्थ को भेंट कर दिया था, परन्तु साथ ही आप अपना कार्य भी करते रहे ताकि गुज़ारे के लिये आत्म-निर्भर रहें। २४-२५ वर्ष की आयु में मिलिट्री में इंजिनियर के रूप में भरती हुए, २८ वर्ष की उम्र में एस. डी. ओ. बने और २७ वर्ष की सेवा के बाद ५३ वर्ष

की आयु में सेवा-मुक्त (रिटायर) हुए। सन् १८९४ में, जब आपकी आयु ३६ वर्ष की थी, बाबाजी महाराज से भेंट हुई और नाम मिला। उसके नौ वर्ष बाद ४५ वर्ष की आयु में बाबाजी ने आपको अपना जानशीन बनाया और सत्संग, नामदान तथा जीवों के उद्धार का कार्य आपके सुपुर्द कर दिया, जिसे हुज़ूर बड़े प्रेम और लगन के साथ अन्तिम समय तक अदा करते रहे। सन् १९११ में आप ५३ वर्ष की आयु में सेवामुक्त होकर डेरे में स्थाई रूप से आ गये और ३७ साल यहाँ निवास किया। हुज़ूर ने ४५ वर्ष तक सत्संग और नाम का प्रचार किया और २ अप्रैल, १९४८ को ९० वर्ष की आयु में ज्योति ज्योत समा गये।

हुज़ूर ने सवा लाख से अधिक जीवों को नाम-दान बख़्श कर उनका उद्धार किया। इसके सिवाय ऐसे अनगिनत लोग हैं जिन्होंने हुज़ूर के सत्संग और दर्शन का लाभ प्राप्त किया। हुज़ूर के जाने का सत्संगियों को तो गहरा सदमा पहुँचा ही, परन्तु जिन्होंने केवल सत्संग सुना था अथवा सिर्फ एक-दो बार दर्शन किये थे, उनको भी बहुत दुःख हुआ। जब अमृतसर में समाचार संवाद-दाता को यह खबर अखबारों में देने के लिये दी गई, तो सुन कर उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई और सिसकियों से गला रुँध गया। वह सत्संगी नहीं था, केवल दो-तीन बार हुज़ूर के दर्शन किये थे।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी का महाप्रयाण तथा अन्तिम दर्शन

(लेखक—डाक्टर पेरी स्मिथ, जिनेवा)

इतनी कठिन बीमारी के बावजूद हुज़ूर ने बड़ी शान्ति क साथ प्रयाण किया। वे बिना किसी पीड़ा, बेचैनी या घबराहट के, समता और शान्ति के साथ अपने निज-धाम कूच कर गये। जिस प्रकार एक दीपक तेल समाप्त होने पर धीरे-धीरे बुझ जाता है, इसी प्रकार उनकी नाड़ी की गति और श्वास-क्रिया धीरे-धीरे कम होती गई।

अपने जाने से दो सप्ताह पूर्व, जब हुज़ूर कुछ स्वस्थ थे, तब २० मार्च को उन्होंने अपने कमरे की खिड़की में से संगत को दर्शन दिये। उसके बाद दोपहर को १-३० बजे, हुज़ूर के बड़े साहबज़ादे (जो कि ६८ वर्षीय बुज़ुर्ग है और जिनकी दाढ़ी सफेद हो चुकी है), हुज़ूर के पौत्र, निजी-सचिव (प्राइवेट सेक्रेटरी), विश्वासपात्र सेवादार बीबी रली और मेरी उपस्थिति में सेक्रेटरी ने हुज़ूर को वह कागज़ दिया जिसमें हुज़ूर के आदेश के अनुसार उनकी अन्तिम इच्छाएँ लिखी गईं थीं। महाराजजी ने अपने पढ़ने की ऐनक मांगी, उसे शान्तिपूर्वक आँखों पर लगाया और तनिक कांपते हुए हाथ

से उस कागज़ को लिया। हुज़ूर ने धीरे-धीरे और बड़ी सावधानी से हरएक पंक्ति को शुरू से आखिर तक पढ़ा और फिर सेक्रेटरी की ओर देखते हुए कागज़ वापस दे दिया। उसके बाद हुज़ूर पाँच मिनिट तक खामोश रहे, तथा अपने सामने की ओर देखते रहे; ऐसा प्रतीत होता था कि हुज़ूर किसी ध्यान अथवा चिन्तन में लीन हैं। उस समय चारों ओर गहरी खामोशी थी। फिर हुज़ूर ने वह दस्तावेज़ दोबारा मांगा और उसे फिर से उसी सावधानी के साथ पढ़ा और सेक्रेटरी को देते हुए हुक्म दिया कि इसे पढ़ कर सुना दो। सेक्रेटरी ने उसे पढ़ कर सुनाया। दस्तावेज़ पढ़ कर सबको सुना देने के बाद सेक्रेटरी ने महाराजजी से पूछा, "क्या यह ठीक है?" हुज़ूर ने जवाब दिया, "हाँ" और साथ ही अपना सिर हिला कर सम्मति प्रकट की। फिर हुज़ूर ने अपनी पेन (कलम) माँगी। मैंने अपनी कलम पेश की। कलम हाथ में लेकर हुज़ूर ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से अपने पौत्र (सरदार चरनसिंहजी) की ओर देखा, जिन पर हुज़ूर का हमेशा बहुत गहरा विश्वास था। इसके बाद महाराजजी ने उस अनमोल दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर किये जिसमें हुज़ूर के जानशीन का नाम और हुज़ूर की अन्तिम इच्छा अंकित थी।

मैंने हुज़ूर के हस्ताक्षर का इस ज़रूरी घोषणा के साथ प्रमाणी-करण किया कि हस्ताक्षर करते समय हुज़ूर अपने पूरे होश-हवास में हैं और उन्होंने इस दस्तावेज़ पर खुद अपनी मरज़ी से, बगैर किसी दबाव के हस्ताक्षर किये हैं।

उस शान्त, अलौकिक वातावरण में महाराजजी की क्या निराली शान थी! उनके मुख की शोभा कितनी दिव्य, उदार और प्रभावशाली थी! यद्यपि उनके हाथ थोड़े काँप रहे थे, फिर भी उनकी प्रत्येक क्रिया भव्य तथा आकर्षक थी। दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने का जो कार्य हुज़ूर ने किया था और जिस प्रकार किया था, उसने हमारे हृदय को प्रेम और भावना से भरपूर कर दिया था, जुड़े हुए हाथों, उमड़ते हृदय और भक्ति के साथ हम उनके पावन चरणों में नत हो गये। वे उस समय हमारे सामने देह-स्वरूप में मौजूद थे, किन्तु अपनी वसीयत के द्वारा यह घोषणा कर चुके थे कि कुछ समय बाद हमारे बीच देह-स्वरूप में न रहेंगे। मैं कभी न भूल सकूँगा वह खामोशी और उससे भी अधिक वह पूर्ण आन्तरिक शान्ति जो सतगुरु की अपार दया-मेहर के साथ हमारे रोम-रोम में समा गई थी।

उस समय हुज़ूर अपने पलंग पर एक मोटे नीले मखमली तकिये के सहारे बैठे थे। कन्धों पर एक श्वेत मुलायम शाल लपेटा हुआ था। सिर खुला था, पगड़ी नहीं पहनी हुई थी। उनके नेत्रों में अपार आत्मिक शक्ति

तथा सामर्थ्य को प्रकट करने वाली वह ज्योति और आभा थी जिसका वर्णन असम्भव है। उनके सम्पूर्ण शरीर से ऐसी चेतन धाराएँ निकल रही थीं जिनका मैं वर्णन नहीं कर सकता, जो अथाह और अलौकिक थीं। हुज़ूर की सर्वज्ञता के सामने हम अपने आप को बहुत छोटा और तुच्छ महसूस कर रहे थे। उसके बाद हम पर एक गहरी सौम्यता और आन्तरिक शान्ति छा गई, जिसने हमें अपने चारों ओर की दुनिया को भुला दिया; हमें अपने आप की सुधि न रही, हमारी आँखें प्रेम और आनन्द के अश्रुओं से डबडबा गईं, हम अपने महान सतगुरु के आत्मिक वातावरण के परम आनन्द में प्लावित होगये।

अन्तिम दर्शन तथा संस्कार

जब महाराजजी ने अन्तिम सांस ली तब मैं अपने सतगुरु के पवित्र हाथ को थामे हुए एक छोटे स्टूल पर बैठा हुआ था और उनके दिव्य नेत्रों को स्थिरता-पूर्वक निहार रहा था। मैंने उनके अन्तिम श्वास को देखा और उनके हृदय की आखिरी धड़कन को महसूस किया। मैं उठ कर खड़ा हो गया, अपने असामान्य कर्तव्य का मुझे बोध था। गम्भीर मौन के साथ, मैंने कमरे में नत-सिर, भीगे नेत्र बैठे सत्संगियों की ओर देखा। पास का कमरा भी सत्संगियों से भरा हुआ था, जो अश्रु-पूर्ण नेत्रों के साथ सिर झुकाये बैठे थे। गहरे दुःख और भग्न हृदय से मैं अपने सतगुरु के चरणों में नत हो गया, जिसका अर्थ यह घोषणा करना था कि 'सब-कुछ पूर्ण हो गया'।

२ अप्रैल, १९४८ का दिन था। उस समय डेरा बाबा जैमलसिंह में सुबह के साढ़े आठ बजे थे।

कैसा दर्दनाक वक्त था! कैसा भीषण आघात था हर सत्संगी के हृदय पर!! क्या यह वास्तव में सच था? कुछ क्षणों के लिये हम स्तब्ध रह गये। पल-पल यह आस लगा रहे थे कि कोई चमत्कार हो जाये। और फिर सहसा अपने प्यारे सतगुरु के बिछोह के गहरे आघात को व्यक्त करने वाली रुदन-ध्वनि ऊपर के कमरों में गूंज उठी, जिससे नीचे सहन में एकत्रित संगत को इस हृदय-विदारक घटना की सूचना मिल गयी।

पिछले दो दिन से महाराजजी का कमरा तथा पास के कमरे सत्संगियों से भरे हुए थे, जो बगैर खाये-पिये, दिन-रात अपने सतगुरु पर नज़रें लगाये बैठे थे। हुज़ूर महाराजजी ने कुछ दिनों पहले यह इच्छा प्रकट की थी कि शान्ति से सुमिरन करते हुए सत्संगी ही उनके कमरे में रहें।

महाराजजी के दो-तीन निकटतम सेवक और उनके पुत्र तथा पौत्र अपने सतगुरु के पावन शरीर को अन्तिम संस्कार के हेतु तैयार करने लगे।

उन्होंने साबुन और पानी से महाराजजी की देह को स्नान कराना तथा उन्हें सफेद कुरता और गहरे रंग के वस्त्र पहनाना शुरू किया। जिस समय सब लोग हुजूर को स्नान कराने में इतने तत्पर और व्यस्त थे, कोई उनका सिर धो रहा था तो कोई उनका मुख, कोई उनके हाथों को धो रहा था तो कोई उनके कन्धों को स्नान करा रहा था, उस समय हुजूर का वफादार कम्पाउण्डर हज़ारासिंह कमरे के एक कोने में शोक और दर्द में बेसहारा पड़ा हुआ था, उसमें मानों बोलने या हिलने-डुलने तक का सामर्थ्य न था। कमरे के दूसरे कोने में मैं सरदार बहादुर जगतसिंह के पास प्रार्थना में झुका हुआ बैठा था। एकाएक नये सतगुरु उठे, शान्तिपूर्वक उन्होंने अपना शाल उतारा, एक छोटा पीतल का लोटा लिया, उसमें पानी भरा और भीड़ में से चुपचाप अपने प्यारे सतगुरु के चरणों में जा पहुँचे जहाँ कोई नहीं था। उन्होंने हुजूर के चरणों पर से वस्त्र हटाये और बड़े आदर तथा भक्ति-पूर्वक अन्तिम बार उनके पुनीत चरणों का प्रक्षालन किया और उस पवित्र जल को यतन के साथ एक पात्र में इकट्ठा कर लिया। जिस प्रकार उन्होंने यह कार्य किया उसमें कैसी सौम्यता और शान थी! औरों की उत्तेजनापूर्ण सरगर्मी से यह कितना भिन्न था! और यह महत्वपूर्ण कार्य इस प्रेम और दीनता से, इतनी आडम्बर-रहित सरलता के साथ किया गया था कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनके इस पवित्र कार्य की ओर किसी का ध्यान ही न गया। अपना पुनीत कर्तव्य करके एक परछाईं के समान वे वापस आ गये और अपना शाल ओढ़ कर मेरे पास चुपाचाप बैठ गये। बाकी लोग अपना-अपना काम करते रहे।

महाराजजी की कोठी की पहली मंज़िल के द्वार पर संगत की उमड़ती भीड़ को रोकने के लिये कुछ सेवादारों को रखने की दूर-दर्शिता ने दरवाज़ों को टूटने से बचा लिया, वरना अपने प्यारे सतगुरु के दर्शन के लिये व्याकुल संगत की अपार अनियन्त्रित भीड़ बार-बार अन्दर आने की कोशिश कर रही थी। बाहर से हमें चीख-पुकार और शोक-पूर्ण स्वर में चिल्लाने की आवाज़ें आ रहीं थीं। कमरों का तथा बाहर का वातावरण शोक और विषाद से परिपूर्ण था। मैं अन्दर ही बैठा रहा।

प्रमुख सत्संग-केन्द्रों पर तार द्वारा यह शोक-पूर्ण समाचार देने तथा चन्दन की लकड़ी व संस्कार हेतु अन्य आवश्यक सामान लाने के लिये हुजूर महाराजजी के एक पौत्र तुरन्त ब्यास रेलवे स्टेशन होते हुए अमृतसर के लिये रवाना हो गये।

इसी बीच डेरे में विशाल जन-समुदाय इकट्ठा हो गया। मेरे सामने दुःख के ऐसे हृदय-विदारक दृश्य थे जो शायद ही किसी मनुष्य ने अपने जीवन में देखे हों। समाचार फौरन पूरी कालोनी में पहुँच गया और अपनी इस तबाही में संगत का रुदन और विलाप अत्यन्त दर्दनाक था। एक घण्टे के अन्दर तीन हज़ार से ज़्यादा लोग आ गये और दस बजे तक तो आस-पास के गाँवों और शहरों से दस हज़ार से अधिक लोग आ पहुँचे। अपने सतगुरु की प्रीति और भक्ति में रोते हुए इस अश्रु-पूरित जन-समुदाय का शोक-पूर्ण विलाप और गहरी वेदना का प्रदर्शन अत्यन्त मर्म-स्पर्शी था। कई बेहोश हो गये। एक नवयुवक सत्संगी ने कुछ खा कर प्राण त्याग दिये, वह अपने सतगुरु के बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता था। शोक और सन्ताप के उन दृश्यों का वर्णन ही नहीं हो सकता।

सतगुरु के शरीर को तैयार कर लेने के बाद, सबके दर्शन के लिये नीचे सहन में लाया गया। जिस गद्दे पर हुज़ूर के शरीर को रखा था वह सुन्दर बेल-बूटेदार चद्दर से सजा हुआ था और गद्दा एक सुन्दर विशाल गलीचे पर रखा हुआ था। द्वार के पास के पोर्च के नीचे हुज़ूर का शरीर रखा हुआ था और आये हुए सत्संगी एक एक करके पास से दर्शन करते हुए निकलते जा रहे थे। यह क्रम बगैर रुके पाँच घण्टे तक चलता रहा। वे अपने प्यारे सतगुरु के प्रति अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने और उनके अनुपम स्वरूप के आखरी दर्शन के लिये उमड़े चले आ रहे थे। हुज़ूर का मुख-मण्डल यद्यपि संग-मर्मर के समान श्वेत और स्थिर था, परन्तु उसमें अभी भी गहरी शान्ति और सौम्यता थी।

संगत के करुण विलाप, रुदन और शोक का दृश्य वर्णन से परे है। और उस समय मुझे बोध हुआ कि 'भक्ति' और 'प्रेम' का वास्तव में क्या अर्थ है। नीची से नीची जाति से लेकर ऊँची से ऊँची जाति के लोग, अछूत और मेहतर से लेकर ब्राह्मण और पंडित, मुसलमान, हिन्दू तथा सभी धर्म के लोग आकर महाराजजी के पवित्र शरीर के सामने श्रद्धा-पूर्वक माथा टेक रहे थे। यह अनायास सच्ची भावना के साथ नमन था। हरएक व्यक्ति उन्हें देखने और उन्हें स्पर्श करने के लिये व्यग्र था। संगत की उमड़ती भीड़ में व्यवस्था रखने के लिये सेवादारों का एक विशेष संगठन बनाया गया था, क्योंकि कोई भी इस कठोर सत्य पर विश्वास नहीं कर पा रहा था कि महाराजजी महाप्रयाण कर चुके हैं, और अपनी आँखों से देखकर ही यकीन करना चाहता था। सभी उनके सामने फूल, इत्र आदि रख रहे थे। उधर अन्तिम संस्कार के लिये उनके शरीर के आस पास सुगन्धि-पूर्ण द्रव्य रखे जा

रहे थे। इसके बाद उन्हें एक अर्थी पर लिटाया गया। अर्थी लाल कपड़े तथा रूपहरी सुनहरी सजावटों से सजी हुई थी।

अब इस बात का निर्णय करना था कि अन्तिम संस्कार उसी दिन किया जाय या बाद में, क्योंकि कई सत्संगियों ने बड़े अनुरोध के साथ प्रार्थना की कि संस्कार कुछ दिनों के बाद किया जाय ताकि उनके मित्र तथा परिवार के लोग जिन्हें अभी तक खबर भी न मिल पाई थी, आकर अपने सतगुरु के अन्तिम दर्शन कर सकें। परन्तु हिन्दुस्तान में यह रिवाज है कि संस्कार उसी दिन किया जाय और इस देश के जल-वायु तथा गरम मौसम को देखते हुए अन्तिम संस्कार को स्थगित करना मुश्किल भी है। अतएव यह तय किया गया कि उसी दिन शाम को सूर्यास्त के समय अग्नि-संस्कार किया जाय।

शाम को पाँच बजे तेज़ हवा और आँधी आने लगी, आकाश में धूल छा गई और वातावरण धुँधला हो गया। ऐसा लगता था मानों प्रकृति भी इस व्यथा से व्याकुल हो। खूब सजे हुए शव-मंच पर अर्थी को रखा गया और उसे सतगुरु के बारह निकटतम सत्संगियों ने अपने कन्धों पर उठाया; इनमें नये सतगुरु सरदार बहादुर जगतसिंहजी भी थे। शव-यात्रा डेरे से तीन मील दूर ब्यास नदी के किनारे की ओर चल पड़ी। शव-यात्रियों को रेती के टीलों और घुटनों तक गहरे पानी में से जाना पड़ रहा था। पूरी यात्रा में डेढ़ घण्टा लगा। साथ में २० हज़ार लोगों का समुदाय फूल आदि फेंकता हुआ तथा भीड़ में एक-दूसरे को धक्के देता हुआ चल रहा था। उनके पैरों से उड़ने वाली धूल सारे वातावरण में छा रही थी और उसमें अर्थी तथा उसको उठाने वाले छिप गये थे। रास्ते में अर्थी उठाने वाले बदलते जा रहे थे।

चिता के चारों ओर एक रस्सी का घेरा बना दिया गया था, परन्तु भीड़ इतनी जबरदस्त थी कि कुछ ही क्षणों में घेरा छिन्न-भिन्न हो गया, क्योंकि हरएक व्यक्ति चिता के पास रहना चाहता था। चन्दन आदि बहु-मूल्य लकड़ियों से चिता तैयार की जा रही थी। चन्दन की लकड़ी के बड़े-बड़े कुन्दे संगत में एक से दूसरे के हाथों में दिये जा रहे थे। चिता तैयार होने पर सतगुरु के पार्थिव शरीर को उस पर रखा गया तथा ऊपर से और लकड़ियाँ रखी गईं। बीच-बीच में घी तथा अगर, चन्दन, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य रखे गये। और फिर चिता को अग्नि दी गई।

मैं अपने सहायक डाक्टर पुरी के साथ कोलाहल और भीड़ से अलग होकर पीछे की ओर आ गया था। हम मानों सबसे बिछुड़ कर एकाकी खड़े थे और मन ही मन अपने सतगुरु के चरणों में प्रार्थना कर रहे थे, जो

कि बाहरी दृष्टि से हमें छोड़ कर जा चुके थे। इस सब में मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं एक असहाय विदेशी हूँ। मैं सोच रहा था कि क्या मैं सच-मुच ज़िन्दा हूँ। मैं अपने आप से कह रहा था, "अब मैं एक ऐसा अनाथ हूँ जिसने सब-कुछ खो दिया है, जिसे असहाय और बेसहारा छोड़ दिया गया है, जिसे आसरा और सहायता देने वाला अब कोई नहीं है। संसार की मरुभूमि में पथ भूली हुई एक दीन आत्मा हूँ..." और इसी समय भीड़ दोनों ओर हट गई और उसमें से एक उज्ज्वल व्यक्तित्व आगे आया, उसके मुख पर एक दिव्य सौम्यता थी और नेत्रों में था करुणा-पूर्ण प्रेम। ये थे नये सतगुरु जो दोनों हाथ बढ़ाये हुए मेरी ओर आ रहे थे और मुझ से पूछ रहे थे कि क्या वे मेरे पास बैठ सकते हैं। मेरे टूटे हुए दिल और मेरी घोर निराशा का कैसा अनुपम उत्तर था! सतगुरु की करुणा और दया-मेहर का कितना प्रभावशाली तथा मर्म-स्पर्शी संकेत था! हम खामोश बैठे थे। मैं श्रद्धापूर्वक अन्तिम संस्कार की विधि देख रहा था। चिता से ऊँची-ऊँची लपटें उठ रही थीं। संगत शब्द गा रही थी। लोग चिता में सुपारी, खजूर, जायफल आदि डाल रहे थे। हवा तेज़ी से चल रही थी, धीमी बारिश हो रही थी; प्रकृति में भी उदासी और अँधेरा छा रहा था।

कुछ समय बाद सरदार बहादुर महाराजजी उठे और मुझे अपने साथ चलने को कहा। मैं बारिश और तेज़ हवा में अपनी छतरी सँभाले उनके साथ चल रहा था। औरों की तरह मैं भी एक हाथ से अपनी पतलून ऊपर खींचे हुए था ताकि वह बारिश व कीचड़ में गन्दी न हो जाय। सहसा जब हमने रुक कर पीछे चिता की चमकती हुई लालिमा की ओर देखा, तो आँधी और बारिश थम चुकी थी और डेरे के पीछे एक अद्वितीय सूर्यास्त का दृश्य दिखाई दे रहा था, जिसके अरुण प्रकाश की पृष्ठ-भूमि में, हमारे सतगुरु द्वारा बनाये हुए विशाल सत्संग-घर की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। पीछे आसमान की रक्तिम लालिमा में सत्संग-घर का यह दृश्य बहुत ही भव्य और प्रभावशाली था। एक ओर तो संगत की विशाल भीड़ के बीच में चिता में सतगुरु का पार्थिव शरीर था और दूसरी ओर चिता के समान ही लाल आकाश था, मानों आकाश इस कभी न भुलाये जा सकने वाले अन्तिम-संस्कार के दृश्य का प्रतिबिम्ब ही हो।

चिता पर चार सेवादारों का पहरा बैठा दिया गया था। चिता में डेढ़ दिन तक आग रही। दो अप्रैल की वह रात भयानक थी; भयंकर आँधी व गुबार, गरजते हुए बादलों की गड़गड़ाहट, बार-बार चमचमाती हुई बिजली

और अन्त में तेज़ बरसात की झड़ी! इतने पर भी वे चारों सत्संगी चिता के पहरे पर दृढ़ता-पूर्वक बैठे रहे। अग्नि सतगुरु के पार्थिव शरीर को अपनी ज्वाला में समेटती जा रही थी, प्रकृति के वेग, आँधी और तूफान की मानों उसे चिन्ता न थी।

४ अप्रैल को दोपहर के बाद फूल चुनने की क्रिया हुई। फूल को शीतल करने के लिये चिता पर दूध डाला गया। इसके बाद महाराजजी के परिवार के सदस्यों ने तथा उनके निकटतम शिष्यों ने बालटियों में फूल तथा राख को समेटना शुरू किया। करीब तीन सौ सत्संगी एक कतार बना कर चिता से नदी के बीच तक खड़े थे। बालटियाँ उसी समय से एक दूसरे के हाथों से होती हुई नदी के बीच तक पहुँचाई गईं और फ़ूल, राख तथा संस्कार-स्थल की मिट्टी तक जल में प्रवाहित कर दी गई। इस कार्य में पूरी दोपहर बीत गई।

वापस जाने के लिये संगत ने बड़ी कृपा के साथ मेरे लिये घोड़े का इन्तिज़ाम कर दिया था। हुज़ूर महाराजजी की तीन महीने तक सेवा और चिकित्सा करने के लिये जिस प्रकार लोगों ने आकर मुझे शुक्रिया दिया, वह बड़ा ही हृदय-स्पर्शी था। नये सतगुरु स्वयं मेरे निवास-स्थान पर आये, उन्होंने मुझे अपनी बाहों में भर लिया और अत्यन्त करुणा और प्रेम के साथ आभार प्रकट किया। मेरा दिल भर आया। मैं कह सकता हूँ कि उस समय एक सतगुरु से दूसरे में परिवर्तित होने की वास्तविकता का मैंने अनुभव किया, जिसने मेरे अन्तर में एक गहरी अमिट छाप छोड़ दी। मैं उस क्षण को कभी नही भूल सकता जो आज तक मेरे लिये अत्यन्त पावन है, जो मेरे लिये एक अमिट वरदान है।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी एक पूर्ण सन्त तथा सच्चे सतगुरु थे। वे आज भी अपने शिष्यों के अन्तर में बिराजमान हैं और शिष्य आज भी अन्तर में जाकर उनके दिव्य ज्योतिर्मय स्वरूप के दर्शन कर सकते हैं।

अध्याय ३

सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी

सरदार बहादुर जगतसिंहजी के पिता सरदार भोलासिंहजी जालन्धर ज़िले में ग्राम नुसी के एक समृद्ध ज़मींदार थे। ग्राम में उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी और वे ज़िला बोर्ड के सदस्य भी थे। घर की काफी बड़ी ज़मीदारी थी और आपका घराना अपने क्षेत्र के प्रमुख ज़मीदारों में गिना जाता था। सरदार जगतसिंहजी का जन्म ५ सावन, संवत् १९४१ तदनुसार २० जुलाई सन् १८८४ को हुआ। बचपन से ही आप प्रसन्नचित्त; शान्त तथा मृदु-भाषी थे। अभी आपकी आयु पाँच वर्ष की ही थी कि माताजी का देहान्त हो गया। आपके पिता की चाचीजी ने आप का पालन-पोषण किया। आपके परिवार के लोग साधु-सेवा तथा महात्माओं की संगति के प्रेमी थे और छोटी उम्र से ही आप भी उनके साथ साधु-महात्माओं के पास जाते रहते थे।

बाल्यावस्था में आपने गुरुद्वारा के ग्रन्थी से गुरुमुखी सीखना शुरू किया। उसके बाद आपने मिशन स्कूल जालन्धर में प्रवेश किया। आप पढ़ाई में ख़ूब रुचि लेते थे तथा हमेशा उच्च श्रेणी में पास होते। पढ़ाई के साथ ही खेल-कूद में भी आपकी काफी रुचि थी तथा हाकी और फुटबाल बहुत अच्छा खेलते थे। मिशन स्कूल जालन्धर से मेट्रिक पास करके आपने गवर्नमेंट कालेज लाहौर में प्रवेश किया और वहाँ से एम. एससी. की डिग्री प्राप्त की। आपके सहपाठी बताते हैं कि कालेज में अपनी सज्जनता, सरलता, सादगी तथा नम्रता के लिये आपका सभी विद्यार्थी बहुत आदर करते थे। कालेज के दिनों में ही आपके उच्च चरित्र, पवित्र जीवन और अनुशासन-प्रियता के कारण आपको लोग 'गुरुजी' कह कर पुकारने लगे थे।

१९०९ में एम. एससी. की परीक्षा पास करने के बाद आपको अपने कालेज में ही अन्वेषक छात्र (रिसर्च स्कालर) के रूप में रख लिया गया। परन्तु लायलपुर कृषि कालेज का प्रिंसीपल डॉक्टर बार्नेस, जो आपकी प्रेक्टिकल्स की परीक्षा लेने आया था, आपसे बहुत प्रभावित हुआ और बहुत ज़िद करके आपको लायलपुर ले गया। वहाँ आपको कृषि कालेज में रसायन-शास्त्र के सहायक प्रोफ़ेसर के पद पर नियुक्त किया गया।

सरदार बहादुरजी ने विद्यार्थियों को पढ़ाने का कार्य बड़ी लगन, रुचि और मेहनत के साथ शुरू कर दिया। कुछ ही दिनों में आप अपने विद्यार्थियों में बहुत लोक-प्रिय हो गये। आपके पढ़ाने का ढंग ऐसा था कि विषय को सरल और रुचिकर बना देते थे। कभी-कभी प्रिंसीपल डॉक्टर बार्नेस भी चुपचाप आपकी क्लास में आकर बैठ जाता और आपका लेक्चर सुनता रहता। विद्यार्थी आपका केवल आदर ही नहीं करते थे बल्कि आपको बहुत चाहते भी थे और आपकी हर बात मानने के लिये तत्पर रहते थे। आप बड़े अनुशासन-प्रिय थे। स्वयं अनुशासन में रहते और अपने विद्यार्थियों को प्यार के साथ अनुशासन में रखते। जो विद्यार्थी अपने विषय में कमज़ोर होते या जो विशेष अध्ययन करना चाहते, उनको पढ़ाने के लिये आप समय के बाद भी कालेज में ठहर कर उन्हें मुफ्त शिक्षा देते थे।

टेनिस और हाकी के आप कुशल खिलाड़ी थे। हाकी में आप कालेज के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी थे और आपके बगैर टीम बाहर नहीं जाती थी। खिलाड़ी भावना के तो आप आदर्श थे। खेल के मैदान में आप विद्यार्थियों के साथ समानता का व्यवहार करते और उन्हें महसूस न होने देते कि वे एक शिक्षक के साथ खेल रहे हैं।

सन् १९१० में आप हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी के चरणों में आये। उस समय हुज़ूर महाराजजी सर्विस में थे तथा ऐबटाबाद में नियुक्त थे। सरदार बहादुरजी अपने बड़े भाई सरदार भगतसिंहजी तथा (रायसाहब) मुन्शीरामजी के साथ हुज़ूर के दर्शन के लिये ऐबटाबाद तशरीफ़ ले गये। सत्संग सुना और नाम प्राप्त किया। नाम लेकर आपने इतना अभ्यास किया कि कोई बिरला ही कर सकता है। जिस लगन और मेहनत से आप कालेज में कार्य कर रहे थे, उसी लगन के साथ अपना फुरसत का सम्पूर्ण समय अभ्यास में देने लगे। घर का सारा प्रबन्ध पंडित लालचन्दजी[1] को सौंप दिया। वह भी आपकी संगति में आकर सत्संगी बन गये।

सरदार बहादुरजी कभी अपने पास एक पैसा भी न रखते थे। वेतन मिलते ही उसे पंडितजी को दे देते, सारा खर्च वे ही करते। आपने बहुत से

---

१ पंडित लालचन्द धर्मानी अपने कालेज के दिनों में सरदार बहादुर जगतसिंहजी के शिष्य तथा बाद में उनके साथ कृषि कालेज लायलपुर में शिक्षक रह चुके हैं। आप सरदार बहादुर महाराजजी के निकट मित्र और साथी थे। हमेशा उनके साथ रहते थे। जब सरदार बहादुरजी डेरे तशरीफ लाते तो आप भी उनके साथ आते थे। उनकी नेक संगति से न केवल आप ही नाम के रंग में रंग गये, बल्कि आपके माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य भी सत्संगी बन गये। आजकल आप रिटायर होकर अपना अधिकांश समय डेरे में व्यतीत कर रहे हैं।

ਮਹਾਰਾਜ ਬਹਾਦਰ ਸਰਦਾਰ ਜਗਤ ਸਿੰਘ ਜੀ

महाराज सरदार बहादुर जगत सिंह जी

विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता देकर उच्च शिक्षा दिलवाई। जब भी कोई विद्यार्थी किसी प्रकार की तकलीफ़ में होता और सरदार बहादुरजी को पता चलता तो आप फौरन उसकी सहायता करने की कोशिश करते। एक बार का ज़िक्र है, एक लड़का बलूचिस्तान से आया हुआ था। कई महीने गुज़र जाने पर भी उसने कालेज की प्रवेश फीस, पढ़ाई तथा छात्रावास फीस के दो सौ रुपये नहीं चुकाये। उसे परीक्षा में बैठने से रोकने का निर्णय लिया जा रहा था। जब सरदार बहादुरजी को पता चला तो आपने उस लड़के से फीस आदि की रकम न चुकाने का कारण पूछा। उसने बताया कि घर से अभी तक पैसे नहीं आये हैं। इस पर आपने उससे कहा कि घर से अपने पिता को तार देकर रुपये मँगवा ले, वरना वह इम्तिहान में न बैठ सकेगा। उस लड़के ने जवाब दिया, "जी, आप भी तो पिता ही हैं।" यह सुनते ही सरदार बहादुरजी ने अपनी चेक-बुक मँगवा कर दो सौ रुपये उस लड़के की फीस के जमा करवा दिये। कुछ समय बाद उस लड़के के घर से रुपया आ गया। वह रुपया लेकर आपके पास आया। जब उसने रुपया निकाल कर मेज़ पर रखा तो आपने पूछा, "यह रुपया कैसा ?" उसने जवाब दिया कि यह वह रुपया है जो उस दिन आपने दिया था। यह सुन कर सरदार बहादुरजी ने फ़रमाया, "काम निकल गया तो क्या अब मैं तेरा पिता नहीं रहा ?" और रुपया लौटा दिया।

आपने कालेज के कार्य को हमेशा अपने सतगुरु का कार्य समझ कर पूरी लगन और मेहनत के साथ किया। आपका पूरा जीवन ही सतगुरु के चरणों में अर्पित था। उन दिनों एक बार आपने अपने मित्र रा. ब. शंकरदास सोंधी के पुत्र श्री कुन्दन सोंधी* से, जो अपने विद्यार्थी जीवन में लायलपुर में थे, कहा कि नाम लेने के बाद हमें केवल भजन-सुमिरन ही नहीं बल्कि पढ़ाई, नौकरी आदि सब कार्य अपने सतगुरु के कार्य समझ कर पूरी लगन, सावधानी और भक्ति के साथ करने चाहियें। हर कार्य को पूर्ण तत्परता और प्रयास के साथ करना चाहिये, क्योंकि वह हमारे सतगुरु का कार्य है।

सरदार बहादुरजी ने कालेज में अध्यापन का कार्य इसी भावना के साथ किया। बीमारी, तन्दुरुस्ती, गरमी, सरदी, कोई भी बात आपके कर्तव्य के पालन और अनुशासन की पाबन्दी में रुकावट नहीं डाल सकती थी। आप कालेज के यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर (विश्वविद्यालय सैनिक प्रशिक्षण दल) के प्रमुख सदस्य थे और हर साल नवम्बर में अपने दल के साथ प्रशिक्षण

---

*श्री कुन्दन एल. सोंधी भारतीय वायु-सेना में एयर वाइस-मार्शल के पद से रिटायर होकर आजकल डेरे में रहते हैं।

शिविर (केम्प) में जाते थे। सन् १९४१ में आप काफी अस्वस्थ थे, शरीर में सख्त पीड़ा थी। प्रिंसिपल को आपकी बीमारी का पता था; उसने कहा कि केम्प की ड्यूटी से छुट्टी ले लें क्योंकि वहाँ ट्रेनिंग, परेड आदि का कार्य बहुत सख्त होता है। आपने कोई जवाब नहीं दिया। परन्तु जिस दिन केम्प के लिये आपका छात्र-सैनिक दल जा रहा था, आप उसमें मौजूद थे और वहाँ जाकर पन्द्रह दिन के पूरे समय तक आपने अपनी ड्यूटी दी।

आपको अंग्रेज़ सरकार ने सरदार बहादुर का ख़िताब दिया था। आपके व्यक्तिगत प्रभाव, ऊंचे चरित्र, कार्य में लगन, सदाचार, अनुशासन-प्रियता, वक्त की पाबन्दी, विद्यार्थियों के प्रति प्रेम और सहानुभूति तथा साथी प्रोफ़ेसरों के प्रति निस्वार्थ स्नेह के फलस्वरूप कालेज में जो निर्मल वातावरण उत्पन्न हो गया था, उसकी चर्चा सभी करते थे। इन गुणों के लिये ही आपको यह ख़िताब दिया गया था।

आप फ़रमाया करते थे कि सत्संगी को सन्त-मत के बारे में प्रचार करने या किसी से कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं होनी चाहिये। उसकी रहनी इतनी ऊँची होनी चाहिये कि लोग उसे देखकर आप ही खिंचे चले आयें और खुद ही इस मार्ग के विषय में तहक़ीक़ात करने लगें। सरदार बहादुरजी का पूरा जीवन ही इस बात का दृष्टान्त था। आपकी ऊँची रहनी से प्रभावित होकर आपके कई विद्यार्थी और साथी प्रोफ़ेसर डेरे आकर हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी से नाम ले गये। आपका प्रिंसीपल डाक्टर लेण्डर खुद अपनी इच्छा से डेरे आया और नामदान प्राप्त कर गया। आपने कभी उस से सन्त-मत के बारे में ज़िक्र भी नहीं किया था। आपके पवित्र जीवन तथा ऊँचे चरित्र से प्रभावित होकर उसने खुद पूछताछ शुरू की और पंडित लालचन्दजी को लेकर डेरे आया।

बचपन से ही सरदार बहादुरजी की रुचि परमार्थ की ओर थी। सांसारिक वस्तुओं के प्रति आपको कोई आकर्षण व लगाव न था। नामदान के बाद तो आपका एक-मात्र लक्ष्य अभ्यास और सतगुरु-भक्ति ही रह गया। नाम लेने के कुछ दिन बाद बिरादरी में किसी की मृत्यु पर आयोजित ग्रन्थ-साहिब के पाठ में आप गये। सन्तों की वाणी तो हम लोगों ने कई बार सुनी होगी, परन्तु एक कान से सुनी और दूसरे कान से निकाल दी। लेकिन जो आत्माएँ धुरधाम से किसी खास उद्देश्य के लिये आती हैं, उनकी चाल-

ढाल ही निराली होती है । ग्रन्थ साहिब के पाठ में सरदार बहादुरजी ने निम्नलिखित पद सुना—

अवरि काज तेरै कितै न काम ।।मिलु साध संगति भजु केवल नाम ।।
सरंजामि लागु भवजल तरन कै ।। जनम बृथा जात रंगि माइग्रा कै ।।

सरल तथा निर्मल हृदय में यह तुक समा गया । स्वभाव से विचारवान थे और अपने आदर्शों को क्रियात्मक रूप देने की शुरू से आदत थी । निर्णय कर लिया कि जब मनुष्य-जन्म का असली उद्देश्य 'भवजल तरन' है तो फिर 'भज केवल नाम' ही मनुष्य का एक-मात्र ध्येय होना चाहिये ।

माता-पिता ने सगाई बचपन में ही कर दी थी, परन्तु विवाह अभी तक नहीं हुआ था । शिक्षा समाप्त होने पर घरवालों ने आपकी शादी का ज़िक्र शुरू किया लेकिन शादी की तरफ़ आपको रुचि न थी ।

फिर भी बहुत दिनों तक घर वाले शादी के लिये ज़ोर देते रहे, परन्तु उनकी सभी कोशिशें व्यर्थ सिद्ध हुईं । सरदार बहादुरजी के ताया के पुत्र सरदार भगत सिंहजी वकील बड़े चतुर और व्यवहारिक व्यक्ति थे । उन्होंने हुज़ूर महाराज सतगुरु दीनदयाल के चरणों में यह समस्या रखते हुए विनती की, "हुज़ूर ! कई वर्षों पहले मेरे पिता और चाचा इनकी सगाई एक अच्छे परिवार में कर चुके हैं । अब लड़की भी सयानी हो गई है । अगर अब हम लड़की की सगाई छोड़ दें तो इस प्रकार छोड़ी गई कन्या का रिश्ता कोई अच्छा परिवार लेने को तैयार न होगा । हमारी भी इलाके में बदनामी होगी और हमारी बात का कोई विश्वास न रहेगा ।"

यह सुन कर हुज़ूर महाराजजी ने हुक्म दिया, "सब गुरु साहिबान और सन्तों ने शादी की है । सन्तान के लिये शादी ज़रूरी है । शादी कर लेना चाहिये ।" हुज़ूर के आदेश के सम्मुख सरदार बहादुरजी ने सर नवा दिया और आज्ञानुसार विवाह कर लिया । लेकिन पत्नी को अपने पास कुछ महीने ही रखा । एक पुत्र के जन्म के बाद आपकी धर्मपत्नी सदा नुसी या जालन्धर में ही रहीं और कभी लायलपुर न आईं ।

आपकी पत्नी श्रीमती सदा कौर नेक, सुशील और सच्चरित्र थीं । उनके विचार बहुत ऊँचे थे और उन्होंने सरदार बहादुरजी को अपने उच्च आदर्श पर दृढ़ रहने में कभी बाधा न दी । आपको भी हुज़ूर महाराजजी से नामदान मिल गया था और आप अपना समय भजन-सुमिरन में गुज़ारती थीं । आप

कभी खाली नहीं बैठती थीं, घर के काम-काज के बाद भजन-सुमिरन में या चर्खा कातने में लगी रहतीं। मौजूदा सरकार हुजूर महाराज चरनसिंह जी के प्रति आपको बहुत प्यार था। अपने अन्तिम वर्ष आपने डेरे में ही गुज़ारे। मार्च १९६४ में लगभग ८० वर्ष की आयु में आपने डेरे में चोला छोड़ा। अन्तिम समय आप बड़ी प्रसन्न थीं और आपका मुख खुशी में दमक रहा था।

सरदार बहादुरजी के सुपुत्र सरदार जसवन्तसिंह कुशाग्र-बुद्धि और बड़े योग्य व्यक्ति थे। आपने इंजिनियरिंग में भारत तथा विदेश में ऊँची डिग्री प्राप्त की थी तथा पंजाब सरकार के इंजिनियरिंग विभाग में उच्च अफसर थे। भाखरा नांगल बाँध के निर्माण में आपका काफी योग था और अपने अन्तिम समय तक आप यहाँ मुख्य इंजिनियर के पद पर आसीन थे। आप उदार, सच्चरित्र तथा मिलनसार व्यक्ति तथा बड़े प्रेमी सत्संगी थे।

सरदार बहादुर जगतसिंहजी का पूरा जीवन एक सच्चे अभ्यासी और तपस्वी का जीवन था। दुनिया के पदार्थों की न तो कोई चाह थी, न उनमें उलझने के लिये अवकाश। न आपको खाने-पहनने का शौक था, न सैर-सपाटे में रुचि। अगर कोई शौक था तो केवल अपने कर्तव्य के पालन तथा रूहानी अभ्यास का। और इसमें वे इतने व्यस्त रहते कि आस-पास की अन्य सभी बातों से बेखबर रहते। बस कालेज जाते और उसके बाद जो भी समय मिलता भजन में बिताते। कभी एक मिनिट भी फ़िज़ूल नहीं जाने देते। सुबह कालेज जाने के वक्त से यदि दस मिनिट पहले तैयार हो जाते तो दस मिनिट के लिये भजन में बैठ जाते। नौकर को खाना लगाने को कहते और जो समय वह खाना गरम करने में लगाता, उसे वे भजन में गुज़ारते। शाम को घूमने अवश्य जाते, परन्तु प्रायः अकेले। यदि किसी दिन पंडित लालचन्दजी या और कोई निकट मित्र साथ जाते तो वे रास्ते भर मौन रहते। सरदार बहादुरजी सुमिरन करते हुए जाते और वापस आकर भजन में बैठ जाते। हुज़ूर महाराजजी ने आपको लायलपुर में सत्संग करने का हुक्म दिया था। हर रविवार को आप सत्संग करते थे। सत्संग से पहले कम से कम एक घंटा भजन में अवश्य बैठते। आपके आकर्षक और प्रभावशाली सत्संग को सुनकर कई व्यक्ति सन्त-मत में आये। लायलपुर तथा आस-पास से जितने भी लोग सत्संग में आये, उनमें से अधिकांश सरदार बहादुरजी के सत्संग तथा ऊँचे जीवन से प्रभावित होकर आये। आपका सत्संग सुनकर कभी-कभी कोई जिज्ञासु शाम को आपके पास आ जाता। उससे सन्त-मत तथा सतगुरु की बातें करते-करते रात के एक या दो तक बज जाते। जब दो बजते तो आप

उसे बिदा करते और भजन में बैठ जाते।

एक बार लायलपुर में एक सत्संगी सरदार बहादुरजी के पास अपने पुत्र की पढ़ाई तथा आगे आजीविका के विषय में सलाह लेने के लिये आया। आप बड़े ध्यान से उसकी बात सुनते रहे। पूरी बात कह कर उसने कहा, "मैंने इस विषय में हुजूर महाराजजी से भी राय ली थी..."। यह सुनते ही सरदार बहादुरजी उठ खड़े हुए और बोले, "क्या !...सरकार से राय लेने के बाद आप मेरे पास कैसे आये ! क्या मैं उनसे बेहतर राय दे सकता हूँ या उनकी राय से अलग सलाह दे सकता हूँ ? उनसे राय लेने के बाद मुझ से पूछने की ज़रूरत क्या थी !"

अपने विद्यार्थियों की तकलीफ़ या दुःख-दर्द का आप हमेशा बहुत ख़याल रखते थे। एक बार आपने देखा कि आपके ट्यूटोरियल ग्रुप में एक लड़का बहुत उदास बैठा है। आप क्लास के बाद उसके पास आये और बड़े प्यार के साथ पूछा कि वह उदास क्यों हैं। आपके प्रेम-पूर्ण वचन सुनकर उसकी आँखों में आँसू आ गये, पर वह बोला कुछ नहीं। सरदार बहादुरजी चुपचाप चले आये। उसके बारे में औरों से पूछ-ताछ करने पर पता चला कि उसके पिता की आर्थिक परिस्थिति खराब है और कालेज की पढ़ाई जारी रखने के लिये उसके पास कोई साधन नहीं है। यह मालूम होने पर सरदार बहादुर जी ने उसकी फीस अपने पास से जमा करवा दी और पूरे दो साल तक उस की पढ़ाई का पूरा खर्च अपने पास से देते रहे। जब पढ़-लिख कर उस विद्यार्थी को अच्छी नौकरी मिल गई तो उसने अपनी पहली तनखाह लाकर सरदार बहादुरजी के आगे रख दी। आपने पूछा, "यह क्या है ?" उसने जवाब दिया, "सर, यह मेरी पहली तनखाह है। मुझ पर आपका बहुत ऋण है।" आपने कहा, "भाई, क्या मेरा कोई पैसे उधार देने का रोज़गार है ? यह सब भूल जाओ और तनखाह के पैसे अपने पिता के पास भेजो।"

इसी प्रकार एक साहब जो आज भारत सरकार में एक उच्च अधिकारी हैं, जब लायलपुर में विद्यार्थी थे तब उनके पिता का देहान्त हो गया और पैसे की तंगी के कारण पढ़ाई बन्द करने की नौबत आ गई। सरदार बहादुर जी को जब यह पता चला तो कालेज व होस्टल आदि की पूरी फीस वे अपने पास से देते रहे और तीन साल के इस अरसे में कभी इस बात का ज़िक्र भी नहीं किया।

सरदार बहादुरजी महाराज का निजी खर्च बहुत कम था। वेतन की कुछ राशि ज़रूरतमन्द विद्यार्थियों की सहायता और मेहमानों को ठहराने में

खर्च करने के बाद जो कुछ बचता उसे हर छः महीने में एक लिफाफे में रख कर अपने बड़े भाई साहब सरदार भगतसिंहजी को दे देते। उनसे न कभी हिसाब माँगते और न ही पूछते कि रुपये कैसे खर्च किये हैं।

नाम लेने के बाद आपने कभी हुजूर महाराजजी से वक्त नहीं माँगा, कभी कोई सवाल नहीं किया, यहाँ तक कि कभी खुद होकर महाराजजी से बात शुरू नहीं की। हमेशा सतगुरु के हुक्म में रहे। जब हुजूर के दर्शन के लिये जाते तो कमरे में एक ओर बैठ जाते और अपलक दृष्टि से दर्शन करते रहते। सब कार्य अपने सतगुरु का ध्यान करके करते थे। यहाँ तक कि एक कमरे में से दूसरे कमरे में जाते तो भी कुछ क्षण आँखें बन्द करके सतगुरु का ध्यान करके फिर जाते।

सरदार बहादुरजी की जिससे भी एक बार मित्रता हो गई, उसको आपने आजीवन निभाया। लोगों ने कभी-कभी आपकी दोस्ती का गलत फायदा भी उठाने की कोशिश की, लेकिन आपने इस बात की कभी कोई शिकायत न की और अपने मित्रतापूर्ण व्यवहार में ज़रा भी फ़र्क न आने दिया।

एक बार लायलपुर कृषि-कालेज का एक प्रोफेसर, जो सरदार बहादुर जी का दोस्त था, सेरिकल्चर की ट्रेनिंग के लिये विदेश गया। जाने से पहले आपसे एक बड़ी रकम उधार ले गया। इसी प्रकार बैंक से भी कुछ रुपया उधार ले गया। विलायत जाकर उसने वहीं नौकरी कर ली और वापस न आया, न किसी का रुपया लौटाया। एक दिन रायबहादुर शंकरदासजी सोंधी के यहाँ पार्टी थी। सरदार बहादुरजी भी उसमें मौजूद थे। बातों ही बातों में रायबहादुर शंकरदासजी ने कहा, "प्रोफेसर......बड़ा धोखेबाज़ निकला। बैंक का रुपया तो ले ही गया, जगतसिंह का रुपया भी हज़म कर गया।' इस पर सरदार सन्तसिंह[1] (जो वहां उपस्थित थे) ने आपसे पूछा, "क्यों गुरु जी, वह तुम्हारा कितना रुपया ले गया है?" सरदार बहादुर महाराजजी ने फौरन जवाब दिया, "नहीं, मेरा कोई रुपया वह नहीं ले गया है।" जब सब लोग चले गये तो रायबहादुर शंकरदासजी ने आपसे पूछा, "क्यों जगतसिंह, आपने झूठ कब से बोलना शुरू कर दिया? आपने रुपया उनको दिया और अब इन्कार करते हो?" सरदार बहादुर ने बड़ी नम्रता के साथ जवाब दिया, "मैं दोस्त की बात कैसे लोगों के सामने ज़ाहिर कर देता।" यह उत्तर सुन कर रायबहादुर एक मिनिट खामोश रहे, फिर बड़े आदर-पूर्ण स्वर में बोले,

---

१. सरदार सन्तसिंहजी रायबहादुर शंकरदासजी के और सरदार बहादुर महाराजजी के मित्र थे और नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों में आपकी गणना थी।

"गुरुजी, ऐसी बात आप ही कर सकते हैं।"

लायलपुर में अपने कालेज की नौकरी के दिनों में सरदार बहादुरजी ने पच्चीस-तीस विद्यार्थियों को शुरू से आखिर तक की पूरी पढ़ाई का खर्चा दिया। छोटी-छोटी और सहायताओं का तो किसी को पता भी नहीं है। ज्यादातर आप मदद का रुपया खुद न देकर पंडित लालचन्दजी की मार्फत देते थे। कई विद्यार्थियों को तो अन्त तक पता न लगने दिया कि उनकी मदद किसने की है। दो विद्यार्थियों को अपने खर्चे से विदेश भेज कर ऊँची शिक्षा दिलवाई। एस. एम. नासिर को जो आपका लेक्चर टेबल असिस्टेण्ट था, आपने १९२० में अपने खर्चे से पढ़ाई के लिये इंग्लैंड भेजा था। इसका पता तो पंडित लालचन्दजी को भी न था। जब वह लौट कर आया तो उसने खुद बताया कि उसे सरदार बहादुरजी ने अपने खर्चे से भेजा था।

आपका व्यवहार सबके प्रति सहृदयता-पूर्ण था। सहनशीलता और क्षमा के आप मूर्त रूप थे। एक बार बंगाल से एक अमीर घराने का विद्यार्थी पी. एच. डी. के लिये आपके कालेज में आया। उसके पास एक बहुत बढ़िया व कीमती कैमरा था। एक दिन किसी लड़के ने उसका कैमरा चुरा लिया। प्रिंसिपल ने सरदार बहादुरजी को बुला कर कहा कि कैमरे की चोरी होने में कालेज की बदनामी है। कैमरा बरामद करवाना और चोर को पकड़वाना चाहिये। सरदार बहादुरजी ने जवाब दिया कि "कैमरा तो मिल जायेगा, लेकिन शर्त यह है कि लेने वाले को सज़ा नहीं देंगे, बल्कि उसका नाम भी न पूछेंगे।" आपने अपील की कि कैमरा के चोरी जाने में कालेज की बड़ी बदनामी है। जो कैमरा ले गया है वह उसे लाकर मेरी मोटर में रख दे। दूसरे दिन दोपहर को चोर खुद कैमरा रख गया। प्रिंसीपल ने सरदार बहादुरजी से उस लड़के का नाम पूछा, लेकिन आपने जवाब दिया कि शर्त यही थी कि नाम नहीं पूछेंगे। कुछ लोगों ने सरदार बहादुर जी से बहस की कि आप एक चोर को छिपा रहे हैं, उसे सज़ा मिलनी चाहिये। आपने सबकी बात सुनी और उत्तर दिया, "मैं चोर को छिपा नहीं रहा हूँ, उसे पक्का चोर बनने से बचा रहा हूँ। सज़ा से उसकी ज़िन्दगी बिगड़ जायेगी और उसके दिल पर इसका उल्टा असर होगा।" दूसरे दिन कैमरा चुराने वाले लड़के ने आपके पास आकर अपना जुर्म स्वीकार किया और माफी माँगी। सरदार बहादुरजी ने उसे बड़े प्यार के साथ समझाया कि जो हो चुका है उसे भूल जाओ और नेकी की राह पर कदम जमा कर चलने की कोशिश करो। वह लड़का आज केन्द्रीय शासन में बहुत बड़ा अफसर है।

सरदार बहादुरजी कभी किसी की निन्दा करना तो दूर रहा, आलोचना तक न करते थे। किसी धर्म, जाति या देश को बुरा नहीं कहते थे। पण्डित लालचन्दजी ने जून १९२१ का अपना एक अनुभव सुनाते हुए बताया कि एक बार कालेज में अपने ऊपर के एक अधिकारी की उन्होंने सरदार बहादुरजी से शिकायत की। शिकायत सुन कर सरदार बहादुरजी ने पण्डितजी से कहा, "मालिक हरएक इन्सान को उसके कर्मों के मुताबिक अक्ल बख्शता है और हरएक इन्सान यही चाहता है कि वह दूसरों के सामने अपने आपको अक्लमन्द पेश करे। अगर दूसरे की अक्ल तुमको पसन्द नहीं तो तुम्हारा कोई हक़ नहीं है कि उस शख्स से नफ़रत करो या उसे बुरा कहो।" फिर फ़रमाया "कभी किसी मनुष्य, किसी कौम, किसी मज़हब और किसी मुल्क से नफ़रत न करो। इससे बड़ा गुनाह और कोई नहीं।" फिर आपने पण्डित जी से अनुरोध किया कि उस अधिकारी से जाकर, निन्दापूर्ण वचन कहने के लिये क्षमा माँगें। जब पंडितजी उस अधिकारी के पास माफी माँगने गये तो पूरी बात सुन कर उसका दिल भर आया और वह पंडितजी से बड़ी इज्ज़त और प्यार के साथ पेश आया।

जब पण्डित लालचन्दजी को कृषि कालेज में नौकरी मिली तो सरदार बहादुरजी ने उन्हें सलाह दी, "कभी गलत-बयानी न करो। अगर अपना कसूर हो तो फौरन मंजूर करो।......नौकरी हुजूर महाराजजी की समझकर करो। वक्त के पाबन्द रहो और अपना फ़र्ज़ अदा करने में गफ़लत न होने दो। गलती और बेइमानी से बचो। हमेशा अपने अफ़सर की इज्ज़त करो।"

जीवन में अपने साथ होने वाली हर बात को आप अपने सतगुरु की मौज मानकर स्वीकार करते थे। सुख, दुःख, बीमारी, आदि हर बात को आप शान्ति और समता के साथ स्वीकार करते। कभी किसी बात के लिये उनकी ज़बान पर शिकायत तो दूर, असन्तोष के लफ्ज़ तक न आते थे। १९२० में इम्पीरियल एग्रीकल्चर सर्विस कमीशन ने आपको भारतीय कृषि सेवा (इंडियन एग्रीकल्चर सर्विस) के लिये चुना। उस समय तो रसायन विभाग में कोई स्थान खाली न था, लेकिन कुछ समय के बाद एक स्थान खाली हुआ। यह प्रथम श्रेणी का पद था। आपको नियुक्त करने का पत्र लिखा जा रहा था कि इसी बीच एक मन्त्री सर जोगेन्द्रसिंह के निकट सम्बन्धी को, दबाव में आकर, यह पद दे दिया गया। सरदार बहादुरजी के मित्रों और साथियों को इस बात पर बहुत बुरा लगा। उन्होंने इस बेइन्साफ़ी के खिलाफ़ कार्यवाही करने की राय दी और सरदार बहादुरजी को इसके लिये मजबूर करने की

कोशिश की। परन्तु आप किसी प्रकार का विरोध करने को राज़ी न हुए। आपके भाई साहिब सरदार भगतसिंह ने भी बहुत ज़ोर दिया कि इसके ख़िलाफ़ ऊपर के अधिकारियों को पत्र लिखें। जब शनिवार को सरदार बहादुरजी लायलपुर से ब्यास आ रहे थे तो रेल में पूरे रास्ते पंडित लाल-चन्दजी आपसे बहस करते रहे कि आप क्यों विरोध नहीं करते। लेकिन आप अपने निर्णय पर अडिग रहे और फ़रमाया कि "मेरी सरकार तो हुज़ूर महा-राजजी हैं। जो कुछ हुआ है, उनकी मौज के बग़ैर नहीं हुआ है।" ब्यास में सरदार भगतसिंह ने आपके सामने ही सारी बात हुज़ूर महाराजजी को बताई। हुज़ूर ने आपकी ओर देखते हुए पूछा, "क्यों जगतसिंह ?" इस पर सरदार बहादुरजी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "जो हुज़ूर ने किया है, वह ठीक है।" यह सुन कर महाराजजी बहुत खुश हुए, फ़रमाया, "शाबाश, सत्संगी को ऐसा ही होना चाहिये।"

आप हर शनिवार को कालेज के बाद लायलपुर से रवाना होकर रात को नौ-दस बजे तक डेरे पहुँचते और इतवार की रात को वापस चले जाते। हुज़ूर महाराजजी शनिवार को आपका इन्तिज़ार करते रहते। डेरे पहुँचते ही आप हुज़ूर के दर्शन के लिये ऊपर जाते और फिर खाना खाते। कई बार देर हो जाने की वजह से खाने की छुट्टी हो जाती थी। एक बार हुज़ूर ने हुक्म दिया कि छुट्टी के दिन भी अपने प्रिंसिपल से शहर से बाहर जाने की इजाज़त लेकर आया करो। अतएव आप हर शनिवार को प्रिंसिपल डाक्टर लेण्डर से छुट्टी लेकर आते थे। धीरे-धीरे हर शनिवार को आपका छुट्टी के लिये प्रिंसिपल के आफिस में आना एक नियमित बात हो गई। जैसे ही आप आफिस में जाकर खड़े होते तो डाक्टर लेण्डर आपसे कहते, "हाँ, आप ब्यास जा सकते हैं।" यह क्रम इस प्रकार बँध गया था कि हर शनिवार को आप जाकर आफिस में खड़े हो जाते तथा कुछ न बोलते और प्रिंसिपल आपको देख कर छुट्टी दे देता।

एक शनिवार को सरदार बहादुरजी हमेशा की तरह डाक्टर लेण्डर के आफिस में आकर खड़े हो गये। उसने कहा, "हाँ जगतसिंह, आप जा सकते हैं।" बाहर आने पर आपको याद आया कि इस बार सोमवार भी छुट्टी का दिन है। आप वापस आफिस में आकर खड़े हो गये। डाक्टर लेण्डर ने जब दोबारा सरदार बहादुरजी को देखा तो आपके मस्तक की ओर टकटकी लगा कर देखता रह गया। कुछ देर बाद बोला, "हाँ, आप सोमवार को भी लायल-पुर से बाहर रह सकते हैं। और आइन्दा छुट्टी के दिन मुझसे इजाज़त लेने

न आयें। मेरी ओर से आपको पूरी इजाज़त है कि आप हर छुट्टी का दिन ब्यास में बितायें।" बाद में डाक्टर लेण्डर ने बताया कि जब सरदार बहादुर जी दोबारा आफिस में आये तो उसे आपके मस्तक पर हुजूर महाराज सावन-सिंहजी के दर्शन हुए।

सरदार बहादुरजी महाराज लायलपुर आनेवाले मित्रों और परिचितों को अपने यहाँ ठहराते थे। अतिथियों के लिये अलग कमरा था और नौकर को आदेश था कि उनकी बराबर देख-भाल करे और समय पर दूध, नाश्ता, खाना आदि खिला दे। परन्तु मेहमानों के आने-जाने से अपने कालेज के कार्य और भजन-सुमिरन के दैनिक क्रम में बाधा नहीं आने देते थे। कई बार मेहमान आपके यहाँ कई दिनों तक ठहरते और इस अरसे में आपसे मिलने का मौका भी न मिल पाता। एक बार डा. जगन्नाथ चावला जोकि आजकल एक उच्च शासकीय अधिकारी हैं, आपके यहां ठहरे। आठ-दस दिन तक सरदार बहादुर जी से भेंट का अवसर न आया। जब जाने लगे तो आपसे मिले। सरदार बहादुरजी ने आपको देखकर पूछा कि आप कब आये? चावला साहब ने जवाब दिया कि उनको आये आठ-दस दिन हो गये। इस पर सरदार बहादुर बोले, "आप कहां ठहरे हैं? आपको तो मेरे यहां ठहरना चाहिये था।"

एक बार सरदार सेवासिंह (जो बाद में सेशन जज बन कर रिटायर हुए) एक महीने की किसी ट्रेनिंग के लिये लायलपुर आये। सरदार भगत-सिंहजी से आपका अच्छा परिचय था और उनके आग्रह से आप सरदार बहादुरजी के यहाँ पहुँचे। नौकर ने सरदार भगतसिंह का नाम सुन कर ठहरा लिया। एक महीने तक आपकी सरदार बहादुरजी से मुलाकात न हो पाई। सरदार बहादुरजी कालेज के बाद आते ही भजन में बैठ जाते, नौकर कमरे में खाना रख देता था, आप जब उठते खाना खा लेते। सुबह भजन से उठ कर एक गिलास दूध पीकर कालेज चले जाते। जिस रोज़ सरदार सेवासिंह की ट्रेनिंग समाप्त हुई वे सरदार बहादुरजी से मिले और बोले, "जी, मैं आज जा रहा हूँ।" सरदार बहादुरजी ने पूछा कि उनका लायलपुर आना कैसे हुआ? इस पर सेवासिंहजी ने बताया कि वे एक ट्रेनिंग के लिये आये थे और कहा, "सरदार भगतसिंहजी की मेहरबानी से...।" भाईसाहब का नाम सुन कर सरदार बहादुरजी बीच में ही बोल उठे, "ओहो! जब भाईसाहब ने आपको भेजा है तो आपको तो मेरे यहाँ ठहरना चाहिये था।" ऐसे एक-दो ही नहीं, बल्कि कई प्रसंग हैं। आपका घर मेहमानों के लिये हमेशा खुला रहता था।

जुलाई १९४३ में आप लगभग ३२ वर्ष की सेवा के बाद पेंशन लेकर रिटायर हुए। पेंशन के फार्म तैयार करने के लिये पासपोर्ट साइज़ के आपके फोटो की ज़रूरत थी। जब पण्डित लालचन्दजी के साथ आप लायलपुर शहर में एक फोटोग्राफ़र की दुकान पर गये तो बातों ही बातों में पता चला कि आप लायलपुर शहर में सत्रह वर्ष के बाद आये थे। कालेज के विद्यार्थी और अन्य प्रोफ़ेसर आपको एक बहुत बड़ी बिदाई पार्टी देना चाहते थे। प्रिंसिपल आपका एक बड़ा रंगीन फोटो बनवा कर कालेज के मुख्य हाल में लगवाना चाहता था। परन्तु सरदार बहादुरजी को अपना मान करवाना पसन्द न था और न वे यह चाहते थे कि उनके विद्यार्थी और मित्र उनको बिदा करते समय भाव-विभोर होकर आँसू बहायें। अतएव आप एक दिन चुपचाप वहाँ से रवाना होकर डेरे आ गये। आने से पहले अपना फरनीचर आदि से भरा हुआ मकान वैसे ही पंडित लालचन्दजी के पास छोड़ आये। उनसे कहा कि जो सामान उनके काम में आये वह रख लें, बाकी बड़े भाईसाहब सरदार भगतसिंहजी के पास भेज दें। डेरे आकर आपने कभी पूछा भी नहीं कि सामान का क्या किया। जो सामान पण्डितजी ने जालन्धर भेजा उसे कभी खोल कर देखा भी नहीं। धन-सम्पत्ति से आपको शुरू से ही कोई मोह न था और सांसारिक पदार्थों की ओर से बिलकुल विमुख थे। घर के मकान, खेती की ज़मीन आदि सम्मिलित सम्पत्ति से हज़ारों की आय थी। उसकी वसूली और व्यवस्था सरदार भगतसिंह ही करते थे। आपने कभी उनसे पूछा तक नहीं कि कितनी आमदनी हुई और कैसे खर्च हुई। रिटायर होने पर सरकार से आपको मिली प्राविडेंट फण्ड आदि हज़ारों रुपये की राशि के विषय में पण्डित लालचन्दजी बताते हैं कि आपने जालन्धर आकर, सरदार भगतसिंहजी को बताये बिना, उनके मुन्शी को देकर बैंक में उनके खाते में जमा करवा दी। जब मुन्शी ने सरदार भगतसिंह से इस बात का ज़िक्र किया तो उनकी आँखों में आँसू आ गये।

डेरे आने पर यहाँ भी आपका कार्य-क्रम सत्संग, दर्शन तथा भजन-सुमिरन रहता था। हुज़ूर महाराजजी ने विदेश से आने वाले पत्रों का उत्तर लिखने की सेवा, प्रोफ़ेसर जगमोहनलालजी के साथ ही आपको भी कई वर्षों से दी हुई थी। डेरे आने पर आपको लंगर में खाना ठीक तरह से बरताने की सेवा दी गई। आप यह सेवा बड़ी लगन और प्यार के साथ करते थे। हुज़ूर के आदेश से आप लायलपुर में हर इतवार को सत्संग किया करते थे। परन्तु डेरे में आपने हुज़ूर की उपस्थिति में कभी सत्संग नहीं किया, क्योंकि

आप अपने सतगुरु के बराबर बैठना स्वीकार नहीं करते थे।

सरदार बहादुरजी ने युवावस्था से ही दाढ़ी नहीं रखी थी। जिस दिन रिटायर होकर आप डेरे आये, हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने फ़रमाया, "जगतसिंह, अब दाढ़ी रख लो।" हुक्म का पालन करते हुए उसी दिन से आपने दाढ़ी रखना शुरू कर दिया।

सितम्बर १९४७ में हुज़ूर महाराजजी ने डेरे की व्यवस्था के लिये एक योजना बनाई, जिसमें तीन कमेटियां थीं। तीनों के अध्यक्ष हुज़ूर थे तथा उपाध्यक्ष थे सरदार बहादुरजी। इसके बाद हुज़ूर ने एक वसीयत के द्वारा सरदार बहादुरजी को अपने बाद इन तीनों कमेटियों का अध्यक्ष बनाने का निर्णय किया। साथ ही यह वसीयत की कि सत्संग की समस्त परमार्थी सम्पत्ति हुज़ूर के बाद सरदार बहादुरजी के नाम होगी तथा वह उनकी निजी सम्पत्ति नहीं समझी जायेगी। ये दस्तावेज़ पहले दिये जा चुके हैं।

सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी इलाज के लिये अमृतसर तशरीफ़ ले गये। जाने से पहले आपने डेरे के प्रमुख कार्य-कर्ताओं को अपना-अपना कार्य बराबर करते रहने का आदेश दिया और सरदार बहादुरजी को सबका प्रधान बनाया। सबको हुक्म दिया कि सब डेरे में रहें और अपना-अपना कार्य करें और अमृतसर कोई न आये। अक्तूबर के पहले सप्ताह में मौजूदा सरकार सरदार चरनसिंहजी सिकन्दरपुर से मोटर द्वारा डेरे आये। आपने देखा कि डेरे में सरदार बहादुरजी के सिवाय और कोई ज़िम्मेदार अधिकारी मौजूद नहीं है। आपको पता न था कि महाराजजी सबको डेरे में रहने का आदेश दे गये हैं। आपने सरदार बहादुर जी से कहा कि मैं कार में आया हूँ, आप भी अमृतसर चलें और शाम को साथ ही वापस आ जायें। सरदार बहादुरजी ने उत्तर दिया, "महाराजजी का हुक्म है कि डेरे में ही रहो। मैं नहीं चल सकता।" इस पर सरदार चरनसिंहजी ने कुछ प्रमुख सत्संगियों के नाम लेकर पूछा कि वे सब कहाँ हैं? सरदार बहादुरजी ने जवाब दिया कि यहाँ तो कोई नहीं हैं।

जब सरदार चरनसिंह साहिब अमृतसर पहुँचे तो आपने हुज़ूर महाराज जी को सरदार बहादुरजी के साथ हुआ अपना पूरा वार्तालाप सुनाया और बताया कि डेरे में इस समय सिर्फ़ अकेले वे ही हैं। यह सुन कर हुज़ूर महाराजजी के नेत्रों में जल भर आया, फ़रमाया, "पूरे डेरे में सिर्फ सरदार बहादुर ने ही मेरा हुक्म माना है।" सरदार चरनसिंहजी ने देखा कि डेरे के

बाकी सब अधिकारी किसी न किसी बहाने अमृतसर में मौजूद थे। दूसरे दिन सुबह हुज़ूर महाराजजी ने आपको आदेश दिया कि डेरे जाकर सरदार बहादुर को अपने साथ ले आवें। आपने अर्ज़ की कि जब तक उनको हुज़ूर की ओर से स्पष्ट आदेश न होंगे, वे डेरे को छोड़ कर नहीं आयेंगे। हुज़ूर महाराजजी ने रायसाहब मुन्शीराम को बुला कर सरदार बहादुरजी को एक पत्र लिखवाया। सरदार चरनसिंहजी ने आकर आपको पत्र दिया और अपने साथ अमृतसर ले आये। अमृतसर में हुज़ूर महाराजजी ने डेरे के कुल खाते जो वहाँ विभिन्न बैंकों में थे, उनमें अपने नाम के साथ सरदार बहादुरजी का नाम भी दर्ज करवा दिया, जिनका संचालन दोनों में से कोई भी एक अथवा उत्तर-जीवी कर सके।

सरदार बहादुरजी ने हमेशा अपने सतगुरु को कुल मालिक समझा और कभी उन्हें मनुष्य-भाव से न देखा। गुरु के प्रेम और भक्ति की आप स्वयं एक मिसाल थे। आपकी श्रद्धा और विश्वास की यह घटना पंडित लालचन्द जी तथा लायलपुर में आपके साथी सुनाते हैं :—

लायलपुर में साईं लसूड़ीशाह नामक एक अभ्यासी महात्मा थे। दूर-दूर से लोग उनके दर्शन करने तथा उनसे मुरादें माँगने आते थे। हुज़ूर बाबा सावनसिंहजी के चरणों में साईंजी बड़ी श्रद्धा रखते थे और कहा करते थे कि हुज़ूर सन्तों के देश के शाहंशाह हैं और बाकी सब फ़कीर उनके अधीन हैं। सरदार बहादुरजी कभी-कभी साईंजी के पास पहुँचते तो वे बड़े खुश होकर आपसे मिलते। साईं लसूड़ीशाह कहते कि आम लोगों को तो फ़कीरों की मौजूदगी में बैठना भी नहीं आता है। उन्हें चाहिये कि सरदार जगतसिंह से सीखें कि औलियाए-अल्लाह के सामने कैसे रहना चाहिये। जब सरदार बहादुरजी ब्यास जाते तो साईं जी कहते, "बड़े सरकार के नूरी दरबार में जाओ तो शाहंशाह के कदमों में मेरा सलाम कहना।" हुज़ूर महाराजजी जब लायलपुर तशरीफ़ लाते तो साईं जी स्वागत के लिये अपने द्वार पर सर झुका कर खड़े हो जाते। हुज़ूर के आने पर हुज़ूर के कदमों में सर रख कर सिजदा करते। कभी-कभी साईंजी हुज़ूर के पास रूहानी बातों से सम्बन्धित कोई सन्देश भी भिजवाते। सरदार बहादुरजी उनका सन्देश हुज़ूर महाराजजी को देते और जो भी जवाब होता, लायलपुर आने पर साईं जी को देते। एक बार इसी प्रकार जब सरदार बहादुरजी ने हुज़ूर के वचन साईं लसूड़ीशाह को सुनाये तो साईंजी वचन सुन कर बहुत खुश हुए और मस्ती के आलम में आ गये। आवेश में आकर सरदार बहादुरजी को बाँहों

में भर लिया और बोले, "कहो सरदार, तुझे रंग दूँ ?" सरदार बहादुरजी ने फौरन जवाब दिया, "ना साईंजी, ना रंगना।" साईंजी उसी प्रकार फिर बोले, "दूसरी बार पूछता हूँ, बोल तुझे रंग दूँ ?" सरदार बहादुरजी ने शान्त किन्तु दृढ़ शब्दों में कहा, "नहीं ! ना रंगना ! ना रंगना !!" साईंजी ने उसी मस्ती के साथ फिर कहा, "तीसरा वचन है सरदार ! तू कहे तो तुझे अभी रंग दूँ !!" सरदार बहादुरजी ने एकदम अपने आपको उनकी बाँहों से छुड़ा लिया, दो क़दम पीछे हट गये, बोले, "न रंगना ! न रंगना !! न रंगना !!! अगर रंगना हो तो भी न रंगना !" फिर साफ़ लफ़्ज़ों में कहा, "आप ही रंगेगा रंगनेवाला मेरा सतगुरु, जब ठीक समझेगा !"

यह वचन सुन कर साईं लसूड़ीशाह बहुत खुश हुए, बोले, "शाबास सरदार ! जैसा कामिल मुर्शिद वैसा ही लायक मुरीद ! मैं तेरा भरोसा देख रहा था।"

हुज़ूर सतगुरु दीन-दयाल महाराज सावनसिंहजी ने चोला छोड़ने से लगभग दो सप्ताह पहले २० मार्च, १९४८ को सुबह सरदार बहादुर जगतसिंह जी को अपने पास बुलाया और अपने बाद गद्दी सँभालने को कहा। इस पर सरदार बहादुरजी ने हाथ जोड़ कर अर्ज़ की, "हुज़ूर ! यह शाहंशाह की गद्दी शाहंशाह को ही सजती है । आप हमेशा सलामत रहें। मैं तो दास हूँ।" इससे आगे आप कुछ कह न सके, गला रुँध गया। आप बाहर आ गये। परन्तु हुज़ूर महाराजजी ने आपको दोबारा बुलाया। आप आकर हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। हुज़ूर ने फिर वही बात दोहराई और फ़रमाया, "यह मेरा हुक्म है।" इस पर सरदार बहादुरजी ने चरणों में मत्था टेक दिया और बाहर आ गये। उस समय आपकी आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। २ अप्रेल को हुज़ूर महाराजजी सत्संग, नाम-दान तथा जीवों की सँभाल का भार सरदार बहादुरजी के योग्य कन्धों पर छोड़ कर ज्योति-ज्योत समा गये।

१३ अप्रेल १९४८ को गद्दीनशीनी की रस्म हुई । दूर-दूर से संगत आ गई थी। गद्दीनशीनी के समय तरनतारन से बाबा देवासिंहजी, नामधारियों के गुरु महाराज प्रतापसिंहजी (भैणी साहिब वाले) तथा उनके कुछ प्रमुख सेवक, दयालबाग आगरा के सतगुरु मेहता साहिब की ओर से उनके सेक्रेटरी, तथा सरदार बचिंतसिंहजी, सरदार हरबंससिंहजी, सरदार चरनसिंहजी, कप्तान पुरुषोत्तमसिंह और हुज़ूर महाराजजी के परिवार के अन्य सदस्य व अनेक प्रमुख सत्संगी उपस्थित थे। सबसे पहलें सरदार बचिंतसिंहजी ने एक छोटा-सा भाषण दिया। आपने फ़रमाया, "प्यारी साध-संगतजी ! १९ मार्च को

हुज़ूर महाराजजी ने मुझे बुलाया और फ़रमाया कि 'मुझे खुशी है कि मेरी सन्तान आज्ञाकारी है। जिस तरह तुम मेरे पुत्र हो, उसी तरह सरदार बहादुर जगतसिंह भी मेरा तीसरा पुत्र है। तुम हमेशा उनके हुक्म में रहना, उनके चरणों में प्रेम बढ़ाना और उन्हें मेरा ही रूप समझना।' हुज़ूर महाराजजी के हुक्म के अनुसार मैं यह हुज़ूरी पगड़ी सरदार बहादुर साहिब को हुज़ूर महाराज जी की तरफ़ से पेश करता हूँ।"

इतना कह कर सरदार बचिंतसिंहजी ने पगड़ी सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी को पेश की, जिसे आपने नम्रतापूर्वक मस्तक से लगाया, कुछ क्षण सतगुरु का ध्यान किया और अपने सर पर बाँध लिया। सरदार बचिंत सिंहजी ने सरदार बहादुरजी के मस्तक पर केसर से तिलक किया और उनको मत्था टेका। उसके बाद उपस्थित महात्माओं, बुजुर्गों तथा पूरी संगत ने सरदार बहादुरजी को मत्था टेका।

रायसाहब मुन्शीरामजी ने हुज़ूर महाराजजी का २० मार्च १९४८ का वसीयतनामा पढ़ कर संगत को सुनाया कि हुज़ूर के बाद सरदार बहादुर जगतसिंह साहिब उनकी जगह गद्दीनशीन होंगे और वे सब कार्य अदा करेंगे जो हुज़ूर महाराजजी करते रहे हैं। इसके बाद सरदार बहादुर महाराजजी ने संगत से कुछ शब्द कहे। आपने बताया कि किस प्रकार हुज़ूर महाराजजी ने आपको गद्दी सँभालने के लिये कहा और किस प्रकार आपने हाथ जोड़ कर इसके लिये इन्कार किया, किस प्रकार हुज़ूर ने फिर बुलाया और फ़रमाया, "जगतसिंह, यह मेरा हुक्म है!" तो आपको हुक्म के आगे सर झुकाना पड़ा। फिर सरदार बहादुरजी ने फ़रमाया, "मैं तो बीमार आदमी हूँ। इतना काम कर नहीं सकता। लेकिन हुज़ूर का हुक्म मानना फ़र्ज़ है। यह दस्तार आप लोगों की मदद से कायम रह सकती है। मेरी आपसे अर्ज़ है कि पहले जैसे भजन-सुमिरन और सेवा करते रहें।"

जिस लगन, अनुशासन और तत्परता से सरदार बहादुरजी महाराज ने अपने कालेज के कार्य को सतगुरु की सेवा मान कर किया था, उसी भावना के साथ आपने सत्संग, नाम-दान तथा डेरा की व्यवस्था का कार्य किया। अन्तर केवल इतना ही था कि कालेज के दिनों में आपकी आयु कम थी और स्वास्थ्य अब से कहीं अच्छा था। परन्तु स्वास्थ्य या अवस्था आपको कठिन परिश्रम से तथा अपने सतगुरु की संगत की सेवा से नहीं रोक सकती थी। आपने पूरे समय अपने को सतगुरु का दास और संगत का सेवादार ही माना। विदेशी सत्संगियों को लिखा गया यह पत्र आपके सतगुरु-प्रेम तथा नम्रता

का बड़ा सुन्दर उदाहरण है :—

"मेरे प्यारे अमेरिकन भाइयो और बहनों,

हमारे परम प्रिय सतगुरु के इस संसार से प्रयाण करने के समाचार से आपको बड़ा गहरा सदमा पहुँचा होगा। सत्संग की अपार क्षति हुई है। उनका प्यारा सुहावना स्वरूप हमारी आँखों से ओझल हो गया है। परन्तु सतगुरु कभी नहीं मरते। अपने ज्योतिर्मय नूरी शब्द-स्वरूप में वे हमेशा हमारे साथ हैं, हमारे अन्दर हैं। हमारे सतगुरु आज भी ऊपर के रूहानी मण्डलों से कार्य कर रहे हैं। वे अपने सेवकों की निरन्तर सँभाल कर रहे हैं। आपको चाहिये कि उनके आदेशों के अनुसार लगन-पूर्वक अभ्यास करें और अपने अन्तर में उनके दर्शन करें।

हुजूर महाराजजी ने मुझे आपकी सेवा का हुक्म दिया है। मैं उनके हुक्म की तामील की पूरी कोशिश करूँगा।"

सरदार बहादुर कर्तारसिंह (डायरेक्टर, एग्रीकलचर पंजाब) हुजूर महाराज जगतसिंहजी के पुराने मित्र थे। जिन दिनों सरदार बहादुरजी लायलपुर में प्रोफेसर थे तब आपकी नेकी व ऊँची रहनी से प्रभावित होकर सरदार कर्तारसिंह ब्यास आये, हुजूर बड़े महाराजजी का सत्संग सुना और नाम ले गये। सरदार बहादुर महाराजजी ने कभी आपसे सन्त-मत की चर्चा तक नहीं की थी। कर्तारसिंहजी ने भी आपसे बात न की, चुपचाप ब्यास आये, दर्शन किये और नाम ले गये। हुजूर सरदार बहादुर महाराजजी का जिक्र करते हुए आप कहते थे, "ज़िन्दगी में मैं सिर्फ दो ही व्यक्तियों को बहुत प्यार करता हूँ और सिर्फ इन्हीं दो से डरता हूँ। एक तो हैं मेरी माताजी और दूसरे हैं मेरे मित्र सरदार बहादुर जगतसिंह।" जब सरदार बहादुर महाराजजी डेरे आये और गुरु-गद्दी पर बिराजमान हुए तो सरदार कर्तारसिंहजी ने पंडित लालचन्दजी को एक पत्र में लिखा, "हुजूर महाराजजी के चले जाने का मुझे जो सदमा पहुँचा, उसका तो बयान ही नहीं कर सकता; पर साथ ही सरदार बहादुर के गद्दीनशीन होने से यह दुःख भी है कि मैंने एक इतना प्रिय तथा निकट मित्र खो दिया है, क्योंकि अब वह मेरे सतगुरु बन गये हैं।"

कई पुराने सत्संगी, जिन्हें अपने प्यारे सतगुरु के ज्योति-ज्योत समाने का गहरा सदमा पहुँचा था डेरा आने में पहले जैसी खुशी महसूस नहीं करते थे। जब वे डेरे आये तो उन्हें सत्संग में सरदार बहादुर महाराजजी की जगह हुजूर बड़े महाराजजी के दर्शन हुए। संगत को आपने वही प्यार और सहारा

बख्शा जो एक समय उन्हें महाराज सावनसिंहजी से प्राप्त होता था, और कुछ ही महीनों में संगत हुज़ूर महाराजजी के वक्त के जैसे ही आपके चरणों में आने लगी और आपको हुज़ूर महाराजजी का ही रूप मानने लगी।

सरदार बहादुरजी ने ३० दिसम्बर १९४८ को नामदान की बख्शिश शुरू की। इस प्रसंग में एक घटना का यहाँ उल्लेख किया जाता है। डाक्टर (कुमारी) सिनहा और उनके भाई दिसम्बर १९४६ में पहली बार डेरे आये, हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के दर्शन किये और सत्संग सुना। उसके बाद वे १९४७ में भी आती रहीं। आखिर एक दिन हुज़ूर महाराजजी से वक्त लिया और नाम-दान के लिये प्रार्थना की। हुज़ूर उन दिनों अस्वस्थ थे और नामदान बन्द कर दिया था। हुज़ूर ने फ़रमाया, "इस वक्त तो नामदान बन्द है। जब अच्छा हो जाऊँगा और नाम देना शुरू करूँगा तो सबसे पहले आपको दूँगा।" कुमारी सिनहा उसके बाद दो-तीन बार नाम-दान की आशा में डेरे आईं, परन्तु हुज़ूर की तबियत में सुधार न हुआ और अन्त में २ अप्रैल १९४८ को हुज़ूर धुरधाम प्रयाण कर गये। कुमारी सिनहा को बड़ा दुःख हुआ और साथ ही मन में यह विचार आता रहा कि नाम देने का वचन कैसे अधूरा रह गया।

दिसम्बर १९४८ में कुमारी सिनहा अपनें भाई तथा अन्य साथियों के साथ डेरे आईं। दिल में नाम न मिलने के खेद के साथ सन्त-वचन पूरे न होने की बात खटकती रहती थी। किसी से कुछ कहती भी नहीं थीं और न अपनी निराशा की उदासी में से निकल पाती थीं। २९ दिसम्बर को बाबा जी महाराज के भण्डारे का सत्संग हुआ। ३० दिसम्बर १९४८ की शाम को सरदार बहादुर महाराजजी ने कुमारी सिनहा तथा उनके भाई को बुलाया और उन्हें नाम दिया। कुमारी सिनहा के साथ चार और व्यक्तियों को नाम बख्शा—श्री कुमुदकुमार घोष (कुमारी सिनहा के चचेरे भाई), कुमारी विद्या वती, मुज़फ्फरपुर, कप्तान रघुनाथसिंह तथा उनकी धर्मपत्नी प्रेमलता। इनको नाम प्रदान करने के बाद दूसरे दिन सुबह से सरदार बहादुर महाराजजी नें संगत में नाम की बख्शिश शुरू की। इस प्रकार डाक्टर कु. सिनहा को सब से पहले नाम देने का हुज़ूर महाराजजी का वचन पूरा हुआ।

यहाँ हुज़ूर सरदार बहादुरजी महाराज द्वारा पानीपत की संगत को लिखा गया एक पत्र दिया जा रहा है, जो आपके प्रेम, वाणी के मिठास और नम्रता का उदाहरण है तथा जिसमें आपने नाम-दान के बारे में भी ज़िक्र किया है :—

15

"प्यारे हुज़ूर महाराजजी की साजी-निवाजी हुई मेरी प्यारी और सम्माननीय साध-संगत ! राधास्वामी ।

प्रेम-पत्र आपका मिला । पढ़ कर समाचार मालूम हुए । आपने कई बार सत्संग में श्री हुज़ूर महाराज साहिबजी के पवित्र मुखारविंद से सुना होगा—

'कबीर सभ ते हम बुरे, हम तजि भलो सभु कोइ ॥
जिनि ऐसा करि बूझिआ, मीतु हमारा सोइ ॥'

सो भाइयो, अगर कोई पापी और गुनाहगार है तो यह दास है, क्योंकि वाणी कहती है—

'जिस पिआरे सिउ नेहु, तिस आगै मरि चलीए ॥
धृग जीवणु संसारि, ता कै पाछै जीवणा ॥'

पर हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि सन्त-मत में बड़ाई हुक्म मानने में है । मेरी ताकत नहीं कि मैं उनका हुक्म मान सकूँ, यह उनकी अपनी दया है यदि वे अपना हुक्म मनवा लें । पर जो नाम के बारे में (आपने) सवाल मुझसे पूछा है, मैं आपको क्या अर्ज़ करूँ ! हुज़ूर महाराजजी का अपना वचन आपको लिखता हूँ । १० जुलाई, १९४४ के दिन पाठी ने अर्ज़ की, 'सच्चे पातशाह ! बाबा गरीबदासजी के वचनों में लिखा है कि जब तक किसी की पहुँच पार-ब्रह्म में न हो उसे किसी को नाम नहीं देना चाहिये ।'

श्री हुज़ूर महाराज ने जवाब दिया, 'असल में तो नाम सचखण्ड पहुँच कर देना चाहिये और वह भी तभी जब कि सतगुरु हुक्म दें । बिना सतगुरु के हुक्म के जीवों का बोझ उठाना कोई सरल काम नहीं है । मैं भी जिनको नाम देता हूँ, बाबाजी महाराज के हवाले कर देता हूँ ।"

अब जब परम सन्त सतगुरु महाराजजी आप यह फ़रमा गये हैं तो आगे साध-संगत खुद सोच-विचार कर ले । मैंने भी नौ महीने नाम नहीं दिया, हालांकि हुज़ूर महाराज खुद देह में बैठ कर अपने मुखारविंद से फ़रमा गये, बल्कि लिख कर भी छोड़ गये । मेरे नौ महीने नाम न देने के कारण के बारे में न पूछो ।

और यह डेरा हमारा काबा है । हुज़ूर बाबाजी महाराज तथा हुज़ूर महाराजजी ने इस महान, पवित्र स्थान पर बैठ कर साठ-पैंसठ साल भजन किया है और जीवों को नाम बख़्शा है । और जो सेवा साध-संगत की मेरे ज़िम्मे कर गये हैं; जितने समय करायेंगे उनकी दया से करूँगा, जब बुलायेंगे उठ कर चल दूँगा । 'घले आवहि नानका सदे उठी जाहि'* । और घबराने

* गुरु नानक कहते हैं कि मैं (मालिक के) भेजने पर आता हूँ और बुलाने पर चला जाता हूँ ।

की ज़रूरत नहीं। जो सतगुरु हमें पाकिस्तान की जलती आग में से निकाल कर लाये, हमारे खातिर अपनी बलि दे गये, वे हर वक्त सँभाल कर रहे हैं :—

'जनम मरण दुहहू महि नाही, जन परउपकारी आए ।।
जीअ दानु दे भगती लाइनि, हरि सिउ लैनि मिलाए ।।'

भजन-सुमिरन में नाग़ा न हो। दुनिया के रंग उतरते तो अपनी आँखों देख ही रहे हो। और अभी आगे का क्या पता है। जो भजन-सुमिरन हम करते हैं उसे ही साथ जाना है। और तो क्या यह शरीर जिसे हम दिन-रात पालते हैं, इसे भी यहीं रह जाना है। हमारा यहाँ कुछ भी नहीं। सिर्फ़ दो चीज़ें अपनी हैं—एक सतगुरु, दूसरा नाम। इन दोनों के साथ ही हमारा प्यार नहीं है। मन लगे चाहे न लगे, आप अपना वक्त बिना नाग़ा दें। भजन के समय मन को रोक कर महाराज के स्वरूप को अपने मस्तक में स्थिर करने का प्रयत्न रोज़-रोज़ करें। धीरे-धीरे मन मान जायेगा। यह जल्दी का काम नहीं, बरसों की मेहनत की ज़रूरत है।"

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के जाने के बाद एक बार रायबहादुर शंकरदास की धर्मपत्नी डेरे आईं। सरदार बहादुरजी महाराज के पास आईं तो अपने आप को सँभाल न सकीं और हुज़ूर को याद करके रोने लगीं। सरदार बहादुरजी ने कहा, "बीबीजी, आपने तो रो कर जी हलका कर लिया लेकिन मुझे तो इसकी भी इजाज़त नहीं है।"

गद्दीनशीनी के बाद हुज़ूर सरदार बहादुरजी की दिन-चर्या ही बदल गई। डेरे का कार्य, लोगों से मुलाकात, सेवा, सत्संग, नामदान आदि में पूरे दिन लगे रहते थे। स्वास्थ्य अच्छा न होते हुए भी दिन-भर कार्य में व्यस्त रहते। नाम-दान में तो कभी-कभी रात के तीन बज जाते, शाम के खाने की छुट्टी हो जाती। इतनी रात को नाम-दान का कार्य सम्पूर्ण करके जब अपने कमरे में आते तो भजन में बैठ जाते। दूसरे दिन सुबह से फिर वही कार्य-क्रम शुरू हो जाता। जीवन में आपका एक-मात्र लक्ष्य भजन-सुमिरन और अपने सतगुरु के हुक्म का पालन था। संसार के हर कार्य में अपने सन्त-सतगुरु को प्रमुख रखा और एक आदर्श सत्संगी के रूप में अपने कर्तव्य को निभाया। हर कार्य में सतगुरु को प्रधान रखा। परमार्थ या संसार के हर कार्य को अपने सतगुरु की प्रसन्नता-प्राप्ति के उद्देश्य से किया। सतगुरु-पद पर, अपार रूहानी सामर्थ्य के स्वामी होते हुए भी हमेशा नम्र और विनय-शील रहे। सन्त-मत के जिन आदर्शों की शिक्षा दी, उन पर स्वयं अमल करके खुद एक मिसाल पेश की। कई बार अपने पास आने वाले सत्संगियों

से आप फ़रमाते कि जब डेरे में आओ तो अपनी आँखों पर खोपे[1] (अँधेरी) बांध कर आओ, अर्थात् अपनी नज़र, अपना ख़याल केवल सतगुरु की ओर रहे और मन में उन्हीं की आस लगी रहे। बाकी दुनिया, दुनियादारी और सत्संगियों की ओर तक ख़याल न जाने दिया जाये।

हुज़ूर सरदार बहादुरजी का जीवन बहुत सादगी-पूर्ण था। लिबास सादा था और गिनती के कपड़े रखते थे। केवल दो या तीन कुरते और पजामे रखते थे। एक बार बीबी रली ने चार जोड़ी और सिलवाना चाहा, तो आपने कहा, "बीबी, इतने कपड़ों का क्या करना है।" एक बार मौजूदा सरकार महाराज चरनसिंहजी आपके लिये छः रूमाल लाये। बीबी रली ने हुज़ूर सरदार बहादुरजी से अर्ज़ की, "महाराजजी! काका[2] आपके लिये रूमाल लाये हैं।" आपने कहा, "मेरे पास दो रूमाल हैं। एक जेब में है, दूसरा धुल कर सूख रहा है। जब यह रूमाल धुलने जायेगा तो दूसरा जेब में होगा। बाकी रूमालों का मैं क्या करूँगा?"

परन्तु आप सरदार चरनसिंहजी को बहुत प्यार करते थे। पंडित लाल-चन्दजी सुनाते हैं कि जब कभी सरदार बहादुरजी उनका जिक्र करते तो फ़रमाते, "चरन की क्या बात है, वह तो शाहंशाह है।"

एक बार महाराज चरनसिंहजी काश्मीर गये। वहाँ से आप हुज़ूर सरदार बहादुरजी के लिये एक पश्मीने का शाल लाये। आपने बीबी रली से कह-लाया कि आप सरदार बहादुरजी के लिये शाल लाये हैं। सत्संग का वक्त था, सरदार बहादुर महाराजजी नीचे आये। बीबी रली ने कहा कि सरदार चरनसिंहजी हुज़ूर के लिये शाल लाये हैं। इस पर हुज़ूर ने कहा, "शाल तो मेरे पास है। दो शाल का क्या करूँगा?"

महाराज चरनसिंहजी कुछ न बोले, शाल हाथ में लिये खड़े रहे। सरदार बहादुरजी एक मिनिट ठहर कर मुसकराये, अपना शाल उतार कर सरदार चरनसिंह जी के कन्धों पर डाल दिया और उनका लाया हुआ शाल ओढ़ कर सत्संग में चले गयें।

सरदार बहादुर महाराजजी गद्दीनशीनी के बाद भी काफी समय तक अपने ही कमरों में रहते रहे। संगत तथा पुराने सत्संगियों के बहुत कहने पर भी आपने हुज़ूर महाराजजी की कोठी में जाकर रहना स्वीकार नहीं किया। हुज़ूर महाराजजी के बड़े सुपुत्र सरदार बचितसिंहजी बार-बार आपसे

---

१. चमड़े के बने चौकोर टुकड़े जो घोड़ों की आँखों पर लगाये जाते हैं, ताकि वह सीधा सामने की ओर देखें, इधर-उधर न देख सकें।

२. पंजाब में 'काका' शब्द का प्रयोग बेटे अथवा अपने से छोटे प्रिय-जन के लिए किया जाता है।

आग्रह करते रहे। सरदार बहादुर साहिब उनका बहुत आदर करते थे। उनका बार-बार का आग्रह आप न टाल सके और गद्दीनशीनी के छः सात महीने बाद आप हुज़ूर महाराजजी की कोठी में आ गये। लेकिन यहाँ भी आपने हुज़ूर के ख़ास कमरों को इस्तेमाल नहीं किया, बल्कि पीछे की ओर के एक छोटे कमरे में रहे। आप कभी उस कुर्सी पर न बैठे जिस पर हुज़ूर तशरीफ़ रखते थे, बल्कि लोगों को वक्त देते समय कुर्सी के पास ज़मीन पर बैठ जाते थे। हुज़ूर के पलंग, गद्दे, सोफे आदि पर कभी न बैठे, जिस पायदान पर हुज़ूर पैर रखते थे, उस पर कभी पांव न रखा, यहाँ तक कि मोटर में जिस ओर हुज़ूर हमेशा बिराजते थे, उस ओर कभी न बैठे।

अक्तूबर १९५१ में जब हुज़ूर सरदार बहादुरजी बहुत कमज़ोर हो गये और सत्संग में नहीं जा पाते थे, तो भाई शादी ने आपसे विनती की कि ऊपर से हुज़ूर महाराजजी के जैसे ही संगत को दर्शन बख्शें। परन्तु आपने उस खिड़की से दर्शन देना स्वीकार न किया। आपने कहा, "मैं ऐसा नहीं कर सकता। हुज़ूर महाराजजी तो शाहंशाह थे। मैं उनकी बराबरी कैसे कर सकता हूँ?"

अन्तिम दिनों में, जब आप बीमार थे, तब का ज़िक्र है। आप अपनी डाक अपने हाथ से खोलते थे। प्रतिदिन काफी पत्र आते थे। भाई शादी ने देखा कि आपको कमज़ोरी बहुत है और इतनी चिट्ठियाँ हाथ से खोलने में शायद तकलीफ़ होती होगी। यह सोच कर भाई शादी हुज़ूर बड़े महाराज-जी की मेज़ पर से एक सुन्दर पेपर-कटर (कागज़ काटने का चाकू) ले आये और आपको पेश किया। आपने उसे हाथ में लिया, अपना पढ़ने का ऐनक पहना और कुछ क्षण बड़े भाव के साथ देखते रहे, फिर बड़े प्यार के साथ उसे मस्तक से छुआया और शादी को देते हुए फ़रमाया, "भाई, इसे वापस सरकार की मेज़ पर रख आओ।"

एक बार सरदार बहादुरजी महाराज के पास दफ्तर में एक सेवादार आया और अर्ज़ की, "महाराजजी, मुझे न्याय चाहिये।" आपने मुसकरा कर फ़रमाया, "यहाँ न्याय नहीं मिलता।" इस पर उस सेवादार ने कहा, "हुज़ूर मैं पूरा झगड़ा आपको बता चुका हूँ, अब आपसे न्याय चाहता हूँ।" महा-राजजी ने फिर कहा, "मैं तो कह चुका हूँ, यहाँ न्याय नहीं मिल सकता।" ये वचन सुन कर वह सेवादार हैरान हो गया, बोला, "सच्चे पातशाह! यहाँ न्याय नहीं मिलेगा तो और कहाँ मिलेगा?" सरदार बहादुर महाराजजी ने बड़े मिठास के साथ जवाब दिया, "भाई! हुज़ूर महाराजजी के दरबार में

तो दया मिलती है। न्याय तो काल की दुनिया में मिलेगा।" इन कुछ ही शब्दों में आपने बहुत गहरी बात समझा दी। और सच भी यही है कि अपने ४५ वर्षों के समय में हुजूर महाराजजी ने कभी किसी के विवाद को सुनकर उस पर जज अथवा न्यायाधीश का रुख अपना कर फैसला नहीं दिया। प्रेम-प्यार से समझाया, विवाद निपटाने के सुझाव दिये और दया-मेहर करके मदद दी। दया-मेहर की यही रीति सरदार बहादुर महाराजजी चलाते रहे और आज भी चल रही है।

हुजूर सरदार बहादुरजी बहुत हास्य-प्रिय थे तथा मौका पाने पर परिहास करने से न चूकते। परन्तु ऐसे परिहास के साथ प्यार और मिठास अवश्य होता था। आपकी हास्य-प्रियता की कई बातें सत्संगी अब भी सुनाते हैं। एक बार एक सत्संगी ने आपसे अर्ज़ की, "महाराजजी, जब मैं भजन में बैठता हूँ तो मेरा घुटनों तक सिमटाव हो जाता है, लेकिन अन्दर दिखाई कुछ नहीं देता।" सरदार बहादुर जी ने कहा, "भाई! मालिक ने थोड़ी सी गलती की है। उसने आँखें बड़ी दूर जाकर लगा दी हैं। अगर घुटनों पर लगाई होतीं तो सब कुछ दिख जाता।" फिर आपने उसे प्यार से समझाया कि अभ्यास में और एकाग्रता प्राप्त करके तवज्जह को आँखों के पीछे ले आओ। जब यहाँ आओगे तो शब्द भी सुनाई देगा और अन्दर दृश्य भी दिखाई देंगे।

सरदार बहादुर महाराजजी एक दिन दफ्तर के बरामदे में बैठे थे। पास में सेक्रेटरी रायसाहब मुंशीराम तथा कुछ और सज्जन बैठे हुए थे। कुएँ के सामने से एक पति-पत्नी बड़े खुश, हँसते हुए आ रहे थे। हुजूर ने मुंशीराम जी से कहा, "देखिये रायसाहब, ये दोनों कितने खुश-खुश चले आ रहे हैं। पर मेरे पास आते ही रोने लगेंगे।" यही हुआ, जब वे दोनों हुजूर सरदार बहादुरजी के पास आये तो मत्था टेका और रोने लगे। आपने फ़रमाया, "भाई! मुझमें ही कोई नुक्स होगा कि मुझे देख कर रोने लगे हो। वहाँ तो हँस रहे थे।" सुन कर वे लज्जित होकर चुप हो गये। फिर हुजूर ने बड़े गौर के साथ उनकी बात सुनी और उन्हें तसल्ली बख्शी।

एक बार सत्संग में दरबारीदासजी शब्द पढ़ रहे थे, "कक्कर पाला मेंह बरसे, भी गुरु देखन जाई......" कि अगर आँधी, तूफान और ज़ोर की बारिश हो तो भी गुरु के दर्शन को अवश्य जाऊँगा। संगत भी साथ-साथ बड़ी मग्न हो शब्द पढ़ रही थी। बारिश के दिन थे। एकाएक बरसात होने लगी। संगत जल्दी से उठ कर बरामदों में जाकर खड़ी हो गई। हुजूर सरदार बहादुरजी ने मुसकराते हुए कहा, "दो मिनिट पहले तो गुरु के प्यार की

इतनी बातें कर रहे थे, अब दो बूँद पानी आया तो सब भाग गये।"

जुलाई के दिनों में भण्डारा से कुछ दिन पहले एक शाम को सत्संग हो रहा था। एकाएक बारिश आ गई। कुछ लोगों ने छतरियाँ तान लीं और कुछ उठ कर बरामदों की ओर भागने लगे। सरदार बहादुर महाराजजी ने फ़रमाया, "इतने दिन गर्मी-गर्मी कह कर पानी माँगते रहे, अब मालिक ने पानी दिया तो भागने लगे।" आप उसी प्रकार सत्संग फ़रमाते रहे, लोगों ने छाते बन्द कर लिये और बरामदों से वापस आ गये। हुज़ूर तथा सारी संगत भीग गई, लेकिन सत्संग चलता रहा। जब सत्संग समाप्त करके उठने लगे तो हुज़ूर ने मिठास के साथ कहा, "अन्दर जाने के लिये भी बस इतने ही हठ की ज़रूरत है।"

एक प्रतिष्ठित घराने की महिला एक बार आपके लिये एक कीमती रेशमी रज़ाई और मखमल का गद्दा लेकर आई। उसने अर्ज़ की, "हुज़ूर बड़े महाराजजी ने भजन में मुझे हुक्म दिया है कि आपके लिये रज़ाई और गद्दा लाऊँ।" सरदार बहादुर महाराजजी ने हँस कर फ़रमाया, "बीबीजी! महाराजजी ने मुझसे भी कहा था कि......रज़ाई और गद्दा लायेगी, लेकिन इन चीज़ों को न लेना।" फिर आपने प्यार के साथ समझाते हुए कहा, "मैं तो खद्दर की रज़ाई और खद्दर के बिस्तरे इस्तेमाल करता हूँ। ये रेशमी चीजें मेरे किस काम की!"

सरदार बहादुर महाराजजी का सत्संग सरल, सीधा तथा क्रम-बद्ध होता था। आप आम तौर पर पैंतालीस मिनिट से ज़्यादा लम्बा सत्संग नहीं फ़रमाते थे। आप कहते थे कि लोग ४०-४५ मिनिट से ज़्यादा देर तक एकाग्रता-पूर्वक बात नहीं सुन सकते, इसलिये अधिक समय तक तकरीर करने से क्या फायदा! आपकी वाणी मिठासपूर्ण थी, किन्तु व्याख्या तर्क-संगत और साफ़ होती थी। बग़ैर किसी दुराव के स्पष्ट बात करते थे, परन्तु कभी किसी मत-मतान्तर की आलोचना नहीं करते थे।

सेहत ठीक न होने के बावजूद आप सत्संग के लिये डेरे से बाहर दौरों पर जाते रहते थे। काँगड़ा ज़िले के पहाड़ी क्षेत्रों में आपने कई दौरे किये। देहली, अमृतसर, लुधियाना, जालन्धर, फगवाड़ा आदि शहरों में पाकिस्तान से सत्संगी आकर बसनें लगे थे। हुज़ूर सरदार बहादुरजी जगह-जगह सत्संग करते और संगत से मिल कर उनको तसल्ली बख़्शते।

आप स्वभाव से अनुशासन-प्रिय थे। फौजी सत्संगियों से मिल कर बहुत प्रसन्न होते थे। भारत-विभाजन के बाद ब्यास तथा पास के स्थानों में सेनाएँ

आती-जाती रहती थीं। कई बार ग़ैर-सत्संगी सैनिक भी आपके दर्शन करने के लिये आते और जब भी वे आते हुज़ूर सरदार बहादुरजी उनसे बड़े प्रेम से मिलते। एक बार किसी सत्संगी ने आपसे पूछा कि आप फौजी सत्संगियों की इतनी इज्ज़त क्यों करते हैं ? आपने उत्तर दिया कि बाबाजी महाराज और हुज़ूर महाराजजी ने जिस महकमे में बरसों सेवा करके हक़-हलाल की रोज़ी कमाई, उस महकमे के सेवकों को भला इज्ज़त की नज़र से क्यों न देखा जाये। फिर आपने फ़रमाया कि इनमें अनुशासन और ड्यूटी की पाबन्दी का भाव प्रशंसनीय होता है।

एक बार पाकिस्तान से हिन्दुस्तान के सम्बन्ध बहुत तनाव-पूर्ण हो गये और दोनों देशों की सेनाएँ सीमाओं पर तैनात की जाने लगीं। लोग घबरा कर सीमा के पास के शहरों को छोड़ कर जाने लगे। डेरे में भी कुछ लोगों को खयाल आया कि यहाँ से किसी सुरक्षित स्थान पर चलना चाहिये। उन्होंने हुज़ूर सरदार बहादुरजी से पूछा कि क्या लड़ाई होगी। अगर लड़ाई हो तो हम लोग किसी दूसरी सुरक्षित जगह पर चले जायें। आपने मुसकराकर जवाब फ़रमाया, "भाई, ये बातें तो किसी ज्योतिषी से पूछो। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि अगर आस-पास के और डेरे के सब लोग अपने घरों को छोड़ जायें तो फिर भी मैं यहीं कायम रहूँगा, क्योंकि सच्ची सरकार* ने मुझे यहीं रहने का हुक्म दिया है।"

आप कभी अपने सतगुरु हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी का नाम नहीं लेते थे। कभी कोई पत्र या लेख पढ़ते और अगर उसमें हुज़ूर महाराजजी का नाम आता तो आप रुक जाते और बड़े मीठे स्वर में कहते, "आगे सच्ची सरकार का नाम है" और फिर आगे पढ़ना शुरू कर देते।

सरदार बहादुर महाराजजी का स्वास्थ्य जुलाई १९५१ से गिरने लगा। परन्तु आपने सत्संग, नाम-दान तथा डेरे की व्यवस्था का कार्य बदस्तूर जारी रखा। जुलाई में आपने कालू की बड़ का दौरा रखा। कमज़ोरी की वजह से आप स्टेशन-वेगन मोटर में लेटे हुए सफ़र कर रहे थे। जब भर दोपहर को होशियारपुर से गुज़र रहे थे तो देखा कि संगत ने बग़ैर किसी पूर्व-सूचना के सत्संग का प्रबन्ध कर रखा था। संगत के आग्रह को आप टाल न सके और सख्त गरमी में भी वहाँ सत्संग प्रदान किया। आगे जाने पर गगरेट में भी इसी प्रकार सत्संग करना पड़ा। कालू की बड़ में सुबह-शाम सत्संग करने

---

* सरदार बहादुर महाराजजी हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी का जिक्र 'सच्ची सरकार' कह कर किया करते थे।

श्रौर नाम देने के बाद आप २३ जुलाई १९५१ को डेरे तशरीफ़ ले आये।

आपकी तबियत में कोई लाभ न हुआ और कमज़ोरी बढ़ती गई। जुलाई और अगस्त के महीनों में आपने अपना रोज़ का कार्यक्रम यथा-संभव जारी रखा। उन दिनों आस-पास के सैनिक शिविरों से सत्संगी और गैर-सत्संगी सैनिक आपके दर्शन के लिये आते रहते थे। कभी-कभी वे सन्त-मत के विषय में सवाल करते और सरदार बहादुरजी महाराज उनको दो-दो, तीन-तीन घण्टे का समय देते रहते जिसमें कई बार आप उनके लिये सत्संग भी करते। यदि उनमें से कुछ सैनिक नाम-दान के लिए बिनती करते तो आप, अपनी सुविधा और स्वास्थ्य का ख़याल न करके, उन्हें उसी समय नाम देने लगते। कभी-कभी इस पूरे कार्य में दिन के साढ़े तीन बज जाते। पाँच बजे से फिर सत्संग होता और आप उसमें तशरीफ़ ले जाते। उन्हीं दिनों पंजाब के ग्रामों में मुरब्बाबन्दी का कार्य चल रहा था। उस सिलसिले में तहसीलदार तथा ग्राम-वासी आपके पास आते। हुज़ूर सरदार बहादुरजी उनसे मुरब्बाबन्दी के विषय में काफी देर तक चर्चा करते रहते और जब उनमें से कोई सज्जन परमार्थ सम्बन्धी प्रश्न कर बैठता तो आप परमार्थ की चर्चा भी तब तक करते रहते जब तक कि उनको तसल्ली न हो जाती।

परन्तु आपका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता गया। कुछ पुराने सत्संगी आपको आराम करने और सत्संग तथा अन्य व्यवस्था-सम्बन्धी कार्य कम करने का अनुरोध करते, लेकिन आपका कार्यक्रम वैसा ही चलता रहता। एक पुराने सत्संगी ने एक दिन अर्ज़ की, "हुज़ूर से मुलाकात के लिये फौजी तथा अन्य सत्संगी दिन में किसी भी वक्त चले आते हैं और हुज़ूर को आराम में तकलीफ़ होती है।......" सरदार बहादुर महाराजजी ने बड़े भाव-पूर्ण स्वर में फ़रमाया, "मुझे बड़ी शर्म आती है कि मैं हुज़ूर महाराजजी की लाड़ली संगत को उतना प्यार नहीं दे सका जितना हुज़ूर बख़्शते थे।"

सितम्बर १९५१ के अन्तिम सप्ताह तक कमज़ोरी बहुत बढ़ गई। सब चिन्तित हो उठे। सरदार बहादुर साहिब के सुपुत्र श्री जसवन्तसिंहजी ने काश्मीर से डाक्टर बलवन्तसिंह को बुलाया। डाक्टर बलवन्तसिंह वहाँ के प्रसिद्ध डाक्टर थे, सत्संगी थे और आपका इलाज पहले भी कर चुके थे। परन्तु स्वास्थ्य में कुछ लाभ न हुआ। २० सितम्बर के बाद स्वास्थ्य इतना कमज़ोर हो गया कि सरदार बहादुर महाराजजी सत्संग भी नहीं कर पाते थे और न डाक्टर करने ही देते थे।

३० सितम्बर को हुज़ूर सरदार बहादुरजी ने सत्संग करने का निश्चय

किया। डाक्टर बलवन्तसिंह और डाक्टर दीवानचन्द ने आपको कोठी से नीचे उतरने तक के लिये मना किया। परन्तु आपने जवाब दिया कि मुझे सत्संग में ज़रूर जाना है। इस पर डाक्टरों ने कुर्सी पर नीचे उतरने और कुर्सी पर बैठ कर ही वापस ऊपर आने की राय दी। लेकिन आप पण्डित लालचन्दजी का सहारा लेकर खुद नीचे उतरे और मोटर में बैठ कर सत्संग-घर तशरीफ़ ले गये। सत्संग में आपने स्वामीजी महाराज का शब्द "सतगुरु सरन गहो मेरे प्यारे, करम जगात चुकाय" लिया और आधा घण्टा बड़ी स्पष्ट आवाज़ में व्याख्या की। सत्संग के बाद आप वापस कोठी में खुद सीढ़ियाँ चढ़ कर गये। दोनों डाक्टर घबरा रहे थे, परन्तु सत्संग के बाद जब जाँच की तो पाया कि हृदय और नाड़ी की गति ठीक है तथा सेहत पर कोई बुरा असर नहीं हुआ है। यह हुज़ूर सरदार बहादुर महाराजजी का अन्तिम सत्संग था।

चोला छोड़ने से करीब छः महीने पहले हुज़ूर सरदार बहादुर साहिब के हुक्म से रायसाहब मुन्शीराम ने बैंक के खातों के खाली फार्म सरदार चरनसिंहजी के पास सरसा भेजे। साथ में दो-तीन पंक्तियों का सन्देश था कि सरदार बहादुरजी का हुक्म है कि इन खाली कागज़ों पर अपने दस्तखत करके भेज दें। क्यों दस्तखत चाहियें इसके बारे में कोई ज़िक्र न किया। सरदार चरनसिंह साहब ने हुक्म की तामील करते हुए दस्तखत करके फार्म लौटा दिये। फार्म आने पर सरदार बहादुर महाराजजी ने बैंकों में डेरे के सब खातों में जो कि आपके नाम में थे, सरदार चरनसिंहजी का नाम जोड़ दिया ताकि दोनों में से कोई भी एक अथवा उत्तरजीवी उन्हें चला सके।

सितम्बर १९५१ में सरदार चरनसिंहजी को चुनाव में खड़े होने के लिये कांग्रेस की ओर से टिकिट पेश किया जा रहा था। आप अपने पिता सरदार हरबंससिंहजी तथा तायाजी सरदार बचिंतसिंहजी साहब के साथ डेरे तशरीफ़ लाये। आपके पिताजी ने सरदार बहादुर महाराजजी से अर्ज़ की, "हुज़ूर! चरनसिंह चुनाव में खड़े होना चाहते हैं। कांग्रेस के नेता इनको टिकिट देना चाहते हैं। अगर इजाज़त हो तो टिकिट मंजूर कर के चुनाव लड़ें।" यह सुन कर सरदार बहादुरजी महाराज एकदम उठ कर बैठ गये और अप्रसन्नता-पूर्ण स्वर में सरदार चरनसिंहजी से बोले, "नहीं! हरगिज़ नहीं! यह लाइन तुम्हारे लिये नहीं है। छोड़ो इस खयाल को। तुम देखो अभी हुज़ूर महाराज जी की क्या मौज है।" इस पर सरदार चरनसिंह साहिब ने हुक्म के आगे सर झुका लिया और चुनाव में खड़े होने से इन्कार कर दिया।

जब आप कमरे से चले गये तो भाई शादी ने सरदार बहादुर साहिब से

अर्ज़ की, "हुज़ूर! क्या हरज था अगर सरदार चरनसिंहजी चुनाव लड़ते? उनको चुनाव लड़ने की इच्छा है और वे जीत भी जायेंगे। आपने उन्हें बड़े सख्त लफ्ज़ कह कर मना कर दिया।" इस पर सरदार बहादुर महाराज ने फ़रमाया, "मैं न कहूँगा तो और कौन कहेगा?" फिर कुछ देर खामोश रह कर मिठास के साथ बोले, "भाई शादी! हुज़ूर महाराजजी को इनसे बहुत काम लेना है।"

जुलाई १९५१ के अन्तिम सप्ताह से कुछ पुराने सत्संगियों को पता लग गया था कि सरदार बहादुर महाराजजी का स्वास्थ्य चिन्ता-जनक है। वे आपसे अपने जानशीन का नाम बताने तथा वसीयत बनाने के लिये अर्ज़ करने लगे। आप जवाब में फ़रमाते, "फ़िक्र न करें, वक्त आने पर सब-कुछ बता दिया जायेगा।" जैसे-जैसे सेहत कमज़ोर होती गई, लोगों में आपके जानशीन का नाम जानने की चिन्ता बढ़ने लगी। सितम्बर में कुछ लोगों ने नंबरदार जगतसिंह को आपकी सेवा में इसी सवाल को लेकर भेजा। सरदार बहादुर साहिब ने स्पष्ट उत्तर दिया, "मैं पक्का बन्दोबस्त करके जाऊँगा, बेखबर नहीं जाऊँगा।" कुछ दिन बाद एक-दो पुराने सत्संगियों ने फिर बीबी रली से यही बात कहलाई और वही जवाब मिला। अक्तूबर के आरम्भ में उन्हीं लोगों ने भाई सुरैनसिंहजी को उनके गाँव से बुलवाया। भाई सुरैनसिंह जी बाबाजी महाराज के सत्संगी थे और वर्षों तक हुज़ूर बड़े महाराजजी के पाठी रह चुके थे। भाई सुरैनसिंहजी ने अर्ज़ की, "हुज़ूर, आपकी सेहत अच्छी नहीं है, कुछ अपने बाद का इन्तिज़ाम कर लें।" हुज़ूर ने उत्तर दिया "भाई साहब! इन लोगों ने आपको यों ही तकलीफ़ दी है। मैंने इनसे कह दिया है कि पक्का और बहुत अच्छा इन्तिज़ाम करके जाऊँगा।"

१४ अक्तूबर १९५१ को एक अमेरिकन जिज्ञासु मि. जैरी एफ़. सेफ़िन्स श्री ब्रजलाल कपूर के साथ डेरे आये। मिस्टर सेफ़िन्स अमेरिकन दूतावास के बम्बई आफ़िस में एक उच्च अधिकारी थे। उस दिन हुज़ूर सरदार बहादुर जी कफ़ की वजह से बातचीत करने में कठिनाई महसूस कर रहे थे, इसलिये मिस्टर सेफ़िन्स से कोई वार्तालाप न हो सका। लेकिन सेफ़िन्स साहब के दिल में नाम प्राप्त करने की बड़ी तड़प थी। अधिक रुक भी न सकते थे, क्योंकि उन्हें कुछ ही दिनों में वापस अमेरिका जाना था। दोपहर को प्रोफ़ेसर जगमोहनलालजी उनसे मिलने गये तो उन्होंने बताया कि वे नाम लेना चाहते हैं। प्रोफ़ेसर साहब ने महाराजजी के स्वास्थ्य को देखते हुए सेफ़िन्स साहब को कोई आशा न बँधाई और न इस बात का ज़िक्र हुज़ूर से किया। दूसरे

दिन १५ अक्तूबर को भी हुज़ूर सरदार बहादुर साहब का स्वास्थ्य वैसा ही था। परन्तु शाम को आपने मिस्टर सेफ़िन्स को बुलाया और उन्हें नाम प्रदान किया। नाम-दान के समय हुज़ूर की आवाज़ बिलकुल स्पष्ट तथा हमेशा जैसी थी। यह सरदार बहादुर महाराजजी का अन्तिम नाम-दान था। १६ अक्तूबर की सुबह मिस्टर सेफ़िन्स वापस चले गये।

श्री रामनाथ मेहता (देहली वाले) सरदार बहादुर महाराजजी का यह वृत्तान्त सुनाते हैं। अक्तूबर १९५१ के दूसरे सप्ताह में रामनाथजी मेहता डेरे आये हुए थे। देहली में एक पुराने सत्संगी ने किसी के प्रभाव में आकर सरदार बहादुरजी के विरुद्ध कुछ प्रचार शुरू कर दिया। उस सत्संगी ने रामनाथजी मेहता से भी ऐसी बातें कहीं जिनमें सरदार बहादुरजी महाराज की ईमानदारी पर आक्षेप था। सूर्य पर कीचड़ उछालने के इस क्षुद्र प्रयास पर श्री मेहता ने पहले तो ध्यान न दिया, परन्तु जब कुछ और सत्संगियों ने आकर उनसे कहा कि अमुक पुराना सत्संगी डेरे तथा हुज़ूर सरदार बहादुर महाराजजी के विरुद्ध प्रचार कर रहा है, तो मेहता साहब ने सरदार बहादुर जी महाराज से इसका ज़िक्र करने का निर्णय किया।

अक्तूबर १९५१ में सरदार बहादुरजी महाराज का स्वास्थ्य खराब था और आप इस संसार को छोड़ने का निश्चय कर चुके थे। वापस देहली जाने से पहले मेहता साहब जब हुज़ूर सरदार बहादुरजी को मत्था टेकने गये तो उन्होंने अर्ज़ की कि अमुक सत्संगी हुज़ूर पर ये आक्षेप लगाता है। हुज़ूर ने रामनाथजी को अपने पलंग के पास बिठाया और बड़े मधुर स्वर में फ़रमाया, "......से कहना कि ऐसी बातों से उन्हें फायदा नहीं होगा।" कुछ देर मौन रह कर आपने फिर फ़रमाया, "यह बात मुझे कहनी तो नहीं चाहिये, लेकिन अब मेरा अन्तिम समय है इसलिये कहने में कोई हरज नहीं है। यह जो श्वेत स्वच्छ दाढ़ी मुझे मेरे सतगुरु सच्ची सरकार ने बख़्शी है, इसे वैसी ही बेदाग उनके चरणों में सौंप रहा हूँ।" यह सरदार बहादुरजी महाराज के महाप्रयाण से करीब दस दिन पहले की बात है।

२० अक्तूबर को फिर कुछ बुज़ुर्ग सत्संगियों ने आपसे अपने जानशीन का नाम जानने की कोशिश की। आपने स्पष्ट उत्तर दिया, "घबराओ नहीं। जाने से पहले सब-कुछ बता कर जाऊँगा।"

२१ अक्तूबर की सुबह डाक्टर बलवन्तसिंह और डाक्टर दीवानचन्द ने आपका मुआयना किया और डाक्टर बलवन्तसिंह ने कहा, "आपकी हालत बेहद नाज़ुक है और कहा नहीं जा सकता कि अगले कुछ घण्टों में क्या हो।

आपको चाहिये कि अपना जानशीन मुकर्रर कर दें।" इस पर सरदार बहादुर जी महाराज ने तनिक मुसकराते हुए फ़रमाया, "डाक्टर, आप समझते हैं कि मैं घड़ी-पल का मेहमान हूँ! लेकिन आप यकीन रखें, मैं आज की रात इसी दुनिया में रहूँगा।"

शाम को हुज़ूर का ध्यान अन्तर में लगा हुआ था, शरीर बहुत कमज़ोर हो गया था। वड़ाइच ग्राम के सत्संगी चननसिंहजी और फौजासिंहजी रोज़ शाम को दर्शन के लिये आते थे। वे जब आये और आपकी हालत देखी तो रोने लगे। सरदार बहादुर महाराजजी ने आँखें खोलीं और बड़े प्यार के साथ साफ़ आवाज़ में कहा, "भाई, जाओ, बेफ़िकर होकर सो जाओ। मैं आज नहीं जा रहा।"

२२ अक्तूबर १९५१ की सुबह जब डॉक्टर रोज़ की तरह जाँच करके चले गये तो हुज़ूर ने करीब आठ बजे उन्हें फिर बुलाया और फ़रमाया, "डाक्टर साहब, आज जो कुछ पूछना चाहते हो पूछ लो।" फिर आपने हुक्म फ़रमाया "जज साहब* से बोलो कि सरदार चरनसिंह सुपुत्र सरदार हरबंससिंह ग्रेवाल, सिकन्दरपुर, को तार देकर बुलवा लो और उनके हक़ में वसीयत लिख कर लाओ।" हुज़ूर सरदार बहादुरजी के ये वचन सुन कर कमरे में खामोशी छा गई। स्पष्ट था कि आपने आज इस नश्वर संसार को छोड़ने का निर्णय कर लिया था। फिर सरदार बहादुरजी महाराज ने गांधी राम को हुक्म दिया कि जज साहब को बुलाओ।

सरदार बचिंतसिंह साहब प्रतिदिन सुबह आकर मत्था टेक कर चले जाते थे। २२ अक्तूबर को भी आप रोज़ जैसे आकर जा चुके थे। कुछ ही क्षणों में वसीयत बनाने के निर्णय की बात डेरे में फैल गई। जब यह बात सरदार बचिंतसिंहजी के पास पहुँची तो आप दोबारा जल्दी से सरदार बहादुर महाराजजी के पास आये और सजल नेत्रों सहित, हाथ जोड़ कर विनती की, "हुज़ूर! महाराजजी हम लोगों को आपके सुपुर्द कर गये हैं, आप जल्दी न करें। तंदुरुस्त होकर हमारी सँभाल करते रहें। चरनसिंह अभी बच्चे हैं, आप गद्दी किसी अभ्यासी बुज़ुर्ग को देवें।" सरदार बहादुरजी ने हाथ उठा कर बड़े दृढ़तापूर्ण स्वर में कहा, "भाई साहब! जो कुछ मैं कर रहा हूँ, अपनी मरज़ी से नहीं कर रहा, बल्कि हुज़ूर महाराजजी और बाबाजी के हुक्म से कर रहा हूँ।"

इसी समय रायसाहब मुन्शीराम आ गये। सरदार बहादुरजी महाराज

---

* रायसाहब मुन्शीराम, जो रिटायर होकर आने से पहले सेशन-जज थे।

ने हुक्म फ़रमाया, "वसीयत तैयार करके लाओ।" रायसाहब ने पूछा कि किसके हक में ? तो हुजूर ने उत्तर दिया, "सरदार चरनसिंह के नाम।" फिर आपने रायसाहब से कहा कि सरदार चरनसिंहजी को सिकन्दरपुर तार देकर बुलवा लो।

वसीयत बनाने के सम्बन्ध में रायसाहब मुन्शीरामजी की डायरी से २२ अक्तूबर १९५१ के दिन की लिखत यहाँ दी जा रही है :—

"२२ अक्तूबर—उस दिन सुबह के आठ बजे, अभी मैं स्नान के लिये कपड़े उतार ही रहा था कि श्री गांधी या मनोहरलाल हुजूरी सेवादार मेरे पास आया कि जल्दी चलो, हुजूर याद करते हैं। मैं कपड़े पहन कर भागा गया तो हुजूर बाहर के कमरे में चारपाई पर लेटे हुए थे। फ़रमाया कि वसीयत तैयार करके लाओ। मैंने पूछा, "किसके हक में ?" उन्होंने कहा कि सरदार चरनसिंह के हक में। मैंने कुछ और नहीं पूछा, क्योंकि मुझे मालूम था कि हुजूर अपने सब परमार्थी हिसाब-किताब साहिबज़ादा चरनसिंह ग्रेवाल सुपुत्र सरदार हरबंससिंह के नाम पहले से ही मेरे द्वारा करवा चुके थे। मैं अपने कमरे में वसीयतनामा लिखने लगा कि एक आदमी आया कि जल्दी लाओ। मैंने कहा कि अभी तैयार नहीं हुआ। फिर दूसरा आया तो मैं जो कुछ समझ में आया लिख कर जल्दी-जल्दी ले गया। ऐसी दशा नहीं थी कि जैसे कोई जल्दी इस संसार से जाने वाला हो। वहाँ सरदार दरियाईलाल, साहिबज़ादा गुरदयालसिंह*, डाक्टर बलवन्तसिंह, सरदार बचिंतसिंह साहिब, पण्डित लालचन्द आदि उपस्थित थे। मैंने पहले वसीयतनामा पर डाक्टर साहिब से तस्दीक (प्रमाणित) करवाया कि हुजूर अपने पूरे होश व हवास में हैं। बाद में सब हाज़रीन के रूबरू (सम्मुख) वसीयतनामा हरफ़-ब-हरफ़ (अक्षरशः) पढ़ कर, सबको व हुजूर सरदार बहादुर साहब को सुनाया। बाद में उनके सामने रखा तो उन्होंने ऐनक मांगी और ऐनक लगाकर सारा मज़मून हरफ़-ब-हरफ़ शुरू से आखिर तक गौर से पढ़ा और अपने दस्तखत सब हाज़-रीन के सामने किये। फिर हाज़रीन (उपस्थित लोग) ने दस्तखत किये और मैं वसीयतनामा पूरा करके वापस ले आया।"

हुजूर सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी का वसीयतनामा नीचे दिया जा रहा है :—

मैं सरदार बहादुर जगतसिंह आत्मज सरदार भोलासिंह, जाति जाट सिख, गद्दीनशीन डेरा बाबा जैमलसिंह तहसील व ज़िला अमृतसर का हूँ।

*सरदार भगतसिंहजी के पुत्र तथा सरदार बहादुर महाराजजी के भतीजे।

मैं आजकल सख्त बीमार हूँ। जीवन का कुछ भरोसा नहीं है। इसलिये अपने पूरे होश-हवास में अपनी इच्छा व मरज़ी से यह वसीयत करता हूँ; कि जब तक मैं जीवित हूँ डेरा बाबा जैमलसिंह व इससे सम्बन्धित कुल सम्पत्ति का पूरा स्वामी रहूँगा और मेरे बाद सरदार चरनसिंह ग्रेवाल सुपुत्र सरदार हरबन्ससिंह ग्रेवाल, जाति जाट सिख, निवासी सिकन्दरपुर, तहसील सरसा, ज़िला हिसार, डेरा बाबा जैमलसिंह में गद्दीनशीन होंगे और कुल सम्पत्ति, चल व अचल, नकदी, बैंकों में जमा राशि और सभी सत्संग-घर जो डेरा बाबा जैमलसिंह से सम्बन्धित हैं या थे, इन सबके मेरे और दिवंगत बाबा सावनसिंहजी के समान ही पूरे स्वामी होंगे। इस वसीयत का कोई प्रभाव मेरी निजी व पैतृक सम्पत्ति पर नहीं होगा। अतः यह वसीयतनामा लिख दिया कि सनद रहे। मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मेरी तरह सरदार चरनसिंह सत्संग भी करेंगे और नाम भी देंगे।

लिखने वाला :—
(हस्ताक्षर) मुन्शीराम,
सेक्रेटरी, डेरा
२२-१०-१९५१

(हस्ताक्षर) जगतसिंह
२२-१०-१९५१

मैं प्रमाणित करता हूँ कि वसीयत-कर्ता सरदार बहादुर जगतसिंह पिछले एक महीने से मेरे इलाज में रहे हैं और अब भी मेरे इलाज में हैं और वे इस समय अपने पूरे होश-हवास में हैं।

ता. २२ अक्तूबर, १९५१

(ह.) बलवन्तसिंह, एफ. आर
सी. एस., रिटायर्ड चीफ मेडीकल
आफिसर कश्मीर।

गवाह :—
(ह.) दरियाई लाल कपूर
भूतपूर्व अर्थ-सचिव, कपूरथला
राज्य, वर्तमान निवास डेरा में।
२२-१०-१९५१

गवाह :—
(ह.) लालचन्द धर्मानी, पी. ए.
एस. कृषि-रसायन शास्त्री II
पंजाब, अभी छुट्टी पर डेरे में।

(ह.) गुरदयालसिंह,
नोटरी पब्लिक, जालन्धर
२२-१०-५१

(ह.) बचिंतसिंह ग्रेवाल
२२-१०-५१

पंडित लालचन्दजी बताते हैं कि वसीयत बना देने के बाद जब सब लोग चले गये, उस वक्त हुज़ूर सरदार बहादुरजी के चेहरे पर बहुत खुशी थी।

आपने दोनों हाथ जोड़ कर कहा, "शुक्र है, हुजूर की अमानत हुजूर के पास चली गई।"

वसीयतनामा २२ अक्तूबर से पहले न बनाने और इतने दिन अपने जानशीन का नाम न प्रकट करने में भी हुजूर सरदार बहादुरजी की कुछ मौज ही थी। आप जानते थे कि आपके जानशीन सरदार चरनसिंहजी गद्दी लेना कभी स्वीकार न करेंगे और आपसे अपना निर्णय वापस लेने की विनती करेंगे। साथ ही यह भी सम्भव था कि पेंतीस वर्ष की आयु में आप पर इस गम्भीर उत्तरदायित्व के बोझ को आता देख कर आपके माता-पिता का मन विचलित हो जाता। आगे के वृत्तान्त से स्पष्ट हो जाएगा कि इन संभावनाओं को ध्यान में रख कर हुजूर सरदार बहादुरजी ने पूरा कार्य किस सुनियोजित तथा सरल ढंग से किया।

२१ अक्तूबर की सुबह आपने सरदार हरबंससिंह जी को, जो उन दिनों डेरे में थे, बुलाया और फ़रमाया, "मेरी तबियत अब ठीक है। आप आज सिकन्दरपुर चले जायें, वहाँ आपकी ज़रूरत है।" अतएव आज्ञानुसार सरदार हरबंससिंह साहब उसी वक्त सिकन्दरपुर के लिए रवाना हो गये। जाने से पहले जब हुजूर सरदार बहादुर साहिब के पास मत्था टेकने आये तो हुजूर ने सरदार चरनसिंहजी के लिए यह सन्देश दिया, "उनसे कहना कि बिलकुल न घबरायें। मैंने चुनाव के बारे में जो कुछ कहा है, उनके फायदे के लिए कहा है और महाराजजी के हुक्म से कहा है। देखें कि महाराजजी की क्या मौज है और महाराजजी क्या करते हैं। मैं उनसे बहुत खुश हूँ।"

उसी दिन शाम को सरदार बहादुरजी महाराज ने सरदार चरनसिंह साहिब की माताजी बीबी शाम कौर से कहा कि मेरी तबियत ठीक है। आप कल सुबह मोगा* चली जाओ। आज्ञानुसार आप २२ अक्तूबर की सुबह छः बजे मोगे के लिए रवाना हो गईं। इस प्रकार हुजूर ने अपनी वसीयत बनाने से पहले अपने जानशीन के माता-पिता को डेरे से भेज दिया, ताकि वे आपसे अपना फैसला बदलने के लिये अर्ज़ न करें। सरदार बहादुर साहिब ने वसीयत लिखने के बाद सरदार चरनसिंहजी को २२ अक्तूबर को सुबह तार देकर बुलवाया, जो उन्हें सरसा में दोपहर के बाद करीब तीन-चार बजे मिला। आप फौरन अपने पिताजी के साथ रवाना हो गये। लेकिन रास्ते में मोटर खराब होने की वजह से दूसरे दिन उस वक्त डेरे में पहुँचे जब सरदार बहादुर महाराजजी का अन्तिम संस्कार हो रहा था। इस विषय में राय साहिब

*मोगा (ज़िला फ़िरोज़पुर) माता शाम कौर जी का पीहर है।

मुन्शीरामजी की डायरी में से कुछ उद्धरण देना चाहूँगा, जिसमें वे लिखते हैं कि महाराज चरनसिंहजी के देर से पहुँचने में भी कुछ मालिक की मौज ही थी, "क्योंकि अगर सरदार चरनसिंहजी, सरदार बहादुर साहिब के जीते-जी उनके सामने आते और वे उनको गद्दी सँभालने को कहते तो संभव था कि सरदार चरनसिंहजी साफ़-साफ़ इन्कार कर देते, जैसे कि उनसे पहले सरदार बहादुरजी बाबा सावनसिंहजी को इन्कार ही करते रहे। हुजूर बाबा सावनसिंहजी को जब सन् १९०३ में गद्दी मिली तो बीबी रुक्को ने मुझे बताया कि गदीनशीनी के वक्त हुजूर महाराजजी की आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे।"*

२२ अक्तूबर की दोपहर को हुजूर सरदार बहादुरजी ने बीबी रली और पंडित लालचन्दजी को हुक्म दिया, "मेरे चोला छोड़ने के बाद मेरे शरीर को ज्यादा देर न रखना, किसी रिश्तेदार या सत्संगी के आने का इन्तिज़ार न करना। शरीर को स्नान मत करवाना, उस पर कोई रेश्मी, ऊनी या कीमती वस्त्र न डालना। संस्कार दरिया के किनारे करना और उसी वक्त फूल को दरिया में बहा देना ताकि उस जगह का निशान भी न रहे।"

ये वचन सुन कर बीबी रली बोलीं कि यदि हुजूर डेरे के प्रमुख सत्संगियों को बुला कर ये हुक्म फ़रमा दें तो बेहतर होगा। इस पर हुजूर सरदार बहादुरजी महाराज ने सरदार बचिंतसिंह, बाबू गुलाबसिंह, तथा डेरे के अन्य प्रमुख सत्संगियों को बुलवाया जिनमें लम्बरदार जगतसिंह और चौकीदार जगत सिंह भी थे। उनके आने पर आपने लम्बरदार जगतसिंह से कहा कि पहले भी जो उसे आपने अपने अन्तिम संस्कार के विषय में हिदायतें दी थीं, उन्हें सबको सुना दे। लम्बरदार जगतसिंह ने हुजूर की कुछ दिन पहले दी गई हिदायतें सुनाईं जो कि बिल्कुल वही थीं जो कुछ समय पहले हुजूर ने बीबी रली व पंडितजी को दी थीं। उन्हें सुन कर सबने अर्ज़ की कि हुजूर के हुक्म का बराबर पालन किया जायेगा।

दोपहर को बारह बजे के करीब आपने पंडित लालचन्दजी से कहा, "पंडित, रोग से जर्जर इस शरीर को अब रखने में क्या फायदा है? इसे छोड़ दें।" पंडितजी ने उत्तर दिया, "जी, यह आपकी मौज है, जब चाहें राज़ी हो जायें।" इस पर आपने फ़रमाया, "छोड़ो इस ख़याल को।"

इसके कुछ देर बाद आपने मिस हिलगर और राजा साहब व रानी साहिबा सांगली को दर्शन दिये और कुछ समय उनसे बात की। तीन-चार

*रूहानी डायरी भाग दूसरा, पृष्ठ २१७

16

बजे के करीब रायसाहब मुन्शीरामजी तथा कुछ और लोग आये। हुज़ूर सरदार बहादुरजी को साँस लेने में सख्त तकलीफ थी। इस पर भी आपने इन लोगों से बात-चीत की। बीबी रली ने पूछा, "आगे मेरे लिए क्या हुक्म है और कहाँ रहूँ?" आपने जवाब दिया, "डेरे में इसी कोठी में रहो।" रायसाहब ने यही सवाल दोनों निज सेवादार गाँधीराम और मनोहरलाल के लिए किया। जवाब में फ़रमाया कि ये भी डेरे में ही रहेंगे।

रात को करीब आठ बजे रायसाहब मुन्शीराम फिर हुज़ूर के पास आये और डेरे के सम्बन्ध में कुछ बातें करते रहे। जाने से पहले बोले, "हुज़ूर, मैंने तीन साल तक दौड़-धूप करके सारी जायदादों का प्रबन्ध करके अब शान्ति की सांस लेना शुरू की थी कि आप जा रहे हैं, और फिर से वही बखेड़ा शुरू होगा। आपके जानशीन बिलकुल नये हैं।" यह सुन कर सरदार बहादुर महाराजजी ने रायसाहब को बड़े प्यार के साथ समझाया कि कोई चिन्ता न करना, हौसला रखना और आप देखेंगे कि मालिक क्या-क्या मौज करता है।

रायसाहब के जाने के बाद लम्बरदार जगतसिंह आया और मत्था टेक कर बैठ गया। हुज़ूर सरदार बहादुरजी ने कहा, "लम्बरदारजी! जा कर सो जाओ।" लम्बरदार ने इस पर अर्ज़ की, "हुज़ूर सच्चे पातशाह! पहला जख़म भरा नहीं था कि दूसरा हो रहा है। आप दया करो और राज़ी हो जाओ।" सरदार बहादुर महाराजजी ने प्यार के साथ उसे समझाया और फ़रमाया, "जो हुज़ूर महाराजजी की मौज है वही ठीक है।......तुम मेरी बात याद रखना।" आपका इशारा अन्तिम संस्कार के आदेश की ओर था।

आठ और नौ बजे के बीच में प्रोफेसर जगमोहनलाल तथा सरदार बहादुर महाराजजी के सुपुत्र सरदार जसवन्तसिंह मत्था टेकने आये। कुछ देर बैठे रहे, फिर हुज़ूर के हुक्म से चले गये। रात को नौ बजे हुज़ूर का सेवादार मनोहर दूध का गिलास लेकर आया। आपने एक कप दूध पीया, कुल्ला किया और वापस लेट गये। डाक्टर हज़ारासिंह, पंडित लालचन्दजी के साथ उन दिनों हुज़ूर की सेवा में मौजूद रहते थे। आपने उनसे मुसकरा कर कहा, "अच्छा, डाक्टर, आज सवेरे।" बाद में डाक्टर हज़ारासिंह ने पंडितजी को बताया कि हुज़ूर सरदार बहादुर साहिब ने उनसे कई दिन पहले कह दिया था कि इस दिन सुबह २.३० और ३.० बजे के बीच में इस नश्वर संसार को सदा के लिए छोड़ जायेंगे। साथ ही आपने अपने जानशीन सरदार चरनसिंहजी का नाम भी बता दिया था। लेकिन इन दोनों बातों को ज़ाहिर

करने के लिए मना किया हुआ था।

यद्यपि महाराजजी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया था, कमज़ोरी और कष्ट काफी था, परन्तु आपके चेहरे पर बड़ी शान्ति, खुशी और एक मृदु मुस्कान थी। कमरे के वातावरण में एक अजीब रूहानी शान्ति का अनुभव होता था।

करीब सवा नौ बजे आपने पंडित लालचन्दजी से फ़रमाया, "मैं कुछ देर सो रहा हूँ, जगाना नहीं।" और अन्दर ख़याल लगा लिया। रात को ग्यारह बजे पंडितजी को आवाज़ दी और फ़रमाया, "देखो, अन्दर गरमी तो नहीं है।" पंडित जी ने अर्ज़ की, "हुज़ूर गरमी तो है।" आप बोले "कोई बात नहीं, अन्दर चलो।" अन्दर हुज़ूर के आदेश से पलंग खिड़की के पास लगा दिया गया। फिर हुज़ूर सरदार बहादुरजी ने डाक्टर हज़ारासिंह को बुलवाया और उनसे एनीमा (वस्ति) देने के लिए कहा। डाक्टर हज़ारासिंह ने हुक्म की तामील की। उसके बाद आपने पंडित लालाचन्दजी से कहा कि गीले तौलिये से मेरे पूरे शरीर को पोंछ दो। पंडितजी ने गीले तौलिये से हुज़ूर के शरीर का स्पंज किया और फिर एक सूखे तौलिये से पोंछा। फिर एक नये तौलिये से सर, मुँह और दाढ़ी को पोंछा। हुज़ूर ने नया कुरता और नई धोती पहनी। उस वक्त आप बड़े प्रसन्न थे। मुसकरा कर पंडितजी की ओर देखा और प्यार से उनके सर पर हाथ फेरा। फिर पंडितजी और डाक्टर हज़ारासिंह से फ़रमाया, "देखो; अब मैं साफ हो गया हूँ। कपड़े बदल लिये हैं। अब मेरे जाने के बाद शरीर को नहलाना नहीं और न ही कोई कपड़े बदलना।"

उसी समय हुज़ूर के सेवादार गाँधीराम भी आ गये। आपने गांधीराम से कह दिया था कि जाते वक्त बगैर बताये नहीं जायेंगे, कुछ न कुछ इशारा करके जायेंगे। गांधीराम को देखकर आपने फ़रमाया, "सन्तो,* मैं अब सोने लगा हूँ। मुझे अब जगाना नहीं।" यह फ़रमा कर हुज़ूर सरदार बहादुरजी ने दाहिनी ओर करवट ले ली, दुशाला कन्धे तक ले लिया, पंडितजी तथा गांधीराम को हुक्म दिया कि तुम दोनों भी सो जाओ, और फिर अपने ध्यान में लीन हो गये। हुज़ूर के हुक्म का पालन करते हुए दोनों पास में ही लेट गये।

रात को ठीक दो बज कर अड़तीस मिनिट पर सरदार बहादुरजी महाराज ने अपने बायें हाथ से पलंग के पास वाली खिड़की को एक बार खटखटाया। पंडितजी और गाँधीराम फौरन उठ कर आ गये। पंडितजी ने नाड़ी देखी

---

*गांधीराम को हुज़ूर सरदार बहादुर महाराजजी 'सन्तो' कह कर बुलाते थे।

तो एक-दो स्पन्दन के बाद बंद हो गई। स्वाँस बन्द हो गये। मुख पर गहरी शान्ति और सौम्यता तथा अधरों पर मृदु मुस्कान थी। नश्वर शरीर से आप सम्बन्ध त्याग चुके थे। उस समय सुबह के दो बज कर चालीस मिनिट हुए थे।

खिड़की पर खटखटाहट की आवाज़ सुन कर नीचे के कमरों से बीबी रली ऊपर आ गईं। धीरे-धीरे खबर डेरे में फैल गई और संगत ऊपर आने लगी। कुछ ही समय में दर्शन करने वालों का ताँता लग गया। जब देखा कि ऊपर स्थान कम है तो हुज़ूर सरदार बहादुरजी महाराज के पावन शरीर को नाम-घर के बरामदे में रखा गया।

हुज़ूर सरदार बहादुर साहब के स्पष्ट आदेश के अनुसार अर्थी को बहुत सादा रखा गया। शरीर पर एक श्वेत चादर डाल दी गई। दोपहर से कुछ पहले अर्थी को ब्यास नदी की ओर ले जाया गया। हुक्म का पालन करते हुए संस्कार डेरे से २॥-३ मील दूर ब्यास नदी के बिलकुल किनारे पर किया गया। हुज़ूर के नश्वर शरीर को आपके सुपुत्र सरदार जसवन्तसिंहजी ने अग्नि को भेंट किया। हुज़ूर ने अपने जीवन-काल में आदेश दिया था कि फूल भी संस्कार के बाद उसी दिन चुन लिये जायें और वहीं दरिया में प्रवाहित कर दिये जायें। तदनुसार, अग्नि-संस्कार के बाद दूध मिले जल से चिता को शीतल किया गया और फूल, राख आदि सब उसी समय दरिया को भेंट कर दिये गये। चिता के आस-पास नाली काट कर दरिया का पानी अन्दर ले लिया गया और संस्कार का पूरा स्थल ही पानी में डुबो दिया गया।

हुज़ूर सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी को २५ वर्ष की आयु में हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी से नाम-दान मिला था। नाम प्राप्त होते ही आपने अपनी रहनी ही बदल ली। सरकारी नौकरी के बाद पूरा समय भजन-सुमिरन में व्यस्त रहते थे। सन् १९४३ में लगभग ३३ वर्ष की सेवा के बाद आप ५९ वर्ष की आयु में पेंशन लेकर रिटायर होकर डेरे में आये और अन्तिम समय तक यहीं रहे। अप्रेल, १९४८ में ६४ वर्ष की आयु में आपने गुरु-गद्दी सँभाली और साढ़े तीन वर्ष तक संगत की सेवा, सत्संग तथा नाम का प्रचार करने के बाद २२ अक्तूबर, १९५१ को ६७ वर्ष की अवस्था में ज्योति-ज्योत समाये। इस थोड़े से समय में आपने १८,१११ जीवों को नाम-दान बख़्शा।

सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी के कुछ वचन

१. अपने भजन के रास्ते में किसी चीज़ को रुकावट न बनने दो। सत्संगी

को कभी भी सांसारिक कार-व्यवहार में इतना डूब नहीं जाना चाहिये कि वे भजन-सुमिरन में बाधक हों या मन की स्थिरता को हर लें।

सन्त-मत हमें दुनिया से भागना नहीं सिखाता, दुनिया से ऊपर उठना सिखाता है। बाहर से दुनिया में रहते हुए भी अन्तर में उससे उपराम रहो।

२. त्यागी कौन है ? वही जिसने अपने शरीर की चेतनता को खींच कर आँखों के बीच में जमा कर लिया है और देह से अलग हो गया है। चाहे गृहस्थी हो चाहे त्यागी, असल त्याग तो देह को खाली करना या जड़-चेतन की गाँठ को खोलना है। शरीर जड़ है और रूह चेतन। जिसने जीते-जी अपनी चेतन सत्ता को देह से अलग कर लिया, वही जीवन्-मुक्त है। जिसने जीते-जी ध्यान को देह से निकाल लिया, वह जगत से निकल गया। उसने मन को जीत लिया।

३. एक बार एक व्यक्ति हुज़ूर सरदार बहादुरजी महाराज के पास आया। कहने लगा कि हुज़ूर, मैं बड़ा गुनहगार, मूर्ख और नालायक हूँ। इसी ढंग से वह अपने दोषों का वर्णन करने लगा। हुज़ूर ने मुस्करा कर फ़रमाया, "भाई अपने मुँह से तो आपने अपनी आलोचना कर ली और खुद को भला-बुरा कह लिया। लेकिन सच्ची नम्रता तो तब है जब कोई दूसरा आपको यही वचन कहे और आपको गुस्सा न आये।"

४. मन की आदत है कि अपने ऊपर दोष नहीं लेता, बल्कि कहता है कि पन्द्रह वर्ष हो गये नाम लिये हुए, कुछ नहीं बना। अगर यह अपने आप से सवाल करे कि इन पन्द्रह वर्षों में इसने क्या किया, तो मन खुद जवाब दे देगा कि जो काम करने का सतगुरु हुक्म देते हैं, वह मैंने किया ही नहीं। जो युक्ति सतगुरु ने बतलाई, वह की नहीं। दवाई खाई नहीं बल्कि लाकर आले में रख दी।

यह मेहनत की चीज़ है। हम तो किया कराया माँगते हैं। अगर यह अपना कर्तव्य पूरा करेगा तो सतगुरु भी अपना कर्तव्य करेगा। कर के देख लो !

५. जो अन्दर जाना चाहेंगे, उनको मेहनत करनी पड़ेगी। जितनी मेहनत दुनियादारी के लिए करते हैं, अगर उतनी मेहनत नाम के लिये करें तो काम बन जाये। हम रोज़ सुनते हैं कि हमारे अन्दर मालिक है, हमारे अन्दर नाम है, वह मालिक हमारी हरएक करतूत देखता है। इस बात को हमने केवल सुन रखा है, परन्तु हमें उस मालिक का डर नहीं है। जब तक डर नहीं, तब तक भक्ति नहीं !

६. सतगुरु का भाणा मानना यह है कि जो हुक्म सतगुरु दें उसको

तामील करे। बजाय इसके, हमारा मन अपनी बुद्धि के तराज़ू पर उस हुक्म को तोलने लग जाता है। कभी-कभी तो वह हुक्म उसकी अक्ल के तराज़ू में ठीक तुलता है। मगर कई बार उसको इस हुक्म में अपनी तुच्छ बुद्धि के तराज़ू पर त्रुटि मालूम होती है, तब या तो हिचकिचाता हुआ हुक्म की तामील करता है या करता ही नहीं। इसका नाम सतगुरु का हुक्म मानना नहीं है।

७. सन्त-मत प्रेम व प्रेरणा का मार्ग है, दबाव या जबरदस्ती का नहीं। यह सोचना गलत है कि अगर हम भजन-सुमिरन करते रहें तो सतगुरु हमारी रहनी व चाल-चलन की परवाह नहीं करता। रूहानी अभ्यास में तरक्की हमारी रहनी और हमारे विचारों पर निर्भर है। ऊँची रहनी और पवित्र विचार सन्त-मत के आवश्यक अंग हैं।

८. परमात्मा से केवल उसी को माँगो। दाता के साथ-साथ उसकी दात भी आ जायेगी। सबसे बड़ी इच्छा यह होनी चाहिये कि हमारी कोई इच्छा ही न हो। दुनिया की चीज़ें तो माँगते-माँगते खत्म हो जाती हैं और उनके लिए दुनिया के सामने हाथ पसारना पड़ता है। दुनिया की आशाएं, संसार की कामनाएँ छोड़ दो। कब तक इनका आसरा ताकते रहोगे। इनका आसरा तो आखिरी मौत तक ही ले सकते हो। उसकी आस क्यों नहीं करते जो सदा तुम्हारे साथ रहे। मज़बूती के साथ उसका पल्ला पकड़ लो।

९. हमारे जीवन का असली उद्देश्य अपनी तवज्जह को समेट कर तीसरे तिल में एकत्रित करना है। परन्तु हमें अपनी सांसारिक ज़िम्मेदारियों की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। हमें चाहिये कि ईमानदारी और नेकी के साथ कार्य करके अपनी रोज़ी कमायें। भजन-सुमिरन-पूर्ण जीवन का अर्थ आलसी या सिद्धान्त-हीन जीवन नहीं है। हमें परमार्थ और स्वार्थ दोनों कार्य दृढ़ता-पूर्वक करने चाहियें।

अपने सामाजिक कर्तव्य बराबर करो, अन्य ज़िम्मेदारियों को निभाओ, परन्तु अन्दर जाने का अपना असली कार्य कभी न भूलो। दुनियावी कार्यों में खो न जाओ। हर कार्य को परखने की कसौटी यही है कि क्या इसे करने से भजन में बाधा आयेगी? अगर हाँ, तो उसे बगैर किसी झिझक के छोड़ दो।

१०. दुनियादारों की दुनियावी आशाएँ सब अकारथ जाती हैं। दुनियादार, लोगों के पदार्थ खुश हो-हो कर लेता है और उन्हें भोगता है, पर यह नहीं जानता कि वापस देना पड़ता है, इनका ऋण चुकाना पड़ता है। दुनिया के पदार्थ यहाँ भी काम नहीं आते और आगे भी नहीं आते। मनुष्य सारी

उम्र मोह-माया की आस में उलझ कर अपना जन्म व्यर्थ गँवा बैठता है; घाटे का सौदा कर लेता है। धन-दौलत के गुलाम न बनो, इनसे काम लो। परन्तु एक और काम, खास काम, निज काम करो, जिसे करने के लिए यहाँ आये हो, अगर बाकी सब काम उस खास काम के लिए किये जाते हैं तो वे मुबारक हैं। अगर वही काम भूल गये तो बाकी सब काम भी यों ही गये, व्यर्थ रहे।

११. जो लोग आशा-मनसा से ऊँची अवस्था में हैं, अर्थात् जो संसार की इच्छाओं और आशाओं से ऊपर उठ गये हैं, वे कहते हैं कि ऐ मेरे मालिक ! यह सब तेरी दात है, जीवों के कोई बस की बात नहीं। 'जिउँ नचावे तिउँ तिउँ नचणि' कि जैसे तू नचा रहा है वैसे ही हम नाच रहे हैं। अब अगर मनमुख इस विचार को अपनाते हैं तो कहते हैं कि हमारे बस में कुछ नहीं है, सब मालिक कर रहा है; और वे अभ्यास भी छोड़ कर बैठ जाते हैं। परन्तु उनकी यह हालत है कि दुनिया के कामों के पीछे तो खुद मारे-मारे फिरते हैं और भजन-सुमिरन मालिक पर छोड़ देते हैं कि वह मालिक के हाथ में है।

सन्तों की हिदायत के अनुसार चलने से इन्कार न करो। यह मौका है मालिक की आशा रखने का, मालिक का आसरा लेने का। अगर बाहर के कामों के करने में मन दख़ल देता है, तो समझो कि यह मन भजन भी कर सकता है। यह निश्चल होकर कभी नहीं बैठता, इसे भजन-सुमिरन में लगाये रखो।

१२. ज़माना हमेशा बदलता रहा और बदलता रहेगा। लेकिन नाम कभी नहीं बदलता। नाम की धारा बदस्तूर जारी रहती है; नाम ही सब तब्दीली (परिवर्तन) का करने वाला है। जब तक हमारा ख़याल नाम से नहीं जुड़ता, हमारी हालत बदलती रहेगी, कभी सुख आयेगा, कभी दुःख। इसीलिये सन्तों ने बार-बार यही हिदायत की है कि नौ द्वारों से अपनी तवज्जह को निकालो और अन्दर शब्द के साथ जोड़ो। ज्यों-ज्यों हम यह कार्य करते हैं और हमारी तवज्जह शरीर को छोड़ती है तथा नाम का रस लेती है, हममें सहन-शक्ति और स्थिरता पैदा होती है। तब आत्मा माया की फ़ानी (नाशवान) हालत को छोड़ती है और नाम की दायमी (स्थायी) हालत में प्रवेश करती है। वह सदा के सुख की भागी होती है और जन्म-मरण से मुक्त हो जाती है।

सतगुरु ने जिस दिन नाम दिया है उसी दिन से वह अन्दर कुछ ऐसा इन्तिज़ाम कर रहा है कि शिष्य अपने प्रारब्ध कर्म भी भुगतता जाये और

उसके सचखण्ड पहुँचने का ज़रिया भी बनता जाये। अगर शिष्य सतगुरु के हुक्म पर विश्वास रख कर प्रेम-प्यार के साथ मेहनत करे अर्थात् उनके हुक्म की तामील करे तो उसे धैर्य और शान्ति प्राप्त होगी। अगर उनके हुक्म की तामील में गफ़लत करता है तो ज़माने के बदलने के और दु:ख-सुख के धक्के खाता है। ऐसी हालत में वह सिर्फ दु:ख और चिन्ता में ही सतगुरु को याद करता है; हालाँकि इस याद करने में भी शिष्य को लाभ मिलता है।

सतगुरु अभूल है, वह स्वयं शब्द है। लेकिन जब तक शिष्य नौ द्वार खाली करके उसको अन्दर प्रकट नहीं करता, उसका ध्यान कच्चा है, उसका भरोसा भी कच्चा है। क्या कभी कोई माँ चाहती है कि मेरा बच्चा दु:खी हो ? लेकिन जब बच्चे को तकलीफ़ होती है तो माँ उसके रोने-कलपने की परवाह नहीं करती और डॉक्टर से कड़वी दवा लाकर देती है। उसको बच्चे की बेहतरी मंजूर है।

आप घबरायें नहीं। ज़रा अन्दर झाँके। सतगुरु आपके साथ है। उसके प्यार में कभी कमी नहीं होती।

१३. जो लोग माला फेरते हैं या जपजी साहिब आदि का जप करते हैं, उनका ध्यान जप के समय बाहर रहता है। इसलिये जप का फायदा नहीं होता। जप का उद्देश्य सिर्फ ध्यान को अन्दर ले जाना है। जो लोग समझते हैं कि गीता या जपजी साहिब आदि के पढ़ने का फल मरने के बाद मिलेगा, वे भूल करते हैं। पाठ का मतलब तो ध्यान को बाहर से अन्दर ले जाना है। अगर पाठ से ध्यान बाहर रहे तो पाठ का मतलब ही नष्ट हो गया।

१४. ज़िन्दगी की सफलता और असफलता के बारे में दुनियादारों का ख़याल बिलकुल गलत और भ्रम-पूर्ण है। उनका आदर्श और उद्देश्य दुनियावी सुख और फायदे तक ही सीमित है। वे मनुष्य के चोले की कीमत और कदर नहीं जानते। मनुष्य-जन्म के असली उद्देश्य का उन्हें पता ही नहीं है। हमें उनकी नुक्ता-चीनी की कोई चिन्ता नहीं करना चाहिये। वे नहीं जानते कि मनुष्य-जन्म का असली उद्देश्य अन्दर जाकर सतगुरु के नूरी स्वरूप तथा शब्द से मिलाप करना है, ताकि हम जन्म-मरण के उस चक्कर से मुक्त हो सकें, जिसमें हम सृष्टि के आरम्भ से फँसे हुए हैं।

लोग यह भूल जाते हैं कि एक दिन मौत आकर उन्हें उन सब पदार्थों और शक्लों से बिछुड़ा देगी जिनसे उन्हें इतना प्यार और लगाव है और शायद मनुष्य-जन्म का यह दुर्लभ अवसर फिर युगों तक नहीं मिलेगा। यह भूल कर वे अपना बहुत बड़ा नुक्सान कर रहे हैं। वे भाग्यशाली हैं जिन्होंने

ज़िन्दगी में आनेवाली असफलताओं के द्वारा यह सबक सीख लिया है। जो असफलताएँ हमें यह पाठ सिखाती हैं वे बेशक उन दुनियावी सफलताओं से बेहतर हैं जो हमें अपने उद्देश्य से भुलाये रखती हैं।

१५. भक्ति से कोई खाली नहीं है। सब किसी न किसी के प्यार को लिये बैठे हैं। लेकिन कौन-सा प्यार मनुष्य के फायदे का है ? वह है गुरु का प्यार, गुरु की भक्ति। मनुष्य जिसकी भक्ति करेगा उसका ही रूप हो जायेगा। साथ जानेवाली भक्ति गुरु की ही है, जिसके द्वारा जीव अन्तर में सतगुरु के चरणों तक पहुँच सकता है। स्वामीजी महाराज फ़रमाते हैं, "गुरु भक्ति बिन शब्द में पचते, सो भी मानुष मूरख जान।" स्वरूप भी प्यार के द्वारा ही आयेगा, अगर प्यार गया तो स्वरूप भी गया। प्यार के साथ मेहनत करो तो स्वरूप और शब्द ठहरेंगे। कमाई में से प्यार और प्यार में से शब्द निकलता है।

१६. हमारे पिछले जन्मों के कर्म इस जन्म में हमारे संस्कार, मनोवृत्ति और विचारों के रूप में प्रकट होते हैं। हमारे प्रेम और घृणा, पसन्द व नापसन्द की जड़ें हमारे पिछले जन्मों में हैं, अर्थात् वे हमारे पिछले कर्मों के अनुसार हैं। इस बात को समझ कर हमें इन भावनाओं से ऊपर उठना चाहिये और इनके बन्धनों से मुक्त होने का यत्न करना चाहिये। सही तरीका तो यह है कि आप अपने कर्तव्य अनासक्त भाव से करें और उनका फल सतगुरु की मौज पर छोड़ दें।

१७. मनुष्य के अन्तर में नाम का समुद्र भरा पड़ा है, उसे चाहिये कि छक कर पी ले। बड़े भाग्य से मिलता है। लेकिन हमें विश्वास ही नहीं होता कि अन्दर है भी कि नहीं। हम ढीले-ढीले या आलस के साथ उठते हैं, ढीले-ढीले हो सोते हैं और आलस में ही सारा दिन बिता देते हैं। अगर दुनिया का काम ढीले रहने से नहीं हो सकता, तो ढीले रहने से भजन कैसे हो सकता है! नाम की कमाई तो बहादुरों का, सूरमाओं का काम है; ढीले सुस्त लोगों का काम नहीं। यह तो चुस्त होकर किया जाता है। सूरमा मनुष्य दुनिया के सख्त काम या मेहनत के काम करते हुए भी अभ्यास के लिये दो घण्टे निकाल लेंगे। लेकिन जो फ़ुरसत में हैं, उन्हें अभ्यास के लिये कभी फ़ुरसत नहीं मिलती।

अध्याय ४

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी

१. प्रारम्भिक जीवन

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी सरदार हरबंससिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र तथा हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के पौत्र हैं। आपने १२ दिसम्बर १९१६ को अपने ननिहाल मोगा (ज़िला फ़िरोज़पुर) में जन्म लिया। बचपन से ही हुज़ूर महाराजजी का आपके प्रति बहुत प्यार था। आपके वयस्क होने के बाद तो हुज़ूर आपकी योग्यता और बुद्धिमत्ता पर बहुत विश्वास करते थे और कई बार महत्वपूर्ण कार्यों के विषय में आपसे सलाह लिया करते थे। आपने भी कभी उन्हें केवल पितामह ही नहीं समझा, बल्कि परमपिता परमात्मा का रूप मानकर उनकी हर आज्ञा का पालन करना और उनकी रज़ा में राज़ी रहना अपना प्रथम कर्तव्य समझा।

सन् १९२०-२१ में, जब आपकी आयु लगभग चार-पाँच वर्ष की थी, हुज़ूर महाराजजी ने आपको अपने पास डेरे में बुलवा लिया। सतगुरु के निकट सम्पर्क, उनकी प्रेम-पूर्ण देख-रेख और डेरे के रूहानी वातावरण में आपकी बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था बीती। डेरे में रहते हुए ही आपने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की। इस प्रकार बचपन में ही हुज़ूर महाराजजी ने आपके अन्दर वह रूहानियत की ज्योति जाग्रत कर दी जिसे आगे जाकर देश-विदेश में प्रकाश और जागृति का प्रसार करना था।

डेरे आने के कुछ ही दिनों बाद हुज़ूर महाराजजी ने आपको शब्द-धुन बख़्शी और प्रतिदिन कुछ समय अभ्यास में बैठने का हुक्म दिया। आप उस छोटी उम्र में भी रोज़ नियमपूर्वक अभ्यास को समय देते थे।

बचपन से ही आप शान्त, गम्भीर और खुश-मिजाज थे। जिस गम्भीर उत्तरदायित्व को आगे जाकर सँभालना था, उसकी योग्यता के चिन्ह आपमें शुरू से ही थे। डेरे के कई अभ्यासी सत्संगियों को तो उन दिनों भी पता था कि आगे चलकर आप डेरे के प्रबन्ध तथा संगत की रहनुमाई का कार्य

करेंगे। श्री बाबूराम टेलर मास्टर* अपना यह अनुभव कभी-कभी सुनाया करते थे। एक दिन बाबूरामजी हुजूर महाराजजी के दर्शन और सत्संग के लिये डेरे आये। उस समय हुजूर ऊपर अपनी कोठी के चौबारे के बरामदे में बिराजमान थे। बाबूरामजी ने हुजूर को मत्था टेका और बैठ गये। उसी समय महाराज चरनसिंहजी, जिनकी उमर उस समय पाँच-छः वर्ष की होगी, खेलते हुए उधर से निकले। उन्हें देखते ही बाबूरामजी अपनी जगह से उठे और जाकर उनके चरणों में मत्था टेक कर राधास्वामी किया। बालक के चरणों में इस प्रकार सर झुकाते देखकर हुजूर बड़े महाराजजी ने पूछा, "बाबू राम! यह आपने क्यों किया?" इस पर बाबूरामजी ने उत्तर दिया, "हुजूर! मुझे तो यही दिखाई देता है।" हुजूर महाराजजी ने मुसकराकर फ़रमाया, "बाबूराम! जो तुमने किया वह ठीक है और जो तुम्हें दिखाई दिया वह दुरुस्त है।"

डेरे आने के कुछ समय बाद महाराज चरनसिंहजी ने बलसराय के प्रायमरी स्कूल में पढ़ाई शुरू की। स्कूल डेरे से करीब एक मील था और आप पैदल ही स्कूल जाते थे। पढ़ाई के बाद बाकी समय आप हुजूर महाराजजी के पास रहते। सत्संग बड़े प्रेम से सुनते। आप छः या सात वर्ष के थे तब एक दिन अपने कुछ साथियों के साथ आप हुजूर महाराजजी की सेवा में उपस्थित हुए और अर्ज़ की, "महाराजजी! हम भी सेवा करना चाहते हैं। कोई सेवा बताइये।" हुजूर दीन-दयाल बालक के इस निश्छल और सरल निवेदन पर बड़े प्रसन्न हुए। बीबी रली से फ़रमाया कि प्रसाद हो तो लाओ; इन्हें दें। (असली प्रसाद तो वही है जो सतगुरु प्रसन्न होकर बिना माँगें अपनी दया से दें।) हुजूर ने सब बच्चों को अपने हाथ से बेसन के लड्डुओं का प्रसाद दिया और मौजूदा सरकार से कहा, "डेरे में आवारा कुत्ते बहुत हो गये हैं। तुम्हारी सेवा यही है कि कुत्तों को डेरे से बाहर भगा दो।"

और सब बच्चे तो प्रसाद लेकर हँसते हुए बाहर निकल गये। लेकिन यह निराला बालक भोलेपन के साथ हुजूर महाराजजी के चरणों में झुका और मत्था टेक कर बोला, "लाठी मारे बिना तो कुत्ते निकलेंगे नहीं; हमें उनको मारने का पाप तो नहीं लगेगा?" यह सुनकर हुजूर ने बड़े प्यार के

* श्री बाबूराम टेलर मास्टर बाबा जैमलसिंहजी महाराज के सत्संगी थे। अभ्यासी और प्रेमी बुजुर्ग थे। पिछले कई वर्षों से लखनऊ में सत्संग में पाठ करते थे। अभी दो-तीन साल हुए चोला छोड़ा है। आपकी आयु ९० वर्ष से कुछ ऊपर थी।

साथ कहा, "नहीं, बेटा ! तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा । यह संगत की सेवा है ।" बच्चे की इस सरलता और भोलेपन ने पास खड़े सभी के हृदय में प्रेम की एक हिलोर उठा दी ।

हमने सोचा था कि बच्चे कुत्तों को क्या निकाल सकेंगे; महाराजजी ने उन्हें खुश करने के लिये ऐसे ही टाल दिया है । परन्तु एक-दो दिन बाद डेरे में एक भी कुत्ता न देख कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ । इस बालक ने बड़ी तत्परता के साथ यह सेवा सँभाली और इस छोटी उमर में ऐसी बुद्धिमत्ता और सूझ-बूझ का परिचय दिया कि लोग प्रशंसा किये बिना न रह सके। डेरे मे आने के कई दरवाज़े थे । इन सब दरवाज़ों पर आपने दो-दो लड़कों को खड़ा कर दिया । सिर्फ एक पश्चिम की ओर का दरवाज़ा खुला रखा गया जिसके द्वारा सभी कुत्तों को घेर कर बाहर निकाल दिया गया । फिर वहाँ भी आपने दो लड़कों को खड़ा कर दिया ताकि कुत्तों को वापस न आने दिया जाय । इस प्रकार कुत्तों को डेरे से बाहर भगा दिया गया ।

बलसराय ग्राम में प्रारम्भिक शिक्षा के बाद आपने बाबा बकाला के हाई-स्कूल में प्रवेश किया । बाबा बकाला डेरे से करीब तीन मील दूर है । उन दिनों बाबा बकाला जाने के लिये खेतों में से होते हुए पैदल जाना पड़ता था । आप इतनी छोटी आयु में रोज़ पैदल ही तीन मील जाते और आते थे । हुजूर को इस प्रकार बचपन से ही पैदल चलने का शौक और अभ्यास हो गया । स्कूल के बाद फुटबाल आदि खेल कर जब डेरे के लिये चलते तो शाम होने लगती और डेरे पहुँचते-पहुँचते अँधेरा हो जाता था ।

सतगुरु दीन-दयाल के प्रति प्रेम और शरण की भावना आपमें शुरू से ही थी । आप कभी-कभी फ़रमाते हैं कि "गद्दीनशीनी तक मैंने कोई सन्त-मत की पुस्तक नहीं पढ़ी । मेरे लिये हुज़ूर महाराजजी ही सन्त-मत थे ।" उनके वचन, उनके कार्य, वे स्वयं ही आपके लिये साक्षात सन्त-मत के मूर्त रूप थे । आपके इन वचनों को सुनकर मुझे हुज़ूर बड़े महाराजजी के वे शब्द याद आ जाते हैं जो आप सत्संग में अपने सतगुरु बाबा जैमलसिंहजी महाराज के लिये फ़रमाते थे, "मुझे किसी वेद-शास्त्र, ग्रन्थ-पोथी या सत्संग की ज़रूरत नहीं । मेरे लिये बाबाजी के पत्र ही सबसे ऊँचे ग्रन्थ और शास्त्र हैं ।"

महाराज चरनसिंहजी की किशोरावस्था का वृत्तान्त है, एक दिन हुज़ूर बड़े महाराजजी ने आपसे पूछा, "बरख़ुर्दार ! तुम बड़े होकर क्या बनना चाहोगे ? पूत, कपूत या सपूत ?" हुज़ूर महाराजजी ने आगे समझाया कि पूत तो वह है जो अपने पिता से मिली दौलत को सँभाले रखता है, न उससे फायदा

उठाता है, न उसे बढ़ाता है और न गँवाता है। कपूत वह होता है जो अपने पिता की दौलत को सँभालना और बढ़ाना तो दूर रहा, उसे बरबाद कर देता है। और सपूत वह है जो अपने पिता से प्राप्त दौलत की कद्र करता है, उसका उचित उपयोग करता है, उसे बढ़ाता है और अपने पिता का नाम रोशन करता है। यह समझाने के बाद महाराजजी ने आपसे फिर पूछा, "तुम क्या बनना चाहोगे?" आपने बड़ी सरलतापूर्वक जवाब दिया, "जी तो सबका सपूत बनने को करता है, लेकिन सब-कुछ आपके हाथ में है। जो भी आपकी मौज हो, बना दीजिये।" यह शरण और गुरु-भक्ति की भावना आपमें बाल्यावस्था से ही थी।

बचपन में बीबी रली आपकी देख-भाल करती थीं। बीबी रली को आप बुआजी कहते हैं और अब सारी संगत ही उन्हें बुआजी कह कर पुकारती है। बुआजी सुनाती हैं कि महाराज चरनसिंहजी बचपन से ही शान्त और सहिष्णु थे। अगर आपकी कोई वस्तु अन्य बच्चे ले लेते तो आप उन्हें कुछ न कहते, बल्कि वापस भी न माँगते। परिवार के अन्य बालक अक्सर आपके नये कपड़े, कलम आदि ले लेते। बड़े होने पर जब आपको कैमरा दिया गया तो आप बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु कुछ दिनों बाद आपका कैमरा परिवार के बच्चों ने ले लिया तो आपने न तो कुछ कहा और न कोई अप्रसन्नता प्रकट की।

एक बार बुआजी ने आपके लिये नये जूते मँगवाये और स्कूल जाते समय पहना दिये। आप रोज़ की तरह बाबा बकाला की ओर पैदल चल पड़े। जब करीब दो-तीन फर्लांग गये होंगे कि जूते पैरों में लगने लगे क्योंकि नाप से ज़रा छोटे थे। चलना मुश्किल हो गया। अतएव आपने जूते खोल कर एक झाड़ी में रख दिये और नंगे पैर चल पड़े। शाम को लौटते समय झाड़ी में से जूते वापस ले लिये और उन्हें पहन कर डेरे आ गये। यह क्रम रोज़ चलने लगा। आप डेरे से कुछ दूर जाकर जूते खोल देते और खेतों तथा ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर नंगे पैर चलते हुए तीन मील दूर स्कूल पहुँचते और शाम को वापस आते समय पहन लेते। शिकायत करना आपके स्वभाव में था ही नहीं। हुजूर बड़े महाराजजी उन दिनों रोज़ शाम को घूमने के लिये डेरे से बाहर जाया करते थे। एक दिन हुज़ूर उस ओर चल पड़े जिस ओर से आप स्कूल से लौट कर आते थे। शाम का समय था, आप वापस आ रहे थे। हुज़ूर ने आपको आते हुए देखा तो भाई शादी से कहा, "देखो, काका के पैरों में शायद जूते नहीं हैं।" जब आप पास आये और हुज़ूर को मत्था टेका तो हुज़ूर ने पूछा कि जूते कहाँ हैं? आपने अर्ज़ की कि जूतों को पहन कर चला नहीं

जाता इसलिये यहीं झाड़ी में रखे हैं। हुज़ूर महाराजजी प्यार के साथ आपको डेरे लाये और बीबी रली को दूसरे जूते मँगवाने का आदेश दिया। आप कभी किसी बात की शिकायत करना तो दूर रहा, असन्तोष तक प्रकट न करते थे।

हुज़ूर महाराजजी आपको बहुत प्यार करते थे। उन दिनों जब भी हुज़ूर सिकन्दरपुर जाते तो आपको अपने साथ ले जाते और साथ ही वापस ले आते। आपके लिये डेरा ही घर था तथा हुज़ूर महाराजजी ही माता-पिता और परिवार थे। उस छोटी उमर में भी आपकी हुज़ूर के प्रति गहरी भक्ति और प्रीति थी। श्री दुर्गादास सहगल, जो आजकल चण्डीगढ़ में आतिथ्य विभाग के संचालक हैं, अपना आँखों देखा एक वृत्तान्त सुनाते हैं। तब महाराज चरनसिंहजी की आयु दस-ग्यारह वर्ष की थी। एक दिन शाम को स्कूल से लौटने पर आपने हुज़ूर महाराजजी के चरणों में मत्था टेका और दोनों बाहों से चरणों से लिपट गये। हुज़ूर ने आपको प्यार के साथ थपथपाते हुए फ़रमाया, "बेटा! मैं तुझसे बहुत खुश हूँ। बता तुझे क्या चाहिये?" आपने उत्तर दिया कि कुछ नहीं चाहिये। हुज़ूर ने फिर पूछा, "जो भी तू माँगे, मैं देने को तैयार हूँ।" आपने फिर वही जवाब दिया। हुज़ूर दीन-दयाल ने तीसरी बार वही वचन दोहराये। इस पर आपने नम्रतापूर्वक अर्ज़ की, "मुझे तो सिर्फ़ आप ही चाहियें।" बालक का यह उत्तर सुन कर महाराजजी का मुख प्रसन्नतापूर्ण मुसकान में खिल उठा। फ़रमाया, "बेटा! तुम मुझे पाओगे।"

पढ़ाई के दिनों में भी आप संगत की सेवा करते रहते। कुत्ते भगाने की सेवा के बाद आपको लंगर में लालटेन साफ करने की सेवा मिली। उन दिनों डेरे में बिजली नहीं थी। मिट्टी के तेल की लालटेन और चिमनियाँ जगह-जगह रखकर जलाई जाती थीं। उन्हें रोज़ साफ करके तेल आदि भर कर तैयार किया जाता था। मिट्टी के तेल में भरी काली लालटेन को साफ करने की सेवा में आप भी बड़े प्रेम के साथ हाथ बँटाते। इसके बाद दूसरी सेवा जो आपने कुछ बड़े होने पर सँभाली और जिसे आप बहुत दिनों तक करते रहे, वह थी संगत के जूतों की सँभाल। (आज यह सोच कर रोमांच हो जाता है कि स्वयं सत्पुरुष हमारे जूते सँभालते रहे।) उन दिनों हज़ारों व्यक्ति अपने जूते मैदान में ही उतार कर सत्संग सुनने चले जाते थे। अतएव सत्संग की समाप्ति पर बड़ी गड़बड़ होती थी और कई लोगों के जूते गुम हो जाते थे। आपने इस सेवा की बहुत उत्तम व्यवस्था की। स्त्रियों व पुरुषों के जूते अलग-अलग रखने का प्रबन्ध किया, टिकट अथवा टोकन बनवा दिये और जूते रखने के लिये खन (खाने) बनवाये। अभी तक जूते रखने की यह

व्यवस्था चली आ रही है।

अपनी युवावस्था में जब भी हुज़ूर डेरे आते तो कोई न कोई सेवा अवश्य करते। लंगर में आप विविध प्रकार की सेवा करते थे, जिनमें गेहूँ, आटे और दालों के भारी थैलों को उठा कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, संगत में भोजन बरताना, पानी भरना आदि सेवाएँ भी थीं। संगत तथा अन्य सेवादारों के प्रति आपका व्यवहार इतना प्रेम और नम्रता से परिपूर्ण था कि उनको ऐसा न लगता कि आप सतगुरु दीन-दयाल के परिवार के सदस्य हैं। कभी-कभी कुछ नये सेवादार, जो आपको नहीं जानते थे, रूखाई के साथ आपको काम करने का आदेश देते। परन्तु आप प्रसन्नता और अनुशासन के साथ उनके हुक्म का पालन करते।

३० जनवरी, १९३३ को हुज़ूर महाराजजी ने आपको नाम-दान देकर उस मार्ग का भेद प्रदान किया जिस मार्ग पर लगाकर आपको लाखों जीवों का उद्धार करना था। यद्यपि आप अपने अभ्यास के विषय में कभी ज़िक्र नहीं करते हैं, पर आप नियमित रूप से अभ्यास करते थे। कालेज के दिनों में आपका ख़याल सत्संग और भजन-सुमिरन की ओर इतना ज़्यादा हो गया कि हुज़ूर महाराजजी ने आपसे फ़रमाया कि अभी तुम्हारा भजन करने का वक्त नहीं आया है, अभी अपनी पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान दो। बाद में जब सरसा में आप वकालत करते थे तो अपने निवास-स्थान के पास सत्संग घर की छत पर बनी छोटी कोठरी में जाकर भजन में बैठ जाते और नौकर को आदेश दे देते कि अगर कोई मित्र मिलने को आये तो कह दे कि आप घर में नहीं हैं।

सन् १९३३ में आपने बाबा बकाला के हाईस्कूल से मेट्रिक की परीक्षा पास की और रणधीर कालेज कपूरथला में इन्टरमीजिएट प्रथम वर्ष में प्रवेश किया। कपूरथला में आप प्रोफ़ेसर जगमोहनलालजी की देख-रेख में विद्याध्ययन करते रहे। कपूरथला डेरे से करीब बीस मील दूर है। इतवार तथा अन्य छुट्टियाँ आप हुज़ूर महाराजजी के पास डेरे में ही बिताते। गरमी की छुट्टियों में और जून, जुलाई व अगस्त के उमस भरे दिनों में आप जब भी डेरे आते तो सत्संग में हुज़ूर महाराजजी पर पंखा झलते। यह सेवा आप, आपके पिता सरदार हरबंससिंह साहब तथा लघु भ्राता कप्तान पुरुषोत्तमसिंह किया करते थे। परन्तु जब आप अकेले डेरे में होते तो सत्संग के पूरे समय हुज़ूर पर पंखा झलते रहते। हुज़ूर महाराजजी कई बार डेढ़-डेढ़, दो-दो घण्टे का सत्संग फ़रमाते और आप पूरे समय बग़ैर रुके पंखा झलते रहते।

महाराज चरनसिंहजी की बचपन की कुछ बातें जो मेरे अनुभव में आईं, यहाँ लिखना चाहूँगा। एक बात जो मैं कभी न भूल सकूँगा, वह है आपका हुज़ूर महाराजजी के चरण दबाने का दृश्य। जब आप और आपके भ्राता शोती (कप्तान पुरुषोत्तमसिंह, जिन्हें हम प्यार से शोती कह कर पुकारते थे) छोटे थे, तो कई बार आकर सतगुरु दीन-दयाल महाराज सावनसिंहजी के पैर दबाने के लिये बैठ जाते। अपने छोटे-छोटे हाथों से दोनों भाई हुज़ूर के पैर दबाते रहते। उस समय महाराज चरनसिंहजी का मुख अलौकिक ख़ुशी से खिल उठता था।

जब आपकी आयु पाँच या छः वर्ष की थी तब का मेरा अपना एक अनुभव है। मैं हर रविवार को डेरे आया करता था। कभी-कभी आपके और शोती के लिये कोई छोटी-सी चीज़ ले आता था, जैसे रंग-बिरंगे पेपर-वेट, रंगीन पेंसिलें, होल्डर आदि। एक दिन मैं आपके लिये एक तिकोनी हरे रंग की पेंसिल ले आया। उसे हाथ में लेकर आपने फ़रमाया, "चाकू तो आप लाये नहीं, इस पेंसिल को बनाऊँगा कैसे?" मैंने कहा, "अच्छा, बेटा! अगले इतवार ज़रूर ले आऊँगा?" इस पर आपने कहा, "नहीं। अब चाकू क्या आयेगा!" मैंने कहा कि अगली बार ज़रूर ले आऊँगा। परन्तु आप बोले, "जो लाना था आप ला चुके। अब क्या लायेंगे!" यह कह कर आप चले गये।

अगले शनिवार को डेरे आने से पहले मैंने दो चाकू और दो डायरियाँ मँगवाईं और अपने चपरासी को दीं कि इन्हें मेरे हेंडबेग में रख दो। जब डेरे पहुँचा तो आप और शोती कुछ और लड़कों के साथ दरवाज़े के पास खेल रहे थे। मैंने आपसे कहा, "तुम्हारा चाकू ले आया हूँ, दो फल का है। आओ, ले लो।" आपने तो मेरी बात मानो अनसुनी कर दी, पर शोती भाग कर मेरे पास आ गये। जब मैंने अपना बेग खोला तो यह देख कर हैरान रह गया कि उसमें न चाकू थे न डायरियाँ। पूरा सामान निकाल कर देखा लेकिन ये चीज़ें न मिलीं। बड़ी हैरानी हुई, अपनी बात पूरी न कर सकने पर शर्म भी आई। अगली बार दो चाकू ख़ुद मैंने अपने कोट की जेब में डाले, लेकिन डेरे आने पर देखा तो जेब ख़ाली थी। कुछ दिनों बाद बड़े दिनों का त्योहार आया। मैंने जालन्धर छावनी से करसदजी पारसी की दुकान से कुछ सुन्दर खिलौने और दो चाकू लेकर ख़ुद अपने सामने एक डिब्बे में बन्द करवाये, परन्तु वह डिब्बा दुर्भाग्य से रेलगाड़ी में ऊपर की सीट पर ही पड़ा रह गया। बाकी सामान तो उतार लिया, लेकिन डिब्बे को भूल गये। डेरे पहुँचने पर आप मेरे सामने आये और हँस कर भाग गये।

बाद में एक समय वह भी आया जब कपूरथला रियासत का स्टेशनरी विभाग कई वर्ष तक मेरे अधीन रहा, जहाँ से हर प्रकार की स्टेशनरी की वस्तु हमें लागत के मूल्य पर खरीदने की रियासत की ओर से इजाज़त थी, परन्तु इस सन्त-बालक के वचन के बाद एक पिन तक भी मैं इसके लिये न ला सका।

इसी प्रकार एक और घटना का उल्लेख करता हूँ। यह भी आपके बचपन के समय की बात है। शाम के सत्संग का समय था। कोई चार बजे होंगे। पुस्तकालय के सामने के मैदान में सत्संग के लिये दरियाँ बिछाई जा रही थीं। इसी समय आप भागते हुए हमारे पास से निकले और कहते गये, "अन्दर बिछायत करो, बाहर मत करो।" बिछायत करने वालों को इस बालक की बात पर भला क्या ध्यान देना था, वे अपने काम में लगे रहे। बिछायत हो गई और सत्संगी आकर बैठने लगे। मैं हुज़ूर के साथ-साथ सत्संग में आता था। हुज़ूर की कोठी की ओर जा रहा था कि आप आये और मेरा हाथ पकड़ कर मुझे रोकते हुए कहने लगे, "आपकी दरियाँ भीग जायेंगी। बिछायत अन्दर करवाओ।" मैं इसे बाल-सुलभ सरल विनोद समझ कर हँस पड़ा। धूप तेज़ी से चमक रही थी। आकाश बिलकुल साफ था। अगर मैं उस समय जाकर कहता कि बिछायत अन्दर करो नहीं तो दरियाँ भीग जायेंगी, तो संगत मुझे पागल समझती। अतएव मैंने आपकी बात को एक बच्चे की बात से अधिक महत्व न दिया और ऊपर हुज़ूर के पास चला आया। हुज़ूर उस समय किसी सत्संगी को वक्त दे रहे थे। मुझे बरामदे में खड़े कोई दस मिनिट ही बीते होंगे कि क्या देखता हूँ कि पश्चिम की ओर से काली आँधी उठ रही है और तेज़ी से आसमान पर छा रही है। इतने में हुज़ूर बाहर तशरीफ़ लाये और बोले, "सत्संग में चलें।" मैंने अर्ज़ की, "हुज़ूर! बिछायत तो हो गई है, संगत भी बैठी है। लेकिन पश्चिम की ओर से गहरी घटा उठ रही है।" महाराजजी ने देख कर फ़रमाया, "यह तो आँधी और बारिश की घटा है। सेवादारों से कहो कि बिछायत फौरन अन्दर कर लें।" हुज़ूर के मुख से भी वही शब्द सुन कर मैं आश्चर्यचकित रह गया।

रणधीर कालेज कपूरथला से इटण्रमीजिएट पास करके आपने गोर्डन कालेज रावलपिंडी में बी. ए. के प्रथम वर्ष में प्रवेश किया। अपनी उदारता, सहिष्णुता और हास्य-प्रियता से आप शीघ्र ही अपने कालेज में लोक-प्रिय हो गये। जो भी विद्यार्थी आपके मित्र बन गये उनकी मित्रता आप हमेशा निभाते आये हैं। हुज़ूर के सहपाठी और मित्र आज भी आपसे वही प्रेम और मित्रतापूर्ण व्यवहार पा रहे हैं। वे आपके बचपन तथा विद्यार्थी जीवन के

समय की कई बातें सुनाते हैं। मेरा पुत्र सुरेश्वर बचपन में काफी समय डेरे में रहता था और आपके साथ खेलता था। वह काफी शैतान और चंचल था। वह कई बार सुनाता है कि आप बचपन में भी बहुत सौम्य और शान्त थे। उन दिनों भण्डारे के समय संगत के लिये छोटे-छोटे तम्बू और छोलदारियाँ लगाई जाती थीं। एक बार बच्चों ने उन पर खेलना शुरू किया। रस्सी पकड़ कर छोलदारियों पर एक ओर से चढ़ जाते और दूसरी तरफ उतार की ओर से फिसल जाते। सेवादार मना करते और अन्दर रहने वाली संगत अप्रसन्न होती; कभी-कभी तम्बू फट भी जाते। महाराज चरनसिंहजी भी और बच्चों के साथ थे, परन्तु अलग खड़े देख रहे थे। सुरेश्वर तथा अन्य साथियों ने बहुत ज़ोर दिया कि तुम भी चढ़ो और फिसलो, बड़ा अच्छा लगता है। बहुत कहने पर आप राज़ी हो गये, परन्तु छोलदारी के निकट पहुँच कर रुक गये और वापस आ गये। सुरेश्वर बताते हैं कि हम लोग अगर उन्हें किसी शरारत पर मजबूर भी कर देते, तो भी वे कोई अनुचित कार्य नहीं कर पाते थे।

स्कूल और कालेज में खेल के वक्त में खूब खेलते थे। हाकी, फुटबाल और टेनिस का शौक था और तीनों ही खेलों में आप निपुण थे। कालेज में आपके मित्र आपकी चीज़ें उठा ले जाते, परन्तु आप कुछ न कहते। एक बार सिकन्दरपुर से कोई व्यक्ति लाहौर आया। घर से आपके लिये बेसन के लड्डुओं का एक डब्बा उसके साथ भिजवाया गया था। डब्बा देखते ही आपने होस्टल में अपने मित्रों को आवाज़ दी और कुछ ही मिनिट में सबने मिलकर डब्बा साफ कर दिया। इसी प्रकार एक बार आपका महीने का हाथ खर्च का रुपया सिकन्दरपुर से आनेवाला कोई सत्संगी साथ ले आया। आप न मिले तो उसने रुपया आपके एक निकट सहपाठी को दे दिया कि आपको दे दे। घर से जब पत्र आया कि आपके खर्च का रुपया एक सत्संगी आपके अमुक सहपाठी को दे गया है, तो आपने उससे पूछा कि घर से रुपये आये थे वे कहाँ हैं? सहपाठी ने जवाब दिया, "आये तो थे, पर मुझसे खर्च हो गये।" इस पर आपने शान्त भाव से फ़रमाया, "कोई बात नहीं, अगले महीने फिर आ जायेंगे।"

इन छोटी-छोटी बातों को लिखने का मेरा तात्पर्य यह है कि बचपन से ही आप अन्य बच्चों से भिन्न थे। स्वभाव की गंभीरता, सहनशीलता, उदारता आदि उस समय भी आपमें प्रचुर मात्रा में थी। सतगुरु के प्रति प्रेम और भक्ति, उनकी इच्छा व मौज में रहने की भावना, संगत की सेवा का चाव, आदि गुण छोटी उम्र से ही प्रकट हो रहे थे। कभी किसी ने आपके मुख से सख्त लफ़्ज नहीं सुने, क्रोध करते और नाराज़ होते न देखा। आप किसी

का दिल नहीं दुखा सकते थे। शुरू से ही आपका व्यक्तित्व औरों से कुछ अलग था, असाधारण था। सन्तों के गुण और लक्षण आपमें बाल्यावस्था से ही प्रकट हो रहे थे। इन्हीं बातों को याद करके आपकी गद्दीनशीनी के दिन मैंने अपने भाषण में संगत से कहा था कि सन्त बचपन से ही सन्त होते हैं।

बी. ए. की डिग्री प्राप्त करने के बाद आपने लॉ कालेज लाहौर से कानून की डिग्री प्राप्त की और १९४२ में सरसा और हिसार में प्रेक्टिस शुरू की। अपनी प्रेक्टिस की पूरी आमदनी आप अपने सतगुरु हुजूर महाराज सावनसिंह जी के चरणों में लाकर रख देते थे। हुजूर महाराजजी उसमें से जैसा उचित समझते कुछ रुपया आपको देते, कुछ सेवा में भिजवाते तथा बाकी अपने पास अमानत के रूप में रख लेते।

आपकी बुद्धिमत्ता, सूझ-बूझ, परिश्रम और सच्चाई के फलस्वरूप कुछ ही समय में आपकी प्रेक्टिस जम गई और आपकी गणना इलाके के प्रमुख वकीलों में होने लगी। आपके साथी वकील तथा जज भी आपकी ईमानदारी से प्रभावित थे और आपका आदर करते थे। सरसा में आप शीघ्र ही लोक-प्रिय हो गये और कुछ राजनैतिक नेताओं ने १९४५ में आपसे चुनाव में खड़े होने का अनुरोध किया। आपने अपने विषय में कोई भी निर्णय अपने सतगुरु हुजूर बड़े महाराजजी से पूछे बगैर नहीं किया। अतएव आप हुजूर की सेवा में आदेश लेने के लिए आये।

हुजूर महाराजजी ने देखा कि आपके मित्रों और परिवार के सदस्यों की बहुत इच्छा है कि आप चुनाव में ख़ड़े हों अतएव आप से फ़रमाया कि जैसा उचित समझो कर लो। किन्तु हुजूर ने तो आपको और ही कार्य के लिए चुन रखा था। जब आपके साथियों तथा कुछ पुराने सत्संगियों ने हुजूर से इजाज़त तथा चुनाव में सफलता के लिए आशीर्वाद के लिए विनती की तो हुजूर ने स्पष्ट कह दिया कि चुनाव और राजनीति आपका कार्य नहीं है। आपसे बाबाजी महाराज को कुछ और ही काम लेना है।

जून १९४३ में हुजूर महाराजजी ने आपकी सगाई रावबहादुर शिवध्यान सिंहजी, रईस पिसावा (ज़िला अलीगढ़), की सुपुत्री के साथ की। हुजूर महाराजजी इस सम्बन्ध से बहुत प्रसन्न थे। रावबहादुर शिवध्यानसिंहजी, जिन्हें हम सब रावसाहिब कहते थे, बड़े प्रेमी सत्संगी थे। शुरू से धार्मिक झुकाव था और पूजा-पाठ के शौकीन थे। हुजूर महाराजजी के सम्पर्क में आये, सत्संग सुने और नाम ले लिया। पूजा-पाठ छूट गया और सतगुरु की कृपा से नाम के रंग में रंग गये। रईस और जागीरदार होते हुए भी आपमें नम्रता कूट-कूट

कर भरी हुई थी। गुरु और गुरु की संगत के प्रति बहुत प्रेम था। आपके प्रेम-पूर्ण आग्रह के फल-स्वरूप हुज़ूर महाराजजी मई, १९४३ में सत्संग के लिए पिसावा भी गये थे। वहाँ हुज़ूर ने रावसाहब के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर रामकिशनसिंह तथा आपके परिवार के सदस्यों और कई अन्य व्यक्तियों को नाम बख़्शा था।

२५ नवम्बर १९४४ की सुबह हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी का शुभ-विवाह पिसावा में रावसाहब की सुपुत्री बीबी हरजीत कौर के साथ सम्पन्न हुआ। बरात में हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज, परिवार के लोग तथा कई प्रमुख सत्संगी शामिल थे। हुज़ूर महाराजजी ने पिसावा में दो-तीन सत्संग भी बख़्शे। रावसाहब की खातिर और प्रेम से सब बराती बहुत प्रभावित हुए तथा हुज़ूर महाराजजी बहुत प्रसन्न हुए।

सतगुरु के परिवार के इतने निकट आ जाने पर भी रावसाहब की नम्रता और सतगुरु-भक्ति में कोई कमी न आई। हुज़ूर बड़े महाराजजी के बाद सरदार बहादुर महाराजजी के प्रति भी रावसाहब का वही भाव बना रहा। जब अक्तूबर १९५१ में महाराज चरनसिंहजी ने सतगुरु पद का भार सँभाला तो रावसाहब ने बग़ैर किसी संकोच या दुबिधा के आपको सतगुरु के रूप में स्वीकार किया और कभी उन्हें अपने दामाद के रूप में न देखा। अपनी सुपुत्री बीबी हरजीत कौर को भी आपने उस दिन से कभी नाम लेकर न बुलाया और हमेशा उनका आदर करते रहे। रावसाहब ने १२ जनवरी १९६४ में ७६ वर्ष की आयु में चोला छोड़ा।

सितम्बर १९४७ में शासन ने महाराज चरनसिंहजी को सरसा में जज (न्यायाधीश) के पद पर नियुक्त करने का निश्चय किया। आपके परिवार के लोग, मित्र तथा प्रिय-जन बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु आपने अपने सतगुरु की आज्ञा के बिना इस विषय में कोई भी निर्णय लेना स्वीकार न किया। सितम्बर के अन्त में हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी अस्वस्थ थे तथा इलाज के लिए अमृतसर तशरीफ़ ले गये थे। हुज़ूर के स्वास्थ्य का समाचार सुन आप भी अमृतसर आये। जब हुज़ूर का स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ तो एक-दो पुराने सत्संगियों ने हुज़ूर से अर्ज़ की कि पंजाब सरकार सरदार चरनसिंहजी को जज बनाना चाहती है। इस पर हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "नहीं! यह काम इनके लिये नहीं है।" कुछ लोग फिर भी हुज़ूर से अर्ज़ करते रहे। एक दिन एक प्रमुख सत्संगी (जो स्वयं एक सेवा-निवृत्त सेशन जज थे) ने महाराजजी से काफी आग्रह-पूर्वक विनती की कि हुज़ूर इन्हें जज का पद स्वीकार करने

की इजाज़त दे दें। हुज़ूर ने उत्तर दिया, "जज बनने में क्या रखा है ! जज क्या होता है ! यों ही इन पर इस ओर जाने का दबाव मत डालो।" फिर हुज़ूर ने आपसे कहा, "बेटा ! जज बन कर क्या करना है ? देख तो सही बाबाजी की क्या मौज है।" कुछ देर बाद हुज़ूर ने फ़रमाया, "अब प्रेक्टिस छोड़ दे और फार्म पर अपने पिता की मदद कर, उनकी सेहत कमज़ोर हो रही है।"

इस आदेश का पालन करते हुए आपने अपनी बहुत अच्छी प्रेक्टिस छोड़ दी। अक्तूबर १९४६ से २ अप्रेल १९४८ तक आप हुज़ूर महाराजजी की सेवा में ही रहे। हुज़ूर के ज्योति-ज्योत समाने के बाद आप सिकन्दरपुर आ गये और अपने पिताजी को फार्म के कार्य में सहायता देने लगे। आपने शीघ्र ही फार्म तथा शक्कर के कारखाने का पूरा भार बड़ी योग्यतापूर्वक सँभाल लिया।

हुज़ूर के पिता

हुज़ूर महाराज चरनसिंह के पिता सरदार हरबंससिंह साहब के विषय में दो शब्द लिखना आवश्यक है। आप हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के सबसे छोटे सुपुत्र थे। आप हमेशा अपने सतगुरु और पिता के हुक्म में रहे। संसार का सब कार्य अपने सतगुरु का कार्य समझ कर करते रहे। स्वभाव से आप शान्त, गंभीर और कोमल-हृदय थे। जब हुज़ूर महाराजजी ने सरसा में ज़मीनें खरीदीं तो आपने वहाँ का कार्य सँभाला। तब ये ज़मीनें बिलकुल उजाड़ और ऊबड़-खाबड़ थीं। आपने दिन-रात मेहनत करके उन्हें ठीक किया और उपजाऊ बनाया। अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न करके आप सुबह दो-बजे से उठ कर कार्य करवाते और कई बार ख़ुद घण्टों ट्रेक्टर चलाते। जब हुज़ूर महाराजजी ने अपनी सन्तान में ज़मीन का बटवारा किया तो सबको बुला कर उनकी राय जाननी चाही। सरदार हरबंससिंहजी ने अर्ज़ की, "जी, ये मेरे बड़े भाई साहब हैं, जो ज़मीन इन्हें पसन्द हो वह दे दें।" आपने अविकसित अंश को स्वीकार करके फिर से धैर्य-पूर्वक परिश्रम किया और उसे उपजाऊ बना लिया।

ज़मीन की पैदावार में से आप शुरू से ही बहुत-सा अनाज, गुड़, शक्कर आदि ट्रकों में लाद कर डेरे में सेवा में भेजते रहते थे। जब हुज़ूर महाराज जी सिकन्दरपुर तशरीफ़ लाते तो संगत भी साथ ही आ जाती और आपके यहाँ महीनों दो-दो तीन-तीन सौ सत्संगी मुफ़्त खाना खाते। जब संगत आती तो आप बड़े प्रसन्न होते। आपकी धर्मपत्नी माता शामकौर (महाराज

चरनसिंहजी की माता) अपने हाथ से खाना बनातीं। सुबह तीन-चार बजे उठ कर संगत के लिए दूध, चाय, नाश्ते आदि की सेवा स्वयं करतीं, फिर खाना बनातीं और यह सब कार्य रात को ग्यारह-बारह बजे तक करती रहतीं। जब तक संगत खाना न खा लेती, आप भी न खातीं। एक बार का वृत्तान्त है। जून का महीना था, सख्त गरमी थी। दोपहर के एक बजे बाद माता शामकौर संगत को भोजन करवा कर खाना खाने जा रही थीं कि हुज़ूर महाराजजी ने आपको आवाज़ दी और फ़रमाया, "बेटा, करीब पच्चीस सत्संगी अभी अभी आये हैं। उन्हें खाना खिला दो।" माता शामकौर सुबह चार बजे से काम-काज में व्यस्त थीं, खाना खाकर कुछ देर आराम करने का खयाल था। परन्तु सतगुरु के वचन सुनते ही आपने फौरन रसोई बनाना शुरू कर दिया। आपने अपने हाथ से तन्दूरी रोटी बनाना शुरू किया। उस सख्त गरमी में तन्दूर के पास खड़े रहना तक कठिन था। परन्तु आप बड़े प्रेम के साथ रोटी बनाने लगीं। आप रोटी सेकती जातीं और माता किशन कौरजी उन्हें घी से चुपड़ती जातीं। खाना तैयार करके आपने संगत को बड़े आदर तथा भाव के साथ भोजन कराया। जब सब खा चुके तब आपने करीब चार बजे भोजन किया। जब चौके से बाहर आईं तो हुज़ूर महाराज जी ने आपको बुला कर फ़रमाया, "बेटा, तेरी सेवा और प्रेम से मैं बहुत खुश हूँ। तेरा भंडार हमेशा अखुट रहेगा। बाबाजी महाराज की दया-मेहर तुझ पर हमेशा रहेगी।" सेवा और प्रेम का यही भाव माता शामकौर में अभी तक है और इस अवस्था में भी आप सिकन्दरपुर में आनेवाली संगत की सेवा का पूरा कार्य अपने निरीक्षण में करवाती हैं। गुरु-भक्ति, प्रेम, सेवा की भावना और हृदय की विशालता हुज़ूर के पूरे परिवार की ही विशेषता है।

सरदार हरबंससिंह साहिब का पूरा जीवन एक सन्त और तपस्वी का सा जीवन था। आपने कभी सतगुरु के हुक्म को न टाला। हर कार्य उनसे आदेश लेकर करते रहे। जब सरदार बहादुर महाराजजी गद्दी पर आये तो उन्हें भी अपने सतगुरु दीन-दयाल सावनसिंहजी महाराज का ही रूप समझा और अपना हर कार्य उनसे उसी प्रकार पूछ कर करते रहे। आप उसी प्यार और भक्ति के साथ उनसे सिकन्दरपुर पधारने की विनती करते और उन्हें अपना सतगुरु तथा अपने परिवार का मुखिया मान कर उनकी सेवा करते। जब सरदार बहादुर महाराजजी ने आपके ज्येष्ठ पुत्र सरदार चरन-सिंहजी को जानशीन बनाया, उस समय सरदार हरबंससिंहजी का स्वास्थ्य

कमज़ोर हो गया था, शरीर तथा जोड़ों में दर्द रहता था। फार्म तथा शक्कर की फेक्ट्री का पूरा कार्य आप महाराज चरनसिंहजी पर छोड़ चुके थे। पुत्र को सतगुरु पद का भार मिलने का अर्थ हुआ कि सारी ज़िम्मेदारी फिर से आप पर आ गई। लेकिन आपने सतगुरु के आदेश के सम्मुख सर झुका दिया। जब महाराज चरनसिंहजी आपकी उम्र और गिरते हुए स्वास्थ्य को देख कर कुछ चिन्तित हो उठे तो आपने उन्हें हौसला बँधाया और इस भार को निश्चिन्त हो स्वीकार करने की प्रेरणा दी। जिस प्रकार आपने अपने पिता को पिता नहीं बल्कि हमेशा सतगुरु समझा, उसी प्रकार गुरु-गद्दी पर बिराजने के बाद पुत्र को पुत्र भाव से नहीं देखा।

सन् १९५६ में सरदार हरबंससिंहजी का स्वास्थ्य बहुत कमज़ोर हो गया। जुलाई भण्डारे के बाद आप डेरे में बीमार हो गये। एक दिन हुजूर महाराज चरनसिंहजी से बोले, "मुझे हुजूर महाराजजी से पासपोर्ट[1] तो मिल गया है, अब आपसे वीसा[2] चाहिये।" यह सुन कर महाराजजी कुछ क्षण मौन रहे, फिर बोले, "अगर हुजूर महाराजजी ने इजाजत दे दी है, तो मैं कैसे रोक सकता हूँ!" उस दिन के बाद से हुजूर के पिताजी का खयाल ज्यादा समय अन्दर ही लगा रहा और आठ-दस दिन बाद १६ अगस्त १९५६ को वे इस नश्वर शरीर को छोड़ कर सतगुरु दीन-दयाल के चरणों में समा गये।

दूसरे दिन सुबह संस्कार किया गया। परन्तु अपने पिता के संस्कार से पहले हुजूर महाराज चरनसिंहजी ने सत्संग किया। आपने स्वामीजी महाराज का शब्द "तजो मन यह दुख सुख का धाम" लिया और हमेशा की तरह अपनी मधुर वाणी में प्रेम और शान्ति के साथ करीब एक घण्टे तक व्याख्या की।

हुज़ूर के परिवार के अन्य सदस्य

इसी प्रसंग में हुज़ूर के परिवार के अन्य सदस्यों का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

हुजूर की माता श्रीमती बीबी शामकौरजी का ज़िक्र ऊपर आ चुका है। आप मोगा के प्रतिष्ठित रईस सरदार प्रतापसिंहजी ज़ैलदार की सुपुत्री हैं। माता शामकौरजी के एक भ्राता सरदार तारासिंहजी पटियाला हाईकोर्ट के जज थे। दूसरे भ्राता लालसिंहजी अंग्रेज़ों के ज़माने में फौज में कप्तान थे। कमांडर-इन-चीफ के सुझाव पर ब्रिटिश सरकार ने आपको इंग्लैंड में सम्राट

---

१. पार-पत्र, एक देश से दूसरे देश में जाने की इजाजत का लेख।
२. प्रवेश-पत्र, किसी दूसरे देश में प्रवेश करने की अनुमति का लेख।

जार्ज पंचम के ए. डी. सी. के पद पर नियुक्त किया था। तीसरे भाई सरदार प्रेमसिंहजी तहसीलदार थे। आपके चौथे भ्राता सरदार भागसिंहजी ज़ैलदार हैं।

माता शामकौरजी कृपा, करुणा और प्रेम की मूर्ति हैं। एक परम-सन्त की पुत्र-वधू और दूसरे महान सतगुरु की माता में जो मानवता, उदारता और नम्रता के गुण होने चाहियें, वे आप में प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं।

हुज़ूर के छोटे भाई कप्तान पुरुषोत्तमसिंह भी सहृदय, शान्त-स्वभाव और गम्भीर हैं। आपने बी. ए., एल. एल. बी. पास करने के बाद सेना में प्रवेश किया और कप्तान का पद प्राप्त किया। जब हुज़ूर पर गुरु-गद्दी का उत्तर-दायित्व आया तो आपने सेना में अपने उज्ज्वल भविष्य की चिन्ता न की और समय से पहले कार्य-मुक्त होकर सिकन्दरपुर आ गये। आप मेजर का पद प्राप्त करने वाले थे। समय से पहले त्याग-पत्र देने के कारण आपको पेंशन न मिल सकी और बहादुरी का वह पुरस्कार भी न मिल सका जो फौजी हाई-कमाण्ड के आदेशानुसार आपको पेंशन के साथ मिलने वाला था। एक बार रावलपिंडी रेलवे स्टेशन पर एक सिपाही ने लोगों पर गोलियां चलाना शुरू कर दी थीं। कप्तान पुरुषोत्तमसिंह ने वीरतापूर्वक निहत्थे ही उसका सामना करके उससे भारी बन्दूक छीन ली। इस साहसपूर्ण कार्य में आपके शरीर पर कई घाव आये और कई दिन तक अस्पताल में रहना पड़ा। आप सिकन्दरपुर में रहकर फार्म का कार्य बड़ी योग्यतापूर्वक सँभाल रहे हैं।

हुज़ूर के सब से छोटे भाई सरदार जगजीतसिंह का देहान्त युवावस्था में ही अगस्त १९४८ में हो गया था। आप प्रसन्नचित्त, नेक व होनहार युवक थे। आपको नाम नहीं मिला था। अन्तिम दिनों में आपको नाम प्राप्त करने की तीव्र इच्छा थी। आपके देहान्त के दो-एक दिन पहले आपको हुज़ूर महा-राजजी ने अन्दर दर्शन दिये और नाम प्रदान किया।

हुज़ूर की चार बहनें हैं, जिनके नाम हैं बीबी सतनामकौर, बीबी गुरनाम कौर (धर्मपत्नी कर्नल तेजेन्द्रसिंह सिद्धू), बीबी महेन्द्रकौर (धर्मपत्नी सरदार गुरुमुखसिंह ढिल्लन) और बीबी बलजिन्द्रकौर (धर्मपत्नी मेजर प्रतिपालसिंह मान)। सबसे बड़ी बहिन बीबी सतनामकौर के पतिदेव का देहान्त हो चुका है, आपके एक पुत्र और एक पुत्री है।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी की धर्मपत्नी बीबी हरजीतकौर पिसावा के प्रसिद्ध रईस व प्रेमी सत्संगी रावबहादुर शिवध्यानसिंहजी (जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है) की पुत्री हैं। आप नेक, बुद्धिमान और सरल-हृदय हैं।

जब हुज़ूर को सरदार बहादुर महाराजजी ने अपना जानशीन बनाया, उस समय बीबी हरजीतकौर की आयु लगभग २४ वर्ष की थी और गोद में छः महीने का पुत्र था। उस समय पति का सहसा परमार्थ में जीवन अर्पण करना बहुत कठिन परीक्षा थी। लेकिन आपने बड़े साहस, दृढ़ता और गम्भीरता से सतगुरु की आज्ञा के आगे सर झुका दिया और तपस्या-पूर्ण जीवन बिताना स्वीकार किया। उस समय आपका ख़याल करके सब घरवालों का दिल दहल जाता था। स्वयं हुज़ूर भी विचलित हो सकते थे, परन्तु आपने अर्ज़ की, "मैं नहीं चाहती कि सतगुरु के हुक्म के पालन में और संगत की रहनुमाई की इस ज़िम्मेदारी को मंज़ूर करने में आपके मार्ग में बाधक बनूँ। आप निस्संकोच महाराजजी के आदेश को स्वीकार करें।" संगत के प्रति आप में सेवा का भाव प्रशंसनीय है। घर का कार्य तथा बच्चों की देख-भाल करते हुए भी आपने प्राकृतिक-चिकित्सा का अध्ययन किया, परीक्षाएँ पास की और हुज़ूर की इजाज़त से डेरे में एक प्राकृतिक-चिकित्सा अस्पताल खोला है। चिकित्सा-केन्द्र में सेवाभावी शिक्षित कार्यकर्ता हैं। इलाज के लिए ४०-५० रोगी नित्य आते हैं और आपकी कुशल सेवा और योग्यता का लाभ उठाते हैं।

हुज़ुर के दो पुत्र और एक पुत्री है। पुत्र हैं सरदार जसबीरसिंह[१] और राणा रणवीरसिंह[२]। दोनों पंजाब में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। सुपुत्री निर्मलजीतकौर ने बी. ए. तक शिक्षा प्राप्त की है। इनका विवाह देहली के प्रसिद्ध व्यापारी परिवार में सरदार भाई मोहनसिंह के सुपुत्र डॉक्टर सरदार परमेन्द्रसिंह के साथ हुआ है। डाक्टर परमेन्द्रसिंह बुद्धिमान, सहृदय और विनयशील नवयुवक हैं और एक अच्छे सत्संगी के गुणों से परिपूर्ण हैं।

२. गद्दीनशीनी

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने पंजाब विश्वविद्यालय (लाहौर) से बी.ए., एल. एल. बी. पास करके सरसा में वकालत शुरू की और शीघ्र ही आप वहाँ के श्रेष्ठ वकीलों में गिने जाने लगे। वहां के समाज और जनता में आप इतने लोक-प्रिय हो गये कि सन् १९५१ में कांग्रेस तथा कुछ अन्य पार्टियों ने आपसे पंजाब विधान-सभा का चुनाव लड़ने का आग्रह किया। यदि आप राजनीति में आ जाते तो संभव था कि आप मंत्री बनाये जाते। परन्तु कुल-मालिक के

१. सरदार जसबीरसिंह आजकल विदेश में उच्च शिक्षा पद पर काम कर रहे हैं।
२. राणा रणबीरसिंह अपना कृषि फार्म का काम बड़ी सफलता-पूर्वक संभाले हुए हैं।

दरबार से तो आपको रूहानियत का बादशाह बनाने का फैसला हो चुका था। चुनाव में खड़े होने के लिए सरदार बहादुर महाराजजी ने स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया। इसका पूरा विवरण पहले दिया जा चुका है।

हुज़ूर सरदार बहादुरजी के मना करने के बाद किसी प्रकार के तर्क का प्रश्न ही नहीं उठता था। आपने जिस प्रकार हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज के सुझाव पर १९४७ में अपनी जमी जमाई बहुत अच्छी प्रेक्टिस छोड़ दी थी, उसी प्रकार चुनाव का ख़याल भी दिल से निकाल दिया। बचपन से ही आपका स्वभाव था कि आप किसी आकांक्षा या इच्छा के पीछे नहीं पड़ते थे। यदि कोई इच्छा दिल में होती और वह साधारण रीति से पूरी हो जाती तो आप सन्तुष्ट रहते और यदि पूरी न होती तब भी दिल में अफ़सोस न होता। हर तरह से मालिक की मौज में सन्तुष्ट और निश्चिन्त रहते। आपने सरदार बहादुरजी के हुक्म को अन्तिम निर्णय मान कर चुनाव वाली बात को बिलकुल भुला दिया; यद्यपि आपके मित्र और प्रिय-जन इस पर अवश्य निराश और दुःखी हुए।

जब हुज़ूर ने डेरे में सतगुरु पद का भार सँभाला तो उन राजनैतिक नेताओं को, जो आपसे चुनाव में खड़े होने का अनुरोध कर रहे थे, बड़ी खुशी हुई। १९५१ के नवम्बर में वे लोग आपके पास आये और बोले कि हमें बड़ी खुशी है कि आप राधा-स्वामी सत्संग के प्रमुख के पद पर बिराजमान हैं। अब आप अपने सत्संगियों को हुक्म दे दें कि वे अपना वोट हमारी पार्टी को देवें। हुज़ूर ने नम्रता के साथ उत्तर दिया कि वे ऐसा आदेश न दे सकेंगे क्योंकि सत्संग एक रूहानी चीज़ है और सतगुरु तथा संगत का सम्बन्ध आध्यात्मिक होता है। राजनैतिक विचार संगत की निजी भावना व रुचि का विषय है और उनमें वे दख़ल नहीं दे सकते।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, अपने महाप्रयाण से एक दिन पहले सरदार बहादुरजी महाराज ने आपके पिता सरदार हरबंससिंहजी को डेरे से सिकन्दरपुर और माता शामकौरजी को मोगा भेज दिया था।

२२ अक्तूबर १९५१ का दिन था। हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी उसी दिन अम्बाला से वापस सिकन्दरपुर पहुँचे थे। आपके आने के कुछ ही देर बाद चाचाजी (सरदार हरबंससिंहजी साहब को आप चाचाजी कहते थे) दोपहर के समय सिकन्दरपुर पहुँचे। हुज़ूर ने आपसे पूछा कि सरदार बहादुर जी कैसे हैं? चाचाजी ने उत्तर दिया कि सरदार बहादुरजी ने कहा है कि मैं अब ठीक हूँ और उन्होंने मुझे यहाँ आने का हुक्म दिया है। फिर आपने

हुजूर को सरदार बहादुरजी महाराज का सन्देश दिया।

चाचाजी के आने के कुछ समय बाद करीब दिन के चार बजे डेरे से सरदार बहादुरजी का तार आया कि 'चरन को भेजो'। तार पढ़कर हुजूर एक मिनिट के लिये सोच में पड़ गये कि सिर्फ मेरे लिये ही तार क्यों भेजा है। साथ ही ऐसा लगा कि शायद सरदार बहादुर महाराजजी की तबियत ज़्यादा खराब है। चाचाजी ने आपसे कहा कि तैयार हो जाओ, चलना चाहिये। अतएव तार मिलने के आधे घण्टे के अन्दर हुजूर चाचाजी के साथ अपनी हिलमेन कार से डेरे के लिए रवाना हो गये।

रास्ते में नहर के पानी के कारण ऊटू का चक्कर लगाना पड़ा। कुछ आगे गये तो कार खराब हो गई और उसे सुधरवाने में कई घण्टे लग गये। रात हो गई। परन्तु सरदार बहादुरजी की तबियत की चिन्ता में समय का ख़याल न था और चलते रहे। रात को ढाई और तीन बजे के बीच का समय था। अभी आप आधा रास्ता भी तय नहीं कर पाये थे। हुजूर चरनसिंह जी महाराज खुद गाड़ी चला रहे थे। एकाएक हुजूर को तेज़ रोशनी दिखाई दी और सरदार बहादुर महाराजजी के दर्शन हुए। आपको मोटर या स्टीय-रिंग का ख़याल न रहा। मोटर नियन्त्रण से बाहर हो गई और सड़क से नीचे उतर कर रुक गई। हुजूर ने मोटर के स्टीयरिंग पर सर रख कर आँखें बन्द कर लीं। चुपचाप बैठे रहे। चाचाजी मोटर से उतरे और दूसरी ओर आकर आप से पूछा, "बेटा, क्या बात है? तबियत तो ठीक है?" हुजूर कुछ देर वैसे ही मौन रहे, फिर अपने पिताजी से बोले, "कार आप चलायें, मुझ से नहीं चलाई जाती।" चाचाजी चुपचाप कार चलाने बैठ गये। कार सड़क पर ले आये और धीरे-धीरे चलाने लगे। हुजूर आँखें बन्द किये मौन बैठे थे। फिर कुछ देर बाद आपने चाचाजी को बताया कि सरदार बहादुरजी चोला छोड़ गये हैं।

रास्ते भर सब खामोश रहे। लगातार चलते हुए सुबह मोगा पहुँचे। वहाँ माता शामकौरजी को देख कर आश्चर्य हुआ। उन्होंने बताया कि सरदार बहादुर महाराजजी के आदेश से वे २२ अक्तूबर की सुबह डेरे से चल कर मोगा आ गईं। उनसे चाचाजी ने केवल यही कहा कि सरदार बहादुर महाराजजी की तबियत ज़्यादा खराब है और हम इसी समय डेरे जा रहे हैं। माताजी ने हैरानी के साथ कहा कि कल ही तो उन्होंने मुझे यहाँ भेजा और कहा कि अब मेरी तबियत ठीक है। मोगा में चाचाजी ने एक कप चाय पी। हुजूर ने कुछ खाया-पीया नहीं। माता शामकौरजी भी

साथ हो गईं और सब डेरे के लिए चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद चाचाजी के कहने पर हुज़ूर ने कार का स्टीयरिंग सँभाला, लेकिन कुछ ही मिनिट चलाने के बाद कार रोक दी और चाचाजी से फ़रमाया, "मुझसे नहीं चलाई जाती, आप ही चलायें।"

जिस समय डेरे पहुँचे तो चारों ओर सुनसान और खामोशी थी। चाचा जी को विश्वास हो गया कि हुज़ूर की बात ठीक थी, सच में सरदार बहादुर जी इस संसार को छोड़ गये हैं। उस समय सरदार बहादुरजी का अन्तिम संस्कार ब्यास नदी के किनारे हो रहा था। हुज़ूर और चाचाजी सरदार बहादुरजी की कोठी की ओर गये। वहाँ बीबी रली मिलीं। चाचाजी और हुज़ूर को देख आप रोने लगीं। चाचाजी ने कहा, "बीबीजी, हमारे आने का इन्तिज़ार तो करना था, संस्कार में इतनी जल्दी क्यों की?" बीबी रली ने जवाब दिया, "क्या करते। सरदार बहादुरजी महाराज का यही हुक्म था कि फौरन संस्कार कर दिया जाये।"

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी अपने पिता के साथ नदी की ओर चल पड़े। सतगुरु के वियोग के अपार दुःख, अन्तिम दर्शन न कर पाने की पीड़ा और संस्कार के समय भी न पहुँच पाने की घोर निराशा के साथ हुज़ूर चलते जा रहे थे। आँखों से आँसू बह रहे थे।

संस्कार के स्थान से अभी कुछ दूर थे कि रास्ते में कुमारी ज्ञान (सरदार बहादुरजी की पौत्री), जो उस समय छोटी बच्ची थी, मिस लुइस हिलगर का हाथ पकड़े आ रही थी। उसने हुज़ूर को आते देख कर उँगली उठा कर इशारा किया और मिस हिलगर को आपकी ओर देखने को कहा। बालिका मिस हिलगर को बता रही थी कि ये ही नये सतगुरु हैं। परन्तु हुज़ूर का उस ओर ध्यान न गया।

संस्कार के स्थान पर पहुँचने पर बलसराय वाले जगतसिंह (जिसे लोग माल-अफसर कह कर पुकारते थे) ने हुज़ूर को देखा। उसने संगत से कहा कि देखो, सरदार बहादुरजी ने जिनके लिए हुक्म दिया है वे तशरीफ़ ले आये हैं। और ठीक उसी समय हुज़ूर के मित्र सरदार गुरबख़्शसिंह रणधीर और उनके साथ ही लक्ष्मीचन्द्रजी धर्मानी ने आपको देखा और पास आकर आपके चरणों में मत्था टेका। हुज़ूर समझ गये कि सरदार बहादुरजी महाराज आपको अपना जानशीन मुकर्रर कर गये हैं। हुज़ूर की आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह चली, गला रुँध गया। आप फौरन डेरे की ओर चल पड़े। हुज़ूर के ही शब्दों में उस वक्त उनका 'डेरे तक वापस आना मुश्किल हो गया'। डेरे

आते ही आपने अपने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लिया और अपने जज़्बात को न रोक सके।

एक तो प्यारे सतगुरु के विछोह की अपार वेदना थी और दूसरे, गुरु-गद्दी का कठिन दायित्व ! हुज़ूर अपने कमरे से बाहर न आये। पूरा परिवार ही दुःख और परेशानी में डूबा हुआ था। अस्वस्थ पिता के सामने था फार्म का श्रमपूर्ण कार्य, जिससे मुक्त होकर वे अपना समय डेरे में बिताने का विचार कर रहे थे। पत्नी के सामने था एक साध्वी का सा जीवन और वह भी चौबीस वर्ष की सुकुमार अवस्था में। और छोटे-छोटे तीन बालक ! उस समय की कल्पना करके ही दिल दहल उठता है। परन्तु हुज़ूर के माता, पिता और धर्मपत्नी ने अपार साहस तथा धैर्य से काम लिया। अपने दुःख को दिल में दबा लिया और आपको सतगुरु के हुक्म का पालन करने की प्रेरणा दी। हुज़ूर के माता-पिता और पत्नी के इस त्याग के लिए संगत हमेशा उनकी कृतज्ञ रहेगी।

दीनता और नम्रता, जो सन्तों का खास गुण है, हुज़ूर में शुरू से ही प्रचुर मात्रा में मौजूद थी। लोग गुरु-गद्दी के पीछे भागते हैं और गुरु बनने की तमन्ना रखते हैं। सच्चे सन्त कभी गुरु बनने की इच्छा नहीं करते, बल्कि उससे दूर भागना चाहते हैं। लेकिन अपने सतगुरु के हुक्म के बँधे हुए, इस महान उत्तरदायित्व को उठाना स्वीकार करते हैं। आजीवन अपने को गुरु का दास और संगत का सेवक मान कर कार्य करते हैं। अपार सामर्थ्य के स्वामी होते हुए भी सदैव नम्र रहते हैं।

महाराज चरनसिंहजी ने सरदार बहादुर जी के प्रमुख सेवकों और डेरे के खास सत्संगियों को बुला-बुला कर सरदार बहादुरजी के अन्तिम दिनों का तथा वसीयत का पूरा वृत्तान्त पूछा। पंडित लालचन्द, डाक्टर हज़ारा-सिंह, गाँधीराम, बीबी रली, लाला मुंशीराम, भाई शादी, आदि से मिले। सबका एक ही वृत्तान्त था और शंका की कोई गुंजाइश न थी।

एक दो-दिन बाद रायसाहब मुंशीराम हुज़ूर के पास आये। अर्ज़ की कि एक चेक पर हुज़ूर के दस्तखत चाहियें। हुज़ूर ने पूछा कि मेरे दस्तखत क्यों चाहियें ? तो रायसाहब ने बताया कि सरदार बहादुर महाराजजी अपने जाने से कई महीने पहले बैंकों में डेरे के खाते में आपका नाम भी शामिल करवा चुके थे। तब हुज़ूर को याद आया कि लाला मुंशीरामजी ने सरदार बहादुरजी के हुक्म से जो बैंक के खाली फार्म दस्तख़त करने को आपके पास भेजे थे, वे इसलिए थे।

डेरा के प्रमुख सत्संगियों तथा हुज़ूर के परिवार के बुज़ुर्गों की राय से गद्दीनशीनी की तारीख ४ नवम्बर तय की गई। हुज़ूर कुछ दिन के लिए सिकन्दरपुर तशरीफ़ ले गये। लेकिन वहाँ भी सतगुरु के वियोग का दुःख और उदासी कम न हुई। २ नवम्बर को आप वापस डेरे तशरीफ़ ले आये।

गद्दीनशीनी से एक दिन पहले हुज़ूर के तायाजी सरदार बचिंतसिंहजी ने हुज़ूर को बताया कि कल गद्दीनशीनी के समय मैं आपको स्वामीजी महाराज की पगड़ी पेश करूँगा और मत्था टेकूँगा। हुज़ूर ने यह सुन कर तायाजी से निवेदन किया कि आप मत्था न टेकें। यह मैं बरदाश्त नहीं कर सकता कि मेरे पूज्य बुज़ुर्ग मुझे मत्था टेकें। परन्तु तायाजी इस बात को मानने को राज़ी न हुए। उनका कहना था कि अब आप मेरे भतीजे नहीं, मेरे सतगुरु हैं और मैं ज़रूर मत्था टेकूँगा। हुज़ूर की आँखों से आँसू बहने लगे, आप बार-बार तायाजी से मत्था न टेकने को कहने लगे। उधर तायाजी की आँखों से प्रेमाश्रुओं की धारा प्रवाहित हो चली और वे अपनी बात पर अड़े रहे।

४ नवम्बर, १९५१ को गद्दीनशीनी हुई। संगत दूर-दूर से आ रही थी और सत्संग-घर के मैदान में तिल रखने की जगह न थी। सन्त प्रतापसिंहजी (भैणी साहिब वाले), बाबा देवासिंहजी (तरनतारन), गद्दीनशीन श्री रामदास साहिब, सराय रोहल्ला के गुरु आदि महात्मा तशरीफ़ लाये थे। दोपहर को दो बजे कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। गुरुवाणी के पाठ के बाद बाबू गुलाबसिंह जी ने स्वामीजी महाराज का एक छोटा-सा शब्द लिया और उसकी संक्षिप्त व्याख्या की।

बाबू गुलाबसिंह जी के सत्संग के पश्चात, प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी की वसीयत को पढ़ कर संगत को सुनाया तथा महाराज चरनसिंहजी के विषय में दो शब्द कहे कि किस प्रकार गंभीरता, सहृदयता और नम्रता आपके स्वभाव में बचपन से ही है। कुछ अपने तथा कुछ और लोगों के अनुभव सुनाये जिनसे प्रकट होता था कि सतगुरु दीन-दयाल सावनसिंहजी महाराज ने आपको शुरू से ही इस कार्य के लिये चुन रखा था। लेखक ने डाक्टर तीरथराम (सिकन्दरपुर, सरसा) से कई बार सुनी बात संगत को सुनाई कि जब महाराज चरनसिंहजी दो महीने के शिशु थे तो आपके माता-पिता आपको हुज़ूर महाराजजी के सामने ले गये। हुज़ूर महाराजजी आपको देख कर बहुत प्रसन्न हुए, मुसकराये और प्यार किया; फिर फ़रमाया कि यह बच्चा बहुत भाग्यशाली है, खुद रूहानी दौलत का मालिक होगा व औरों को भी उस दौलत से मालामाल करेगा।

फिर बाबू गुलाबसिंहजी ने एक छोटे-से भाषण में सरदार बहादुर महाराजजी को श्रद्धांजलि अर्पित की तथा महाराज चरनसिंहजी से आग्रह किया कि सतगुरु के हुक्म के अनुसार आप गुरुगद्दी पर बिराजमान होने की कृपा करें। हुज़ूर अपने स्थान से उठे, संगत के सामने जाकर नम्रतापूर्वक मत्था टेका और बिराजमान हो गये।

लाउड-स्पीकर हुज़ूर के सामने रखा गया। उस समय हुज़ूर ने संगत से जो शब्द कहे वे इस प्रकार थे :—

"हुज़ूर महाराजजी के प्रति मेरा प्यार, सरदार बहादुर महाराजजी का हुक्म और संगत का प्रेम मुझे मजबूर करता है कि डेरे और संगत की सेवा करने का जो हुक्म सरदार बहादुरजी मुझे दे गये हैं, उसका पालन करने की पूरी-पूरी कोशिश करूँ। लेकिन जब मैं अपने आपको और अपनी कमज़ोरियों को देखता हूँ तो समझ में नहीं आता और दिल घबराता है कि उनके इतने बड़े हुक्म का पालन कैसे करूँ। इसी सोच में इतने दिन मैं संगत के दर्शन न कर सका, जिसके लिये मैं संगत से माफ़ी माँगता हूँ।

"मैं संगत से साफ़-साफ़ अर्ज़ कर देना चाहता हूँ कि मैं किसी प्रकार की रूहानियत का दावा नहीं करता, बल्कि जो गुण एक अच्छे सत्संगी में होने चाहियें उनमें से कोई भी गुण मुझे अपने में दिखाई नहीं देता।

"हुज़ूर महाराजजी के आखिरी दिनों में उनके चरणों में रह कर उनकी सेवा करने का सौभाग्य तो मुझे ज़रूर मिला है, लेकिन सरदार बहादुरजी ने तो मुझे यह अवसर भी नहीं दिया। मैं इतना बदकिस्मत हूँ कि उनके संस्कार के बाद पहुँचा और उनके अन्तिम दर्शन भी न कर सका। यहाँ आकर उनका हुक्म सुन कर मैं हैरान हो गया। उनके इस हुक्म का पता मुझे उन भाग्यशाली प्रेमी सत्संगियों से चला जो कि उनके निकट मौजूद थे। मुझे इसके सिवाय कोई चारा नज़र नहीं आता कि उनके हुक्म के अनुसार साध-संगत और डेरे की सेवा करूँ। मैं संगत से विनती करता हूँ कि मुझे अपना एक छोटा अज़ीज़ समझ कर, छोटा भाई समझ कर संगत अपनी और डेरे की सेवा करने का मौका दे। लेकिन अगर संगत मुझे किसी और दृष्टि से देखने की कोशिश करेगी तो मैं समझूँगा कि संगत अपनी तथा डेरे की सेवा करने का मौका नहीं देना चाहती और यह मेरे साथ बड़ा अन्याय होगा।

"सरदार बहादुरजी के जाने का हम सबको बड़ा गहरा सदमा पहुँचा है। अभी हम हुज़ूर महाराजजी के वियोग के दुःख को न भूले थे कि सरदार बहादुरजी भी हमें छोड़ गये-हैं। उन जैसी विभूतियाँ संसार में बहुत कम

आती हैं। कोई बिरला महान योगीश्वर ही उनके जैसी पवित्र बेदाग ज़िन्दगी गुज़ार सकता है।

"इस दुःख के समय में हमें घबराना नहीं चाहिये, बल्कि सुरत-शब्द का जो मार्ग वे हमें बता गये हैं, उस पर दृढ़तापूर्वक चलने की कोशिश करना चाहिये। हुज़ूर सच्चे पातशाह फ़रमाया करते थे कि वे सबके अंग-संग हैं। उनका फ़रमान सिर्फ़ मेरे लिये ही नहीं, बल्कि सारी संगत के लिये है। डेरे के सभी प्रेमी सेवादारों से मेरी विनती है कि जो भी सेवा वे किसी के सुपुर्द कर गये हैं, उसे वह पूरी तरह निभाये।

"संगत आज सरदार बहादुरजी की याद में दूर-दूर से इकट्ठी हुई है। यहाँ आकर दर्शन देने के लिये मैं सारी संगत का शुक्रिया अदा करता हूँ।

"मैंने कल भी डेरे के कुछ प्रेमी सत्संगियों को बुला कर अर्ज़ की थी और आज भी सारी संगत से यही अर्ज़ करता हूँ कि मैं अपने आप को इस योग्य नहीं समझता कि इतने श्रेष्ठ महापुरुषों की पगड़ी अपने सर पर बाँध सकूँ। लेकिन हुज़ूर महाराज के प्रति संगत के विश्वास और प्रेम से मजबूर होकर मैंने अपने आपको संगत के हवाले कर दिया है। जो संगत उचित समझे, कर सकती है।"

हुज़ूर की वाणी प्रेम और मिठास से परिपूर्ण थी। सारी संगत आपके ये दीनता और नम्रतापूर्ण वचन सुन कर भाव-विभोर हो गई। सबकी आँखों में प्रेमाश्रु उमड़ आये और सिसकियों की आवाज़ आने लगी। आपके विनय पूर्ण शब्दों ने गुरु नानक, कबीर, पलटू आदि महान सन्तों की याद ताज़ा कर दी, जिन्होंने अपने आप को 'नीच करमा', 'गरीब बेचारा', 'लाला गोला' आदि शब्दों से पुकारा है। हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी अपने को 'संगत का दास', 'दासानुदास' कहते थे तथा अपने लिए बहुत दीनतापूर्ण शब्दों का प्रयोग करते थे। वास्तव में सच्ची दीनता सन्तों में ही मिलती है।

हुज़ूर के भाषण के बाद सरदार बचिंतसिंहजी ने हुज़ूर को वह शाल* ओढ़ाया जो स्वामीजी ने बाबा जैमलसिंहजी को बख़्शा था और जिसे हुज़ूर बड़े महाराजजी कभी-कभी ओढ़ कर सत्संग में पधारते थे। हुज़ूर ने शाल को बड़े आदर के साथ ओढ़ लिया। फिर तायाजी ने आपको वह पवित्र पगड़ी पेश की जो स्वामीजी महाराज से बाबाजी महाराज को मिली थी, बाबाजी से हुज़ूर महाराजजी को और हुज़ूर महाराजजी से सरदार बहादुरजी को मिली थी। हुज़ूर ने उस लाल रंग की रेशमी पगड़ी को मस्तक

---

* इस शाल का उल्लेख पहले किया जा चुका है, देखें पृष्ठ २७

हुज़ूर महाराज चरण सिंह जी

से लगाया और अपने सर पर बाँध लिया। इसके बाद तायाजी ने बड़े प्रेम और आदर के साथ मत्था टेका। सारी संगत ने मत्था टेक कर राधास्वामी की जिसे हुज़ूर ने हाथ जोड़ कर नम्रतापूर्वक मस्तक नमा कर स्वीकार किया। उस समय हुज़ूर की आँखों से आँसू बह रहे थे, परन्तु चेहरे पर गहरी शान्ति थी और मुख रूहानी शान में चमक रहा था। संगत की आँखों से आँसू बह निकले, गले भर आये और अन्तर में प्रेम लहरा उठा।

मुझे तो आपसे अपनी पहली भेंट में ही विश्वास हो गया कि सतगुरु दीन-दयाल ने जीवों की सँभाल व नाम-दान का कठिन कार्य एक महान हस्ती और योग्य मार्गदर्शक के हाथों में सौंपा है। एक दिन जब मैं आपके पास अकेला था तो यही भाव मैंने शब्दों में प्रकट करने की कोशिश की, इस पर हुज़ूर ने फ़रमाया, "दीवान साहब! सतगुरु सच्चे पातशाह का दास होकर रहने में जो आनन्द था, वह मालिक बनने में कहाँ! उनके चरणों में रहने का जो मौका मिला वह एक बहुत बड़ी खुश-किस्मती है। उसकी मिसाल दुनिया में कहीं नहीं। बन्दगी और भक्ति में जो आनन्द है, वह गुरु बनने और गुरु-गद्दी की ज़िम्मेदारियों में नहीं है। अगर सरदार बहादुरजी या हुज़ूर महाराजजी इस विषय में मेरी इच्छा पूछते तो मैं कभी इस ज़िम्मेदारी को कबूल न करता। सतगुरु सच्चे पातशाह हुज़ूर महाराजजी के चरणों में रह कर जो बादशाही मैंने की, वह अब कहाँ।"

हुज़ूर के सतगुरु प्रेम तथा नम्रता से परिपूर्ण इन वचनों को सुन कर मेरी आँखें भर आईं। पूछना चाहता था कि क्या 'हरि का सेवक सो हरि जेहा' नहीं होता? क्या सतगुरु सच्चे पातशाह ने आपको अपना निज-रूप नहीं बना लिया है? क्या सेवक स्वामी और स्वामी सेवक नहीं बन चुका है? लेकिन गला रुँध गया, आँसू उमड़ने को थे। चुपचाप बाहर चला आया।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी के सतगुरु पद पर सुशोभित होने के संकेत बहुत समय पहले से मिलते रहे थे। एक बार डलहौज़ी में मेरे और प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल के आग्रह करने पर हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने तो स्पष्ट बता दिया था कि एक दिन आप इस ज़िम्मेदारी को निभायेंगे और हमारी रहनुमाई करेंगे।[१] सरदार बहादुर महाराजजी द्वारा आपको अपना जानशीन मुकर्रर किये जाने पर मेरे मित्र मलिक राधाकिशनजी[२] ने मुझे बताया कि हुज़ूर

---

१. देखें लेखक की पुस्तक "संत-समागम" पृष्ठ ११७ (दूसरा संस्करण)।

२. मलिक राधाकिशनजी पंजाब और हरियाणा के प्रसिद्ध वकील हैं। आपकी गणना इस क्षेत्र के चोटी के वकीलों में की जाती है। भारत-विभाजन से पहले आप मुलतान में वकालत करते थे। आप पर हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी की बहुत कृपा थी। मुलतान का शानदार सत्संग-घर (जो अब पाकिस्तान में है) आपके परिश्रम और उत्साह का नतीजा है।

महाराज बाबा सावनसिंहजी तो बहुत समय पहले ही आपके गुरु-गद्दी सँभालने के बारे में मलिक साहब से कह चुके थे।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने फरवरी १९५२ के मासिक सत्संग के समय पहला सत्संग प्रदान किया। आपने तुलसी साहब का शब्द "दिल का हुजरा साफ़ कर जानां के आने के लिए" लिया और बड़े प्रेम के साथ व्याख्या की। सत्संग के मधुर अमृत-भरे वचन सुन कर संगत निहाल हो गई। भाई शादी तो इतना प्रसन्न हुआ कि उसका चेहरा ख़ुशी से लाल हो उठा। चारों ओर का वातावरण उत्साह और आध्यात्मिकता से परिपूर्ण हो गया।

परन्तु हुज़ूर ने अभी तक नाम-दान की बख़्शिश शुरू नहीं की थी। जीव तड़प रहे थे। हुज़ूर के पास लोग निवेदन करते, पुराने बुज़ुर्ग सत्संगी आकर आग्रह करते कि नाम-दान शुरू फ़रमायें, मगर मौज न हुई। अप्रेल १९५२ में एक अमेरिकन महिला श्रीमती किंज़िगर डेरे आईं। हुज़ूर के दर्शन और सत्संग से बहुत प्रभावित हुईं। नाम की बख़्शिश के लिए प्रार्थना करने लगीं। हुज़ूर ने दया करके १० अप्रेल, १९५२ को उन्हें नाम प्रदान किया। इसके बाद ५ जून १९५३ को हुज़ूर ने डेरे के वर्तमान सेक्रेटरी श्री खन्ना की माता जी, धर्मपत्नी श्रीमती सत्यावती खन्ना तथा पुत्र श्री जितेन्द्र खन्ना को नाम प्रदान किया। लेकिन अभी हुज़ूर ने नाम की आम बख़्शिश शुरू नहीं की थी।

रविवार २५ अक्तूबर १९५३ के दिन हुज़ूर सरदार बहादुर महाराजजी का भण्डारा था। संगत काफी संख्या में आई हुई थी। सत्संग-घर का मैदान भर गया था। हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने करीब डेढ़ घण्टे तक प्रभावशाली सत्संग प्रदान किया। सत्संग समाप्त होते ही बाबाजी महाराज के बुज़ुर्ग सत्संगी बाबू गुलाबसिंहजी उठे और बोले कि मैं कुछ अर्ज़ करना चाहता हूँ। हुज़ूर की इजाज़त से आप लाउड-स्पीकर पर आये और कुछ मिनिट बोले। आपने अर्ज़ की, "हुज़ूर की सेवा में मैं पहले भी कई प्रकार प्रार्थना कर चुका हूँ कि नाम की बख़्शिश शुरू फ़रमायें। नाम के प्यासे जीव तड़प रहे हैं। पिछली बार जब मैं देहली गया तो कई प्रेमी-सत्संगियों ने मुझसे कहा कि इस बार अगर महाराजजी नाम-दान नहीं बख़्शेंगे तो हम देहली आने पर उनकी मोटर के आगे लेट जायेंगे और नाम दिये बिना नहीं जाने देंगे। सारी संगत आज आस लगाये बैठी है। मैं आज फिर अपनी ओर से, संगत तथा नाम के अभिलाषियों की ओर से विनती करता हूँ कि हुज़ूर नाम के ख़ज़ाने का द्वार खोल दें और नाम के लिये तरसते जीवों की प्यास बुझायें।"

बाबू गुलाबसिंहजी के भाषण ने सबके हृदय को छू लिया। संगत की

आँखें भर आईं। नाम के याचक अपनी भावनाओं के इस स्पष्ट वर्णन से कृतार्थ हो गये। संगत खामोश बैठी थी। सबकी दृष्टि हुज़ूर महाराजजी के मुख पर थी। हुज़ूर की आँखों में जल भर आया था। आपने बाबू गुलाबसिंहजी के भाषण के उत्तर में फ़रमाना शुरू किया, "इससे पहले भी बाबूजी और बुज़ुर्ग सत्संगी मुझ से नाम देने का आग्रह कर चुके हैं। हुज़ूर सरदार बहादुरजी भी मुझे हुक्म फ़रमा गये हैं। मैं तो सतगुरु और संगत का दास हूँ।......" हुज़ूर आगे कुछ न कह सके। आपका गला रुँध गया और आँखों से आँसू बह चले। सारी संगत की आँखें भर आईं। हुज़ूर ने कुछ क्षण ठहर कर फिर कुछ कहने की कोशिश की, परन्तु गला भर आया।

दूसरे दिन, २६ अक्तूबर १९५३ को सतगुरु दीन-दयाल ने अपनी दया-मेहर का भण्डार खोल दिया। सुबह नौ बजे नाम-दान की बख्शिश शुरू कर दी। हुज़ूर अपनी कोठी से निकले और बड़े महाराजजी की कोठी में गये। संगत रास्ते के दोनों ओर दर्शनों के लिये खड़ी थी। आप सरदार बहादुर महाराजजी का दिया हुआ वह शाल ओढ़े थे जिसका ज़िक्र पीछे किया जा चुका है।[१] जब आप हुज़ूर महाराजजी की कोठी से बाहर आये तो मुख पर दिव्य रूहानी तेज था। संगत को दर्शनों से निहाल करते हुए आप बड़े सत्संग-घर में पहुँचे और नाम की बख्शिश शुरू की।

इसी प्रकार विदेशों में भी नाम की बख्शिश, जो सरदार बहादुर महाराजजी के जाने पर बन्द हो गई थी, वापस शुरू हो गई। विदेश में हुज़ूर के द्वारा किये गये सत्संग और नाम के प्रचार का उल्लेख तो आगे किया जायेगा, यहाँ नाम-दान से सम्बन्धित एक छोटा-सा वृत्तान्त दिया जाता है।

दक्षिण अफ्रीका के डरबन शहर में रहने वाली एक वृद्ध महिला श्रीमती एमी आलिवियर पिछले कुछ वर्षों से सन्त-मत में रुचि ले रही थीं। आपने सरदार बहादुर महाराजजी को पत्र लिख कर नाम-दान के लिये प्रार्थना की। उत्तर मिला कि अभी आपका समय नहीं आया है, समय आने पर आपके नाम-दान की व्यवस्था की जायेगी। सन् १९५१ में जब हुज़ूर सरदार बहादुरजी ज्योति ज्योत समा गये तो श्रीमती आलिवियर ने हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी को नाम-दान के लिए लिखा। हुज़ूर ने जवाब दिया कि मैंने नाम देना शुरू नहीं किया है। जब मैं शुरू करूँगा तो आपको सूचित करूँगा। २६ अक्तूबर को सुबह श्रीमती आलिवियर डरबन में अपने कमरे में बैठी कुछ पढ़ रही थीं। सहसा उन्हें ऐसा लगा कि कोई तेजस्वी स्वरूप उनके सामने से

१. देखें पृष्ठ २२८

होता हुआ यह कह कर चला गया कि 'नाम-दान शुरू हो गया है, तुम आ सकती हो।' श्रीमती आलिवियर ने अभी तक हुज़ूर का कोई फोटो नहीं देखा था, परन्तु उन्हें यह अनुमान करने में समय न लगा कि यह आकर्षक व्यक्ति कौन था। यह अनुभव इतना स्पष्ट था कि आपने फौरन यात्रा की तैयारी शुरू कर दी और सात दिन के अन्दर समुद्री जहाज़ से भारत की ओर चल पड़ीं। हैज़ा, विषम-ज्वर और चेचक के टीके आपने एक साथ ही लगवा लिये और उनकी वजह से समुद्री-यात्रा बुखार और बेचैनी में ही बिताई। नवम्बर में आप डेरे पहुँची और १ जनवरी १९५४ को हुज़ूर से नाम-दान प्राप्त किया।

३. राधास्वामी सत्संग ब्यास सोसाइटी का निर्माण

दुनिया के लोग, जिन्हें असलियत का ज्ञान नहीं, समझते हैं कि सतगुरु बनना शायद बड़ा लाभदायक सौदा है। हो सकता है कि किसी दुनियादार, स्वार्थी व लोभी व्यक्ति के लिये गुरु बनना लाभदायक हो। लेकिन हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी तथा आपके परिवार को आपके गुरु बनने से जो 'लाभ' हुआ उसका अनुमान निम्न-लिखित बातों से स्वयं ही लग जायेगा।

महाराज चरनसिंहजी अपने क्षेत्र के श्रेष्ठ वकीलों में गिने जाते थे और आपको वकालत से दो हज़ार रुपये मासिक से ज़्यादा की आमदनी थी। आपका एक बहुत बड़ा फार्म तथा उस पर ही एक शक्कर का कारखाना था। आप वकालत के साथ-साथ सरसा से ही अपने कृषि-फार्म तथा शक्कर के कारखाने की व्यवस्था भी कर सकते थे। गद्दी पर बिराजने के बाद सरसा छोड़ने का नतीजा यह हुआ कि एक तो आपको अपनी वकालत की आय का बलिदान करना पड़ा और दूसरे कृषि तथा खांडसारी के कारखाने की निगरानी के लिये आपके भ्राता कप्तान पुरुषोत्तमसिंह को अपनी सैनिक सेवा से त्याग-पत्र देकर आना पड़ा। कप्तान पुरुषोत्तमसिंह बड़े वीर और योग्य अफ़सरों में गिने जाते थे और शीघ्र ही मेजर बनने वाले थे। आज उनके साथी कर्नल और ब्रिगेडियर बन गये हैं।

यहाँ यह उल्लेख करना भी असंगत न होगा कि संगत द्वारा भेंट अथवा सेवा में दिये गये धन में से आप कभी एक पैसा भी अपने खुद के अथवा अपने परिवार के लिये खर्च नहीं करते। आपका तथा आपसे पहले डेरे के सभी गुरु साहिबान का यही नियम रहा है और वे हमेशा इस पर बहुत

दृढ़ता और ईमानदारी के साथ चलते रहे हैं। यह सच्चे सन्तों की निशानी है। दुनियादार लोग तो धन-दौलत के पीछे मारे-मारे फिरते हैं और उसे प्राप्त करने के लिये असत्य वचन बोलने तथा धोखा देने में भी संकोच नहीं करते। परन्तु सन्त हमेशा अपने हक़-हलाल की कमाई पर अपना गुज़ारा करते हैं तथा उसी में सन्तुष्ट रहते हैं।

यह सन्त-मत तथा विशेष रूप से राधास्वामी मार्ग का मूल सिद्धान्त है कि सतगुरु देहधारी परमात्मा होते हैं और वे अपनी समस्त परमार्थी सम्पत्ति का जैसा भी चाहें उपयोग कर सकते हैं। अपने अनुयाइयों द्वारा दी गई सब प्रकार की सेवा व भेंट और अपने सतगुरु से प्राप्त समस्त सम्पत्ति, उनकी निजी सम्पत्ति मानी जाती है और ऐसी सम्पत्ति के उपयोग के उनके अधिकार पर कोई बन्धन नहीं होता। परन्तु डेरे के सभी सतगुरु साहिबानों ने इस सम्पत्ति का कभी अपने व्यक्तिगत और निजी कार्य के लिये उपयोग नहीं किया। संगत द्वारा दी गई भेंट तथा समस्त परमार्थी सम्पत्ति का वे सदैव सत्संग की वृद्धि तथा विकास और संगत के लाभ के लिये उपयोग करते रहे हैं।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने १९५७ में इस सम्पूर्ण परमार्थी सम्पत्ति का एक ट्रस्ट बनाने का निश्चय किया। जब आपने ये विचार रायसाहब मुन्शीराम, रा. ब. शंकरदास तथा कुछ अन्य बुज़ुर्ग सत्संगियों के सम्मुख प्रकट किये तो उन्होंने इसका विरोध किया। उन्होंने अर्ज़ की कि सन्त-मत के मूल सिद्धान्त और परम्परा के अनुसार इस सम्पूर्ण रूहानी जायदाद तथा सेवा में आने वाली राशि के आप एक-मात्र स्वामी हैं और यह आपके ही नाम में रहनी चाहिये। परन्तु हुज़ूर ने फ़रमाया कि शुरू से डेरे के सतगुरु इस सम्पत्ति को संगत की धरोहर के रूप में रखते और सँभालते आये हैं। वास्तव में वे उसके ट्रस्टी हैं। अतएव मैं चाहता हूँ कि इसी सिद्धान्त और परम्परा को कानूनी रूप दे दिया जाये ताकि भविष्य के लिये स्थायी प्रबन्ध हो तथा डेरे का सभी कार्य सुचारु रूप से चलता रहे। हुज़ूर ने यह भी समझाया कि इस प्रकार का प्रबन्ध होने से हुज़ूर को सत्संग तथा संगत की सेवा के लिये अधिक समय मिल सकेगा।

अतएव हुज़ूर ने स्वयं को इस समस्त सम्पत्ति का ट्रस्टी घोषित किया और इस घोषणा को २५ अक्तूबर १९५७ के दिन एक रजिस्टर्ड डीड के द्वारा कानूनी रूप दे दिया। उसी दिन हुज़ूर ने इस पूरी सम्पत्ति को रजिस्टर्ड ट्रस्ट सोसाइटी 'राधास्वामी सत्संग ब्यास' के नाम हस्तान्तरित कर

दिया। राधास्वामी सत्संग ब्यास ११ अक्तूबर १९५७ को रजिस्ट्रेशन एक्ट २१ (१८६०) के अन्तर्गत रजिस्टर की जा चुकी थी।

सोसाइटी के रूहानी उद्देश्यों में है राधास्वामी सत्संग ब्यास के सन्त-सतगुरु द्वारा प्रतिपादित राधास्वामी मत के सिद्धान्त और प्रणाली के अनुसार आध्यात्मिक व नैतिक विकास में उपयोगी ज्ञान का प्रसार करना।

सोसाइटी के उद्देश्यों में व्यवस्था सम्बन्धी कार्य भी हैं। इनमें हैं, डेरे तथा डेरे से बाहर अन्य स्थानों में सत्संग की व्यवस्था करना; लंगर की व्यवस्था करना; साधुओं, सेवादारों और सत्संगियों के रहने का प्रबन्ध करना तथा उनकी ज़रूरतों व आराम का ख़याल रखना; राधास्वामी मत के साहित्य के मुद्रण, प्रकाशन व विक्रय की व्यवस्था तथा भारत और विदेशों में ऐसे साहित्य का प्रसार करना; कालोनी में एक औषधालय, वाचनालय और पुस्तकालय चलाना, और राधास्वामी कालोनी ब्यास, सत्संग-घरों तथा सत्संग की अन्य सम्पत्तियों की देख-रेख, व्यवस्था, विस्तार और विकास के लिये कार्य करना।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने हुज़ूर बड़े महाराजजी तथा सरदार बहादुर महाराजजी के विश्वसनीय सत्संगियों में से निम्नलिखित सत्संगियों को इस सोसाइटी में नामज़द किया :—

महाराज चरनसिंह ग्रेवाल—संरक्षक
श्री जगमोहनलाल (रिटायर्ड वाइस-प्रिंसिपल)
रा. सा. मुन्शीराम, एम. ए. (रिटायर्ड ज़िला व सेशन जज)
श्रीमती प्रकाशवती सूद, एम. एल. ए. (उप-मन्त्री, समाज-कल्याण विभाग उ. प्र.)
श्री रामजीदास आहलूवालिया, एम. ए. (रिटायर्ड एजेण्ट, इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया)
श्री मलिक राधाकिशन खन्ना, एम. ए., एल. एल. बी. (एडवोकेट हिसार)
लाला ताराचन्द अग्रवाल, पी. सी. एस. (डिप्टी कस्टोडियन जनरल भारत सरकार)
श्री किशोरीलाल भार्गव (व्यापारी, देहली)
श्री सोमेश्वर सहाय भार्गव (व्यापारी)
श्री ई. रंगाराव नायडू (व्यापारी, नागपुर)
श्री लीलाराम शामदास दास्वानी (व्यापारी)

रा. ब. शंकरदास बी. ए., एल. एल. बी. (एडवोकेट, रिटायर्ड पब्लिक प्रासिक्युटर)

श्री दामोदर दास, आई. ए. एस. (सरकारी अधिकारी)

सरदार गुलाबसिंह बिन्द्रा (रिटायर्ड सरकारी कर्मचारी)

सरदार गुलाबसिंह बिन्द्रा सोसाइटी के पहले सभापति थे । आप एक वयोवृद्ध सत्संगी थे । आपको बाबाजी महाराज से नाम मिला था और अपनी सरकारी नौकरी के दिनों में हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के मातहत काम कर चुके थे तथा हुज़ूर के पास कई वर्षों तक रह चुके थे । सरदार गुलाबसिंह के देहान्त के बाद राजा साहब साँगली श्रीमन्त चिन्तामनराव अप्पा-साहिब पटवर्धन, के. सी. एस. आई., पद्म-भूषण, सभापति बने । उनके बाद रानी लक्ष्मीबाई राजवाड़े, एम. आर. सी. एस. (धर्मपत्नी मेजर-जनरल स्वर्गीय राजवाड़े), सभापति बनाई गई ।

सोसाइटी की प्रथम कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे :—

१. राय साहब मुन्शीराम, एम. ए. ——अध्यक्ष

२. श्री रामजीदास आहलूवालिया, एम. ए. ——सेक्रेटरी

३. दीवान लीलाराम शामदास दास्वानी ——सदस्य

राय साहिब मुन्शीरामजी के देहान्त के बाद लाला ताराचन्द अग्रवाल कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष बने। श्री रामजीदास अहलूवालिया के देहान्त पर श्री के. एल. खन्ना को ट्रस्ट का सेक्रेटरी नियुक्त किया गया । अभी-अभी लगातार अस्वस्थ रहने के कारण लाला ताराचन्दजी अग्रवाल ने त्याग-पत्र दे दिया है और उनके स्थान पर श्री जाल पी. कासद (बम्बई के एक रिटायर्ड पारसी व्यापारी) अध्यक्ष बने हैं । सोसायटी की बैठकों में कुछ प्रमुख पुराने सत्संगियों को भी निमंत्रित किया जाता है, ताकि उनके अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके ।

सोसाइटी के नियम, अन्तर्नियम और विधान विधिपूर्वक छपे हुए हैं और उन्हीं के अनुसार सारा काम किया जाता है । डेरे का तथा बाहर के सत्संग केन्द्रों का सब इन्तिज़ाम सतगुरु महाराज चरनसिंहजी के मार्गदर्शन में सोसा-इटी सुचारु रूप से कर रही है । सोसाइटी का विधिवत हिसाब रखा जाता है और हर वर्ष उसकी जाँच (आडिट) होती है । कोई भी सत्संगी हिसाब को देख सकता है । हिसाब तथा वार्षिक रिपोर्ट की प्रतियाँ देश और विदेश के सभी सत्संग-केन्द्रों के सेक्रेटरी को भेजी जाती हैं । डेरे के सभी विभागों का कार्य विभिन्न सदस्यों तथा योग्य सेवादारों के ज़िम्मे है । ये सदस्य और

सेवादार अनुभवी, कार्य-मुक्त उच्च अधिकारी हैं और डेरे में रह कर यह सेवा बड़ी योग्यता, मेहनत और ईमानदारी के साथ निःशुल्क कर रहे हैं।

४. एक महत्वपूर्ण सुधार

यहाँ मैं उस मूल सामाजिक सुधार का ज़िक्र करना चाहता हूँ जो हुज़ूर ने डेरे में किया। इसके पूरे महत्व और आने वाले समय पर इसके प्रभाव का अनुमान तो इतिहासकार ही कर सकेंगे। महात्मा गाँधी ने और स्वतन्त्रता के बाद जवाहरलाल नेहरू व उनकी सरकार ने कानून के द्वारा देश में छूआ-छूत मिटाने की पूरी कोशिश की। परन्तु भंगी, चमार आदि 'हरिजन' कहे जाने के बावजूद भी अछूत ही रहे। कबीर साहब, रविदास आदि उच्च कोटि के महात्माओं ने इन जातियों में जन्म लिया, फिर भी ये जातियाँ अन्य-भद्र जातियों के सामाजिक स्तर पर नहीं गिनी जा सकीं। इस सदियों पुरानी बीमारी का इलाज कोई बिरला ही कर सकता था। सतयुग से लेकर अब तक इस समस्या का समाधान ऋषियों, मुनियों, विद्वानों व समाज-शास्त्रियों की समझ के बाहर ही रहा। श्री रामचन्द्रजी के समय में एक शूद्र को शास्त्रों का अध्ययन करने के अपराध में मृत्यु-दण्ड दिया गया था। राम-भक्त भीलनी शबरी का वृत्तान्त तो सर्व-विदित है कि किस प्रकार ऋषियों की कुटियाओं के सामने झाड़ू निकालने और सरोवर के जल को स्पर्श करने के लिये उसका तिरस्कार किया गया था। पंजाब व उत्तर-प्रदेश में हरिजनों का छुआ हुआ भोजन नहीं खाया जाता था और उन्हें सवर्णों के कुओं से पानी भरने व उनके मन्दिरों में पूजा करने के अधिकार नहीं थे। दक्षिण भारत में तो हरिजनों की छाया से भी बचा जाता था।

सन्तों ने कभी जात-पात का भेदभाव नहीं रखा। बाबाजी महाराज के सत्संगियों में हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, हरिजन सभी जाति के लोग थे। उस ज़माने में भी बाबाजी अपने सभी जाति के सत्संगियों के घरों में जाकर सत्संग करते थे। इसी प्रकार काँगड़ा ज़िले के पहाड़ी स्थानों में हुज़ूर महा-राज सावनसिंहजी के अनेक सत्संगी रामदासियों (हरिजनों) में से थे और आप उनके घरों में जाते, दर्शन देते और सत्संग प्रदान करते थे। सरदार बहादुरजी महाराज ने भी कभी भेद-भाव का विचार न किया। आपने भी पहाड़ों के दौरों में हरिजनों के घरों में सत्संग किया तथा उनके घरों में चरण डाले। परन्तु पुराने संस्कार अभी भी संगत के दिल में घर किये हुए थे तथा डेरे में और कई अन्य स्थानों पर संगत हरिजन सत्संगियों के साथ भोजन

नहीं करती थी । लंगर में हरिजन अलग खाना खाते थे तथा पहाड़ों में रामदासियों का लंगर अलग होता था।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने संगत में इस भेद-भाव के व्यवहार को समाप्त करने का निश्चय किया । गद्दीनशीनी के कुछ समय बाद, हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी के जन्म-दिन के भण्डारे के समय एक दिन आप ने संगत से फ़रमाया, "मैं कुछ समय से एक गम्भीर और महत्वपूर्ण विषय पर विचार कर रहा था, जिसे आज संगत के सामने पेश करना चाहता हूँ। हर धर्म व जाति के प्रवर्तक, सभी अवतार, पैगम्बर, ऋषि, मुनि और वेद, कुरान, बाइबिल आदि सभी धर्म-ग्रन्थ इस बात को मानते हैं कि परमात्मा हम सबका पिता है और हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, आदि सब इन्सान उसके पुत्र हैं। हिन्दुस्तान, चोन, जापान आदि देशों का भी वही मालिक है और अरब, ईरान, अमेरिका, अफ्रीका वगैरह का भी वही स्वामी और कर्ता है। न उस परमात्मा की कोई जाति है और न ही हमारी आत्मा की कोई जाति है। किसी ने भी आज तक यह नहीं कहा कि वह परमात्मा हिन्दू है या वह सिख है, ईसाई है या मुसलमान है। मुसलमान फ़कीर भी उसे 'रब्बुल आलमीन' कह कर पुकारते हैं, अर्थात् वह रब या परमात्मा जो सारे आलम (संसार) का एक ही है। उस परमात्मा की कोई कौम नहीं, उसका कोई मज़हब नहीं, कोई मुल्क नहीं। परमात्मा ने मनुष्य को बनाया है। ये कौम और मज़हब तो हमारे बनाये हुए हैं । हमारी आत्मा उस परमात्मा का अंश है, उस सतनाम रूपी समुद्र की बूँद है। अगर समुद्र की कोई जाति नहीं, तो बूँद की क्या जात-पाँत हो सकती है ! अगर सूरज की कोई जाति नहीं, तो किरण की क्या जाति हो सकती है !

"हम सब दुनिया के जीव व्यर्थ ही इन जात-पाँत, कौमों-मज़हबों के झगड़ों में फँसे हुए हैं। हम सबको अपनी जात-पाँत यहीं छोड़ कर चले जाना है। न आज तक ये जातियाँ किसी के साथ गई हैं, न कभी जा सकती हैं। वहाँ कोई यह नहीं पूछेगा कि आप हिन्दू थे या मुसलमान, सिख थे या ईसाई ? या आप हिन्दुस्तान से आये हैं या अमेरिका से या अफ्रीका से ? वहाँ हमारे अमल देखे जायेंगे, हमारा भक्ति-भाव देखा जायेगा। प्रसिद्ध मुसलमान फ़कीर बुल्लेशाह भी यही कहते हैं, 'अमलां उत्ते होन निबेड़े, खड़ी रहनगिआँ जातां।' जो अपने अमलों और कर्मों की ओर ध्यान देते हैं उन्हीं का निबेड़ा होता है, उन्हीं का हिसाब-किताब समाप्त होता है। जिन्हें अपनी जात-पाँत का अहंकार है उन्हें वहाँ कोई नहीं पूछता। पलटू साहिब फ़रमाते हैं :—

'पलटू ऊँची जात का मत कोई करे हंकार ।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति प्यार ॥'

"परमात्मा एक है, उसी ने हम सबको पैदा किया है । हर मनुष्य को उसने आंख, नाक, कान, हाथ-पैर आदि दिये हैं । मौसम की विभिन्नता के कारण हमारे रंग-रूप में ज़रूर कुछ परिवर्तन हो जाता है । लेकिन मालिक की दात हम सबको एक जैसी मिली है । जब परमात्मा हम सबके अन्दर है, हम सब उसके पुत्र हैं, उसके अंश हैं, तब भी यदि कोई किसी से नफरत करता है, तो वह परमात्मा से नफरत कर रहा है, अगर किसी मनुष्य को नीच या अछूत समझता है तो वह वास्तव में उस मालिक को अछूत समझ रहा है । हरएक के अन्दर वह परमात्मा बैठा है, हम बुरा या नीच किसे कह सकते हैं !

"सत्संगियों में जात-पाँत का कोई भेद-भाव नहीं होना चाहिये । हम सब सत्संगी आपस में भाई-भाई हैं । हममें कोई ऊँचा या नीचा नहीं, कोई 'उत्तम' या 'अछूत' नहीं । हमारा सबका पिता सत्पुरुष और हमारी जाति और कौम सतनाम है । इसलिये मैं संगत से विनती करता हूँ कि आज से सत्संग में या लंगर में किसी प्रकार का भेद-भाव न बरता जाये । एक साफ-सुथरे सत्संगी को, चाहे वह किसी भी नीची जाति का माना जाता हो, लंगर में खाना बनाने और परोसने का उतना ही अधिकार होगा जितना किसी भी अन्य जाति के व्यक्ति को है । लंगर का द्वार सबके लिये खुला है, जो चाहे जाकर सेवा करे । सो सब संगत एक ही पंगत में बैठ कर प्रेम-प्यार के साथ भोजन करे ।"

हुज़ूर जानते थे कि हम लोग कितने संकीर्ण-हृदय और पुरानी परिपाटी के भक्त हैं । अतएव आपने अन्त में फ़रमाया, "जो लोग सत्संग में आकर भी इस प्रकार का ऊँच-नीच का ख़याल करते हैं, उनका सत्संग में आने का क्या फायदा है ? मैं अर्ज़ करूँगा कि यहाँ आकर इस तरह का भेद-भाव न बरतें ।"

हर नये सुधार का विरोध तो होता ही है और यह तो एक ऐसा सुधार था जो बड़े-बड़े समाज-सुधारकों से भी न हो पाया था । अतएव कुछ पुराने सत्संगियों ने हुज़ूर से निवेदन किया कि यदि लंगर में सबको साथ बिठाने की कोशिश की गई तो संगत में असन्तोष फैलने का डर है और हो सकता है कि संगत डेरे में आना कम कर दे । परन्तु हुज़ूर ने उन्हें प्यार से समझाया और अपने निर्णय पर दृढ़ रहे । जिस दिन पहली बार सभी जाति के लोगों को एक ही पंगत में खाना खिलाना शुरू किया जाने वाला था, महाराजजी स्वयं लंगर में तशरीफ़ ले गये । परन्तु हुज़ूर ने देखा कि यद्यपि हरिजनों की पंगत

अलग न थी, फिर भी बाकी पंगतों से तनिक हट कर थी तथा वे सब इकट्ठे बैठे हुए थे। स्पष्ट था कि भेद-भाव की भावना दबे रूप में मौजूद थी। यह देख कर हुज़ूर स्वयं हरिजनों की पंगत में बैठ गये। हुज़ूर को उनकी पंगत में बैठते देख कर रायसाहब मुंशीराम, लंगर के तत्कालीन भंडारी श्री जगन्नाथ तथा डेरे के कुछ अन्य अधिकारी भी उस पंगत में बैठ गये। हुज़ूर तथा डेरा के प्रमुख सत्संगियों ने उस पंगत में बैठ कर भोजन किया।

उसके बाद हुज़ूर ने डेरे के सभी अफसरों, पुराने सत्संगियों, सेवादारों, परिचारकों आदि को अपनी कोठी में भोजन के लिये निमंत्रण दिया। इनमें ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, हिन्दू, सिख, मुसलमान आदि सभी जाति के लोग थे। हुज़ूर ने सबको आपस में मिलजुल कर बिठाया। हुज़ूर के परिवार के सदस्यों ने बड़े प्रेम और आदर के साथ सबको भोजन परोसा तथा हुज़ूर ने अपने हाथ से सबको प्रसाद बरताया। इस प्रकार हुज़ूर की अपनी मिसाल, प्रेरणा और दया से शीघ्र ही लंगर में ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य और शूद्र, हिन्दू, सिख, ईसाई तथा मुसलमान, सभी अपना भेद-भाव भूल कर साथ भोजन करने लगे। लंगर अब इतना बढ़ गया है कि एक बार में साठ-साठ हज़ार व्यक्ति एक साथ बैठ कर खाना खाते हैं।

हुज़ूर के इस सुधार का असर धीरे-धीरे डेरे के बाहर के स्थानों में भी होने लगा। आज जहाँ भी हुज़ूर के सत्संग के समय लंगर का प्रबन्ध होता है, वहाँ सभी लोग साथ बैठ कर भोजन करते हैं। कांगड़ा ज़िले में, जहाँ के सत्संगियों में ब्राह्मणों, राजपूतों और रामदासियों (हरिजनों) की बहुत बड़ी संख्या है, जब भी हुज़ूर सत्संग के लिये तशरीफ़ ले जाते हैं तो सबका एक लंगर चलता है तथा सब प्रेम के साथ एक पंगत में बैठ कर खाना खाते हैं।

५. सतगुरु की दया-मेहर के कुछ वृत्तान्त

सतगुरु किस प्रकार जीवों को अपने चरणों में बुलाते हैं

कलकत्ता के एक कालेज में दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर श्री घोषाल ने अपना अनुभव इस प्रकार सुनाया है :—

"पिछले वर्ष जब कालेज में गर्मियों की छुट्टियाँ हुईं तो मैंने काश्मीर और अमरनाथ की यात्रा करने का विचार किया। यह यात्रा करीब डेढ़-दो हज़ार मील लम्बी थी, लेकिन अमरनाथ के हज़ारों फीट ऊँचे बर्फ से लदे पहाड़ और इस गुफा से सम्बन्धित विचित्र कथाओं के आकर्षण से प्रेरित होकर मैंने

यह यात्रा करने का निश्चय कर लिया। कुछ मित्रों से साथ चलने के लिये कहा, परन्तु कोई तैयार न हुआ। अन्त में मैं कलकत्ता से अकेला ही इस यात्रा पर चल पड़ा।

"ट्रेन से अमृतसर और वहाँ से बस से पठानकोट व जम्मू होते हुए श्रीनगर पहुँचा। श्रीनगर से हम लगभग तीन सौ यात्री एक सरकारी अधिकारी की निगरानी में अमरनाथ की ओर चल पड़े। हमारे साथ डाक्टर तथा प्राथमिक चिकित्सा का सामान भी था। कुछ ब्राह्मण व पुरोहित भी, जिनका शायद अमरनाथ में पूजा आदि कराने का अधिकार था, सबसे आगे छड़ियाँ लेकर चल रहे थे। बहुत से यात्री, जिनमें कई साधू भी थे, पैदल चल रहे थे। कई किराये के घोड़ों पर सवार थे। मैंने भी एक घोड़ा किराये पर ले लिया।

"पहलगाम व चन्दनवाड़ी के बर्फ के पुल तक तो कोई विशेष घटना न घटी। परन्तु आगे चलकर जब हम चौदह-पन्द्रह हज़ार फीट की ऊँचाई पर पहुँचे तो मुझे कुछ घबराहट सी होने लगी। हम लोग सँकरे पहाड़ी मार्ग से जा रहे थे। रास्ता इतना सँकरा था कि हम लाइन में एक के पीछे एक जा रहे थे। मैं घोड़े पर सवार था। पता नहीं पहाड़ी घोड़ों व घोड़े वालों को खड्ड के किनारे पर चलने की आदत क्यों होती है। मैंने घोड़े को खड्ड के किनारे से दूर चलाने की कोशिश की परन्तु वह खड्ड की ओर ही चलता रहा। खड्ड भी हज़ारों फीट गहरा था, यदि कोई गिर जाये तो हड्डी पसली का पता न लगे। अचानक मेरी आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा, ऐसा मालूम होने लगा कि बेहोशी आने वाली है। मैंने अपने आपको सँभालने की कोशिश की लेकिन कुछ दूर चलने के बाद मुझ पर ऐसी बेहोशी छाई कि मैं घोड़े पर से खड्ड की ओर गिर पड़ा। थोड़ी सी सुध बाकी थी उस में मैंने देखा कि एक आकर्षक सिख साहब ने, जो श्वेत वस्त्र पहने थे, मुझे अपनी सुदृढ़ बाहों में थाम लिया। एक बार उनके सुन्दर मुखड़े और उज्ज्वल नेत्रों को देखा और फिर मैं बेहोश हो गया। पता नहीं कितनी देर बेहोश रहा, शायद पांच-दस मिनिट रहा होऊँगा। जब कुछ होश आया तो देखा कि मेरा सर उन्हीं साहब की गोद में था तथा वे दायें हाथ से मेरे सर को सहला रहे थे। फिर वह साहब बोले, 'अच्छा, फिर मिलेंगे।' इतना कहकर वह मेरी नज़रों से ओझल हो गये।

"मैंने घोड़ेवाले से पूछा, 'वह कौन थे ? कहाँ गये, जिन्होंने मुझे गिरते वक्त सँभाला ?' घोड़ेवाले ने समझा कि अभी मैं ठीक नहीं हूँ और यों ही असंगत बातें कर रहा हूँ। परन्तु जब मैंने अपना प्रश्न दोहराया तो उसने

जवाब दिया कि उसने तो किसी को मेरे पास नहीं देखा, केवल मैं ही खाई के किनारे बेसुध पड़ा था। जैसे ही उसने मुझे बेहोश पड़े देखा, वह डाक्टर की तलाश में दौड़ पड़ा, लेकिन डाक्टर को तत्काल न ढूँढ सका इसलिये वापस मेरे पास आ गया। मुझे आश्चर्य हुआ कि वे मेहरबान सज्जन इस प्रकार चले क्यों गये और घोड़ेवाले ने उन्हें क्यों न देखा ?

"हम अमरनाथ पहुँचे। वहाँ मैंने बर्फ व ऊँचाई के अलावा और कुछ न पाया। जो आध्यात्मिक जिज्ञासा मेरे मन में बचपन से थी, उसकी पूर्ति-स्वरूप कुछ न मिला। मैं लगभग एक महीना काश्मीर की घाटियों में घूमता रहा। कई दर्शनीय स्थानों की सैर की। प्रकृति की बहुत सुघड़ व मनोरम कृतियाँ वहाँ देखीं, परन्तु अपने रक्षक का वह सुन्दर आकर्षक मुख मेरे मन में निरन्तर बसा रहा।

"लौटते समय मैं अमृतसर में दरबार साहिब तथा सिखों के अन्य पवित्र स्थानों को देखने के लिये रुका। दरबार साहिब में एक सज्जन मुझे मिले जो अपनी कार में मुझे अमृतसर के दर्शनीय स्थान दिखाने के लिये तैयार हो गये। बातों ही बातों में उन्होंने मुझसे पूछा कि मेरा पंजाब में कैसे आना हुआ। मैंने जवाब दिया, 'केवल घूमने के लिये आया हूँ। अमरनाथ, काश्मीर आदि की यात्रा से लौट रहा था, सोचा अमृतसर भी देख लूँ। सो यहाँ आ गया।' वे सज्जन बोले, 'अगर आप दर्शनीय स्थानों की सैर के लिए ही आये हैं तो आपको एक और स्थान देखना चाहिये, जो पास ही है और जहाँ मैं खुद जा रहा हूँ।' मैं उनके साथ इस स्थान पर जाने के लिये राज़ी हो गया।

"करीब एक घण्टे के अन्दर हम राधास्वामी कालोनी ब्यास में पहुँच गये। उस समय पुस्तकालय के सामने के खुले स्थान में सत्संग हो रहा था। मेरे साथी ने मुझसे सत्संग सुनने का अनुरोध किया। मैं स्वयं दर्शन-शास्त्र का प्रोफेसर था और वेदान्त तथा षट्दर्शन का अच्छा विद्वान माना जाता था। अपने साथी के अनुरोध पर मैं अनिच्छापूर्वक सत्संग में बैठ गया। बैठने के बाद जब मैंने तख़्त की ओर नज़र उठाई तो मेरे आश्चर्य और आनन्द का कोई अन्त न था। मेरे सामने वही दिव्य पुरुष साक्षात बिराज-मान था जिसने मुझे अमरनाथ-यात्रा में खड्ड में गिरने से बचाया था। हम दोनों की आँखें मिलीं। वे तनिक मुसकराये और प्रेम व प्रकाश की एक धारा मानों उनके नेत्रों से निकल कर मेरे अन्तर में समा गई। मेरे लिये तो अब सत्संग में बैठे रहना कठिन हो गया। मैं दौड़ कर उनके चरणों में गिरना चाहता था। सत्संग का वह आधा घण्टा बिताना दूभर हो गया।

"सत्संग समाप्त होते ही मैं भाग कर गुरुदेव की ओर गया, मैं उनके चरणों में मस्तक रखना चाहता था कि उन्होंने मुझे अपनी बाहों में थाम कर रोक लिया। मैं बता ही नहीं सकता कि उनके हाथों के स्पर्श से मेरा क्या हाल हुआ। मेरा हृदय प्रेम से भर गया, नेत्र सजल हो गये, जी चाहता था कि उनके चरण चूम लूँ।

"गुरुदेव ने फ़रमाया, 'आप आ गये। बहुत अच्छा किया।' मैंने उत्तर दिया, 'महाराज ! मैं नहीं आया, आप मुझे पकड़ कर लाये हैं।' महाराजजी ने कहा, 'अच्छा अभी आप थके हुए होंगे, आराम करें। फिर बात करेंगे।' और आप कोठी में चले गये।

"मैंने अपने साथी से पूछा कि सतगुरु काश्मीर से कब वापस आये हैं? उसने उत्तर दिया कि महाराजजी तो इस वर्ष काश्मीर गये ही नहीं। मैं हैरान हुआ और सोचने लगा कि यह कैसे हो सकता है कि महाराजजी काश्मीर नहीं गये, मुझे तो वे खुद अमरनाथ के मार्ग में मिले थे।

"दूसरे दिन महाराजजी ने मुझे समय दिया। उन्होंने सन्त-मत के मूल सिद्धान्त समझाये, सुरत-शब्द योग से वेदान्त की भिन्नता बतलाई। समझाया कि सन्त-मत भक्ति का मार्ग है, अभ्यास और अमल करने का रास्ता है। मैं चुपचाप सुन रहा था। मुझे अब मुँह खोलने की ज़रूरत न थी। सतगुरु के कल वाले स्पर्श की मस्ती चित्त पर छाई हुई थी। उनके दर्शन की खुशी में रात भर सो न सका था। हृदय में एक ऐसी प्रीति और प्रसन्नता समाई हुई थी जो इस दुनिया की मालूम नहीं होती थी। गुरुदेव ने कहा, 'कोई सवाल पूछना हो तो खुशी से पूछ सकते हैं।' मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे, भावावेश में गला रुका हुआ था। मैंने गदगद स्वर से पूछा, 'अमरनाथ यात्रा में आप ही मुझे मिले थे न ?' उन्होंने मुसकराकर फ़रमाया, 'नहीं मैं तो कहीं नहीं गया था, यहीं था।' फिर मेरे सतगुरु ने मेरी ओर करुणा, कृपा और प्रेम से परिपूर्ण दृष्टि डाल कर मुझे निहाल कर दिया। मैं इस संसार को तथा अपने आपको एकदम भूल गया।"

'देह-स्वरूप में आयेंगे'

सन् १९५३ में जब हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी सत्संग के लिये देहली तशरीफ़ ले गये तब का यह वृत्तान्त बख्शी खुशहालचन्दजी सुनाते हैं। हुज़ूर ने बख्शीजी को बुला कर फ़रमाया, "बाबाजी महाराज के बुज़ुर्ग सत्संगी, भाई नारायणदासजी देहली में रहते हैं। उनसे जाकर कहिये कि मैं कल शाम को चार बजे उनसे मिलने आऊँगा।"

बख़्शी खुशहालचन्दजी भाई नारायणदासजी से परिचित थे और उनसे कभी-कभी मिलने जाते रहते थे। जब वे भाई नारायणदासजी के घर पहुँचे और द्वार खटखटाया तो अन्दर से भाई साहब ने आवाज़ दी, "बख़्शीजी, अन्दर आ जाओ।" बख़्शीजी ने कुशल मंगल के बाद पूछा, 'भाई साहिब! आपको कैसे पता लगा कि मैं आया हूँ ? मैंने तो आवाज़ भी न दी।" भाई नारायणदासजी ने इसका जवाब न दिया और बोले, "बख़्शीजी, जो सन्देश लाये हो, दे दो।" यह सुन कर बख़्शीजी और हैरान हुए। वे जानते थे कि भाई नारायणदासजी अच्छे अभ्यासी हैं और काफ़ी समय भजन-सुमिरन में बिताते हैं, अवश्य उनकी बात में कोई राज़ है, बोले, "भाई साहब, पहले आप बतायें कि आपको यह कैसे पता लगा कि मैं आया हूँ और कोई सन्देश लेकर आया हूँ ?"

पहले तो भाई नारायणदासजी ने टालने की कोशिश की, लेकिन बख़्शीजी के बहुत आग्रह करने पर बतलाया, "कल मुझे अन्तर में बाबाजी महाराज ने दर्शन दिये और फ़रमाया, 'नारायणदास! परसों शाम को चार बजे हम देह-स्वरूप में तेरे पास आयेंगे'।" इस पर बख़्शीजी ने हुज़ूर का संदेश दिया जिसे सुन कर भाई साहब बहुत खुश हुए और बख़्शीजी को ऐसा उत्तम सन्देश देने के लिये बार-बार धन्यवाद देने लगे। बख़्शीजी ने कहा, "जी, आपको तो पहले से मालूम था फिर मुझको शुक्रिया अदा करने की क्या ज़रूरत है?" नारायणदासजी ने जवाब दिया, "जब भी अन्दर सतगुरु का कोई फ़रमान मिले और बाहर उसकी तस्दीक (पुष्टि) हो जाये तो खुशी होना स्वाभाविक है।"

दूसरे दिन शाम को चार बजे महाराजजी भाई नारायणदासजी के यहाँ तशरीफ़ ले गये। बख़्शीजी भी हुज़ूर के साथ थे। हुज़ूर वहाँ करीब आधा घण्टा ठहरे। पूरे समय भाई नारायणदासजी की दृष्टि हुज़ूर के मुख पर स्थिर थी और चेहरा खुशी व आनन्द में खिल रहा था।

६. हुज़ूर की सत्संग-यात्राएँ

गुरु नानक साहब, कबीर, रविदास आदि सन्तों के जीवन-चरित्र को पढ़ने से पता चलता है कि वे देश के विभिन्न भागों में घूम-घूम कर मालिक से बिछुड़े जीवों को नाम के साथ जोड़ कर इस चौरासी के भयानक कारा-गृह से मुक्त करते रहे। हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी की सत्संग-यात्राओं का वर्णन किया जा चुका है कि किस प्रकार ८८ वर्ष की आयु तक आप दूर-दूर के शहरों और ग्रामों में जाकर दर्शन, सत्संग और नाम बख़्श कर जीवों का उद्धार करते रहे। न अपने स्वास्थ्य की चिन्ता की, न यात्रा की कठिनाइयों की परवाह; अपने उद्देश्य की पूर्ति में किसी प्रकार के कष्ट को बाधक न बनने

दिया। हुज़ूर सरदार बहादुरजी भी अपने अस्वास्थ्य के बावजूद जगह-जगह जाकर सत्संग और नाम प्रदान करते रहे। परम सन्तों की इसी महान परम्परा को हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने किस प्रकार जारी रखा और किस प्रकार देश तथा विदेश में जाकर दर्शन, सत्संग और नाम-दान के द्वारा जीवों को निहाल किया, इसके पूरे वर्णन के लिये एक अलग ग्रन्थ लिखना आवश्यक होगा। यहाँ केवल हुज़ूर की भारत तथा विदेश की यात्राओं तथा उनसे सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों का वर्णन करने की कोशिश करता हूँ।

हुज़ूर की सत्संग-यात्राओं का प्रारम्भ मई-जून १९५२ से होता है जब हुज़ूर ने अपने डलहौज़ी के निवास में डलहौज़ी तथा आस-पास के पहाड़ी स्थानों में सत्संग बख़्शे। उससे पहले हुज़ूर २३ मार्च १९५२ को अमृतसर में सत्संग प्रदान कर चुके थे, जिसमें इतनी संगत थी कि सत्संग-घर के मैदान में न समा सकी। नवम्बर १९५३ में हुज़ूर ने पहली बार देहली में सत्संग बख़्शा। सत्संग खुले मैदानों में करने पड़े और संगत पन्द्रह हज़ार से ऊपर थी।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी के भारत में सत्संग के लम्बे दौरों की शुरूआत नवम्बर १९५५ से होती है जब हुज़ूर ने सहारनपुर, देहरादून, कानपुर, लखनऊ, पिसावा और देहली में सत्संग प्रदान किये। इन सभी स्थानों में संगत बढ़ गई थी और पाकिस्तान से आकर सत्संगी बस गये थे। इन स्थानों में सत्संगों में उपस्थिति इतनी थी, जितनी पहले कभी न हुई।

देहरादून की पहली यात्रा से सम्बन्धित एक छोटा-सा वृत्तान्त डाक्टर कुमारी सिन्हा ने सुनाया है जो इस प्रकार है:—सन् १९४९ में कुमारी सिन्हा की माताजी एक दिन कलकत्ता से बिना किसी सूचना के लखनऊ आ गई और आपसे बोलीं, "मैं ब्यास तुम्हारे गुरुदेव के दर्शन करने जा रही हूँ।" कुमारी सिन्हा की छुट्टी होने में दो दिन बाकी थे अतएव उन्होंने अपनी माताजी को रोक लिया कि दो-तीन दिन बाद साथ ही चलेंगे। परन्तु जिस दिन डेरे जाना था, उसके एक दिन पहले माताजी बीमार हो गईं और डेरे न जा सकीं। कुमारी सिन्हा बहुत व्यथित हुईं और जब डेरे आईं तो अपने सतगुरु सरदार बहादुरजी महाराज के चरणों में अपनी माता के दर्शनों में बाधक होने का दुःख प्रकट किया। पश्चाताप और दुःख के अश्रुओं सहित उन्होंने अर्ज़ की कि इस गुनाह का भार तभी हल्का होगा जब हुज़ूर इस जीव को अपना लेंगे। सरदार बहादुरजी ने कृपा-पूर्ण स्वर में फ़रमाया, "अच्छी बात है, फ़िकर न करो। यह जीव आज से महाराजजी का है।" परन्तु कुमारी सिन्हा को इस पर भी शान्ति न मिली। निवेदन किया, "महा-

राजजी, माँ तो शायद डेरे आ नहीं सकती। इतनी कृपा करें कि उनको इसी जन्म में दर्शन ज़रूर मिल जायें।" हुज़ूर सरदार बहादुरजी ने आश्वासन-पूर्ण स्वर में फ़रमाया, "हाँ, ज़रूर मिलेंगे। सतगुरु खुद जाकर दर्शन देंगे।" परन्तु माताजी को सरदार बहादुरजी महाराज के दर्शन न हो सके। अक्तूबर १९५१ में हुज़ूर सरदार बहादुरजी ज्योति-ज्योत समा गये।

जब हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी पहली बार देहरादून पधारे, तब कुमारी सिन्हा की बहन देहरादून में थीं और माताजी भी उन्हीं के पास रहती थीं। कुमारी सिन्हा देहली में नियुक्त थीं। हुज़ूर से बहन के घर चल कर माता जी को दर्शन बख़्शने की विनती करने के लिये वे रात की गाड़ी से चल कर सुबह देहरादून आ गईं। सत्संग से पहले हुज़ूर के पास पहुँची। हुज़ूर ने आप को देख कर भार्गव* साहब से फ़रमाया, "भार्गव साहब, बहनजी को मेरा आज का प्रोग्राम बता दो।" प्रोग्राम में लिखा था, 'सत्संग के बाद ग्यारह बजे डाक्टर मिस सिन्हा की माताजी के घर जाना।' हुज़ूर ने फ़रमाया, "बहनजी, आपको देहली से आने की ज़रूरत नहीं थी।" कुमारी सिन्हा को सरदार बहादुरजी के वचन याद आ गये और नेत्रों में प्रसन्नता व कृतज्ञता के अश्रु भर आये।

उसी वर्ष हुज़ूर ने तारीख २ से ७ दिसम्बर तक बम्बई, कल्याण और चेम्बूर में तथा ९ और १० दिसम्बर को साँगली में सत्संग प्रदान किये। बम्बई से लौटते समय हुज़ूर १४ दिसम्बर को इन्दौर तशरीफ़ लाये। १४ दिसम्बर की सुबह रतलाम तथा शाम को देवास में सत्संग करने के बाद १५ दिसम्बर को हुज़ूर ने ग्राम देवली में सत्संग प्रदान किया।

देवली इन्दौर से लगभग ४५ मील दूर एक छोटा सा ग्राम है, जहाँ आज नब्बे प्रतिशत घर सत्संगियों के हैं। गाँव पक्की सड़क से दस मील दूर है तथा जीप द्वारा खेतों में से होकर जाना पड़ता है। हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज जब दिसम्बर १९३९ में इन्दौर पधारे थे तब तीन दिन के लिये देवली भी तशरीफ़ ले गये थे। वहाँ हुज़ूर ने १३ व १४ तारीख को सत्संग किया तथा तीसरे दिन नाम बख़्शा। जब १५ दिसम्बर १९३९ को हुज़ूर बड़े महाराज-जी देवली से वापस चलने लगे तो वहाँ के तीन-चार प्रमुख सत्संगियों ने अर्ज़ की कि हुज़ूर दया-मेहर रखें और देवली फिर पधारें; उनकी आँखों में आँसू भर आये। हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "भाई आप दुःखी मत होओ। सतगुरु हमेशा अंग-संग हैं। मैं आपसे बहुत खुश हूँ। मैं दो बार और तुम्हारे

---

* श्री सोमेश्वर सहाय भार्गव, जो उन दिनों देहरादून में सत्संग के व्यवस्थापक थे।

गाँव में आऊँगा।" परन्तु इसके बाद हुज़ूर बाबा सावनसिंहजी महाराज का देवली आना संभव न हो सका और अप्रैल १९४८ में आप धुर-धाम सिधार गये। देवली के इन तीन-चार प्रेमी सत्संगियों को सतगुरु दीन-दयाल के बिछोह का दुःख तो था ही, साथ ही दिल में यह बात भी खटकती थी कि सतगुरु के दो बार देवली पधारने का वचन कैसे अधूरा रह गया।

परन्तु सतगुरु और उनके जानशीन एक ही रूप होते हैं। जैसा कि बाबा जी महाराज ने हुज़ूर बड़े महाराजजी को जानशीन बनाते समय फ़रमाया था कि सन्त एक से दूसरे स्वरूप में उसी प्रकार समा जाते हैं जिस प्रकार जल में मिसरी समा जाती है, जल का रंग नहीं बदलता, पर स्वाद बदल जाता है। दिसम्बर सन् १९५५ में जब हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने इन्दौर का दौरा रखा तो हुक्म फ़रमाया कि देवली भी एक सत्संग बख़्शेंगें। हुज़ूर १५ दिसम्बर १९५५ की सुबह देवली पधारे और सत्संग प्रदान किया। (सन् १९३९ में १५ दिसम्बर के दिन ही हुज़ूर बड़े महाराजजी ने दो बार देवली आने के वचन फ़रमाये थे)। कुछ प्रेमी सत्संगियों को हुज़ूर ने सत्संग में हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के रूप में दर्शन दिये। इसी प्रकार १९५६ के दिसम्बर में हुज़ूर ने इन्दौर के सत्संग के साथ दूसरी बार फिर देवली का प्रोग्राम रखा और संगत को प्रेम और आनन्द में विभोर कर दिया। तब पुराने सत्संगियों ने बताया कि किस प्रकार हुज़ूर बड़े महाराजजी के दो बार देवली आने के वचन पूर्ण हुए।

उस साल जहाँ-जहाँ भी हुज़ूर तशरीफ़ ले गये, संगत ने नाम-दान के लिये प्रार्थना की। परन्तु हुज़ूर का आगे का प्रोग्राम निश्चित होने के कारण कहीं भी नाम-दान के लिये रुकना सम्भव न था। हुज़ूर ने अगली बार नाम देने का आश्वासन दिया। अतएव १९५६ में हुज़ूर ने बम्बई और इन्दौर में नाम प्रदान किया। १९५५ और १९५६ में हुज़ूर ने इन्दौर में उस स्थान पर सत्संग किये जहाँ १९३३ में हुज़ूर बड़े महाराजजी अपनी इन्दौर-यात्रा में ठहरे थे।

दिसम्बर १९५६ में जब हुज़ूर इन्दौर तशरीफ़ लाये तब का वृत्तान्त है। एक सत्संगी हुज़ूर से व्यक्तिगत मुलाकात करके कुछ अर्ज़ करना चाहता था, लेकिन मुलाकात के लिये समय निकल गया था। वह सेवादारों से बार-बार विनती करता रहा, किन्तु उन्होंने जवाब दिया कि अब मुलाकात नहीं हो सकती। प्रोग्राम के अन्तिम दिन सेवादारों को प्रसाद देने के बाद हुज़ूर ने फ़रमाया कि अगर किसी को टाइम लेना हो तो ले आओ। स्थानीय सेक्रेटरी

ने उस सत्संगी को हुज़ूर के पास भेज दिया। दो-तीन मिनिट हुज़ूर से बात करने के बाद वह सत्संगी बाहर आया और सेक्रेटरी के पैरों में गिरने लगा। उसकी आँखों से प्रेम के आँसू बहे जा रहे थे, चेहरे पर अजीब खुशी और नशा था। सेक्रेटरी के पूछने पर उसने बताया कि करीब बारह वर्ष पहले उसे सतगुरु महाराज सावनसिंहजी से नाम मिला था। सतगुरु की दया-मेहर से भजन-सुमिरन बनने लगा, अन्दर परदा खुल गया और रूह ऊपर जाने लगी। परन्तु कुछ समय बाद उससे कोई गुनाह हो गया और सतगुरु की दात जाती रही, अन्दर चढ़ाई बन्द हो गई, शब्द लुप्त हो गया। दस साल बेचैनी, तड़प और दु:ख में बिताये। यह पूरा हाल सुनाकर बोला, "आज जब सतगुरु के चरणों में मत्था टेका और माफी माँगी तो उनकी दया-मेहर हो गई। बंद दरवाज़ा खुल गया है और शब्द चालू हो गया है।"

हुज़ूर का आदेश था (और अब भी है) कि आपके आने का कोई विज्ञापन या प्रचार न किया जाय और सत्संग की व्यवस्था सादगी-पूर्ण हो। इस आदेश का सर्वत्र पालन किया जाता है, परन्तु यह समझ में नहीं आता कि कैसे और कहाँ से लोग हज़ारों की संख्या में आ जाते हैं। बम्बई में उन दिनों दो-तीन सौ सत्संगी थे, परन्तु हुज़ूर के सत्संग में पाँच हज़ार से अधिक संगत मौजूद थी।

हुज़ूर ने इस प्रकार देश के विभिन्न हिस्सों में सन्तों के पवित्र व ऊँचे सन्देश को पहुँचाना शुरू किया। आपके प्रेमपूर्ण, स्पष्ट तथा सरल सत्संगों को सुन कर गरीब, अमीर, विद्वान, अनपढ़, सब प्रकार के लोग खिंचे आने लगे। अनेक जिज्ञासु हुज़ूर से वक्त लेकर अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करने लगे। इस प्रकार जो बीज हुज़ूर बाबा सावनसिंहजी महाराज ने बोया, वह महाराज चरनसिंहजी के परिश्रम, प्रेम और दया-मेहर से एक सुन्दर पौधे के रूप में प्रस्फुटित होकर तेजी से फलने-फूलने लगा। हुज़ूर के सत्संग के दौरों का क्रम शुरू हो गया और हर साल अगस्त या सितम्बर से अप्रेल और कभी-कभी मई तक हुज़ूर सत्संग के लिये डेरे से बाहर जाते रहते हैं। लगभग सभी स्थानों पर नाम प्रदान करते हैं। हर जगह पचासों जिज्ञासुओं और सत्संगियों को रोज़ व्यक्तिगत मुलाकात के लिये वक्त देते हैं।

१९६१ तक हुज़ूर हर वर्ष करीब पचास-साठ शहरों व गाँवों में जाकर सत्संग प्रदान करते थे। ये यात्राएँ बहुत थकानेवाली और कठिन होती थीं। हुज़ूर के एक ऐसे ही सत्संग के दौरे का विवरण नीचे दिया जाता है, जिससे अनुमान हो सकेगा कि ये दौरे कितने श्रमपूर्ण होते हैं।

२ नवम्बर की शाम को हुज़ूर डेरे से मोटर द्वारा अमृतसर तशरीफ़ ले गये और रात को कलकत्ता मेल से रवाना होकर ३ नवम्बर को दोपहर के बाद लखनऊ पहुँचे। रास्ते में हर बड़े स्टेशन पर संगत, हुज़ूर की सुविधा-असुविधा का विचार किये बिना, बड़ी संख्या में दर्शन के लिए आती रही। हुज़ूर को रात में तीन-चार बार उठ कर अपने कम्पार्टमेंट से बाहर आकर दर्शन देने पड़े। लखनऊ पहुँचते ही सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं का तांता लग गया। शाम को पाँच से सात बजे तक सत्संग बख्शा। दूसरे दिन ४ नवम्बर को सुबह फिर सत्संग किया तथा शाम को २७५ स्त्री-पुरुषों को नाम प्रदान किया, जिसमें रात के दस बज गये। ५ तारीख़ को सवेरे सूर्योदय से बहुत पहले मोटर से चल कर १०-३० बजे इलाहाबाद पहुँचे और सीधे सत्संग पण्डाल में जाकर सत्संग प्रदान किया। १२-३० बजे सत्संग समाप्त हुआ तथा हुज़ूर वहाँ से सीधे स्थानीय सेक्रेटरी के घर गये जहाँ जिज्ञासुओं को वक्त और फिर संगत को प्रसाद दिया। इसमें दो-ढाई बज गये। खाना खाकर सवा तीन बजे स्टेशन के लिये चल पड़े और चार बजे की गाड़ी से कटनी के लिए रवाना हुए। कटनी रात के ग्यारह बजे के करीब पहुँचे। ५, ६ और ७ नवम्बर को हुज़ूर ने कटनी में सत्संग प्रदान किये। प्रतिदिन चालीस-पचास व्यक्तियों को मुलाकात दी। ७ व ८ तारीख को तीन बैठकों में ८४२ व्यक्तियों को नाम-दान दिया और ८ नवम्बर की शाम की गाड़ी से बिलासपुर के लिए प्रस्थान किया। सारी रात ट्रेन में सफर करने के बाद दूसरे दिन सुबह छः बजे बिलासपुर पहुँचे। स्टेशन पर संगत को दर्शन देते हुए रायपुर के लिए गाड़ी बदली और सुबह १०-३० बजे रायपुर पहुँचे। ९ तारीख की शाम और १० की सुबह रायपुर में सत्संग बख्श कर हुज़ूर अकोला के लिए रवाना हुए और रात को ग्यारह बजे अकोला पहुँचे। स्टेशन पर काफी संगत इकट्ठी हो गई थी। ११ और १२ नवम्बर को हुज़ूर ने अकोला में सत्संग किया तथा १०१६ व्यक्तियों को नाम बख्शा। सुबह नाम-दान और शाम को सत्संग का व्यस्त प्रोग्राम तो था ही, बीच में मुलाकात चाहनेवालों को समय भी देते रहे। १३ नवम्बर की सुबह ट्रेन से चल कर हुज़ूर ११ बजे नागपुर तशरीफ़ लाये। १३ तारीख की शाम को और १४ की सुबह सत्संग बख्शा और शाम को हैदराबाद, बैंगलौर तथा मद्रास के लिए रवाना हो गये। इन तीनों स्थानों पर दो-दो सत्संग प्रदान करके हुज़ूर २५ नवम्बर को ट्रेन द्वारा डेरे पहुँचे। आते ही डेरे का कार्य शुरू हो गया, जिसमें चार-पाँच दिन बहुत व्यस्त रहने के बाद ३० नवम्बर को सुबह ५-३० बजे कार से देहली के लिए प्रस्थान किया।

रास्ते में करनाल में डेढ़ घण्टे सत्संग किया और कुछ सत्संगियों को वक्त देने के बाद रात को देहली पहुँचे।

हुज़ूर १ दिसम्बर को सुबह हवाई जहाज़ द्वारा बम्बई पहुँचे तथा छः दिन बम्बई और कल्याण में सत्संग प्रदान किया। बम्बई में ७०० जीवों को नाम-दान बख़्शा। उसके बाद हुज़ूर सांगली तशरीफ़ ले गये जहाँ दो दिन सत्संग तथा नाम प्रदान किया। सांगली से बम्बई होते हुए वापस देहली पधार कर महाराजजी ने देहली में दो सत्संग किये। वहाँ से मोटर से चल कर हुज़ूर ने १४ दिसम्बर को पटियाला में तथा १५ और १६ दिसम्बर को चण्डीगढ़ में सत्संग किये। एक दिन सरसा होते हुए हुज़ूर १८ दिसम्बर को डेरे लौटे।

डेरे आते ही बाबाजी महाराज के भण्डारे का कार्य सामने आ गया। आज-कल भण्डारों पर दस-दस दिन पहले से संगत आना शुरू हो जाती है। एक लाख से अधिक व्यक्तियों के निवास का प्रबन्ध (सख़्त सर्दी के दिनों में), भोजन आदि की व्यवस्था, संगत से मुलाकात, आफ़िस का काम, देश और विदेश से आने वाले पत्रों के उत्तर आदि कार्यों का सिलसिला लगातार चलता रहता है। यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका आदि देशों से आये हुए सत्संगियों व जिज्ञासुओं की देख-भाल, उनसे प्रति-दिन सुबह और शाम मुलाकात, रोज़ शाम को अंग्रेज़ी में सत्संग, परमार्थ के नये जिज्ञासुओं की शंकाओं का निवारण, पुराने सत्संगियों की आन्तरिक कठिनाइयों का समाधान, अनेक मिलने वालों से बात-चीत, भण्डारे का समय करीब आने पर दिन में दोनों समय सत्संग, सेवा के समय संगत को दर्शन और तीन-चार हज़ार जीवों को नाम प्रदान करके उनके कर्मों का बोझ उठाना—यह सब कार्य करना कोई साधारण बात नहीं है।

आज-कल सात-आठ दिन तो नाम-दान में ही लग जाते हैं। भण्डारा तथा डेरे के इन सभी श्रम-पूर्ण कार्यों से निबट कर हुज़ूर जनवरी के प्रारम्भ में बड़ौदा, अहमदाबाद, कलकत्ता व टाटानगर की ओर चल पड़े। बहुत दिनों से इन स्थानों के सत्संगी हुज़ूर के सत्संग की अमृत-वर्षा की आस लगाये हुए थे। जाते समय महाराजजी ने १२-१३ जनवरी को देहली में सत्संग किया तथा नाम भी दिया। वहाँ से चल कर १४ व १५ जनवरी को बड़ौदा, १६-१७ और १८ जनवरी को अहमदाबाद और २०-२१ जनवरी को टाटानगर में सत्संग प्रदान किये। टाटानगर में हुज़ूर ने नाम-दान भी दिया। उसके बाद कलकत्ता में २२ से २५ जनवरी तक सत्संग और नाम-दान का कार्यक्रम पूर्ण करके हुज़ूर वापस डेरे तशरीफ़ लाये।

यह लिख देना आसान है कि दो दिन अमुक जगह सत्संग हुआ और दो दिन अमुक स्थान पर हुआ। परन्तु दिन-रात की यात्रा, दिन में दो-दो बार सत्संग, नामदान, लोगों से मुलाकात आदि के श्रम का अनुमान तभी लग सकता है जब हम ऐसे कार्य-क्रमों के कष्ट, असुविधा व थकान, निरन्तर यात्रा करते रहने की परेशानी, आराम की कमी और निरन्तर व्यस्त रहने के भार का कुछ अन्दाज़ा लगा सकें। अगर यह सिर्फ एक-आध महीने की बात हो तो यह सोचा जा सकता है कि कोई बहुत बड़ी बात नहीं। लेकिन जहाँ प्रत्येक वर्ष व सारी उम्र ही यह प्रोग्राम चलता हो तो बरबस मन में यह विचार आता है कि यह कोई ख़ुदाई ताकत ही है जो केवल जीवों के उद्धार के लिये इतना भार उठा रही है।

सन् १९६२ में हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने निर्णय किया कि प्रत्येक प्रान्त के भिन्न-भिन्न शहरों में जाने के बदले हरएक प्रान्त में एक अथवा दो केन्द्र बनाये जायें जहाँ आस-पास की संगत आकर ठहर सके और हुज़ूर के चार-पाँच सत्संग और नाम-दान का लाभ ले सके। अतएव हुज़ूर ने देहली, नागपुर, बम्बई, सांगली, इन्दौर, टाटानगर, सिधपुर, जयपुर, अजमेर, सिकन्दर-पुर (सरसा) आदि कई शहरों और ग्रामों को सत्संग-केन्द्र बनाया और इन स्थानों में भूमि खरीदी गई। इन स्थानों में सत्संगघर, संगत के निवास के लिये पक्के शेड, कुएं, पानी की टंकियां, पाइप-लाइन, नल, स्नान-घर, शौचालय आदि बनाये जा रहे हैं। इनमें कई स्थानों में हुज़ूर के सत्संग के दिनों में लंगर चलता है जिसमें सबको मुफ्त भोजन मिलता है। कुछ स्थानों पर भोजन-भण्डार चलाये जाते हैं, जिनमें पचास या साठ पैसे में रोटी, दाल, चावल, सब्ज़ी आदि की पूरी थाली मिलती है। ऐसे स्थानों में भोजन-भण्डार के लिये अलग शेड बनाये गये हैं।

ऐसे अनेक सत्संग केन्द्र निर्मित हो जाने के बाद भी हुज़ूर महाराजजी की सत्संग-यात्राएँ कम न हो सकीं। अब भी इन केन्द्रों तथा कुछ प्रमुख स्थानों में प्रतिवर्ष हुज़ूर के ३० से ४० सत्संग-प्रोग्राम हो जाते हैं। हर स्थान पर दो-तीन दिन सत्संग तथा नाम-दान का कार्य-क्रम रहता है।

हुज़ूर की राजस्थान में गंगानगर, जोधपुर, जैसलमेर आदि स्थानों की यात्रा के फल-स्वरूप इस क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में सत्संगी तथा जिज्ञासु हैं। इनकी सुविधा के लिये हुज़ूर अजमेर, जयपुर, अलवर, गंगानगर आदि स्थानों पर सत्संग प्रदान करते रहे हैं। परन्तु हरियाना प्रान्त बनने के बाद तथा गंगानगर, सरसा, हिसार आदि स्थानों की संगत के लाभार्थ हुज़ूर ने अपने

पैतृक ग्राम सिकन्दरपुर में सत्संग प्रारम्भ किया है।

सिकन्दरपुर में हुज़ूर वर्ष में दो या तीन बार सत्संग देते हैं। हुज़ूर तथा हुज़ूर के परिवार ने सिकन्दरपुर में अपने फार्म में, सड़क से नज़दीक नौ एकड़ भूमि सत्संग को प्रदान की है। इसके चारों ओर हुज़ूर के परिवार की ओर से पक्की दीवार बना दी गई है। सिकन्दरपुर सत्संग का पूरा खर्च, लंगर तथा अन्य व्यवस्था शुरू-शुरू में हुज़ूर की ओर से होती थी और अब भी लंगर आदि में गेहूँ, आटा, दाल आदि का अधिकांश भाग हुज़ूर तथा परिवार की ओर से सेवा के रूप में आता है। सिकन्दरपुर में सत्संग केन्द्र का विकास काफी तेज़ी से हो रहा है और इस समय लंगर, ट्यूबवेल, पानी की टंकी, नल, संगत के ठहरने के लिये दो मंज़िले मकान आदि बन गये हैं और निर्माण अभी भी जारी है। सत्संग की पूरी व्यवस्था हुज़ूर के मार्ग-दर्शन में आपके लघु भ्राता कप्तान पुरुषोत्तमसिंहजो द्वारा की जा रही है। हुज़ूर के सत्संग में लगभग २५ से ३० हज़ार व्यक्ति आते हैं, जिनमें अधिकांश राजस्थान व हरियाणा के इलाके के होते हैं। सत्संग के दिनों में हुज़ूर की कोठी भी मेहमानों से भरी रहती है, जिनकी व्यवस्था बड़े प्रेम के साथ की जाती है।

लगभग हर साल अगस्त, सितम्बर और अक्तूबर के दिनों में हुज़ूर पंजाब, हिमाचल और कांगड़ा के पहाड़ी क्षेत्रों में सत्संग के लिये पधारते हैं। इनमें बहोटा, सुजानपुर टिहरा, मण्डी, परौर, पालमपुर, ऊना, कालू की बड़ आदि स्थान हैं। गरमियों में जब भी हुज़ूर श्रीनगर, डलहौज़ी या मसूरी जाते हैं तो वहाँ प्रायः हर इतवार को सत्संग प्रदान करते हैं। पाकिस्तान बनने के बाद कालाबाग, एबटाबाद आदि नगरों की संगत पंजौर, कालका आदि स्थानों में आकर बस गई। उनके लिये हुज़ूर शिमला तथा चण्डीगढ़ सत्संग के लिये तशरीफ़ ले जाते हैं। चण्डीगढ़ में उपस्थिति पचास हज़ार से ऊपर हो जाती है। इन सभी स्थानों में सत्संग तथा नामदान का प्रोग्राम रहता है।

हुज़ूर साल में एक बार और कभी-कभी दो साल में एक बार शिमला सत्संग के लिये पधारते हैं। शिमला में हुज़ूर के सत्संग के लिए आस-पास के पहाड़ी स्थानों से संगत आ जाती है। इनमें प्रमुख हैं सोलन, सिंगियाँ, धरम-पुर, बरोग, कण्डाघाट, ऊचघाट, सलोगन, सुबाथू, चैल आदि।

एक बार जब हुज़ूर सत्संग के लिये शिमला पधारे तो कुछ प्रेमी सत्सं-गियों के आग्रह पर मोटर द्वारा कोटगढ़ तक घूमने तशरीफ़ ले गये। कोटगढ़ शिमला से लगभग ५०-६० मील दूर, समुद्र से आठ-नौ हज़ार फीट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ से भारत-तिब्बत की सीमा केवल ८० मील है।

हुज़ूर ने १९६६ में अपने शिमला के कार्यक्रम के साथ ही एक सत्संग कोटगढ़ में भी बख़्शा। दो घण्टे के प्रभावशाली सत्संग को सरल हृदय पहाड़ी लोगों ने प्रेम से सुना और उसके बाद शिमला तथा डेरे में आकर नाम लेना शुरू कर दिया। अक्तूबर १९६८ में हुज़ूर फिर कोटगढ़ पधारे और दो रात वहाँ ठहरे। जाते समय रास्ते में बारिश थी तथा बरफ गिर रहा था। जब हुज़ूर कोटगढ़ से करीब तीन मील दूर थे तब बारिश तो रुक गई परन्तु आगे के रास्ते पर मोटर नहीं जा सकती थी। अतएव आगे बर्फ़ से ढका ढाई मील का पहाड़ी मार्ग हुज़ूर ने पैदल चल कर तय किया। यहाँ हुज़ूर ने तीन सत्संग दिये तथा २१० जीवों को नाम प्रदान किया। जिस समय हुज़ूर नाम-दान शुरू करने ही वाले थे कि तिब्बत की सीमा पर स्थित किसी ग्राम के तीन व्यक्ति आये। उन्होंने सुना था कि कोई महान सन्त कोटगढ़ में आये हुए हैं। अस्सी मील पैदल चलकर वे ठीक नाम-दान के समय पहुँचे और हुज़ूर ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उन्हें भी नाम प्रदान कर दिया।

कोटगढ़ के इस प्रसंग से स्पष्ट होता है कि सतगुरु का प्रत्येक कार्य कोई अर्थ रखता है, किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये होता है। सैर के लिए कोटगढ़ पधार कर हुज़ूर ने एक ऐसे भाग में नाम का बीज डाला जहाँ मांस, शिकार और पशु-बलि का रिवाज तथा अंध-विश्वास का राज था। आज कोटगढ़ तथा आस-पास के ग्रामों में लगभग डेढ़-दो हज़ार सत्संगी हैं और इस क्षेत्र के लोग हर सर्दी में डेरे आकर नाम ले जाते हैं।

हुज़ूर ने पिछले बीस वर्षों में देश के चारों कोनों में स्थान-स्थान पर जाकर सत्संग बख़्शा है। आज हुज़ूर की लम्बी सत्संग-यात्राओं के फलस्वरूप देश का कोई ऐसा शहर नहीं होगा जहाँ कि सत्संगी न हों। देश के विभाजन के बाद कलकत्ता में भी कुछ सत्संगी जाकर बस गये थे। हुज़ूर ने उनकी प्रार्थना पर कलकत्ते में भी सत्संग प्रदान करना शुरू किया और धीरे-धीरे वहाँ भी संगत बढ़ने लगी। पिछले पन्द्रह वर्षों में हुज़ूर आठ दस बार कलकत्ता तशरीफ़ ले जा चुके हैं। कई बंगाली परिवार सन्त-मत की ओर आकृष्ट हो चुके हैं। कलकत्ता शहर कई बार राजनैतिक अशान्ति का केन्द्र रहा है। सन् १९६४ में जब हुज़ूर कलकत्ता तशरीफ़ ले गये तो दंगे हो रहे थे और गोलियाँ चल रहीं थीं। हुज़ूर जब सत्संग के लिये जा रहे थे तो रास्ते में हुज़ूर की मोटर में एक गोली लगी। ड्राइवर घबरा गया, परन्तु हुज़ूर ने उससे कहा कि घबराओ नहीं, सत्संग मैदान की ओर चलते रहो। हुज़ूर ने इस सब अशान्ति में भी बड़े प्रेम के साथ डेढ़ घण्टे सत्संग प्रदान किया।

सत्संग मोहम्मदअली पार्क में था, जहाँ पूरे सत्संग के समय गोलियों की आवाज़ें आती रहीं; हुज़ूर को देख कर संगत भी शान्तिपूर्वक बैठी रही।

बंगाल ही नहीं, आज बिहार, आसाम तथा मनीपुर में भी सत्संगी हैं और यहाँ के कई शहरों में सप्ताह में एक बार सत्संग होता है। इसी प्रकार मद्रास, आंध्र, केरल आदि में भी अनेक सत्संगी हैं और हुज़ूर बंगलौर, मद्रास हैदराबाद आदि स्थानों में सत्संग के लिये पधारते हैं।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी तथा सरदार बहादुर महाराज जगतसिंह जी के समान ही महाराज चरनसिंहजी का भी घुमान तथा घुमान की संगत के प्रति बहुत प्रेम है। परन्तु आपको अपने सतगुरु के जन्म-स्थान महिमा-सिंहवाला का भी बहुत ख़याल है। हुज़ूर बड़े महाराजजी अपने ग्राम महिमा-सिंहवाला जाते रहते थे, किन्तु वहाँ सत्संग शायद ही कभी किया हो। हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने महिमासिंहवाला में सत्संग करने का निश्चय किया।

महिमासिंहवाला लुधियाना से १४ मील दूर है। जन-संख्या एक हज़ार के आस-पास है। लोग स्वभाव से वीर और स्वाभिमानी हैं। अधिकांश युवक सेना में जाना पसन्द करते हैं। हुज़ूर बड़े महाराजजी तथा उनके पिता सरदार काबलसिंहजी सेना में उच्च अफसर रह चुके थे। दोनों विश्वयुद्धों में ग्राम के सैनिक वीरता और क़ुर्बानी की मिसाल कायम कर चुके हैं। परन्तु सन्त-मत से ग्राम-वासी शुरू से ही दूर रहे। बाबाजी महाराज जब सत्संग के लिये पधारते तो सत्संग में कुल दस-पन्द्रह व्यक्ति आते, जिनमें आधे से ज़्यादा हुज़ूर के परिवार के सदस्य होते थे। ग्राम-वासी हुज़ूर महाराज बाबा सावन-सिंहजी को अपने ग्राम का एक बुज़ुर्ग तथा अपना सम्बन्धी समझते रहे, पर हुज़ूर के महान और यथार्थ व्यक्तित्व की ओर उन्होंने विशेष ध्यान न दिया।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने महमासिंहवाला में पहली बार सत्संग प्रदान किया तो ग्राम के सभी लोग आये। हुज़ूर ने गुरु-ग्रन्थ साहिब में से शब्द लेकर बड़ी स्पष्ट और सशक्त व्याख्या की। ग्राम-वासी मन्त्र-मुग्ध से सुनते रहे। वे हुज़ूर से मिलने भी आये। हुज़ूर ने बुज़ुर्गों का नम्रता-पूर्वक सर झुका कर अभिवादन किया और बराबर के लोगों से प्रेम से मिले। सब को ऐसा लगा कि उनके परिवार और उनके ही ग्राम का व्यक्ति वर्षों बाद उनसे मिल रहा है। सत्संग में लगभग बीस हज़ार व्यक्तियों की उपस्थिति तथा पच्चीस-तीस विदेश के सत्संगियों को देख कर ग्रामवासी प्रभावित अवश्य हुए; गर्व का अनुभव किया कि उनके ग्राम और परिवार के एक सदस्य ने इतना सम्मान और इतनी ख्याति प्राप्त की है, परन्तु सन्त-मत की

असली शिक्षा की ओर से उदासीन ही रहे ।

हुज़ूर ने साल में दो बार महिमासिंहवाला में सत्संग प्रदान करना शुरू किया । धीरे-धीरे ग्रामवासियों में हुज़ूर के प्रति प्रेम और सन्त-मत के प्रति रुचि जाग्रत होने लगी । हुज़ूर तथा हुज़ूर के परिवार ने महिमासिंहवाला में स्थित अपनी समस्त ज़मीनें सत्संग को भेंट कर दी हैं। हुज़ूर बड़े महाराज जी के निवास-स्थान को सुधार-सँवार कर ठीक करवा दिया है । कुछ सत्संगों के बाद ग्राम-वासी नाम-दान के लिये प्रार्थना करने लगे, परन्तु हुज़ूर ने फ़रमाया कि नाम के लिये ब्यास आयें ।

महिमासिंहवाला में हुज़ूर के सत्संगों में संगत बढ़ने लगी । आस-पास के ग्रामों से लोग खिचे आने लगे । गुजरवाल और नारंगवाल से भी, जहाँ हुज़ूर बड़े महाराजजी ने प्रारम्भिक शिक्षा पाई थी, लोग सत्संग में आने लगे । अब जब हुज़ूर जाते हैं तो नारंगवाल के निवासी सड़क पर तोरण-द्वार बना कर स्वागत करते हैं; द्वार पर बड़े-बड़े अक्षरों में 'राधास्वामी' लिखते और आने वाली संगत को प्यार से 'राधास्वामी' बुलाते हैं । इन्हीं ग्रामों के लोग बाबाजी महाराज तथा हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के समय में राधास्वामी नाम से भी चिढ़ते व दूर भागते थे ।

कई सत्संग सुन लेने के बाद भी महिमासिंहवाला के ग्रामवासी सत्संग व्यवस्था में हाथ नहीं बटाते थे, दर्शकों की तरह अलग रहते थे । अभी कुछ वर्ष पहले हुज़ूर के सत्संग के प्रोग्राम के सात दिन पहले इतनी वर्षा हुई कि ग्राम के कच्चे रास्तों पर कीचड़ की वजह से मोटर या ट्रक नहीं निकल सकते थे । डेरे से जो ट्रक शामियाने आदि लेकर गये थे, वे आगे न जा सके और शामियाने ग्राम से एक मील बाहर पक्की सड़क पर उतार दिये गये । थोड़ी थोड़ी बारिश होती रही और डेरे के कुछ अधिकारियों ने हुज़ूर से अर्ज़ की कि रास्ते पर कीचड़ इतना ज़्यादा है कि कोई सामान महिमासिंहवाला तक नहीं पहुँचाया जा सकता और संगत को भी वहाँ पहुँचने में तकलीफ़ होगी, अतएव सत्संग का प्रोग्राम कैंसल कर दें । हुज़ूर ने फ़रमाया कि अगर महिमासिंहवाला के ग्रामवासी कहें कि प्रोग्राम कैंसल कर दो, तो कर देंगे, अन्यथा नहीं ।

इधर नारंगवाल ग्राम के लोगों ने अपनी गाड़ियों में शामियाने रख कर उठाना शुरू किया कि सत्संग उनके यहाँ कालेज के मैदान में हो सके । यह देख कर महिमासिंहवाला के ग्रामवासियों को जोश आया । पूरा गाँव रास्ता ठीक करने के लिये आ गया । एक प्रतिष्ठित ग्रामवासी की पुरानी कोठी थी

जो जीर्णावस्था के कारण गिर रही थी। उन्होंने सबसे कहा कि आओ इस मकान को गिरा दें और इसके ईंट-पत्थर व मलबे से रास्ता पक्का कर लें। ऐसा ही किया गया। ग्रामवासियों ने दो दिन में रास्ता बना लिया और सत्संग समय पर हुआ। सत्संग में करीब एक लाख की उपस्थिति थी। लंगर, भोजन-भंडार, बस-स्टेंड, साइकिल-स्टेंड, पंडाल, बिजली, पानी आदि की उत्तम व्यवस्था थी और ग्रामवासियों ने बाहर से आनेवाली संगत को ठहराने के लिये अपने घरों के द्वार खोल दिये थे।

इस प्रकार हुज़ूर ने अपने पूर्वजों के स्थान और खास कर सतगुरु के जन्म-स्थान के निवासियों में प्रेम जाग्रत करके अपनी दया-मेहर से उन्हें निहाल कर दिया।

हुज़ूर की निरन्तर सत्संग-यात्राओं के फल-स्वरूप आज देश के हज़ारों स्थानों में हर इतवार को संगत एकत्रित होती है और सत्संग होता है। इस समय देश में करीब २७१ स्थानों में सत्संग-घर, सत्संग की ज़मीनें आदि हैं। रूहानियत का प्रवाह आ गया है और बढ़ते हुए भौतिकवाद के बीच में आज मनुष्य परमात्मा और उसकी प्राप्ति के विषय में सोचने को प्रेरित हो रहा है। बाहरमुखी क्रियाओं और कर्म-काण्ड की ओर से रुचि हट रही है और सच्ची आध्यात्मिकता के प्रति जिज्ञासा जाग्रत हो रही है। इस सबके पीछे हुज़ूर की अपार दया-मेहर, प्रेम और परिश्रम है। अपने आराम और सुविधा की, अपने स्वास्थ्य तक की चिन्ता न करके हुज़ूर ने कठिन परिश्रम करके जो देश और विदेश में सन्त-मत की ज्योति जाग्रत की है, जीवों को नाम-दान बख्श कर मुक्ति के मार्ग पर लगाया है, संगत की जो रहनुमाई और सँभाल की है उसकी मिसाल इतिहास में ढूँढे भी नहीं मिलती।

७. हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी की विदेश-यात्राएँ

सन्त किसी विशेष देश या जाति के लिये संसार में नहीं आते। न ही उनका किसी देश या जाति से विशेष लगाव होता है। सभी देश, सभी जातियाँ उनकी अपनी होती हैं। वे देश-विदेश की सीमाओं से परे होते हैं। उनका सन्देश सभी देशों के निवासियों के लिये, सारे संसार के लिये होता है। हुज़ूर सतगुरु सच्चे पातशाह सावनसिंहजी फ़रमाया करते थे कि अभी तो सन्त-मत की शुरूआत ही है। सन्त-मत को अभी यूरोप, अमेरिका आदि

बाहर के कई देशों में फैलना है। आज हुज़ूर के ये वचन सत्य हो रहे हैं और महाराज चरनसिंहजी की अपार करुणा, कृपा और मेहनत के फलस्वरूप सन्त-मत विश्व के कोने-कोने में फैल रहा है।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, भारत से बाहर सन्त-मत का प्रारम्भ सन् १९१०-११ में हुआ था। परन्तु जब हमारे वर्तमान सन्त-सतगुरु हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने १९५३ में नाम-दान शुरू किया, उस समय तक भारत से बाहर कुल २७२ सत्संगी थे। तब यूरोप में केवल दो, दक्षिण अफ़्रीका में चार तथा इंग्लैंड में पन्द्रह-बीस सत्संगी थे। अब यूरोप के प्रायः हर देश में सत्संगी हैं। आज हालैण्ड जैसे छोटे राष्ट्र में सैंकड़ों सत्संगी हैं, तथा जर्मनी, फ्रान्स, बेलजियम, डेनमार्क, स्विटज़रलैंड, नार्वे, स्वीडन, आस्ट्रिया, इटली, स्पेन, ग्रीस आदि देशों में भी सत्संगी हैं। आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड आदि देशों में, जहाँ सन्त-मत का किसी ने नाम भी न सुना था, आज कई सत्संगी हैं। हुज़ूर १९६८ में न्यूज़ीलैण्ड तशरीफ़ ले गये थे। आज इस छोटे से द्वीप में करीब १०० सत्संगी हैं और नाम-दान के इच्छुक अनेक जिज्ञासु हैं।

अमेरिका की संगत हुज़ूर बड़े महाराजजी से अमेरिका पधारने की विनती करती थी। परन्तु हुज़ूर के लिये स्वास्थ्य तथा उन दिनों की लम्बी समुद्री यात्रा की वजह से जाना संभव न था। हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी से भी इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशों की संगत कई वर्षों से प्रार्थना कर रही थी कि हमारे यहाँ आकर दर्शन बख़्शें। हुज़ूर ने इन प्रार्थनाओं को कृपा-पूर्वक स्वीकार किया और मई १९६१ से अपनी विदेश-यात्राओं का प्रारम्भ किया। पिछले दस-ग्यारह वर्षों में हुज़ूर सात बार विदेश-यात्रा कर चुके हैं। इन यात्राओं का कुछ विवरण आगे देने का प्रयास किया जायेगा।

विदेश-यात्रा के दौरान में एक बार किसी ने हुज़ूर से प्रश्न किया कि आप कितनी भाषाएँ जानते हैं? हुज़ूर ने स्नेह-पूर्ण स्वर में सहज भाव से उत्तर दिया, "मेरे मित्र! मैं केवल एक ही भाषा जानता हूँ और वह है प्रेम की भाषा।"

प्रेम की इसी भाषा में सन्तों का सन्देश लेकर परम सन्त सतगुरु सुदूर पूर्व, यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका, आदि उन देशों की यात्रा पर निकले जहाँ इतिहास में पहले कभी किसी सन्त ने शायद ही चरण रखे हों। जिस प्रेम और करुणा ने इतने वर्षों तक भारत के कोने-कोने से विभिन्न भाषा-भाषियों को खींच कर सतगुरु के चरणों में एकत्रित किया था, उसी का प्रवाह अब विश्व के अन्य देशों में आने लगा।

जब मेक्सिको में एक संभ्रान्त महिला ने सत्संग के अन्त में बड़े भाव-पूर्ण स्वर में निवेदन किया, "मैं आपकी अत्यन्त आभारी हूँ कि आप अपने देश से इतनी दूर चल कर मेरे देश में आये हैं।" तो हुज़ूर ने बड़े प्यार के साथ फ़रमाया, "बहन! मैं सब देशों का हूँ और सभी देश मेरे हैं।"

जब हुज़ूर अपनी यात्रा के बाद किसी देश से बिदा होते तब वहाँ के निवासी यही महसूस करते कि कोई उनका अपना, उनका निकट मित्र व प्यारा साथी बिदा ले रहा है। सन्तों ने कभी किसी देश की सीमाओं को अपने सन्देश और अपने प्यार की सीमा स्वीकार नहीं किया। आज हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी के सत्संगी संसार के अधिकांश देशों में हैं। जो राष्ट्र आज एक दूसरे के शत्रु हैं, उनके निवासी भी आपके चरणों में आकर सब मत-भेद भूल कर प्रेम-पूर्वक रहते हैं। दक्षिण अफ्रीका के श्वेत नागरिक अपने देश की रंग-भेद नीति को भूल कर, आज डेरे में आकर अपने हिन्दुस्तानी बन्धुओं के साथ मिल-जुल कर रहते हैं। कुछ वर्षों पहले जब इज़राइल तथा अरब देशों के सम्बन्ध तनाव-पूर्ण ही नहीं, बल्कि शत्रुतापूर्ण थे, डेरे में दोनों देशों के कुछ सत्संगी आये हुए थे। डेरे में बड़े प्रेम के साथ रहे तथा वापस जाते समय ब्यास से एक ही ट्रेन से रवाना हुए। ट्रेन में वे आपस में बड़े स्नेह के साथ बातें कर रहे थे और आशा व्यक्त कर रहे थे कि किसी दिन फिर मिलेंगे। साथ में सफ़र कर रहे अन्य यात्रियों को जब पता चला कि इनमें से कुछ अरब देशों के तथा कुछ इज़राइल के निवासी हैं, तो इनका परस्पर सद्भाव और प्रेम देख कर वे हैरान रह गये, क्योंकि राजनैतिक क्षेत्र में दोनों के देश एक दूसरे के ज़बरदस्त दुश्मन थे।

अपनी विदेश-यात्रा से पहले हुज़ूर ने सभी स्थानों के सत्संगियों से अनुरोध किया कि हुज़ूर के आगमन का किसी प्रकार का दिखावा, प्रचार आदि न करें, पोस्टर, टेलिविज़न, अखबारों आदि के द्वारा इश्तिहार न करें, केवल सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं को प्रोग्राम की सूचना दे दें। सभी देशों में हुज़ूर के आदेशों का पालन किया गया। परन्तु सन्तों के अधिकारी जीव खिंचे चले आये और कई स्थानों पर जहाँ केवल पन्द्रह-बीस सत्संगी थे, सत्संग में डेढ़ दो हज़ार व्यक्ति तक आते रहे।

इन यात्राओं में हुज़ूर ने सभी स्थानों पर प्रत्येक जिज्ञासु और सत्संगी को निजी मुलाकातें बख़्शीं, उनके सवालों के जवाब दिये, उनकी समस्याओं को सुना तथा उनका समाधान किया, सन्त-मत के सिद्धान्तों को सरलता-पूर्वक समझाया और सत्संगियों के घरों में जाकर उन्हें तथा उनके परिवार

के सदस्यों को दर्शन प्रदान किये। कई स्थानों में बीमार सत्संगियों या उनके रिश्तेदारों से अस्पतालों में जाकर मिले। हुज़ूर सत्संगियों के प्रान्त और नगरों में ही नहीं गये बल्कि कई बार सौ-सौ, दो-दो सौ मील की यात्रा करके उनके घरों में जाकर उनको समय दिया।

(१) पहली यात्रा : सुदूर पूर्व १९६१

हुज़ूर ने ८ मई १९६१ को डेरे से चल कर देहली और बम्बई होते हुए सूदुर पूर्व की यात्रा पर प्रस्थान किया। श्री रामनाथ मेहता हुज़ूर के साथ सेक्रेटरी के रूप में गये। हुज़ूर ने सीलोन, सैगौन, बेंगकाक, सिंगापुर, हांग-कांग, टोकियो तथा जापान के कुछ अन्य नगरों में सत्संग की अमृत-वर्षा की तथा नाम-दान देकर जीवों का उद्धार किया। भारत से आकर सुदूर पूर्व के देशों में बसे हुए सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं को हुज़ूर ने दर्शन दिये तथा उनके लिये पंजाबी में भी सत्संग किये। हुज़ूर की दया और कृपा के अनेक वृत्तान्तों में से एक वृत्तान्त जो कि एक रूसी महिला[१] ने हुज़ूर के चरणों में आने का दिया है, यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। यह महिला हांगकांग के एक कालेज में प्रगति की अध्यापिका है। उसने अपना अनुभव लिख कर भेजा है जो संक्षेप में इस प्रकार है :—

हुज़ूर के हांगकांग पहुँचने से कुछ दिन पहले से उसे हुज़ूर के दर्शन होने शुरू हो गये। परन्तु वह यह न समझ सकी कि उसके सामने आने वाले ये आकर्षक बुज़ुर्ग कौन हैं। इन दर्शनों से उसे प्रसन्नता और शान्ति का अनुभव होता और एक उल्लास की भावना निरन्तर बनी रहती। परन्तु साथ ही विचार आता रहता कि ये महात्मा कौन हैं। क्या ये उसके प्यारे मसीहा हज़रत ईसा हैं? लेकिन हज़रत ईसा के जितने चित्र उसने देखे थे, उन सब में उनकी दाढ़ी छोटी व भूरे रंग की थी, जब कि दर्शन देने वाले इन महात्मा की दाढ़ी लम्बी और श्वेत थी। इसके अलावा उनके सर का पहनावा भी ऐसा था जो उसके ख़याल से हज़रत ईसा ने कभी नहीं पहना होगा।

इसी सोच-विचार में कुछ दिन बीत गये। एक दिन सुबह वह अख़बार पढ़ रही थी कि उसमें हुज़ूर की फोटो देखी, जिसके नीचे संक्षिप्त समाचार था कि परम सन्त हिज़ होलीनेस महाराज चरनसिंहजी आज शाम को पाँच बजे सिख गुरुद्वारा में सत्संग देंगे। फोटो देखते ही उसे रोमांच हो आया; यह तो उसी महात्मा की फोटो थी जिसके दर्शन उसे पिछले कुछ दिनों से हो

---

१. मिसेज किरा स्ट्रासर—इन्हें १९६२ में नाम दान मिला।

रहे थे। एक अजीब खुशी उसके मन में छा गई। अखबार हाथ में लेकर वह फौरन उस समाचार पत्र के दफ्तर के लिये चल पड़ी। वहाँ पूछने पर सम्पादक ने बताया कि उसे पता नहीं कि वे महात्मा कहाँ ठहरे हुए हैं। पूछती-पूछती सत्संग के समय गुरुद्वारे में पहुँची। वहाँ उसने उस स्वरूप को प्रत्यक्ष देखा, आँखों से आँसू बह चले तथा गला रुँध गया। जब महाराजजी से मिली तो भी उसका गला भरा हुआ था; बगैर किसी भूमिका के बोली, "पिछले चार-पाँच दिन से मुझे आपके दर्शन हो रहे हैं।"

हुज़ूर ने कृपापूर्ण मुसकान सहित उत्तर दिया, "मुझे तो इसका कोई पता नहीं।"

महिला ने कहा, "लेकिन मुझे तो है! सिवाय आपके वह और कोई नहीं था, जो मुझे दर्शन देता रहा है।"

हुज़ूर ने उसी प्रकार मुस्कराते हुए फ़रमाया, "जब आपको मालूम है, तो फिर मैं इस विषय में क्या कह सकता हूँ।"

उसके बाद जितने दिन हुज़ूर हाँगकांग में रहे, वह सत्संग में रोज़ आती रही। पंजाबी भाषा का एक अक्षर भी वह न समझ पाती थी। बस लगातार महाराजजी के सौम्य, आकर्षक मुख की ओर टकटकी लगाये देखती रहती। कई बार उसके नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आते। सुबह, दोपहर, शाम जहाँ भी सतगुरु होते, पहुँच जाती। न कभी कोई प्रार्थना करती न कोई सवाल। सतगुरु के मोहक मुखड़े को चकोर की भाँति निहारती रहती।

जब हांगकांग से चलते समय हुज़ूर हवाई अड्डे के प्रतीक्षालय में बैठे थे, तो वह बोली, "बेशक तुम ही मेरे प्यारे ईसा मसीह हो।"

हुज़ूर ने सन्तों की स्वाभाविक दीनता व नम्रता के साथ उत्तर दिया, "मैं तो उनके चरणों की धूलि के समान भी नहीं हूँ।"

वह बोली, "अगर तुम ईसा नहीं तो स्वयं परमपिता परमात्मा हो।..." उसका कण्ठ रुँध गया, आगे कुछ न बोल सकी। वह अपने उमड़ते अश्रुओं को न रोक सकी।

कुछ समय बाद उसे नाम-दान मिल गया और अब वह एक प्रेमी सत्संगी है।

१८ जुलाई १९६१ को हुज़ूर सुदूर पूर्व की यात्रा से सकुशल वापस डेरे तशरीफ़ लाये और यहाँ फिर पहले जैसे चहल-पहल शुरू हो गई।

(२) यूरोप-यात्रा : १९६२

बहुत समय से यूरोप के सत्संगी हुज़ूर को पत्र पर पत्र लिखे जा रहे थे

और विनती कर रहे थे कि हुजूर वहाँ आकर दर्शन दें। यह क्रम सन् १९५३ से ही चल रहा था। कुछ वर्षों बाद इंग्लैंड की संगत ने एक सम्मिलित प्रार्थना-पत्र भी हुजूर की सेवा में भेजा। फिर सन् १९६१ में जब वहाँ के कुछ भारतीय व ब्रिटिश सत्संगी एक पूरा हवाई जहाज़ चार्टर करके हुजूर के दर्शन के लिये डेरे आये तो उन्होंने एक बार फिर प्रार्थना की। हृदय का प्रेम व भाव अपना असर किये बिना नहीं रहते। हुजूर ने इंग्लैंड आने की स्वीकृति दे दी।

हुजूर महाराजजी ने १९ अप्रैल १९६२ को यूरोप-यात्रा के लिये डेरे से प्रस्थान किया। प्रोफ़ैसर जनकराज पुरी[1] (अध्यक्ष-दर्शन विभाग महेन्द्रा कॉलेज, पटियाला) हुजूर के साथ सेक्रेटरी के रूप में गए। बम्बई से २१ अप्रैल को वायु-यान द्वारा चलकर रास्ते में ईरान, लेबेनान, तुर्की, इटली, स्विटज़रलैण्ड, जर्मनो और स्वीडन के सत्संगियों व जिज्ञासुओं को दर्शन प्रदान करते हुए ८ जून की सुबह लन्दन पहुँचे। यहाँ मैं हुजूर की इस यात्रा का विस्तार-पूर्वक वर्णन नहीं करूँगा, क्योंकि कर्नल सेण्डर्स इस यात्रा के सम्बन्ध में एक पुस्तक छपवा चुके हैं।

हुजूर का अनुरोध था कि उनके आगमन पर किसी प्रकार का दिखावा, स्वागत-समारोह आदि न किया जाये। सत्संग की व्यवस्था सादगीपूर्ण हो तथा किसी प्रकार का प्रचार न किया जाये। सत्संगियों से यह भी कहा गया था कि एयरपोर्ट पर न आयें, परन्तु फिर भी पचास से अधिक व्यक्ति वहाँ मौजूद थे। एयर वाईस-मार्शल सोंधी भी, जिनके घर हुजूर के निवास का प्रबन्ध था, अपनी कार लेकर एयरपोर्ट पर आये हुए थे। पास ही एक बड़ा हाल किराये पर लिया गया था, जिसमें लगभग २५० सत्संगी और जिज्ञासु दर्शनों के लिये शान्तिपूर्वक बैठे थे। हुजूर एयरपोर्ट से सीधे वहाँ गये और २०-२५ मिनिट बैठ कर संगत को दर्शन दिये। एक अंग्रेज मित्र ने उस समय का चित्र इन शब्दों में खींचा है, "......सबके नेत्र सतगुरु के मुख पर स्थिर थे। जबान बन्द थीं। हृदय प्रेम से धड़क रहे थे।...इन्सान के जीवन में ऐसे अनमोल क्षण कभी-कभी ही आते हैं। हमारे देश पर पहले कई बार हमले हुए और उस पर विजय प्राप्त करने की कोशिश की गई। परन्तु जिस प्रकार इस बार हुजूर महाराज ने अपने प्रेम से इस देश पर पूर्ण विजय प्राप्त की है इसकी मिसाल नहीं मिलती।"

एक अन्य सज्जन ने सोंधी साहब के निवास-स्थान के बारे में लिखा है,

---

१. प्रो. जनकराज पुरी, भाई बिशनदासजी पुरी के सुपुत्र हैं। आप पुराने तथा बड़े प्रेमी सत्संगी हैं। इस समय आप पंजाबी विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र विभाग के अध्यक्ष हैं।

"वह स्थान रेल के ऐसे स्टेशन के समान लगता था जो यात्रियों से खचाखच भरा हो। वहाँ सारे दिन लोग आते और जाते रहते तथा भौतिक व आत्मिक भोजन भर-पेट पाते। अन्य देशों से भी बहुत से सत्संगी लन्दन आ पहुँचे थे। सर कालिन गारबेट और श्री सेम बूसा दस-बारह सत्संगियों सहित दक्षिण अफ्रीका से आये हुए थे। लगभग इतने ही सत्संगी और जिज्ञासु अमेरिका, हालैण्ड, स्विटज़रलैंड, जर्मनी आदि देशों से आये हुए थे। जून व जुलाई के महीने तो इंग्लैंड में 'मौसम के राजा' माने जाते हैं। एक ओर तो चमकते सूर्य की सुन्दर किरणें और साथ ही दूसरी ओर पूर्ण-गुरु के करुणामय प्रसन्न मुख-मण्डल से निकलती हुई आत्मिक धाराएँ! दोनों के संगम ने लन्दन के उस वातावरण को स्वर्ग के समान आनन्दमय बना दिया था। हृदय प्रसन्नता से परिपूर्ण थे, चेहरे मुस्कान और उल्लास में खिल रहे थे और मार्शल सोंधी का घर प्रकाश से भरपूर था।"

९ जून से २६ जून तक हुज़ूर ने लन्दन तथा आस-पास के स्थानों पर सत्संग की अमृत-वर्षा की और कुछ स्थानों पर नाम-दान भी दिया। इंग्लैंड में भारतीय सत्संगी भी काफ़ी संख्या में हैं जो वहाँ रह कर नौकरी, व्यापार आदि करते हैं। उनके लाभार्थ हुज़ूर ने दो-तीन सत्संग हिन्दुस्तानी में भी किये। अंग्रेज़ी में सत्संगों के बाद जिज्ञासुओं को प्रश्न पूछने का अवसर भी दिया गया। प्रश्न व उत्तर का यह क्रम बहुत लाभदायक और रुचिकर रहा। अकेले में वक्त लेकर हुज़ूर से बात करने वालों की संख्या भी बहुत बड़ी थी। इन मुलाकातों में कभी-कभी दो-दो तीन-तीन घण्टे लग जाते, जिन में हुज़ूर ३०-४० व्यक्तियों से भेंट करते। इतने व्यस्त कार्य-क्रम में प्रबन्धक थक जाते, परन्तु हुज़ूर दया करते हुए न थकते। कुछ व्यक्तियों ने हुज़ूर से अपने निवास-स्थानों में पवित्र चरण रखने की प्रार्थना की जिन्हें हुज़ूर ने स्वीकार किया। महाराजजी को विभिन्न स्थानों पर अपनी कारों में ले जाने, अपने घरों में चल कर रहने तथा उनके यहाँ नाश्ता, भोजन, चाय, काफ़ी आदि लेने के लिये इतने लोगों ने विनती की कि यह एक कठिन समस्या ही बन गई। परन्तु हुज़ूर ने इस समस्या का समाधान ऐसे स्वाभाविक, सरल व सुन्दर ढंग से किया कि सभी लोग सन्तुष्ट हो गये। यहाँ केवल एक उदाहरण दिया जाता है।

इस प्रकार की प्रार्थनाओं के प्रत्युत्तर में तथा सत्संगियों के बहुत आग्रह पर महाराजजी ने लन्दन से पचास मील दूर एक स्थान पर चाय-पार्टी स्वीकार की, ताकि एक साथ अधिक से अधिक सत्संगियों से मिल सकें और

20

उनके साथ कुछ समय बिता सकें। इसके लिये दो घण्टे से अधिक समय देना आवश्यक था। वहाँ पहुँचने पर पार्टी के प्रमुख प्रबन्धक ने अर्ज़ की, "महाराजजी ! तीन-चार व्यक्ति जो नाम-दान के समय लन्दन नहीं पहुँच पाये, वे नाम के लिये व्यग्र हैं और यहाँ नाम लेना चाहते हैं।" हुज़ूर ने मुसकरा कर फ़रमाया, "भाई साहब ! मुझसे एक काम करवा लें; या तो इन्हें नाम दिला लें, या अपनी पार्टी का चाव पूरा कर लें।" इस पर उन्होंने नम्रतापूर्वक विनती की, "महाराजजी ! आपके यहाँ तशरीफ़ लाने से ही हमारा पार्टी का चाव पूरा हो गया है। अगर आप उचित समझें तो इन्हें नाम अवश्य दें।" अतएव वार्तालाप के शोर और पार्टी की धीमी चाल के स्थान पर, चाय के घूँट जल्दी-जल्दी भर लिये गये और इस प्रकार नाम-दान के लिये दो घण्टे बचा लिये गये।

इन सब बातों का विवरण तो कर्नल सेण्डर्स की पुस्तक में आया होगा। मैं हुज़ूर की कृपा और दया के विषय में वहाँ के सत्संगियों द्वारा लिखे गये पत्रों में से कुछ अंश पेश करता हूँ।

'मेरे प्यारे सतगुरु, राधास्वामी ! यह छोटा-सा पत्र केवल आपकी दया व मेहर का शुक्रिया अदा करने के लिये लिखा जा रहा है।......मैंने एक ऐसा चमत्कार देखा था जो पता नहीं आपको अजीब लगेगा या नहीं। हुज़ूर को याद होगा कि एक दिन सुबह के समय जब आप यहाँ थे, तो सत्संग के बाद मैंने निवेदन किया था कि आज सत्संग में मैंने आपको एक और ही रूप धारण किये हुए देखा है। उस समय मुझे मालूम न था कि वह रूप किस महात्मा का है। लेकिन आज एक फोटो देखने पर पता चला कि वे स्वामीजी महाराज थे। आज सुबह भजन के बाद मैंने एक पुस्तक पढ़ना शुरू की जिसमें लिखा था कि स्वामीजी महाराज ने १५ जून १८७८ को करीब दिन के दो बजे चोला छोड़ा था। तब मुझे याद आया कि आपने भी हमारे यहाँ १५ जून १९६२ को दिन के करीब २ बजे चरण रखे थे। संभव है कि इन दोनों बातों का आपस में कोई सम्बन्ध न हो, मैं तो इसे एक विचित्र संयोग मान कर लिख रही हूँ।......मैं हुज़ूर की पिछली अनेक मेहरबानियों के लिये तथा जो कुछ मुझ पर अब दया व कृपा कर रहे हैं, उन सबके लिये अत्यन्त आभारी हूँ।"

"जब हुज़ूर हमारे पास थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि एक गहरी शान्ति का वातावरण तथा एक अकथनीय खुशी व आनन्द हमें घेरे हुए है। हुज़ूर के जाने से एक दिन पहले जब मैंने अन्तिम बिदा ली और जब आपने अत्यन्त दया करके मुझे हाथ मिलाने की इज्ज़त बख्शी, तो मुझे ऐसा महसूस हुआ

कि एक आत्मिक-ज्योति की लहर मुझमें समा गई जिसने मेरे अन्तर के सारे भौतिक कलुष को निकाल कर साफ़ कर दिया, सिर्फ़ खुशी और आनन्द का अहसास ही बाकी रह गया।......मेरे जीवन और मेरी विचार-धारा को ही बदल दिया है। जो कुछ हुज़ूर ने मेरे लिये किया है, उसका मैं लफ़्ज़ों में बयान नहीं कर सकता और न ही उसका पूरा शुक्राना अदा कर सकता हूँ।"

"मुझे प्रेम के उस अनुभव का वर्णन करने के लिये शब्द नहीं मिलते जो आपने खुद ही, बिना हमारी किसी कोशिश के, हमें बख़्शा, जब कि आप यहाँ थे। हम उस महान अवसर को कभी नहीं भूल सकते जब हमने अपने प्रिय सतगुरु को अपने बीच देह-स्वरूप में देखा। इससे हमें अपने भजन-सुमिरन में बहुत सहायता मिली। 'हम आपके हृदय से आभारी हैं' कहना हमारे हृदय की भावनाओं का अधूरा इज़हार और बहुत कमज़ोर बयान होगा। हम बार-बार उन अमूल्य क्षणों को याद करते हैं जो आपने अत्यन्त दया करके उस प्यार के साथ दिये जो सिर्फ़ एक सच्चा पिता अपने प्यारे बच्चों को दे सकता है।"

"कैसी बहुमूल्य भेंट आपने हमें दी जब आप हमारे देश में पधारे।...... जब मैंने आपसे नाम-दान के लिये प्रार्थना की तब मुझे ख़याल तक न था कि कितनी अमूल्य निधि मैं आपसे माँग रहा हूँ। लेकिन अब भजन-सुमिरन और सत्संग से उसकी कुछ कद्र मालूम हुई तो मैं महसूस करता हूँ कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ......मुझे ऐसा लगता है कि एक बेजान को नई ज़िन्दगी मिल गई है।"

"हुज़ूर महाराजजी! आपके यूरोप पधारने का हम किन लफ़्ज़ों में शुक्रिया अदा करें! यह एक ऐसा अनोखा और आश्चर्य-जनक अनुभव था जो वर्णन से परे है।......हुज़ूर के यहाँ से तशरीफ़ ले जाने के बाद मुझे ऊपर के मण्डलों की सैर की उतनी चाह नहीं है जितनी कि निरन्तर आपके दर्शन करते रहने की है।......मैं अब आपके दर्शनों के बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता। व्यर्थ है यह जीवन यदि यह आपको अर्पित न हो। किसी दिन फिर आपके दर्शन होने की उम्मीद पर ज़िन्दा हूँ और यही उम्मीद मायूसी से बचा रही है।"

"हुज़ूर के यहाँ आने पर जो दया, कृपा और दात मुझे प्राप्त हुई उसके लिये मेरा हृदय प्रेम व शुक्राने की भावना से भरा हुआ है। आपका यहाँ आना और आपको देह-स्वरूप में प्रत्यक्ष देखना एक अद्भुत अनुभव था, जिसने मेरे जीवन में अपार परिवर्तन ला दिया है।"

"मैं उस अनमोल दात के लिये जो आपने मुझे बख़्शी है, शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ, लेकिन इसके लिये मुझे सही व काफ़ी लफ़्ज़ नहीं मिलते

हैं। मैं आपके चरणों में पहुँचना और आपका सच्चा सेवक बनना चाहता हूँ।"

यहाँ उस पत्र के कुछ अंश देना चाहूँगा जो लंदन के एक सत्संगी ने बम्बई में अपने एक मित्र को लिखा है :--

"जैसा कि आप को पता है, महाराजजी का हमारे देश में आना एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। कौन कह सकता है, किसी पूर्ण गुरु द्वारा हमारे देश में चरण डालने का यह पहला ही अवसर हो और हुजूर यहाँ पधारने वाले पहले ही सन्त-सतगुरु हों। यह न भूली जा सकने वाली घटना केवल इस द्वीप के निवासियों के लिये ही महत्वपूर्ण नहीं थी, बल्कि उन सभी सत्संगी 'बच्चों' के लिये महत्वपूर्ण थी जो प्यार से अपने प्यारे पिता सतगुरु की बाट जोह रहे थे। लेकिन अफ़सोस तो यह है कि वह समय जल्दी ही बीत गया और अब उसकी याद ही याद बाकी रह गई है। परन्तु यह एक ऐसी याद है जो आजीवन हमारे अन्दर बनी रहेगी। जो जब चाहे सचखण्ड जा सकता हो, वह यूरोप या इंग्लैण्ड में सुन्दर स्थान व दृश्य देखने के लिये नहीं आया था। महाराजजी का दर्शन एक विलक्षण अनुभव था। मैं बहुत भावुक नहीं, परन्तु मुझे भी ऐसा लगा मानों प्रेम साकार होकर मेरे सामने उपस्थित हो गया है। उनके शरीर से दया, कृपा और शान्ति की धाराएँ निकल कर फैल रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि हम परमपिता परमात्मा के सामने खड़े हैं। ऐसे महान् क्षणों का शब्दों में वर्णन करना आसान नहीं। जब ईलिंग के टाऊन हॉल में पहली बार मेरी नज़र उस सौम्य और तेजस्वी मुखड़े पर पड़ी तो बरबस मेरी आँखों से आँसू बह चले और हृदय प्रेम से विभोर हो गया।

"अन्तिम सत्संग हुजूर ने अंग्रेज़ी में दिया। उस समय कर्नल सेण्डर्स ने एक छोटे से भाषण में हुजूर को उनकी कृपा और दया-मेहर के लिये धन्यवाद दिया। यह भाषण बहुत सुन्दर और हृदय-स्पर्शी था। हुजूर का उत्तर भी दया-मेहर से परिपूर्ण था। अपने उत्तर के अन्त में हुजूर ने फ़रमाया, 'मैं आप सबसे यही कहूँगा कि नेकी, सच्चाई और ईमानदारी के साथ चलें। अगर आप सीधे और सच्चे होंगे, तो यह मार्ग भी सीधा और आसान रहेगा।' हुजूर के इस अन्तिम सत्संग के ये क्षण अविस्मरणीय किन्तु करुण थे। लोगों के दिल भावनाओं से भरे थे। अनेक रुमाल अश्रुपूरित आँखों से आँसू पोंछ रहे थे। परन्तु धन्य थे वे भावपूर्ण अश्रु जो सतगुरु के प्यार में बहे। उस समय हृदय में प्रेम उमड़ रहा था। वहाँ ऐसा कोई न था जो सतगुरु के उस मोहक स्वरूप से प्यार किये बिना रह सका हो। लेकिन हम यह भी

महसूस कर रहे थे कि हम उनके प्रेम व प्यार के कितने अयोग्य हैं।"

हुजूर लन्दन से २६ जून को वायुयान द्वारा रवाना होकर, रास्ते में यूरोप तथा मध्यपूर्व के कुछ और स्थानों में सत्संग प्रदान करते हुए ७ जुलाई को देहली पधारे। दूसरे दिन महाराजजी ने पूसा रोड सत्संग मैदान पर संगत को दर्शन दिये। देहली से एक दिन के लिये सिकन्दरपुर होते हुए हुजूर ११ जुलाई की शाम को डेरे पहुँचे। हुजूर की अनुपस्थिति में डेरा निर्जीव और सूना-सूना लगता था। उसमें फिर से जीवन आ गया, बहार आ गई तथा चारों ओर ख़ुशी व आनन्द छा गया।

(३) सुदूर पूर्व, अमेरिका, ब्रिटेन तथा यूरोप : १९६४

हुजूर महाराज बाबा सावनसिंहजी फ़रमाया करते थे कि "बे-आरामी सन्तों की जागीर है।" जीवों के उपकार के लिये सन्त अपनी तकलीफ़ या असुविधा की कोई चिन्ता नहीं करते। हुजूर महाराज चरनसिंहजी भी अपने महान मिशन की पूर्ति के लिये प्रति वर्ष भारत में अनेक दूर-दूर के स्थानों में जाकर सत्संग प्रदान करते हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर हुजूर ने विदेशों की यात्रा करना स्वीकार किया और अप्रेल १९६४ में अपनी तीसरी लम्बी किन्तु महत्वपूर्ण विदेश-यात्रा पर प्रस्थान किया।

पिछले कई वर्षों से अमेरिका के सत्संगी विनती कर रहे थे कि हुजूर अमेरिका पधारें। हुजूर की यूरोप-यात्रा के बाद तो ज़बानी और लिखित प्रार्थनाओं का ऐसा क्रम बँधा कि महाराजजी को कृपा-पूर्वक स्वीकार करना पड़ा कि यदि मालिक को मंजूर हुआ तो अगली गर्मियों में, अर्थात् १९६४ के मई-जून में, आने की कोशिश करेंगे। भारतीय वायुसेना के उच्च अफ़सर एयर वाइस-मार्शल के. एल. सोंधो ने हुजूर के साथ सेक्रेटरी के रूप में अमेरिका चलने का प्रस्ताव रखा और हुजूर की यात्रा के विषय में कुछ ठोस कार्य शुरू हो गया। पासपोर्ट, वीसा और खर्च के लिये रिज़र्व-बैंक से पत्र-व्यवहार शुरू हो गया। अमेरिका के विभिन्न स्थानों के प्रमुख सत्संगियों से प्रोग्राम के विषय में चर्चा की जाने लगी। जब हांगकांग, सिंगापुर, सैगान, मलाया, जापान आदि स्थानों के सत्संगियों को पता चला तो उनके पत्र और तार आने लगे कि हुजूर पूर्व के मार्ग से जायें और रास्ते में उन्हें भी दर्शन प्रदान करने की कृपा करें। इसी प्रकार इंग्लैण्ड की संगत ने भी यही विनती की।

महाराजजी ने १९६४ के प्रारम्भ में निर्णय किया कि २ अप्रैल के भण्डारे के बाद किसी समय अमेरिका के लिये तशरीफ़ ले जायेंगे तथा जुलाई के भण्डारे से पहले लौट आयेंगे। आपने सुदूर पूर्व तथा यूरोप के सत्संगियों के

अनुरोध को स्वीकार करते हुए निश्चय किया कि जाते समय पूर्व के देशों में सत्संग करते हुए जायेंगे तथा लौटते समय इंग्लैंड होते हुए आयेंगे।

२ अप्रेल १९६४ को हुजूर बाबा सावनसिंहजी महाराज का भण्डारा हुआ। भण्डारे के अति व्यस्त कार्यक्रम और ६-७ दिन तक नाम-दान के बाद हुजूर ९ अप्रेल को सत्संग के लिये देहली पधारे। तीन दिन सत्संग और नाम-दान के प्रोग्राम के बाद महाराजजी १६ अप्रेल को डेरे पधारे और आते ही अमेरिका जाने की तैयारी शुरू हो गई। डेरे में चार-पाँच दिन हुजूर डेरे के विभागाध्यक्षों से मिलने तथा उन्हें मार्ग-दर्शन देने, भण्डारा की वजह से रुके हुए कार्य को निबटाने, अपनी यात्रा के विषय में बाहर व्यवस्थापकों को पत्र लिखने आदि में बहुत व्यस्त रहे। डेरे से दो दिन के लिये सिकन्दरपुर होते हुए हुजूर २३ अप्रैल की शाम को देहली पहुँचे। वहाँ से २५ अप्रैल की सुबह सवा पाँच बजे के वायुयान से हुजूर सुदूर पूर्व व अमेरिका की यात्रा पर चल पड़े। अमेरिका के प्रेमी सत्संगी डाक्टर स्टोन[१] तथा उनकी भतीजी कुमारी लुइस हिलगर[२] इस यात्रा में हुजूर के साथ थे। एयर वाइस-मार्शल सोंधी इस यात्रा में हुजूर के प्रवासकालीन सेक्रेटरी थे।

इस यात्रा में हुजूर के सत्संग, भाषण, जिज्ञासुओं से भेंट, उनके प्रश्नों के उत्तर, यात्रा का वर्णन, हुजूर के स्वागत में संगत का आनन्द तथा बिदा के समय की उदासी व आँसू, हुजूर की दया-मेहर की साखियाँ, भारतीय राजदूतों तथा अन्य अफसरों से भेंट, आदि का विस्तृत विवरण इस पुस्तक में लिख पाना सम्भव नहीं है, केवल उनका कुछ आभास नीचे देने का प्रयत्न करूँगा।

हुजूर महाराजजी २५ अप्रैल १९६४ को सुबह पाँच बजे के करीब चल कर चार घण्टे की उड़ान के बाद उसी दिन स्थानीय समय के अनुसार १० बज कर चालीस मिनिट पर बेंकाक पहुँचे। बेंकाक के एयरपोर्ट पर सत्संगियों, उनके मित्रों तथा परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त अनेक जिज्ञासु और विभिन्न धार्मिक संगठनों के प्रतिनिधि भी हुजूर के स्वागत के लिये आये हुए थे। देहली से चलने से पहले हुजूर का बहुत व्यस्त प्रोग्राम था और

---

१. डाक्टर स्टोन अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक, लेखक, विचारक और प्रेमी सत्संगी हैं। आप प्रतिवर्ष डेरे में छः महीने के लिये आते हैं और यहाँ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा करते हैं।

२. कुमारी लुइस हिलगर डाक्टर स्टोन की भतीजी हैं। आप नम्र, सेवा-भावी तथा अभ्यासी सत्संगी हैं। पिछले २०-२२ वर्षों से आप वर्ष में छः महीने डेरे में व्यतीत करती हैं। अंग्रेजी में छपी अधिकांश पुस्तकों की पांडुलिपि तैयार करने तथा उनके प्रकाशन में आपका बहुत योग रहा है।

अन्तिम दिन तो हुज़ूर को रात को १२-३० बजे तक सामान बाँधने तक की भी फ़ुरसत न मिल पाई थी। सुबह दो बजे उठ कर सामान आदि जमा कर हुज़ूर चार बजे से कुछ पहले एयरपोर्ट के लिये रवाना हो गये। इस प्रकार उन्हें केवल डेढ़ घण्टा आराम करने को मिल पाया। किन्तु बेंकाक पहुँचने पर हुज़ूर के मुख-मण्डल पर ताज़गी और आभा थी तथा चेहरा प्रेम और करुणा-पूर्ण मुस्कान में खिल रहा था। संगत तथा आगन्तुक समुदाय विस्फारित नेत्रों से देखते रह गये। हुज़ूर के दर्शन करके सबके दिलों में प्रसन्नता और खुशी की एक ऐसी लहर दौड़ गई, जो उनके चेहरों से बरबस प्रकट हो रही थी।

बेंकाक में उस समय यद्यपि केवल दस सत्संगी थे, पर सत्संग में दो हज़ार से अधिक व्यक्ति उपस्थित थे। उन्होंने हुज़ूर की मधुर वाणी में सन्तों के निर्मल रूहानी सन्देश को सुना। हुज़ूर ने वहाँ तीन सत्संग बख्शे, अनेक जिज्ञासुओं से बात की तथा नाम प्रदान किया।

बेंकाक से हुज़ूर २८ अप्रैल की शाम को सिंगापुर पहुँचे। वहाँ भी हवाई अड्डे पर अनेक जिज्ञासु स्वागत के लिये मौजूद थे। सिंगापुर में महाराजजी ने दो दिन सत्संग दिये जिनमें ३००-४०० व्यक्ति उपस्थित होते रहे। यहाँ अन्तिम दिन तो हुज़ूर से मुलाकात लेने वालों का तांता लग गया और हुज़ूर आधी रात तक लोगों से मिलते तथा उनके प्रश्नों के उत्तर देते रहे। हुज़ूर ने सिंगापुर में २४ व्यक्तियों को नाम बख्शा।

१ मई को सुबह नौ बजे के वायुयान से रवाना होकर महाराजजी ११ बजे सैगॉन पहुँचे। सैगॉन में हुज़ूर केवल २६ घण्टे ही ठहरे, अतएव हुज़ूर का यहाँ का कार्यक्रम अत्यन्त ही व्यस्त रहा तथा आराम के लिये भी समय न मिल सका। इस थोड़े से समय में हुज़ूर ने एक सत्संग दिया, लोगों से मुलाकात की, जिज्ञासुओं से मिले, उनके प्रश्नों के उत्तर दिये, सभी सत्संगियों तथा उनके परिवार के लोगों को अलग-अलग वक्त दिया, प्रबन्धकों से सत्संग की व्यवस्था सम्बन्धी चर्चा की और नाम-दान भी दिया। सत्संग में उपस्थिति ३०० से ऊपर थी। भारतीय राजदूत श्री गंजू, श्रीमती गंजू, तथा दूतावास के उच्च अधिकारी हुज़ूर के सत्संग में आये और फिर दो बार हुज़ूर से मिलने भी आये। उन्होंने सन्तमत में बहुत रुचि प्रकट की तथा हुज़ूर ने उन्हें सन्त-मत पर कुछ अंग्रेजी पुस्तकें भेजीं।

२ मई की दोपहर को चल कर हुज़ूर शाम को हांगकांग पहुँचे। यहाँ भी दो दिन सत्संग, मुलाकात तथा नाम-दान का व्यस्त कार्यक्रम रहा। ५ मई

को हुज़ूर हांगकांग से शाम को साढ़े चार बजे चल कर रात को सवा आठ बजे टोकियो पहुँचे। यहाँ सत्संगियों की संख्या अधिक न होने के कारण हुज़ूर को कुछ आराम करने का मौका मिला, जिसकी उन्हें बहुत ज़रूरत थी। सत्संगियों से भेंट, जिज्ञासुओं से मुलाकात व उनके प्रश्नों के उत्तर आदि का कार्य-क्रम पूर्ण करके हुज़ूर ७ मई की रात को ९.४५ पर टोकियो से चल कर साढ़े छः घण्टे की उड़ान के बाद होनोलूलु (हवाई द्वीप) पहुँचे। उस समय होनोलूलु में ८ मई की सुबह के सवा नौ बजे थे।

होनोलूलु में हुज़ूर केवल २५ घण्टे ठहरे और इस समय में आपने जिज्ञासुओं से भेंट, प्रश्नोत्तर, सत्संगियों से मुलाकात आदि कार्यक्रम के अतिरिक्त ९ मई को सुबह कुछ व्यक्तियों को नाम-दान भी दिया। नाम-दान के बाद हुज़ूर दिन के साढ़े ग्यारह बजे वायुयान द्वारा अपनी इस यात्रा के सबसे महत्वपूर्ण और श्रमपूर्ण अंश पर, अमेरिका के लिये रवाना हुए।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी का अमेरिका आगमन एक ऐतिहासिक घटना है। ज्ञात इतिहास में अब तक किसी सन्त, किसी शब्द-स्वरूपी, शब्द-अभ्यासी पूर्ण गुरु ने अमेरिका की भूमि पर चरण नहीं रखे थे। वर्षों से संगत अपने प्यारे सतगुरु के देह-स्वरूप के दर्शन के लिये तड़प रही थी। जिस समय सतगुरु दीन-दयाल का वायुयान लॉस एंजल्स की ओर आ रहा था, अनेक सत्संगी व्यग्रतापूर्वक एयरपोर्ट पर राह देख रहे थे। वे आपस में चर्चा कर रहे थे कि सतगुरु महाराज चरनसिंहजी कैसे होंगे? क्या वे फोटो में दिखते हैं उतने ही आकर्षक होंगे? उनके रूहानी सौन्दर्य से परिपूर्ण स्वरूप का जो वर्णन सुना है, क्या वे उसके अनुरूप होंगे? इन प्रश्नों का क्या उत्तर मिला इसका केलिफ़ोर्निया के एक सत्संगी ने इन शब्दों में वर्णन किया है :—

"आखिर वह दिन आ गया जब हम अपने प्यारे सतगुरु को अपने सम्मुख प्रत्यक्ष देखेंगे। जब हवाई पट्टी पर उनका यान उतर रहा था, हमारे अंतर में अपने आप एक अजीब खुशी, एक अनुपम आनन्द की धारा लहरा उठी। ......हमारी दृष्टि द्वार की ओर गई जहाँ महाराजजी खड़े थे। हम उनका वर्णन कैसे करें, उनका स्वरूप वर्णन से परे है। उनका स्वरूप उनके फोटो के जैसा तो था, परन्तु उससे भी अधिक था। उसमें एक निराली शान थी, ऐसी अनेक खूबियाँ थीं जो कथन में नहीं आ सकतीं। सतगुरु कैसे होंगे, इसकी हमारी समस्त कल्पनाओं, सब आशाओं की पूर्ति हो गई; परन्तु हमें उनके स्वरूप में वे विलक्षणताएँ दिखीं जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।...अब यदि हमसे कोई पूछे कि 'महाराजजी कैसे हैं?' तो हमारे पास

इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं। हम यही कहेंगे कि आप खुद ही उन्हें देख कर जान सकेंगे।"

एयरपोर्ट पर न केवल लॉस एंजल्स के सत्संगी उपस्थित थे, बल्कि सेन फ्रांसिस्को, टेक्सास, एरिज़ोना आदि कई स्थानों से भी लोग आये हुए थे। हुज़ूर के प्रथम दर्शन की झलक-मात्र से लोग आनन्द-विभोर हो गये। एयरपोर्ट के अफ़सर तथा अन्य लोगों ने पूछना शुरू किया, 'ये सज्जन कौन हैं?' उत्तर मिला, 'ये हमारे सतगुरु महाराज चरनसिंहजी हैं।' कुछ लोगों को पता था कि भारत में रियासतों के शासकों को 'महाराजा' कहा जाता था। उन्होंने आपस में कहा, "हाँ, वास्तव में कोई महाराजा ही प्रतीत होते हैं।" जहाँ से भी हुज़ूर निकले लोग रास्ते से हट गये, कई लोग अदब के साथ सीधे खड़े हो गये। प्रायः सभी की दृष्टि हुज़ूर के आकर्षक मुख-मण्डल पर स्थिर थी। सत्संगियों की खुशी और प्रसन्नता का तो कोई अन्त ही न था। उनके चेहरे प्रेम और आनन्द से चमक रहे थे, नेत्रों से आँसू बह रहे थे और पूरा वातावरण ही प्रेम से परिपूर्ण था। इस प्रसिद्ध एयरपोर्ट के कर्मचारियों व अधिकारियों ने हज़ारों विश्व-विख्यात व्यक्तियों, राष्ट्रपतियों, बादशाहों, नेताओं, अभिनेताओं आदि के स्वागत और बिदा के दृष्य देखे थे, परन्तु महाराजजी के आगमन का यह दृष्य निराला ही था। उनमें से कुछ ने बाद में बताया कि उन्होंने अपने जीवन में कभी ऐसा प्रेम, भावना और भक्ति से परिपूर्ण दृश्य नहीं देखा। सच ही तो है, भक्ति व प्रेम की भावनाओं का मुकाबला, स्वागत की झंडियाँ अथवा कृत्रिम रंग-बिरंगे स्वागत स्तम्भ क्या कर सकते हैं!

यह स्वाभाविक था कि सत्संगी, प्रेम और आदर के कारण हुज़ूर के प्रति बहुत अदब का भाव रखें। जब वे महसूस कर रहे थे कि खुदा इन्सानी जामा पहन कर उनके सम्मुख आ रहा है, तो उन्हें अपनी तुच्छता और कमज़ोरियों का ख़याल आना स्वाभाविक था। इसलिये वे अदब तथा कुछ झिझक के साथ दूर खड़े थे। सतगुरु उनकी भावना को जानते थे। आपने यान से उतरने के बाद उनकी ओर इस प्रेम तथा कृपापूर्ण मुसकराहट के साथ देखा तथा इस अपनत्व के साथ मिले कि सबको ऐसा महसूस हुआ कि कोई उनका निकटतम मित्र, कोई प्यारा रिश्तेदार दूर से उनसे मिलने आया है। फिर हुज़ूर ने सहज हास्य और सरलता के साथ उनसे बातें करना शुरू कीं तो औपचारिकता का वातावरण और दूरी का भाव हट गया। संगत ने महसूस किया कि मानों ईसा मसीह अपने प्यारे शिष्यों के साथ एक बार फिर प्रकट

हो गये हैं।

दूसरे दिन वहाँ के प्रसिद्ध होटल 'बिल्टस्मोर' के 'रिनेसांस रूम' में सत्संग का आयोजन था। श्री हारवे मायर ने (जो अमेरिका में हुज़ूर के प्रतिनिधियों में से एक थे) बड़े भावपूर्ण शब्दों में हुज़ूर का परिचय दिया, स्वागत में कुछ शब्द कहे तथा हुज़ूर के इतना कष्ट उठा कर भारत से इतनी दूर अमेरिका आने के लिये आभार प्रकट किया।

इसके उत्तर में हुज़ूर ने एक छोटा-सा भाषण दिया जो प्रेम व दया-मेहर से परिपूर्ण था। हुज़ूर ने भावभीने स्वागत के लिये धन्यवाद देने के बाद फ़रमाया कि मेरे लिये अमेरिका आना एक विशेष महत्व की घटना है। आज मैं अपने आपको अमेरिकन भूमि के उस भाग पर पाता हूँ जहाँ आज से पचास वर्ष पूर्व हुज़ूर महाराजजी की ओर से प्रथम अमेरिकन को नाम दिया गया था। यहीं से अमेरिका में सन्त-मत का प्रारम्भ हुआ। मेरे लिये यह प्रसन्नता और सौभाग्य की बात है कि आज मैं आप लोगों के बीच में यहाँ मौजूद हूँ। मैं भारत के लाखों सत्संगियों की आप सबके प्रति हार्दिक प्रेमपूर्ण राधास्वामी तथा शुभ-कामनाएँ लेकर आया हूँ।

फिर हुज़ूर ने फ़रमाया कि इस यात्रा में हुज़ूर की कोशिश होगी कि वे अधिक से अधिक सत्संगियों से मिल सकें तथा उन्हें व्यक्तिगत रूप से समय दे सकें। समय की कमी तथा अलग-अलग केन्द्रों में जाने के कार्यक्रम में हो सकता है कि हुज़ूर इच्छा होते हुए भी कुछ लोगों से न मिल सकें। "मैं आशा करता हूँ कि ऐसे भाई और बहनें जिन्हें मैं अलग समय न दे सकूँ, मेरी कठिनाइयों को समझने की कोशिश करेंगे ।......मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे प्यारे सतगुरु हुज़ूर महाराजजी के वचनों के अनुसार आपके इस सुन्दर देश में सन्त-मत का भविष्य महान और उज्ज्वल है।" आगे आपने फ़रमाया कि यह कभी न भूलें कि परमात्मा की प्राप्ति के सच्चे मार्ग की खोज करने वाले जिज्ञासुओं के पावन उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होना आप सबकी ज़िम्मेदारी है। हमें अपने आपको सन्त-मत के आदर्शों की एक जीवित मिसाल के रूप में पेश करने का प्रयास करना चाहिये।

हुज़ूर के भाषण के बाद सत्संग हुआ, जिसके उपरान्त महाराजजी सभी उपस्थित सज्जनों से एक-एक करके मिले। जिसने भी हुज़ूर से मिलने के लिये अलग समय माँगा, उसे दिया गया। हुज़ूर सुबह साढ़े आठ से एक बजे तक और शाम को छः से साढ़े दस बजे तक लोगों से मिलते रहते। इसके अतिरिक्त सत्संग, प्रश्नोत्तर तथा छोटे-छोटे ग्रुप में लोगों से भेंट का कार्यक्रम

भी रहता था।

लॉस एंजल्स में महाराजजी ने कई अभिलाषियों को नाम दिया। वहाँ से हुज़ूर कार द्वारा सेन डिएगो के लिये रवाना हुए। वहाँ पहुँचने के लिये एक लम्बा रास्ता अपनाया ताकि हुज़ूर उन सत्संगियों के घरों में चरण डाल सकें जिन्होंने बहुत प्रेम और विनय के साथ हुज़ूर से अपने निवास-स्थानों पर पधारने की प्रार्थना की थी। इस प्रकार हुज़ूर व्हाइट वाटर (जहाँ पाम-स्प्रिंग, यूकेविली आदि स्थानों की संगत भी मौजूद थी) तथा कुछ अन्य स्थानों में होते हुए सेन ड़िएगो पहुँचे। सेन डिएगो में भी सत्संग, प्रश्नोत्तर, मुलाकात आदि का कार्यक्रम रहा। वहाँ से हुज़ूर कार द्वारा वापस लॉस एंजल्स पधारे और उसी दिन शाम को साढ़े चार बजे वायुयान द्वारा सेन फ्रान्सिस्को पहुँचे। यहाँ हुज़ूर का तीन दिन का प्रोग्राम था, जिसमें सत्संग, प्रश्नोत्तर और मुलाकातों के अतिरिक्त कुछ सत्संगियों के घरों में चरण डालने तथा एक बीमार सत्संगी से अस्पताल में मिलने का कार्यक्रम भी था। तीन दिन सेन फ्रान्सिस्को में सत्संग की अमृत-वर्षा करके तथा नामदान द्वारा जिज्ञासुओं को राहे-निजात दिखाकर हुज़ूर वायुयान के द्वारा २२ मई को वेनकुअर (कनाडा) पहुँचे। यहाँ हुज़ूर श्री व श्रीमती जितेन्द्र खन्ना* के मेहमान रहे। यहाँ से वायुयान द्वारा सीएटल होते हुए महाराजजी २६ मई को मिनिआ-पोलिस पहुँचे।

मिनिआपोलिस में हुज़ूर के आने का प्रोग्राम किसी ने समाचार-पत्रों में दे दिया था। इसके फलस्वरूप अमेरिका की प्रसिद्ध ब्राडकास्टिंग कम्पनी ए. बी. सी. के मिनिआपोलिस दफ़्तर के अधिकारियों ने कर्नल बर्ग (जो कि मिनिआपोलिस सत्संग के प्रबन्धक तथा हुज़ूर के प्रतिनिधि हैं) पर ज़ोर दिया कि हुज़ूर से टेलीविज़न केन्द्र पर जाकर इण्टरव्यू (भेंट-वार्ता) देने का आग्रह किया जाये। उसी दिन हुज़ूर ने टेलीविज़न पर पंडित जवाहरलाल नेहरू के देहान्त का समाचार सुना था। हुज़ूर जानते थे कि टेलीविज़न वालों के अधिकांश प्रश्न भारत की राजनैतिक स्थिति पर होंगे। अतएव हुज़ूर ने फ़रमाया कि उन्हें राजनीति से कोई लगाव नहीं है और न ही हुज़ूर ने कभी टेलीविज़न द्वारा विचार प्रकट किये हैं। लेकिन टेलीविज़न वालों ने कर्नल बर्ग को मना लिया तथा हुज़ूर से वादा किया कि मुलाकात में राजनीति अथवा भारत पर कोई प्रश्न न पूछेंगे, केवल आध्यात्मिक विषय पर प्रश्न

---

* श्री जितेन्द्र खन्ना ब्यास सत्संग के सेक्रेटरी श्री के. एल. खन्ना के सुपुत्र हैं। आप एक कुशल इंजिनियर हैं और कनाडा की एक फर्म में ऊंचे पद पर नियुक्त हैं। आपकी पत्नी बम्बई सत्संग के सेक्रेटरी श्री कृष्ण बवानी की सुपुत्री हैं।

पूछे जायेंगे। यद्यपि हुज़ूर ने सन्त-मत की व्याख्या और प्रसार के लिये इस प्रकार के आयोजनों को कभी महत्व नहीं दिया था, फिर भी कर्नल बर्ग के अनुरोध को टाल न सके और मुलाकात के लिये स्वीकृति दे दी।

२७ मई को तीसरे पहर इण्टरव्यू का समय निश्चित किया गया। प्रश्नों के उत्तर में हुज़ूर ने सन्त-मत के मूल सिद्धान्तों पर बहुत थोड़े किन्तु सार-गर्भित शब्दों में प्रकाश डाला। हुज़ूर ने फ़रमाया कि सन्त-मत न तो कोई धर्म है और न ही किसी प्रकार के धर्म-परिवर्तन में विश्वास रखता है। असली धर्म तो वह है जो हमें मालिक से मिलाये। यदि हम बिना किसी पक्षपात के, साफ दिल से खोज करें तो पता चलेगा कि सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त समान हैं। हुज़ूर ने शाकाहारी भोजन पर ज़ोर दिया और एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि परमात्मा का असली मन्दिर हमारा शरीर है।

इण्टरव्यू करने वाली महिला कुमारी लुई लेपार्ड तो हुज़ूर को भारतीय राजनीति की ओर लाना चाहती थी। उसने प्रश्नोत्तर के दौरान में बड़ी चतुरतापूर्वक पूछ ही लिया कि क्या प्रधान-मन्त्री नेहरू सन्त-मत के उसूलों में विश्वास रखते थे? हुज़ूर ने उत्तर दिया कि "नहीं, वे एक महान राज-नीतिज्ञ थे। अपने निजी जीवन में वे क्या अभ्यास करते थे, इसका मुझे पता नहीं।"

महिला ने फिर पूछा, "आपके ख़याल से उनके देहान्त का भारत पर क्या असर पड़ेगा?" वह बड़ी कुशलतापूर्वक चर्चा को भारतीय राजनीति की ओर मोड़ने का प्रयास कर रही थी। लेकिन इस प्रश्न का हुज़ूर ने सरल तथा इतना स्पष्ट उत्तर दिया कि वह इस वार्ता को आगे राजनीति की ओर न ले जा सकी। हुज़ूर ने जवाब में फ़रमाया, "यह मैं नहीं जानता। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूँ। लेकिन मैं बिना पंडित नेहरू के हिन्दुस्तान की कल्पना नहीं कर सकता। उन्हें हिन्दुस्तान में सभी प्यार करते थे। सभी का उन पर विश्वास था।"

इण्टरव्यू में प्रश्न पूछने वाली महिला कुमारी लुई लेपार्ड ने बाद में हुज़ूर से कहा कि स्टूडियो का साधारणतया बेचैनी, तनाव, शोरगुल तथा उत्तेजनापूर्ण वातावरण स्टूडियो में आपके प्रवेश करते ही एकाएक अमन, खामोशी, चैन और शान्ति से परिपूर्ण हो गया। स्टूडियो के वातावरण में सहसा इस विलक्षण परिवर्तन को देख वह हैरान थी कि यह कैसे हुआ।

हुज़ूर ने अपनी स्वाभाविक मृदु मुस्कान के साथ उत्तर दिया, "अगर मनुष्य का मन अमन और शान्ति से परिपूर्ण है, तो उससे शांति की धाराएँ

ही निकलेंगी।"

मिनिआपोलिस में २८ मई को यूनिटेरियन सोसायटी के हाल में सत्संगियों व जिज्ञासुओं की एक सभा में कर्नल बर्ग ने एक भाषण दिया। उसके प्रमुख अंश यहाँ दिये जाते हैं :—

"महाराजजी, श्री सोंधी, सत्संगी भाइयो और मित्रो! हमारे जीवन में कई बार ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ होती हैं, जो जीवन की दिशा ही बदल देती हैं। मेरे जीवन में ऐसी तीन घटनाएँ घटीं जिनसे मेरी काया ही पलट गई। पहली घटना थी मेरे हाथों में एक अमेरिकन डॉक्टर द्वारा लिखी पुस्तक 'दि पाथ आफ़ दि मास्टर्स' का आना। इसके लेखक कई वर्षों भारत में एक महान सतगुरु के चरणों में रहे थे। यह पुस्तक मैंने कई बार पढ़ी और इस निर्णय पर पहुँचा कि मुझे उस स्थान की तलाश करना चाहिये जहाँ पुस्तक के लेखक ने यह शिक्षा प्राप्त की है।

"दूसरी घटना थी नवम्बर १९५९ की एक सुबह मेरा भारत की ओर चल पड़ना। मुझे यह मालूम न था कि ब्यास नामक वह छोटा-सा ग्राम, जिसका पुस्तक में उल्लेख था, भारत में कहाँ है। सैनिक वायुयान द्वारा मैं देहली पहुँचा। वहाँ से रेल से अमृतसर और अमृतसर से बस द्वारा ब्यास स्टेशन पहुँचा। वहाँ से दो पहियेवाली घोड़ा-गाड़ी में, जिसे 'ताँगा' कहते हैं, मैं उस जगह पहुँचा जहाँ मैंने सोचा था कि कोई कच्चा मकान या झोंपड़ी होगी। परन्तु मैंने वहाँ एक सुन्दर भवनों से युक्त बस्ती पाई। सेक्रेटरी के द्वार पर मेरा ताँगा ठहरा। मुझे देख कर वे मेरे पास आये। मैंने उन्हें अपना नाम बताया तथा यह भी बताया कि मैं कहाँ से और किस लिये आया हूँ। उन्होंने मुझे महाराजजी के मकान पर पहुँचा दिया, जो कि पास ही था। सतगुरु का प्रथम दर्शन मेरे लिये एक विलक्षण अनुभव था। उन्होंने बड़े प्यार के साथ मेरा स्वागत किया।

"मेरे ब्यास आने का उद्देश्य नाम की प्राप्ति था। जब मैंने सतगुरु से निवेदन किया कि मैं नाम लेना चाहता हूँ तो उन्होंने पूछा, 'आपको माँस छोड़े कितना समय हुआ है?' मैंने उत्तर दिया कि बस उतना ही समय जितना कि मैंने डेरे में बिताया है, अर्थात् करीब दो घंटे। इस पर महाराजजी ने फ़रमाया कि नामदान के लिये यह ज़रूरी है कि अभिलाषी को माँस-मदिरा छोड़े काफी समय हो चुका हो, ताकि वह निश्चित कर सके कि वह बिना किसी परेशानी के आजीवन शाकाहारी भोजन पर रह सकता है। महाराजजी ने कृपापूर्वक फ़रमाया कि यदि मैं डेरे में रहना चाहूँ तो ख़ुशी से ठहर सकता

हूँ; परन्तु यह बेहतर होगा कि मैं शाकाहारी भोजन के विषय में निर्णय करने से पहले अमेरिका जाकर तीन महीने शाकाहारी भोजन पर रह कर देखूँ। मैं इतने समय भारत में नहीं रुक सकता था, अतएव काफी उदास व निराश हो गया। महाराजजी दस दिन के लिये बाहर तशरीफ़ ले जा रहे थे। मैंने तय किया कि महाराजजी के वापस आने तक डेरा में ठहरूँ।

"दूसरे दिन महाराजजी के जाने के बाद मैं बहुत बीमार हो गया। बिस्तर पर पड़ा रहा और दूध के सिवाय और कुछ खा-पी न सका। लेकिन जिस दिन हुजूर वापस डेरे तशरीफ़ लाये उस दिन मेरी तबियत एकाएक बिलकुल ठीक हो गई। मैं सोचता हूँ कि नामदान से पहले मेरे कुछ बुरे कर्मों का हिसाब चुकाना आवश्यक था और मेरी इस बीमारी के द्वारा सतगुरु ने उन्हें चुका दिया। सतगुरु अपनी दया व करुणा में अपने प्रेमी और अभ्यासी शिष्यों के कर्मों का भार सूली का शूल करके चुका देते हैं। न मालूम मेरे कितने वर्षों की बीमारी का भार मेरे सतगुरु ने इन दस दिनों में उतार दिया होगा।

"मेरे जीवन की तीसरी महत्वपूर्ण घटना यह थी। वापस तन्दुरुस्त होने का अनुभव करते हुए मैंने महाराजजी की सेवा में जाकर नामदान के लिये फिर पूछने का निश्चय किया। मेरे इस निवेदन पर महाराजजी के उज्ज्वल मुख पर एक कृपापूर्ण मुस्कान छा गई और उन्होंने फ़रमाया कि शाम को मुझे नाम मिल जायेगा।

इसके बाद कर्नल बर्ग ने ब्यास नदी के पश्चिमी तट पर स्थित डेरा बाबा जैमलसिंह तथा वहाँ के निवासियों के विषय में विस्तार के साथ बतलाया और कहा कि इस रूहानी केन्द्र में किसी प्रकार का जाति, रंग और राष्ट्रीयता का भेद-भाव नहीं है। सभी वर्ग, सम्प्रदाय और राष्ट्र के लोग यहाँ अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, जाति और रंग की भावना को भूलकर प्रेम-प्यार के साथ रहते हैं। जीवन की सभी आधुनिक सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध हैं और यहाँ के निवासी दुनिया को त्याग कर साधारण साधुओं जैसा जीवन नहीं बिताते, बल्कि दुनिया में रहते हुए, अपनी ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए अपना रूहानी अभ्यास करते हैं। यहाँ के सन्त-सतगुरु स्वयं इस विषय में एक मिसाल कायम करते रहे हैं और अपनी रोज़ी स्वयं कमा कर साध-संगत की मुफ़्त सेवा करते हैं।

पूर्ण गुरु की महानता के विषय में बोलते हुए कर्नल बर्ग ने कहा,

"पूर्ण गुरु की एक विशेषता यह भी है कि वे अपने शिष्यों की दुनियावी ज़िन्दगी में आम तौर पर हस्तक्षेप नहीं करते और न वे संसार में किसी सुधारक के रूप में आते हैं । वे सुख-दुःख, हर्ष-शोक और जन्म-मरण के अन्तहीन चक्कर से जीवों को निकालने के लिये आते हैं । उनका कहना है कि यदि अभ्यासी हर हाल में परमात्मा की इच्छा में, मालिक की रज़ा में राज़ी रहे तो रूहानी तरक्की में मदद मिलती है । अतएव वे अपने शिष्यों की 'भलाई' के लिये व्यापार में सफलता, दुनियावी मामलों में कामयाबी, अदालती झगड़ों में जीत, परीक्षा में सफलता, अच्छी नौकरी दिलवाने की बातें नहीं करते; बल्कि वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सुख-दुःख, सफलता, असफलता, सेहत, बीमारी, मान-अपमान, हर्ष व शोक आदि सभी को समान समझो और हर हालत में अपने रूहानी अभ्यास को सबसे ज़रूरी समझो । अगर कोई व्यक्ति ऐश्वर्य और सुख के समय में खुशी से फूल कर या गरीबी और मुसीबत से तंग आकर भजन व बन्दगी करना भूल जायेगा, तो फिर वह भजन करेगा कब ? अपना भाषण समाप्त करते हुए कर्नल बर्ग बोले, "भारत के महात्मा और पूर्ण सन्त सदियों से यह घोषणा करते आये हैं कि केवल देह-स्वरूप सच्चा गुरु ही जीव को मुक्ति के पथ पर ले जा सकता है । इस विषय पर उन्होंने ग्रन्थ पर ग्रन्थ लिखे हैं । परमात्मा एक है । वह परमात्मा ही सतगुरु का रूप धारण करके जीवों को इस संसार से वापस ले जाने के लिये आता है । और आज हमारा यह परम सौभाग्य है कि एक ऐसे महान सतगुरु हमारे बीच में हैं, और वे हैं हमारे सन्त-सतगुरु महाराज चरनसिंहजी, जो आज हमारे सामने प्रत्यक्ष उपस्थित हैं ।"

कर्नल बर्ग के भाषण के बाद हुज़ूर ने अपना उत्तर दिया जो इस प्रकार था :—

"मैं कर्नल अरनेस्ट बर्ग और मिनिआपोलिस में राधास्वामी फाउण्डेशन ब्यास के अन्य सदस्यों का आभारी हूँ, जिन्होंने इस शाम मुझे आप सबसे मिलने का अवसर दिया है ।

"जैसा कि आप में से कुछ सज्जनों को मालूम है, मैं अमेरिका में एक प्रचारक या किसी धर्म-विशेष का नेता बन कर नहीं आया हूँ, बल्कि कुछ मित्रों के आग्रह पर इसलिये आया हूँ कि सन्तों की उस शिक्षा की रूप-रेखा

आपकी सेवा में पेश करूँ, जिसे भारत में सन्त-मत कहा जाता है और जिसका उद्देश्य आत्म-ज्ञान के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति है । सन्त-मत कोई नया मार्ग नहीं है। न ही यह किसी खास मुल्क या कौम के दायरे में सीमित है। यह तो वास्तव में मनुष्य-मात्र की विरासत और सभी धर्मों का वह सार है जिसे हम भौतिक प्रगति की ओर जरूरत से ज्यादा ध्यान देने के कारण भूल चुके हैं।

"मुझे अमेरिका आये करीब तीन सप्ताह हो गये हैं । इस दौरान में आपके देश के विभिन्न सामाजिक, बौद्धिक व शैक्षणिक स्तर के लोगों से मिलने का सौभाग्य मिला है। उनमें सत्संगी और जिज्ञासु दोनों ही थे। मुझे यह देख कर बड़ी खुशी हुई कि सबके हृदय में यह भावना पैदा हो रही है कि केवल भौतिक व आर्थिक उन्नति प्राप्त कर लेने से ही सच्ची शान्ति और खुशी नहीं मिल सकती और इसलिये शान्ति और सामंजस्य की खोज राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर की जाने लगी है।

"अमेरिका ने जो सामाजिक व आर्थिक उन्नति तथा वैज्ञानिक प्रगति की है, उसे देख कर मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। लेकिन मुझे लगा कि लोग अब इस सचाई को महसूस करने लगे हैं कि इन सब उपलब्धियों के द्वारा भी उन्हें सच्चा सुख और खुशी प्राप्त न हो सकी है। और यह बात सच भी है। यदि हम बिना किसी पक्षपात के साफ दिल से विचार करें तो हम देखेंगे कि जिस सच्चे सुख व शान्ति की हम खोज कर रहे हैं वे एक स्वप्न के समान अप्राप्य रहे हैं, क्योंकि हमारी खोज हमेशा राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर ही रही है। हमने कभी मानवीय और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विश्व-शान्ति की प्राप्ति का प्रयास नहीं किया है। सारे संसार को एक ही प्रकार के राजनैतिक ढाँचे या समान विचारधारा के अधीन लाना तो लगभग असम्भव ही है। इतिहास इस बात का गवाह है कि ऐसा आज तक कभी न हो पाया है। परन्तु आध्यात्मिक या रूहानी आधार पर सारी दुनिया एक हो सकती है और यह रूहानियत ही ऐसा साधन है जो सबको इकट्ठा करके सबके अन्तर में प्रेम और शान्ति के बीज बो सकता है।

"परमात्मा एक है और वह हम सबके अन्दर मौजूद है। यह एक ऐसी सचाई है जिससे किसी को भी इन्कार नहीं। जितनी अधिक हमारे दिल में परमात्मा के प्रति भक्ति होगी, प्यार होगा, उतना ही हम परस्पर एक-दूसरे के निकट होंगे। जितना अधिक हम परमात्मा को भूलते जायेंगे उतने ही हम एक-दूसरे से दूर और बिमुख होते जायेंगे; यह दूरी सामाजिक, राष्ट्रीय

और अन्तर-राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रकट होगी। आज हमारा झुकाव परमात्मा को बिसार कर सांसारिक पदार्थों और प्राप्तियों में सुख व शान्ति ढूँढने की ओर है। जितना अधिक हम इनकी ओर भागते हैं, उतने ही हताश और दुःखी होते हैं। हम इस संसार में रहते हुए भी, केवल परमात्मा की भक्ति व प्यार के द्वारा ही सच्चा सुख प्राप्त कर सकते हैं। जैसे, एक बच्चा अपने पिता की उँगली पकड़ कर नुमायश देखने जाता है और वहाँ की चीज़ों को देख कर बहुत खुश होता है। वह समझता है कि उसे यह खुशी केवल नुमायश की वस्तुओं से मिल रही है। परन्तु संयोगवश यदि उसके हाथ से पिता की उँगली छूट जाये और वह पिता से बिछुड़ जाये, तो नुमायश की सब वस्तुएँ वहाँ होते हुए भी वह रोने-चिल्लाने लगता है और अब उसे कोई भी वस्तु आकर्षित नहीं करती। तब उसे पता लगता है कि नुमायश और उसके सामान तभी तक खुशी दे रहे थे, जब तक कि वह पिता का हाथ पकड़े था। इसी प्रकार वह मालिक हमारा पिता है। यह दुनिया की नुमायश हमें तब तक ही सुख दे सकती है जब तक हमारी लिव अपने परमपिता के साथ लगी हुई है।

"जब तक हम अपने अन्तर में शान्ति प्राप्त नहीं करते, तब तक बाहर कभी शान्ति नहीं पा सकते। चाहे मालिक ने हमें बाहर हर तरह के सुख के सामान प्रदान किये हों, फिर भी अन्तर में हम बेचैन और अशान्त रहते हैं। सन्त स्पष्ट कहते हैं कि जब तक हमारी आत्मा वापस अपने निज-देश में, जो सच्ची शान्ति और आनन्द का धाम है, नहीं पहुँचेगी तब तक उसकी शान्ति की खोज समाप्त नहीं होगी और न वह अपने असली ध्येय को पा सकेगी। सच्ची शान्ति की खोज हमें परमात्मा के जीते-जागते मन्दिर में, हमारी देह में, करनी होगी। हज़रत ईसा ने इस बात को बड़े सुन्दर ढंग से समझाया है—'यदि तेरी आँख एक हो जाये तो तेरा सम्पूर्ण शरीर प्रकाश से परिपूर्ण हो जायेगा'। जब तक हम उस आँख को खोल कर अन्तर में प्रकाश प्रकट नहीं करते, हमारा अज्ञान का परदा नहीं हट सकता। हम अपने अन्दर और बाहर शान्ति तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम अन्तर में उस प्रकाश को देख लें, उस प्रकाश को अपना जीवन बना लें और उसी में समा जायें। यही है सच्चा आत्मिक सुख व सच्चा आनन्द। अगर हम इस दिशा में खोज करने का प्रयास करेंगे तो सच्चे व स्थायी सुख की प्राप्ति के अपने उद्देश्य में सफल होंगे।"

भाषण के बाद सत्संग हुआ। मिनिआपोलिस से चलने से पहले हुज़ूर ने २९ मई को कुछ अभिलाषियों को नाम प्रदान किया। हुज़ूर २९ मई को

वायुयान द्वारा शिकागो पहुँचे ।

शिकागो में व्यवस्थापकों ने महाराजजी के निवास का प्रबन्ध शहर से करीब ३५-४० मील दूर एक होटल में किया था जहाँ अन्य स्थानों की संगत भी ठहरी हुई थी । परन्तु यहाँ मोटर, बस और ट्रकों का बेहद शोर था जो कि दिन या रात में कभी एक मिनिट के लिये भी कम न होता था । यह देखकर प्रबन्धकों ने हुज़ूर को किसी अन्य स्थान पर ठहराने की व्यवस्था करनी चाही । परन्तु हुज़ूर ने इसे स्वीकार न किया, क्योंकि इसी होटल में फ्लोरिडा, मिसूरी, मिसिसिपी, अराकान्स, विन्सकान्सिन तथा कुछ अन्य स्टेट के सत्संगी भी ठहरे हुए थे । हुज़ूर उन्हें निराश नहीं करना चाहते थे । यहाँ भी हुज़ूर का कार्यक्रम बहुत व्यस्त रहा । सुवह व शाम को सत्संग, प्रश्नोत्तर, मुलाकातें, सत्संगियों के घरों में जाकर उनसे तथा उनके परिवार से मिलने आदि में पूरा दिन निकल जाता । हुज़ूर प्रायः रात को १२ बजे से पहले इन कार्यक्रमों से मुक्त न हो पाते । यहाँ भी अन्य स्थानों की तरह अन्तिम दिन नाम-दान बख्शा ।

शिकागो से डिट्राइट व पिट्सबर्ग होते हुए हुज़ूर ११ जून को वाशिंगटन पहुँचे । वाशिंगटन में हुज़ूर श्री वीकली के अपार्टमेंट में पाँच दिन ठहरे । इसी अपार्टमेंट में महाराजजी ने सुबह-शाम सत्संग, प्रश्नोत्तर तथा मुलाकात के लिये समय दिया । यह कार्यक्रम सुवह आठ बजे से शुरू होता और रात को ग्यारह बजे तक जारी रहता । इन पाँच दिनों में महाराजजी केवल तीन बार अपार्टमेंट से बाहर गये और वह भी बहुत ही थोड़े समय के लिये ।

वाशिंगटन में भारतीय राजदूत श्री बी. के. नेहरू हुज़ूर की टेलीविज़न की इण्टरव्यू देख चुके थे । वे हुज़ूर के वचनों को सुन कर बहुत प्रभावित हुए । उन्होंने हुज़ूर को अपने यहाँ भोजन पर आने का निमन्त्रण भी दिया ।

हुज़ूर महाराजजी के अमेरिका आने और वाशिंगटन भी तशरीफ़ लाने का समाचार जब वाशिंगटन के सिख गुरुद्वारा में पहुँचा तो उन्होंने हुज़ूर से गुरुद्वारा में पधार कर कुछ शब्द बोलने की प्रार्थना करनी चाही । सरदार जोगेन्द्रसिंह नामक एक सिख युवक उनको ओर से यह निवेदन लेकर हुज़ूर से मिलने आया । वाशिंगटन के सत्संग व्यवस्थापक तथा हुज़ूर के मेज़मान श्री वीकली ने सरदार जोगेन्द्रसिंह की बात सुनी तथा उसे हुज़ूर के सामने पेश किया । श्री वीकली उसका परिचय महाराजजी से करवा ही रहे थे कि क्या देखते हैं कि जोगेन्द्रसिंह घुटनों के बल नीचे बैठ कर हुज़ूर के चरणों में सर रख कर रुदन-भरे स्वर में नामदान के लिये प्रार्थना कर रहा है । हुज़ूर ने उससे उठने के लिये कहा । जब वह उठा तो उसके नेत्रों से आँसू बह रहे

थे। उसने अर्ज़ की, "महाराजजी! मुझे नाम बख्शें।"

हुज़ूर ने कृपापूर्ण मुस्कान के साथ उसकी ओर देखते हुए पूछा, "तुमने आखिरी बार मांस कब खाया है?"

"आज सवेरे," उसने जवाब दिया।

"अब तो नहीं खाओगे?" हुज़ूर ने फिर पूछा।

वह बोला, "नहीं, हुज़ूर! अब नहीं खाऊँगा।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "अच्छा, दो दिन सत्संग में आना और सोमवार को सुबह आठ बजे यहाँ आ जाना।"

सरदार जोगेन्द्रसिंह नामदान का आश्वासन पाकर खुशी-खुशी जाने लगा। जब श्री वीकली ने देखा कि वह जिस उद्देश्य को लेकर हुज़ूर के पास आया था, वह भी भूल गया है, तो उन्होंने उसे याद दिलाया और हुज़ूर से अर्ज़ की, "महाराजजी, यह आपसे सिख गुरुद्वारा में पधार कर कुछ शब्द कहने का निवेदन करने आया था।" हुज़ूर ने प्रसन्नतापूर्वक इसके लिये भी स्वीकृति दे दी।

सोमवार तारीख १५ जून को सुबह आठ बजे सतगुरु दीन-दयाल ने सरदार जोगेन्द्रसिंह को पंजाबी में अकेले नाम दिया। उस समय हुज़ूर की इजाज़त से करीब २५ अमेरिकन सत्संगी भी उपस्थित थे। जोगेन्द्रसिंह ने बाद में श्री वीकली को अपना वृत्तान्त सुनाया। वह डेरे के बिलकुल पास के ग्राम बलसराय का रहने वाला था, परन्तु उसने कभी डेरे में पैर न रखा और न कभी सतगुरु के दर्शन किये। कभी-कभी भण्डारों के अवसर पर हुज़ूर के सत्संग की आवाज़ लाउड-स्पीकरों से उसे सुनाई अवश्य-देती थी, परन्तु उसने कभी इस ओर अधिक ध्यान न दिया। उसे अमेरिका में भारतीय दूतावास में नौकरी मिल गई और कुछ वर्ष हुए वह अमेरिका आ गया। सतगुरु हुज़ूर महाराजजी के यहाँ दर्शन करके उसके दबे संस्कार जाग उठे, हुज़ूर की मौज हो गई और उसे अपने घर से हज़ारों मील दूर यहाँ नाम-दान मिल गया।

महाराजजी ने सिख गुरुद्वारा में पंजाबी में करीब चालीस मिनिट तक बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया। गुरुद्वारा श्रोताओं से भरा हुआ था। हुज़ूर ने अपने भाषण में गुरुग्रन्थसाहिव में से अनेक उद्धरण देते हुए उस नाम और शब्द का वास्तविक अर्थ बतलाया जिसकी महिमा ग्रन्थसाहिब के प्रत्येक पृष्ठ और प्रत्येक पद में है। आपने समझाया कि वह नाम या शब्द लिखने, पढ़ने और बोलने में नहीं आ सकता, वह कहीं बाहर नहीं है, हमारे शरीर के अन्दर है और वहीं खोज करने पर मिलेगा। इसी प्रकार वह कुल मालिक

वाहिगुरु अकाल पुरुष भी बाहर कहीं जंगलों-पहाड़ों अथवा मन्दिर, मस्जिद या गुरुद्वारों में नहीं है, वह भी हमारी देह और वजूद में ही है। बाहर न कभी किसी को वह मिला है, न मिलेगा। अन्त में देह-स्वरूप सतगुरु की आवश्यकता पर हुज़ूर ने बड़े सरल और स्पष्ट शब्दों में ज़ोर दिया। एकत्रित सिख समुदाय पूरे समय हुज़ूर के भाषण को बड़ी एकाग्रता के साथ सुनता रहा। सबकी दृष्टि महाराजजी के मुख-मण्डल पर स्थिर थी और मन्त्र-मुग्ध से मौन बैठे सुन रहे थे।

वाशिंगटन से १५ जून को कार द्वारा चल कर हुज़ूर एटलांटा सिटी पहुँचे। जहाँ भी महाराजजी जाते लोगों की दृष्टि अनायास उनकी ओर खिंच जाती। जहाँ हुज़ूर पहुँचते वहाँ के वातावरण में एक अजीब ख़ुशी और शान्ति छा जाती। पैदल चलते तो सड़कों पर लोग उन्हें देखने के लिये रुक जाते। किसी होटल में जाते तो वेटर आदि अपना कार्य भूल कर हुज़ूर की ओर देखते रहते। सब यही जानना चाहते थे कि यह कौन है। एटलाण्टा सिटी में हुज़ूर फुट-पाथ पर चल रहे थे तो सड़क के किनारे एक मकान पर किसी सभा के बेनर लटकाने वाले मज़दूरों ने हुज़ूर को देखा। अपना काम छोड़ कर उन्होंने हुज़ूर का ध्यान आकर्षित करने के लिये चिल्ला कर अमेरिकन ढंग से आवाज़ दी, "हाई ! देयर !!" हुज़ूर ने ऊपर देखा और रुक कर मुसकराते हुए हाथ उठा कर उनके अभिवादन का उत्तर दिया। मज़दूरों के चेहरे ख़ुशी से चमक उठे और जब तक हुज़ूर दृष्टि से ओझल न हो गये, वे ऊपर खड़े हुए देखते रहे।

एटलांटा सिटी से हुज़ूर कार द्वारा तारीख १६ जून को न्यूयार्क पहुँचे। हुज़ूर के श्रमपूर्ण और व्यस्त कार्यक्रम को देख कर संगत का विचार था कि महाराजजी कुछ दिन के लिये आराम करें। व्यवस्थापकों ने हुज़ूर से आग्रह किया कि न्यूयार्क से इंग्लैंड की यात्रा वायुयान द्वारा न करके समुद्री जहाज़ से करना स्वीकार करें ताकि हुज़ूर को पाँच-छः दिन आराम मिल सके। सबके बहुत आग्रह करने पर आपने स्वीकृति दे दी।

न्यूयार्क में प्रबन्धकों ने हुज़ूर के आराम के ख़याल से प्रोग्राम इस प्रकार बनाया था कि प्रतिदिन केवल एक सत्संग हो तथा थोड़ा सा समय मुलाकात लेने वालों के लिये निश्चित हो। न्यूयार्क पहुँचते ही हुज़ूर ने अपना प्रोग्राम देखा और उसमें बहुत से परिवर्तन कर दिये। एक सत्संग के स्थान पर प्रति दिन दो सत्संग रखे गये, सुबह, दोपहर तथा रात को मिलने वालों के लिये समय रखा तथा जो भी वक्त ख़ाली रहा उसमें सत्संगियों के घरों में जाकर

उनके परिवार से मिलने की स्वीकृति दे दी।

१९ जून को कुछ सत्संगियों के आग्रह पर हुजूर संयुक्त राष्ट्र भवन (यूनाइटेड नेशन्स बिल्डिंग) देखने गये। हुजूर ने पूरा भवन बड़ी दिलचस्पी के साथ देखा। जब हुजूर को भवन के एक सभा-कक्ष का वह अंश दिखाया गया जहाँ प्रतिनिधि अपने कान में 'इयर-फोन' लगा कर भाषण का अपनी-अपनी भाषाओं में अनुवाद सुन सकते हैं, तब हुजूर ने फ़रमाया, "अगर हम एक भाषा, प्यार की भाषा, सीख लें तो सब विवाद ही समाप्त हो जायें।" इसी प्रकार महराजजी ने राष्ट्र-संघ के विशाल सभा-कक्ष को देखकर कहा, "अगर हम अनेक राष्ट्रों के स्थान पर केवल एक ही राष्ट्र होते तो शान्ति के साथ रह सकते थे। और ऐसी एकता केवल रूहानी आधार पर ही हासिल हो सकती है।"

न्यूयार्क हुजूर की अमेरिका-यात्रा का अन्तिम कार्यक्रम था। हुजूर ने यहाँ भी कुछ जिज्ञासुओं को नाम प्रदान किया तथा कुछ अन्य खोजी व्यक्तियों को सुझाव दिया कि सन्त-मत पर कुछ साहित्य पढ़ें तथा कुछ समय और शाकाहारी भोजन पर स्थिर रह कर देखें कि इसे आजीवन निभा सकेंगे या नहीं।

हुजूर की यह पूरी यात्रा अत्यन्त श्रमपूर्ण और थकाने वाली थी। सुबह व शाम सत्संग, प्रश्नोत्तर और मुलाकातों का कार्यक्रम इतना व्यस्त रहता था कि हुजूर रात को बारह बजे से पहले इनसे मुक्त न हो पाते थे। सत्संगियों से उनके घरों में जाकर मिलने, अस्पतालों में जाकर बीमार सत्संगियों को दर्शन देने, निजी मुलाकात चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति से मिलने, एक स्थान का व्यस्त कार्यक्रम पूर्ण होते ही जेट यान द्वारा कुछ ही घण्टों में दूसरे स्थान में पहुँच कर उतना ही व्यस्त कार्यक्रम शुरू करने का श्रम इतना कठिन था कि हुजूर के सेक्रेटरी तथा व्यवस्थापक लोग भी थक जाते। परन्तु महाराजजी की प्रेम-पूर्ण मुस्कान, नेत्रों की करुणापूर्ण आभा और आकर्षक स्वरूप की ज्योतिर्मय उज्ज्वलता में तनिक भी कमी न आती। हर स्थान पर प्रश्नोत्तर के समय हुजूर से अनेक प्रश्न पूछे गये, जिनमें से कई प्रश्नों का उत्तर आप पहले दे चुके थे। परन्तु हुजूर उन्हें धैर्य के साथ ध्यानपूर्वक सुनते और इस तत्परता से उनका उत्तर देते मानों वे प्रश्न बिलकुल नये हों। हर उत्तर के पीछे एक विशाल रूहानी दृष्टिकोण, प्रेम और सहानुभूति का भाव होता था।

जब किसी ने पूछा कि आपको अमेरिका कैसा लगा तो हुजूर ने उत्तर दिया, "हर देश उसके निवासियों से बनता है और अमेरिका-वासी मुझे प्रिय

हैं।" न्यूयार्क में हुज़ूर ने संगत को बिदा से पहले एक प्रेरिक संदेश दिया जिसके अन्त में आपने फ़रमाया, "मैं आपके देश से इस प्रसन्नता की भावना के साथ बिदा हो रहा हूँ कि जिस उद्देश्य को लेकर मैं आया था वह इस यात्रा द्वारा पूर्ण हुआ है; और यह उद्देश्य था अमेरिकन सत्संगियों की भावनाओं को समझना तथा उनके हृदय के निकट आना। मैं जानता हूँ कि इस उद्देश्य की पूर्ति में आपके अन्तर में काफी प्रेम और भक्ति भावना जाग्रत हुई है और मुझे कोई संदेह नहीं कि मेरे प्यारे सतगुरु हुज़ूर महाराजजी का यही प्रेम और कृपा मुझे फिर आप लोगों के बीच में लायेगी।"

हुज़ूर के इन प्रेम-पूर्ण शब्दों ने बिदा के करुण क्षणों में भी संगत के हृदय में एक आशा और उमंग का संचार कर दिया।

एक प्रबन्धक ने इन शब्दों में अपनी तथा संगत की कृतज्ञता प्रकट की, "महाराजजी, आपने यहाँ आकर जो अनेक दात, अनेक प्रसाद प्रदान किये हैं उनका आभार हम कभी नहीं चुका सकते।"

हुज़ूर ने प्रेम व करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए गम्भीरता के साथ उत्तर दिया, "मैं भी यहाँ से खाली हाथ नहीं लौट रहा हूँ। स्नेहपूर्ण मुस्कान, प्रसन्न हास्य और जो प्यार आप सबने मुझे दिया है—यह अमूल्य भेंट अपने साथ ले जा रहा हूँ।" ये प्रेम-पूर्ण वचन सुनकर सबका दिल भर आया और नेत्र कृतज्ञतापूर्ण अश्रुओं से भीग गये।

२४ जून १९६४ को हुज़ूर महाराजजी ने 'क्वीन मेरी' नामक विशाल समुद्री जहाज़ के द्वारा इंग्लैंड के लिये प्रस्थान किया। बन्दरगाह पर अनेक सत्संगी विदा के लिये आये थे। महाराजजी ने सबसे हाथ मिलाया, संगत को प्रेम-पूर्ण व्यवस्था के लिये धन्यवाद दिया और प्रत्येक सत्संगी को अपनी करुणा तथा कृपा से परिपूर्ण दृष्टि से निहाल करते हुए बिदा ली। जहाज़ धीरे-धीरे चल पड़ा। ऊपर डेक की भीड़ सहसा दो भागों में छँट गई और घने मेघों के बीच में से सहसा चमकते हुए सूर्य की भाँति सतगुरु उसमें से रेलिंग तक आये और अपना हाथ उठाकर हिलाते हुए बिदाई का अभिवादन किया। संगत इस आकस्मिक दर्शन के आनन्द में स्थिर खड़ी थी। धीरे-धीरे जहाज़ दूर जा रहा था, परन्तु अब भी सतगुरु दीनदयाल उसी प्रकार हाथ उठाये हुए खड़े थे। जहाज़ छोटा होते-होते एक बिन्दु के समान हो कर आँखों से ओझल हो गया। संगत के हृदय में बिदाई की वेदना और नेत्रों में विरह के आँसुओं के साथ एक और भाव था, जो था महाराजजी की अमेरिका-यात्रा का प्रसाद—सतगुरु का प्रेम।

३० जून १९६४ को सुबह सात बजे हुज़ूर का जहाज़ इंग्लैंड के समुद्र-तट पर पहुँचा। हुज़ूर वहाँ से ट्रेन द्वारा वाटरलू स्टेशन पहुँचे, जहाँ पश्चिम तथा भारत के अनेक सत्संगी स्वागत के लिये मौजूद थे। उनके चेहरे खुशी से चमक रहे थे, नेत्र प्रेमाश्रुओं से डबडबाये हुए थे। हुज़ूर के भव्य स्वरूप को देख कर कई अन्य व्यक्ति भी रुक कर खड़े हो गये और पोर्टर (कुली) भी अपना काम छोड़ कर हुज़ूर के आकर्षक स्वरूप को निहारने लगे। स्टेशन से हुज़ूर सीधे लंदन के काक्स्टन हाल में गये जहाँ तीन सौ से अधिक सत्संगी दर्शन के लिये बैठे थे।

लंदन में भी सत्संग, प्रश्नोत्तर तथा मुलाकातों का व्यस्त प्रोग्राम रहा। यहाँ की संगत ने मिनिआपोलिस में हुज़ूर की टेलीविज़न भेंट के विषय में सुना था। अतएव उन्होंने हुज़ूर से निवेदन किया कि सन्त-मत के प्रचार के लिये टेलीविज़न का उपयोग किया जाना चाहिये, जैसा कि कुछ मतों के नेता बराबर कर रहे हैं। महाराजजी ने कभी इश्तिहार तथा प्रचार को पसन्द नहीं किया है। आपने उत्तर दिया कि इस प्रकार के प्रचार व पब्लिसिटी से कोई लाभ नहीं। जो जीव इस मार्ग पर आने के लिये तैयार हैं वे खुद चले आयेंगे; उन्हें कोई नहीं रोक सकता। और इसी प्रकार जो अभी इसके लिये तैयार नहीं हैं, उनको लाने के लिये कुछ भी नहीं किया जा सकता।

हुज़ूर ने लन्दन में पश्चिम के सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं के लिये अंग्रेजी में तथा भारतीय संगत के लिए पंजाबी में सत्संग प्रदान किये। इसी प्रकार आपने १२ अभिलाषियों को अंग्रेज़ी में तथा ८१ भारतीयों को पंजाबी में नाम-दान बख्शा। हुज़ूर की यह यात्रा खास तौर पर अमेरिका के लिये थी। संगत के आग्रह पर आपने लौटते समय लन्दन रुकने की अनुमति दे दी थी। हुज़ूर यहाँ केवल ७ दिन ही ठहर सके। अपने बिदाई के संदेश के रूप में हुज़ूर ने फ़रमाया :—

"बिदा के समय मैं आपसे कुछ शब्द कहना चाहूँगा। सलाह के रूप में मुझे ज्यादा कुछ नहीं कहना है; उपदेशों से तो किताबें भरी पड़ी हैं। मुझे तो केवल यही सलाह या सुझाव देना है कि सत्संगियों तथा सभी को आपस में प्रेम बनाये रखना चाहिये। जितने अधिक आप एक-दूसरे के करीब होंगे, उतने ही आप मेरे समीप होंगे, उतने ही मुझे प्रिय होंगे। इस बात को हमें हमेशा याद रखना चाहिये कि जितना अधिक हम एक-दूसरे से प्यार करेंगे, एक-दूसरे को अपनायेंगे, उतने ही हम परमात्मा के नज़दीक होंगे, उसको प्रिय होंगे। हमें अपने सत्संगों में हमेशा सामंजस्य और सौहार्द रखना चाहिये;

उनमें प्रेम व प्यार होना चाहिये, एक दूसरे को समझने की भावना होनी चाहिये। एक-दूसरे की सहायता करें, एक-दूसरे के विश्वास को मज़बूत बनाने की कोशिश करें। सन्त-मार्ग पर दृढ़ होने में परस्पर सहायक बनें। यही एक-दूसरे की सच्ची सेवा है। मैं हमेशा यही सलाह देता आया हूँ कि हमारी सत्संग मीटिंग के द्वार सबके लिये खुले हों, हम सबको अपनाने को तैयार हों। हमारे पास आने और सत्संग में शरीक होने के इच्छुक हर व्यक्ति का हम स्नेहपूर्ण स्वागत करें। परन्तु इसके लिये हमें अपने अन्दर प्रेम और प्यार जाग्रत करना होगा। यह प्रेम ही औरों को प्रभावित करेगा। यह प्रेम ही वह वस्तु है जो औरों को आकर्षित करेगी। यदि हमारे अन्तर में प्यार नहीं है, यदि हमारी मीटिंगों में प्रेम की भावना नहीं है तो इसका अर्थ हुआ कि सन्त-मत हमसे जिस स्तर पर पहुँचने की अपेक्षा या उम्मीद करता है उससे हम दूर हैं। अतएव मैं आपसे फिर वही कहूँगा, जो कि ईसा मसीह ने कहा है—'एक दूसरे को प्यार करो'।"

लन्दन से जिनेवा और रोम होते हुए हुज़ूर १३ जुलाई को बम्बई तथा १४ को देहली तशरीफ़ लाये। हुज़ूर इस श्रमपूर्ण यात्रा के बाद १६ जुलाई को डेरे पहुँचे। हुज़ूर ने पहले ही आदेश दे दिया था कि डेरे का कोई अधिकारी, कोई सत्संगी अथवा रिश्तेदार बम्बई या देहली स्वागत के लिये न आये और डेरे में भी आपके स्वागत के लिये कोई तैयारी न की जाये। इस आदेश का पूरा पालन किया गया। हम लोगों का अनुमान था कि महाराज जी १६ जुलाई की शाम को डेरे पहुँचेंगे। परन्तु आप शाम के बजाय दोपहर को २ बजे ही चुपचाप अपनी कोठी में पहुँच गये। इस पर मैंने महाराजजी से निवेदन किया, "हुज़ूर की हर आज्ञा का हम पालन करेंगे परन्तु इतनी देर हमें दर्शनों से वंचित न रखा करें।"

(४) दक्षिण अफ़्रीका, यूरोप, इज़राइल : १९६६

दक्षिण अफ़्रीका में सन्त-मत का प्रारम्भ द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद हुआ जब सर कॉलिन गारबेट, मेजर लिटिल और डॉक्टर लेण्डर रिटायर होकर वहाँ रहने लगे। परन्तु १९५१ तक दक्षिण अफ़्रीका में केवल चार सत्संगी थे। हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने १९५३ में दक्षिण अफ़्रीका के कुछ जिज्ञासुओं को नाम प्रदान किया और हुज़ूर की प्रेरणा और कृपा से वहाँ संगत धीरे-धीरे बढ़ने लगी। सन् १९६५ तक सत्संगियों की संख्या ३५० तक पहुँच गई। यद्यपि पिछले कई वर्षों से दक्षिण अफ़्रीका से संगत डेरे आकर महाराज जी के दर्शन कर रही थी, फिर भी अधिकांश सत्संगी इतनी दूर आने में

असमर्थ थे। हुज़ूर की अमेरिका-यात्रा के बाद तो उन्हें भी आशा बँध गई कि सतगुरु एक दिन दक्षिण अफ़्रीका आयेंगे और उनकी ओर से प्रार्थनाओं का क्रम शुरू हो गया। हुज़ूर ने १९६६ में दक्षिण अफ़्रीका आने की स्वीकृति दे दी और ५ मई १९६६ को बम्बई से वायुयान द्वारा नैरोबी (पूर्वी अफ़्रीका) पहुँचे। इस यात्रा में प्रोफ़ेसर जनकराज पुरी हुज़ूर के सेक्रेटरी थे।

नैरोबी में कीनिया, उगाण्डा, ज़ैम्बिया, कुमासी (घाना), स्वाज़ीलैंड और रोडेसिया से संगत आई हुई थी। हुज़ूर ने यहाँ सत्संग प्रदान किये तथा सभी सत्संगियों व जिज्ञासुओं को व्यक्तिगत मुलाकातें दीं। ७ मई को रात को आठ बजे टेंज़ानिया से कुछ भारतीय सत्संगी और जिज्ञासु वायुयान द्वारा नैरोबी आये। परन्तु उन्हें यह जानकर बड़ा अफ़सोस हुआ कि सत्संग का प्रोग्राम शाम को समाप्त हो चुका है और महाराजजी ८ तारीख़ की सुबह जोहानसबर्ग के लिये प्रस्थान कर रहे हैं। फिर भी दो मिनिट के लिये दर्शन करने की कामना से वे हुज़ूर के निवास-स्थान पर पहुँचे। उस समय हुज़ूर अपने कमरे में सोने के लिये चले गये थे। उनके आगमन का पता चलने पर हुज़ूर बाहर बैठक में आकर उनसे मिले। कुछ औपचारिक वार्तालाप के उपरान्त एक जिज्ञासु ने सन्त-मत के मूल सिद्धान्तों के विषय में प्रश्न पूछ लिया। महाराजजी ने उसका विस्तारपूर्वक उत्तर दिया और फिर डेढ़ घण्टे तक प्रश्नोत्तर का क्रम चलता रहा। दिन भर के व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद हुज़ूर उनके प्रश्नों का धैर्यपूर्वक उत्तर देते रहे। सत्संग न सुन पाने की उन की निराशा को देख कर हुज़ूर ने उन्हें आश्वासन दिया कि दक्षिण अफ़्रीका से लौटते समय दारासलाम में रुक कर सत्संग देने की कोशिश करेंगे।

जोहानसबर्ग के हवाई अड्डे से महाराजजी सीधे बी. पी. सेंटर के भवन में संगत को दर्शन देने तशरीफ़ ले गये। हॉल पूरा भरा हुआ था। महाराज जी के आते ही संगत में एकदम ख़ामोशी छा गई। हुज़ूर ने दोनों हाथ जोड़ कर संगत से राधास्वामी की और मंच पर बिराजमान हो गये। सबके नेत्र अपने प्यारे सतगुरु के आकर्षक स्वरूप पर स्थिर थे, ओठ बंद थे, संगत प्रेम और आनन्द की अमृतमयी धारा में हिलोरें ले रही थी। अनेक सत्संगी जीवन में पहली बार अपने देह-स्वरूप सतगुरु का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे थे। उनकी आँखें खुशी और कृतज्ञता के अश्रुओं से भीग रहीं थीं। प्रोफ़ेसर जनकपुरी ने उस समय का वर्णन इस प्रकार किया है, "सत्संगी अपने सतगुरु के दर्शन के उल्लास में लीन आत्मविभोर थे। उनका प्रेम उनकी मौन भावनाओं में मुखरित हो रहा था।"

जोहानसबर्ग में सत्संग, प्रश्नोत्तर और मुलाकातों का व्यस्त कार्य-क्रम तुरन्त शुरू हो गया। हुज़ूर अधिक से अधिक लोगों से मिलना चाहते थे। व्यवस्थापकों को हुज़ूर का आदेश था कि किसी भी मुलाकात चाहने वाले को मना न किया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह व्यवस्था की गई कि हुज़ूर प्रतिदिन एक गार्डन-पार्टी में शामिल हों जहाँ रोज़ ४०-५० भिन्न-भिन्न व्यक्ति आयें। हुज़ूर उनसे १।। घण्टे सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से मिलते थे। इसी प्रकार सुबह के खाने के समय भी १०-१५ व्यक्ति उपस्थित होते थे, जिनसे हुज़ूर वार्तालाप करते रहते। अधिकांश सत्संगी अपने प्यारे सतगुरु के पहली बार दर्शन कर रहे थे। व्यक्तिगत मुलाकातों के समय उनके दिल में झिझक और घबराहट होती थी। परन्तु हुज़ूर के प्रेमपूर्ण शब्दों को सुन कर उनकी झिझक दूर हो जाती और उन्हें ऐसा लगता कि महाराजजी से उनकी वर्षों पुरानी पहचान है। एक सत्संग में जब किसी सत्संगी ने पूछा, "क्या आप बतायेंगे कि अपनी व्यक्तिगत मुलाकात में हमें आपको किस प्रकार सम्बोधित करना चाहिये ?" तो हुज़ूर ने मधुर प्रेमपूर्ण स्वर में उत्तर दिया, "भाई साहब ! हम सब एक ही रूहानी मार्ग के पथिक हैं। यहाँ सम्बोधन का कोई खास ढंग नहीं है। यहाँ केवल निश्छल प्रेम की भाषा है, हृदय से हृदय की वार्ता है।"

१२ मई की सुबह जोहानसबर्ग से मोटर द्वारा चल कर २७० मील का सफ़र तय करके हुज़ूर दोपहर के करीब स्वाज़ीलैण्ड* पहुँचे। यहाँ आते ही हुज़ूर ने उपस्थित सत्संगियों को दर्शन दिये तथा उनसे कुछ देर वार्तालाप किया। भोजन के बाद हुज़ूर ने सभी सत्संगियों को अलग-अलग समय दिया तथा शाम को बाइबिल में से सत्संग प्रदान किया।

दूसरे दिन १३ मई को सुबह हुज़ूर ने कार द्वारा व्हाइट रिवर के लिये प्रस्थान किया और दोपहर को एक बजे बाद वहाँ पहुँचे। व्हाइट रिवर में हुज़ूर का प्रोग्राम बहुत थोड़े समय का था। अतएव दोपहर के भोजन के समय भी ४०-५० सत्संगी और जिज्ञासु मौजूद थे। उन्होंने हुज़ूर के साथ भोजन किया तथा भोजन के पूरे समय में हुज़ूर उनसे वार्तालाप करते रहे तथा उनके प्रश्नों का उत्तर देते रहे। खाने के तुरन्त बाद हुज़ूर ने सत्संग प्रदान किया जिसमें करीब ७० व्यक्ति उपस्थित थे। सत्संग तथा मुलाकात का कार्य-क्रम समाप्त होने पर महाराजजी मोटर द्वारा रात को दस बजे जोहानसबर्ग पहुँचे।

---

* स्वाज़ीलैण्ड दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी भाग में एक छोटा-सा स्वतन्त्र राष्ट्र है।

दक्षिण अफ़्रीका में हुज़ूर के प्रतिनिधि श्री सेम बूसा महाराजजी के व्यस्त कार्य-क्रम के विषय में लिखते हैं, "यद्यपि महाराजजी को साउथ अफ़्रीका आये अभी केवल पाँच ही दिन हुए थे, फिर भी मुझे प्रत्यक्ष देखने का काफी अवसर मिला कि उनका दैनिक कार्य-क्रम किस ज़बरदस्त रफ़्तार से चलता है। कोई सामान्य मनुष्य महीनों तथा वर्षों तक रोज़ ऐसे तीव्र-गति-पूर्ण व्यस्त जीवन का निर्वाह नहीं कर सकता। परन्तु महाराजजी चाहे हिन्दुस्तान में हों, चाहे दक्षिण अफ़्रीका या यूरोप में, कोई फ़रक नहीं, उनका कार्य-क्रम, उनके जीवन की गति हमेशा वही है। मुझे प्रातः सबसे पहले महाराजजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त था। प्रतिदिन सुबह साढ़े चार बजे हुज़ूर के लिये चाय का प्याला लेकर मैं उनके कमरे में जाता था; और रात को महाराजजी के शयन-कक्ष के द्वार तक साथ जाकर राधास्वामी करने वाला मैं अन्तिम व्यक्ति था। आधी रात से पहले महाराजजी कभी अपने सोनें के कमरे में नहीं जा पाते थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आराम के लिये उनको कितना कम समय मिलता था।......मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि पाँच दिन के थोड़े-से समय में हो प्रोफेसर पुरी और मैं अनिद्रा और थकान से जर्जर हो गये।"

१५ मई की दोपहर में हुज़ूर ने लेनासिया में सत्संग प्रदान किया। जोहानसबर्ग तथा दक्षिण अफ़्रीका के अन्य सभी स्थानों में महाराजजी का कार्य-क्रम करीब-करीब समान ही रहा : सत्संग, लोगों से मुलाकात, खाने व चाय के समय भी सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं से वार्तालाप, प्रश्नोत्तर, सत्संगियों के घरों में जाकर उनसे मिलना और दोपहर को विश्राम के समय पत्रों के उत्तर लिखवाना अथवा आगे के प्रोग्राम के बारे में व्यवस्थापकों से चर्चा करना।

सत्संगों में ५०० से ७५० व्यक्ति उपस्थित होते थे। जोहानसबर्ग के लेंगहेम होटल के विशाल हॉल में ४५० व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था थी। परन्तु वहाँ हर सत्संग में ७००-७५० का समुदाय हो जाता था और कई लोगों को खड़े रहना पड़ता था। सत्संग का समय शाम को आठ बजे का था, परन्तु संगत चार बजे से आना शुरू कर देती थी।

जोहानसबर्ग से हुज़ूर १८ मई को केपटाउन तथा २२ मई को डर्बन पहुँचे। दोनों स्थानों में अत्यन्त व्यस्त प्रोग्राम के बाद २६ मई की सुबह वापस जोहानसबर्ग आये। हुज़ूर को उसी दिन शाम को इंग्लैण्ड तथा यूरोप की यात्रा पर प्रस्थान करना था। जोहानसबर्ग पहुँचने के कुछ समय बाद हुज़ूर ने संगत को दर्शन दिये तथा उसके बाद ६२ अभिलाषियों को नाम

प्रदान किया ।

दर्शन के समय महाराजजी ने बिदाई के दो शब्द कहे । हुज़ूर ने फ़रमाया, "आपके सुन्दर देश में मेरी यात्रा का आज अन्तिम दिन है । मुझे खुशी है कि अपनी इस यात्रा में लगभग सभी सत्संग केन्द्रों में जा सका हूँ और लोगों से भोजन पर, गार्डन पार्टियों में, एयरपोर्ट पर और यहाँ तक कि सड़कों के किनारे भी सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से भेंट कर सका हूँ ।

"आपके अन्तर में आध्यात्मिकता की प्यास देख कर मैं बहुत प्रसन्न हूँ । आपके भाव-भीने स्वागत, स्नेहपूर्ण व्यवहार, आपकी भक्ति व प्रेम के लिये मैं आपका, आप सभी का आभारी हूँ । मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यद्यपि इस देश में मेरा निवास बहुत थोड़े समय का रहा है, आपका प्रेम मुझे भविष्य में फिर आपके बीच में लायेगा ।...

"मैं आपको ईसा मसीह की बात याद दिलाना चाहता हूँ जो उन्होंने आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व कही थी । उन्होंने कहा था, 'मेरा पहला आदेश है कि अपने सम्पूर्ण हृदय से, अपने पूरे सामर्थ्य के साथ, अपनी पूरी आत्मा के साथ परमपिता परमात्मा को प्यार करो ।' उसके बाद उन्होंने फ़रमाया, 'मेरा दूसरा आदेश है, अपने पड़ौसी से प्यार करो जितना कि तुम अपने आप से करते हो ।' परन्तु यह न भूलें कि यह सम्पूर्ण विश्व ही हमारा पड़ौसी है और वह मालिक हम सबके अन्दर मौजूद है; अतएव हमें सभी के साथ प्यार करना है, उन सभी से प्यार करना है जिन्हें परमात्मा ने पैदा किया है । संसार के सभी पैगम्बरों और सभी सन्तों-महात्माओं के उपदेश इन्हीं दो आदेशों पर आधारित हैं । अगर हम इन दो आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करेंगे तो हम सभी सन्तों-महात्माओं की शिक्षा का सार ग्रहण कर लेंगे ।

"आपको अपनी मंज़िल का पता है, उस तक पहुँचने के मार्ग का पता है । मैं आपको यही सलाह दे सकता हूँ कि इस मार्ग पर प्रेम और भक्ति के साथ दृढ़तापूर्वक चलते रहें ।"

शाम को ६-३० बजे जब हुज़ूर एयरपोर्ट पहुँचे तो वहाँ करीब ४०० व्यक्ति बिदा देने के लिये मौजूद थे । पश्चिम की प्रथा के अनुसार महाराजजी ने उन सभी से हाथ मिलाया । कई ऐसे लोग भी, जो किसी अन्य कार्य से एयरपोर्ट आये थे और जिन्होंने हुज़ूर को पहले कभी देखा तक न था, हाथ मिलाने के लिये हुज़ूर के सामने पहुँच गये । उनमें से एक महिला ने बाद में बताया कि 'उस विलक्षण व्यक्ति' से हाथ मिलाने से वह अपने आपको न रोक सकी, यद्यपि उसे पता नहीं था कि वे कौन हैं ।

हुज़ूर महाराजजी की इस दक्षिण अफ़्रीका की यात्रा के फलस्वरूप सत्संग में एक नई चेतना आ गई। महाराजजी के आगमन से पहले पूरे दक्षिण अफ़्रीका में करीब ३५० सत्संगी थे। आज संगत की संख्या दो हज़ार से ऊपर है। अनेक जिज्ञासु सन्त-मत में रुचि ले रहे हैं तथा शाकाहारी भोजन को अपनाने का प्रयास कर रहे हैं। दक्षिण अफ़्रीका में आज २० स्थानों में सत्संग के केन्द्र हैं। व्हाइट रिवर में एक सत्संग-घर बन गया है तथा जोहानसबर्ग में सत्संग-घर के लिये ज़मीन खरीदी गई है।

हुज़ूर केवल १८ दिन के लिये दक्षिण अफ़्रीका में थे किन्तु इस थोड़े से समय में भी हुज़ूर के आगमन का प्रभाव बहुत गहरा हुआ। सत्संगियों में नया उत्साह पैदा हो गया तथा परस्पर प्रेम की भावना में बहुत विकास हुआ। हुज़ूर के दर्शन और सत्संग से अनेक जिज्ञासुओं की शंकाएँ दूर हो गईं। एक पुराने सत्संगी की पत्नी ने अभी तक सन्त-मत में कोई रुचि नहीं ली थी। अपने पति के जीवन में वह बाधक नहीं थी, किन्तु खुद मांस आदि बराबर खाती थी। जब हुज़ूर तशरीफ़ लाये तो उसने सोचा कि अपने पति के गुरु को देखना चाहिये। सुबह अपने नित्य के सामिष नाश्ते के बाद सत्संग में गई। उसी के शब्दों में, "जब महाराजजी ने हॉल में प्रवेश किया और तख़्त की ओर आने लगे तो मैंने महसूस किया कि इस अद्वितीय स्वरूप के दर्शन करना मेरे लिये एक महान सौभाग्य और अनुपम वरदान है। जितनी देर सतगुरु दर्शन देते रहे मैं निश्चल बैठी थी, मेरी आँखों से खुशी और आनन्द के आँसू बहे जा रहे थे। मैं जानती थी कि अपने पति के जिस गुरु को मैं देखने आई थी वह वास्तव में मेरा गुरु, मेरा पिता, माता, मेरा साथी, मित्र और मार्गदर्शक है।" और शाम के सत्संग के बाद उसने नाम-दान के लिये प्रार्थना की।

इसी प्रकार दक्षिण अफ़्रीका के रक्षा-विभाग अथवा पुलिस विभाग का एक अफ़सर हुज़ूर के कार्यक्रम पर नज़र रखने के लिये नियुक्त किया गया था। उसका कार्य था कि गुप्त रूप से देखे कि महाराजजी के भाषण दक्षिण अफ़्रीका के राष्ट्रीय, नैतिक तथा राजनैतिक आदर्शों के विरुद्ध तो नहीं हैं। वह पूरी यात्रा में हुज़ूर के सत्संगों में आता रहा। अन्त में एक दिन वह अश्रुपूर्ण नेत्रों से हुज़ूर की सेवा में हाज़िर हुआ और नाम के लिये प्रार्थना करने लगा। आज वह दक्षिण अफ़्रीका के उत्साही और प्रेमी सत्संगियों में से एक है।

रंग-भेद में विश्वास करने वाले इस देश में आज ९० प्रतिशत से अधिक

सत्संगी यूरोपियन श्वेत हैं, जो प्रेम और भक्ति के साथ भारत के इस परम सन्त के चरणों में बैठ कर आत्मोद्धार का मार्ग ग्रहण कर रहे हैं तथा अपने अश्वेत सत्संगी बन्धुओं से प्रेम के साथ मिलते हैं। दक्षिण अफ़्रीका में जहाँ भी महाराजजी गये, वहाँ के लोग, वहाँ के अधिकारी हुज़ूर की उपस्थिति में यह भेद-भाव भूल गये। स्वाज़ीलैण्ड से वापस आते समय जब दक्षिण अफ़्रीका की सीमा के 'चेक-पोस्ट' (नाका अथवा चौकी) पर पासपोर्ट दिखाने के लिये मोटर रुकी तो हुज़ूर संयोग से उस चेक-पोस्ट पर चले गये जिस पर लिखा था 'केवल यूरोपियनों के लिये'। पास ही दूसरी चेक-पोस्ट थी जो 'अश्वेत' नागरिकों के लिये थी। दक्षिण अफ़्रीका की पुलिस रंग-भेद के नियम में गलती करने वालों के प्रति काफी रूखाई से पेश आती है। परन्तु चेक-पोस्ट का पुलिस अधिकारी हुज़ूर को देख कर अदब के साथ खड़ा हो गया और पास-पोर्ट देखा, जिसमें भारतीय नागरिकता का स्पष्ट उल्लेख था। हर बार वह हुज़ूर से 'सर' (श्रीमान) कह कर बात करता रहा; परन्तु साथ के अन्य यूरोपियन सत्संगियों से वह 'सर' नहीं कह रहा था। पासपोर्ट की औपचारिकता पूर्ण करने के बाद उसने धन्यवाद सहित पासपोर्ट महाराजजी को लौटा दिया। अन्य सत्संगी हैरान थे कि उसने हुज़ूर को दूसरी चौकी पर जाने के लिये नहीं कहा और इस नम्रता व अदब से पेश आया जो कि साधारणतया पुलिस अधिकारियों में नहीं पाई जाती है।

इसी प्रकार एक बार हुज़ूर कार द्वारा एक शहर से दूसरे शहर जा रहे थे। जिस कार में कॉफ़ी व नाश्ते का सामान था, वह बहुत पीछे रह गई। इस पर श्री सेम बूसा ने मार्ग में एक छोटे शहर की सुन्दर होटल के सामने कार रोक ली। उनका विचार था कि होटल से काफ़ी आदि मोटर में ही ले आयें क्योंकि होटल केवल श्वेत नागरिकों के लिये थी, जिसमें अन्य लोगों को घुसने भी नहीं दिया जाता था। परन्तु कार रुकते ही महाराजजी होटल की ओर चल पड़े। श्री सेम बूसा तथा उनके साथी घबरा गये, कहीं होटल के अधिकारी हुज़ूर के प्रति अशोभनीय व्यवहार न कर बैठें। किंकर्तव्य-विमूढ़ वे कुछ क्षण जहाँ के तहाँ ही खड़े रह गये। जब होटल में गये तो देखा कि महाराज जी होटल की बीच वाली टेबल के यहाँ बैठे थे तथा वेटर बड़े अदब के साथ काफ़ी का आदेश ले रहा था। मैनेजर, काउण्टर पर बैठे क्लर्क, वेटर तथा उपस्थित लोगों की दृष्टि हुज़ूर के मुख-मण्डल पर स्थिर थी और पूरे वातावरण में अजीब ख़ुशी और स्फूर्ति थी।

अपने १८ दिन के प्रवास में हुज़ूर ने ७०० व्यक्तियों को निजी मुलाकातें

दी, जिनमें उनकी समस्याओं को ध्यानपूर्वक सुना तथा समाधान किया। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन भोजन तथा चाय के समय ४०-५० व्यक्तियों से सामूहिक भेंट की। हुज़ूर ने अपने तथा सत्संग के विषय में किसी भी प्रकार के प्रचार की इजाज़त नहीं दी थी; यद्यपि इस आदेश का पूरा पालन किया गया फिर भी सत्संगों में ७००-८०० व्यक्ति आते रहे। हुज़ूर ने तीन स्थानों पर कुल ९७ व्यक्तियों को नाम प्रदान किया जिनमें केवल ९ व्यक्ति भारतीय थे। जब एयरपोर्ट पर एक सत्संगी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों सहित कहा, "मुझे बहुत दुःख है कि आप हमें छोड़ कर जा रहे हैं।" तो हुज़ूर ने कोमल प्रेम-पूर्ण स्वर में उत्तर दिया, "क्या मैं आपको छोड़ रहा हूँ?" और जब विशाल जेट यान सतगुरु को लेकर आकाश की ओर जा रहा था तब संगत की आँखों से आँसू बह रहे थे, पर साथ ही वे अन्तर में अपने सतगुरु से अभिन्नता महसूस कर रहे थे; जो कि देह-स्वरूप में दूर होते हुए भी हमेशा अंग-संग है।

जोहानसबर्ग से नैरोबी होते हुए हुज़ूर २७ मई को दारासलाम पहुँचे, जहाँ हुज़ूर ने २७ व २८ तारीख को सत्संग किया तथा कुछ अभिलाषियों को नाम प्रदान किया। महाराजजी २९ मई को मोम्बासा पहुँचे। थकान तथा निरन्तर यात्रा के कारण यहाँ हुज़ूर की तबियत नासाज़ हो गई। परन्तु संगत को निराश न करने के ख़याल से हुज़ूर ने अपने प्रोग्राम को यथावत् रखा। यहाँ एक दिन के व्यस्त कार्य-क्रम के उपरान्त हुज़ूर वापस नैरोबी होते हुए १ जून को कैरो पहुँचे। कैरो (मिस्र) से महाराजजी ५ जून को लन्दन आये।

लन्दन में हुज़ूर का यान नौ घण्टे लेट पहुँचा। शाम के चार बजे से करीब तीन सौ स्त्री-पुरुष हुज़ूर के दर्शन और स्वागत के लिये आये हुए थे। इनमें अधिकांश भारतीय थे। वे रात को एक बजे तक हवाई अड्डे पर ही रहे। इतनी भीड़, इतने समय तक वहाँ देख कर अधिकारियों के मन में कुछ आशंका हुई कि कहीं कुछ अशान्ति न फैल जाये। एक पुलिस सार्जेण्ट तथा कुछ पुलिस के सिपाही वहाँ आ गये। सार्जेण्ट ने एक सत्संगी से पूछा कि कौन आ रहे हैं? उसने जवाब दिया, "हमारे सतगुरु आ रहे हैं।"

परन्तु सार्जेण्ट कुछ समझ न सका और व्यवस्था-सम्बन्धी उस की चिन्ता दूर न हुई।

रात को एक बजे जब हुज़ूर का यान आया, करीब तीन सौ व्यक्तियों की पूरी संगत (भारतीय तथा यूरोपियन) एयरपोर्ट में ज़मीन पर बैठ गई। महाराजजी पधारे, राधास्वामी की तथा उनके सामने खड़े हो गये। संगत

अपलक दृष्टि से अपने प्यारे सतगुरु को निहार रही थी, सब बिलकुल खामोश थे। हुज़ूर अपनी प्रेम, कृपा और करुणा से परिपूर्ण दृष्टि से संगत को निहाल कर रहे थे। संगत आत्म-विस्मृत और भाव-विभोर बैठी थी। नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। उस समय के इस विलक्षण दृश्य को देख कर एयरपोर्ट के अधिकारी विस्मित व हैरान खड़े थे। बाद में अंग्रेज़ सार्जेण्ट ने बताया कि एयरपोर्ट पर अपने बारह वर्ष के सेवा-काल में उसने ऐसा अनुशासन, ऐसा भावपूर्ण तथा प्रेरणाप्रद दृश्य नहीं देखा।

जब महाराजजी एयरपोर्ट से अपने निवास-स्थान पर पहुँचे, उस समय रात के दो बजे थे। कुछ प्रमुख सत्संगी हुज़ूर की फ्लेट में दर्शन के लिये रुके हुए थे। वे वर्षों बाद हुज़ूर के दर्शन कर रहे थे। उन्हें इस खुशी में ध्यान न रहा कि रात के दो बजे हैं; और दयामय सतगुरु ने भी उनके प्रेम को देख कर उन्हें जाने के लिये न कहा। उनसे बात करने में तीन बज गये और फिर हुज़ूर आराम करने गये। इस सम्पूर्ण यात्रा में हुज़ूर को पूरी नींद सोना न मिल सका और न ही आराम करने को समय मिला। परन्तु जब हुज़ूर से यह बात अर्ज़ की गई तो आपने फ़रमाया, "मुझे अपना फर्ज़ अदा करने में बहुत खुशी है।"

लन्दन में हुज़ूर का करीब तीन सप्ताह का प्रोग्राम था। इस बार हुज़ूर लन्दन से बाहर अन्य स्थानों में भी तशरीफ़ ले गये। तीन सप्ताह के सत्संग, नाम-दान आदि के कार्यक्रम के उपरान्त हुज़ूर २५ जून को फ़्रेंकफ़र्ट (जर्मनी) पहुँचे। हुज़ूर की यह यात्रा मुख्यतः दक्षिण अफ्रीका, पूर्वी अफ्रीका तथा इंग्लैंड के लिये थी। अतएव यूरोप में हुज़ूर केवल फ़्रेंकफ़र्ट (जर्मनी), जिनेवा (स्विट्ज़रलैण्ड) तथा वियाना (आस्ट्रिया) ही तशरीफ़ ले गये। फ़्रेंकफ़र्ट में अन्य स्थानों के सत्संगी भी आ गये तथा यहाँ २८ तारीख तक हुज़ूर ने सत्संग प्रदान किये। हुज़ूर ने सभी सत्संगियों से अलग-अलग भेंट की तथा संगत की प्रार्थना पर उनके साथ बस में जर्मनी के कुछ दर्शनीय स्थान देखने गये। इन तीन-चार दिनों में हुज़ूर ने सुबह से रात तक का अपना पूरा समय संगत के साथ ही बिताया। २९ जून के वायुयान से हुज़ूर जिनेवा जाने वाले थे। शाम को जर्मनी के सत्संगियों ने विचार किया कि यदि हुज़ूर कार से जिनेवा जायें तो उन्हें भी साथ जाने का अवसर मिल जाये। जब यह विचार हुज़ूर के सामने प्रकट किया गया तो आपने इस सुझाव को बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया, यद्यपि इस प्रकार हुज़ूर को आठ-दस घण्टे मोटर में सफर करना पड़ा जब कि हवाई जहाज़ में एक घण्टे से भी कम समय लगता। इस

प्रकार हुज़ूर सुबह फ़्रेंकफ़र्ट से कार द्वारा चल कर शाम को सात बजे जिनेवा पहुँचे। चार मोटरों में जर्मनी के अन्य सत्संगी भी साथ थे।

जिनेवा में हुज़ूर ने पाँच-छः दिन सत्संग प्रदान किया। यहाँ यूरोप के अन्य देशों से संगत आई हुई थी। जिनेवा से महाराजजी दो दिन के लिये वियाना तशरीफ़ ले गये। कुमासी (घाना) की एक भारतीय महिला हुज़ूर के दर्शन के लिये नैरोबी न आ सकी थो, जब वह लन्दन और जिनेवा भी न पहुँच सकीं तो वियाना आ गईं। हुज़ूर ने कृपा की और वियाना में उन्हें नाम दे दिया।

वियाना से हुज़ूर १० जुलाई की रात को इज़राइल पहुँचे। यहाँ के पाँच सत्संगी आशा लगाये, बैठे थे कि हुज़ूर भारत लौटते समय उन्हें भी दर्शन देते हुए जायें। हुज़ूर ने तीन दिन इज़राइल में उनके साथ विताये तथा कुछ जिज्ञासुओं से मिले। हुज़ूर की इस यात्रा के फलस्वरूप यहाँ के लोगों में सन्त मत के प्रति जिज्ञासा बढ़ रही है तथा सन्त-मत की कुछ पुस्तकों का हिब्रू में अनुवाद किया जा चुका है।

हुज़ूर १४ जुलाई की सुबह बम्बई पधारे। १४ तारीख की सुबह बम्बई में तथा १५ को सुबह देहली में संगत को दर्शन प्रदान करते हुए महाराजजी १६ जुलाई की सुबह डेरे पहुँचे।

(५) सुदूर पूर्व, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड : १९६८

हुज़ूर ने ६ मई १९६८ की सुबह देहली से वायुयान द्वारा प्रस्थान किया और लगभग चार घण्टे की यात्रा के बाद बेंकाक पहुँचे। हवाई अड्डे पर सौ से अधिक दर्शनाभिलाषी मौजूद थे। बेंकाक पहुँचते ही हुज़ूर का व्यस्त कार्य-क्रम शुरू हो गया जिसमें सुबह दर्शन, शाम को सत्संग, दिन में मुलाकातें तथा सत्संगियों के यहाँ जाने का प्रोग्राम था। इस व्यस्त प्रोग्राम के बीच में हुज़ूर ने ९ मई को कुछ अभिलाषियों को नाम भी बख़्शा। यहाँ सत्संगों में उप-स्थिति ७०० से ऊपर होती थी। इस यात्रा में श्री मदन मेहता हुज़ूर के साथ प्रवासकालीन सेक्रेटरी थे। सत्संगी बहन श्रीमती बी. जॉन्सी* भी इस यात्रा में साथ थीं।

बेंकाक से ११ मई को हुज़ूर हांगकांग तशरीफ़ लाये। यहाँ भी लगभग वही कार्य-क्रम था। हांगकांग में हुज़ूर ने एक सत्संग सिख गुरुद्वारा में प्रदान

*श्रीमती बी. जान्सी इंग्लैंड की एक बुज़ुर्ग प्रेमी सत्संगी हैं। आप कई वर्षों तक लन्दन में रह कर सत्संग तथा संगत की निःस्वार्थ सेवा करती रहीं हैं। आजकल आप न्यूज़ीलैण्ड में रहती हैं तथा वहां के सत्संग के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से हैं।

किया। गुरुद्वारा सिखों तथा अन्य भारतीयों से भरा हुआ था, जिनमें सत्संगी केवल २५ या ३० थे। सत्संग से पहले हांगकांग के एक प्रमुख सिख व्यक्ति ने हुज़ूर का परिचय दिया। उन सज्जन का भाषण शिष्ठतापूर्ण नहीं था। उन्होंने बड़ी रूखाई के साथ चेतावनी दी कि महाराजजी ऐसी कोई बात न कहें जो सिखों की भावनाओं के खिलाफ हो।

महाराजजी सत्संग में कभी किसी की आलोचना नहीं करते हैं, परन्तु सन्तों के सन्देश के असली अर्थ को प्रकट करने में कभी झिझकते भी नहीं है। अपनी धाराप्रवाह शैली, सरल भाषा और मिठास तथा प्रेम से परिपूर्ण वाणी में हुज़ूर ने अपने डेढ़ घण्टे के प्रभावशाली सत्संग में गुरु नानक साहिब की शिक्षा को स्पष्ट करके समझाया। हुज़ूर ने उस नाम और शब्द का वास्तविक अर्थ समझाया जिसका गुरु साहिबों ने अपने प्रत्येक शब्द में उल्लेख किया है। आपने बताया कि सच्चा नाम लिखने-पढ़ने में नहीं आता; सच्चा शब्द बाहरी संगीत नहीं है, बल्कि वह आन्तरिक कीर्तन है जिसे सतगुरु से दीक्षित व्यक्ति नौ द्वारों को खाली करके, जीते-जी मर कर, अन्दर जाकर सुनता है; सच्चा अमृतसर काया के अन्दर है जिसमें जाकर स्नान करने से जीव जन्म-मरण से मुक्त होता है। अन्त में हुज़ूर ने देह-स्वरूप गुरु की महिमा तथा उनकी ज़रूरत पर जोर दिया। हुज़ूर ने अपनी प्रत्येक बात की ग्रन्थ-साहिब के उद्धरणों द्वारा पुष्टि की।

पूरे गुरुद्वारा में खामोशी थी, लोग मन्त्र-मुग्ध से बैठे हुज़ूर के अमृत-भरे वचनों को सुन रहे थे और उनकी दृष्टि महाराजजी के आकर्षक भव्य स्वरूप पर स्थिर थी। सत्संग के बाद उन्हीं सिख सज्जन ने हुज़ूर के पधारने तथा सत्संग और दर्शन बख्शने के लिये बड़े आदर-पूर्वक भाव-विभोर स्वर में धन्यवाद दिया।

हांग-कांग में हुज़ूर से संगत ने नाम-दान के लिये प्रार्थना की। हुज़ूर ने अपनी जापान-यात्रा से लौटते समय नाम देने का आश्वासन दिया।

हुज़ूर का प्रोग्राम पहले केवल सुदूरपूर्व का ही था और हुज़ूर का विचार सिंगापुर से वापस भारत आने का था। परन्तु आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड तथा इण्डोनेशिया से सत्संगियों के पत्र आने पर हुज़ूर का विचार इन देशों में जाने का भी हो गया। हांग-कांग में तो इन देशों से तार और टेलीफोन आने लगे कि जब महाराजजी इतनी दूर तक तशरीफ़ ले आये हैं तो कुछ दूर और आकर हमें भी दर्शन बख्शें। ये प्रार्थनाएं इतनी आग्रह व अनुनयपूर्ण थीं कि महाराजजी इन्कार न कर सके और इन देशों का प्रोग्राम भी निश्चित हो गया।

हांगकांग से वायुयान द्वारा हुज़ूर १६ मई को टोकियो (जापान) पहुँचे। टोकियो के अलावा हुज़ूर कोबे, ओसाका आदि स्थानों पर भी गये। सत्संगों में उपस्थिति दो सौ तक हो जाती थी। अनेक जिज्ञासुओं ने मुलाकातें लीं और सन्त-मत के विषय में अपने प्रश्नों का समाधान प्राप्त किया। जापान से महाराजजी वापस हांगकांग पधारे जहाँ आपने दो सत्संग प्रदान किये तथा ३० मई को कुछ जिज्ञासुओं को नाम प्रदान किया।

हांगकांग से हुज़ूर ३१ मई को सिंगापुर आये। यहाँ भी हुज़ूर का वही कार्यक्रम रहा। आपने चार सत्संग किये तथा २५ व्यक्तियों को नाम बख़्शा। सिंगापुर में सत्संगों में उपस्थिति एक हज़ार से ऊपर होती थी। सिंगापुर से बाली द्वीप होते हुए महाराजजी ८ जून को जकार्ता (इण्डोनेशिया) तशरीफ़ लाये। यहाँ जिज्ञासुओं की संख्या बहुत बड़ी थी। चार दिन सत्संग, दर्शन, प्रश्नोत्तर आदि के बाद १२ जून को हुज़ूर ने ४९ अभिलाषियों को नाम-दान दिया। जकार्ता से करीब नौ घण्टे की हवाई यात्रा के उपरान्त हुज़ूर १३ जून को आस्ट्रेलिया पहुँचे।

आस्ट्रेलिया में सन्त-मत का प्रारम्भ १९६५ से होता है जब महाराजजी ने डेरे में दो आस्ट्रेलिया वासियों को नाम दिया। हुज़ूर के आने के समय तक यहाँ १०-११ सत्संगी थे, जो देश के अलग-अलग स्थानों में थे। यहाँ महाराजजी ने दो दिन तो सुबह-शाम सत्संग प्रदान किये तथा जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर दिये और फिर १५ जून की शाम को सत्संग के बाद नाम प्रदान किया। आस्ट्रेलिया में महाराजजी की यात्रा के फलस्वरूप सन्त-मत के प्रति जिज्ञासा बढ़ने लगी। आज यहाँ सौ से अधिक सत्संगी हैं तथा अनेक जिज्ञासु सन्तों के मार्ग को समझने की कोशिश कर रहे हैं।

सिडनी से वायुयान द्वारा महाराजजी १८ जून को क्राइस्ट चर्च (न्यूज़ीलैण्ड) पहुँचे। न्यूज़ीलैण्ड में सन्त-मत का प्रारम्भ सन् १९६४ से होता है। एक अंग्रेज़ दम्पति इंग्लैण्ड से न्यूज़ीलैण्ड जाकर बसना चाहते थे। वे एक केरेवन वान (बड़ी मोटर गाड़ी जिसमें सोने, खाना बनाने आदि का स्थान होता है) द्वारा अपनी यात्रा पर चल पड़े। यूरोप, मध्यपूर्व, अफ़ग़ानिस्तान व पाकिस्तान होते हुए जब वे अमृतसर पहुँचे तो यहाँ तीन-चार दिन ठहर कर विश्राम करना चाहा। परन्तु जहाँ भी वे अपनी गाड़ी खड़ी करते वहीं बच्चों और दर्शकों की भीड़ लग जाती। इससे परेशान होकर ऐसा स्थान ढूँढने लगे जहाँ उन्हें एकान्त मिल सके और वे निर्विघ्न हो कुछ दिन आराम कर सकें। किसी ने उन्हें डेरा जाने की सलाह दी और कहा कि वहाँ काफी

अंग्रेज़ आते और ठहरते रहते हैं। अतएव वे अमृतसर से डेरा आ गये। उन्हें रानी की कोठी के पास ठहराया गया। यहाँ की व्यवस्था से वे बहुत प्रभावित हुए और जब उन्हें पता लगा कि यह स्थान रूहानियत का केन्द्र है, जहाँ के प्रमुख प्रतिदिन सत्संग देते हैं तो उन्होंने सोचा कि सत्संग में न जाना अभद्रता होगी। वे सत्संग में आये। हुज़ूर के ज्योतिर्मय आकर्षक स्वरूप के दर्शन से वे बहुत प्रभावित हुए और दो-तीन दिन के स्थान पर करीब एक महीना ठहरे। कुछ दिन बाद हुज़ूर से नाम-दान की प्रार्थना की । ये पति-पत्नि न्यूज़ीलैण्ड में पहले सत्संगी हैं।

न्यूज़ीलैण्ड में बहुत सर्दी थी, क्योंकि यहाँ मई-जून में सर्दी का मौसम होता है। क्राइस्ट चर्च में हुज़ूर सत्संगियों से मिले और सत्संग प्रदान किये। २१ जून को हुज़ूर यहाँ से न्यूज़ीलैण्ड की राजधानी आकलैण्ड पधारे। हुज़ूर ने यहाँ तीन सत्संग प्रदान किये । पहले सत्संग में ४९ व्यक्ति उपस्थित थे, दूसरे में ६० तथा तीसरे सत्संग में ८०। सभी ने हुज़ूर से निजी मुलाकातें लीं और अनेक प्रश्न पूछे। ३० जून को आकलैण्ड से चलने से पहले महाराजजी ने २२ अभिलाषियों को नाम-दान दिया। हुज़ूर की इस यात्रा के फलस्वरूप इस छोटे से किन्तु सुन्दर देश में सन्त-मत के प्रति रुचि बढ़ने लगी है और धीरे-धीरे जिज्ञासु इस ओर आने लगे हैं। इस समय यहाँ सौ से अधिक सत्संगी हैं तथा करीब इतने ही जिज्ञासु हैं।

३० जून को महाराजजी न्यूज़ीलैण्ड से फिजी द्वीप-समूह में तशरीफ़ ले गये। यहाँ नन्दी, सूवा, नोमिश्रा आदि स्थानों पर सत्संग और दर्शन प्रदान करते हुए हुज़ूर ८ जुलाई की रात को दस बजे सिंगापुर पहुँचे। ९ जुलाई को सुबह दर्शन तथा जिज्ञासुओं से भेंट और शाम को सत्संग हुआ । इतने लम्बे सफ़र और व्यस्त प्रोग्राम के बावजूद हुज़ूर ने १० तारीख का पूरा दिन सत्संग के कार्यों में व्यतीत किया। यद्यपि सिंगापुर में महाराजजी नाम-दान दे चुके थे और इस बार नाम-दान का कोई प्रोग्राम नहीं था, फिर भी कुछ अभिलाषियों की तीव्र आकांक्षा देख कर हुज़ूर ने दिन को तीन बजे से नाम-दान शुरू किया। हुज़ूर ने १२ भारतीयों तथा सिंगापुर में रहने वाले आठ चीनी लोगों को नाम प्रदान किया। नाम-दान में तीन घण्टे लग गये। हुज़ूर वहाँ से सीधे एयर-पोर्ट के लिये रवाना हो गये, क्योंकि हुज़ूर का बम्बई जाने वाला जहाज़ सात बजे उड़ने वाला था।

हुज़ूर का हवाई जहाज़ जब बम्बई पहुँचा उस समय बम्बई में रात के एक बजे थे। कस्टम आदि से होते हुए, हवाई अड्डे पर उपस्थित सत्संगियों

से मिलकर जब हुज़ूर श्री कृष्ण बबानी के घर पहुँचे उस समय रात के २.३० बजे थे। सुबह नौ बजे संगत को दर्शन देने का प्रोग्राम था। सुबह आठ बजे से ही लोगों से मुलाकातें शुरू हो गईं। नौ बजे जब हुज़ूर बान्द्रा के सत्संग-घर में पहुँचे तो संगत के प्रेम को देख कर हुज़ूर ने सत्संग बख़्शने की मौज फ़रमाई और करीब ४५ मिनिट प्रभावशाली सत्संग प्रदान किया।

(६) यूरोप, अमेरिका, एशिया—१९७०

अप्रेल भण्डारा तथा इन्दौर और देहली के सत्संगों के व्यस्त और श्रम-पूर्ण प्रोग्राम को पूरा करके हुज़ूर महाराजजी २१ अप्रैल की रात को दस बजे वायुयान से रवाना होकर करीब १०॥ घण्टे की यात्रा के बाद २२ अप्रैल की सुबह साढ़े पाँच बजे एथेन्स पहुँचे। देहली में २० और २१ अप्रेल को महाराजजी का बहुत व्यस्त कार्यक्रम था और २१ तारीख को तो सुबह आठ बजे से रात को देहली एयरपोर्ट पहुँचने तक हुज़ूर को एक मिनिट की फ़ुरसत न मिल सकी थी। हवाई जहाज़ रास्ते में कराँची, कुवैत और बेरूत में रुका जिसके फलस्वरूप वायुयान में कुछ सो पाने का अवसर भी न मिल सका।

एथेन्स (ग्रीस) में हवाई अड्डे पर २४ सत्संगी स्वागत के लिये मौजूद थे। उन्होंने हुज़ूर को बताया कि सुबह नौ बजे हुज़ूर को बस द्वारा दर्शनीय स्थानों पर ले जाने का प्रोग्राम बनाया है तथा सब सत्संगी भी उस बस में हुज़ूर के साथ होंगे। प्रोफेसर जनक पुरी (जो इस यात्रा में हुज़ूर के सेक्रेटरी के रूप में साथ थे) ने सुझाव दिया कि हुज़ूर यह प्रोग्राम कैंसल कर दें, क्योंकि दो दिन देहली में आराम न कर पाने के बाद हवाई जहाज़ में रात भर जागने से हुज़ूर काफ़ी थक गये होंगे। परन्तु हुज़ूर संगत को निराश नहीं करना चाहते थे। अतएव इस प्रोग्राम के लिये अपनी स्वीकृति दे दी। होटल पहुँच कर तैयार होकर, नाश्ता करके महाराजजी संगत के साथ बस में घूमने निकले।

तीसरे पहर कुछ लोगों को मुलाकात देने के बाद रात को आठ बजे से सत्संग शुरू हुआ। सत्संग में ३० व्यक्तियों के आने को उम्मीद थी, परन्तु सौ से अधिक सत्संगी और जिज्ञासु मौजूद थे, सत्संग के बाद प्रश्नोत्तर हुए और इस प्रकार सत्संग १०-३० बजे समाप्त हुआ।

डेरे से चलते समय हुज़ूर का विचार इस यात्रा में नाम देने का नहीं था। परन्तु एथेन्स तथा आगे सभी स्थानों पर हुज़ूर के सत्संगों के बाद जिज्ञासुओं का नाम-दान के लिये इतना आग्रह होने लगा कि महाराजजी उनकी प्रार्थ-नाओं को अस्वीकार न कर सके और पूरे दौरे में प्रायः सभी स्थानों में नाम

बख्शने की कृपा की। २४ अप्रेल को जिनेवा (स्विट्ज़रलैंड) के लिये प्रस्थान करने से पहले हुज़ूर ने कुछ व्यक्तियों को नाम प्रदान किया।

हुज़ूर २४ अप्रेल को दिन के ४-३० बजे जिनेवा पहुँचे और आते ही कुछ सत्संगियों को अलग-अलग समय दिया। यहाँ जर्मनी, इटली, फ़्रान्स, नार्वे, स्वीडन, हालैण्ड, दक्षिण अफ़्रीका तथा अमेरिका से सत्संगी आये हुए थे। हुज़ूर ने सबको व्यक्तिगत मुलाकातें दीं, तीन सत्संग बख्शे तथा अपने जर्मन प्रतिनिधि श्री वालबर्ग के द्वारा दस व्यक्तियों को नाम प्रदान किया।

यूरोप में महाराजजी का अगला मुकाम एम्सटरडेम (हालैण्ड) था जहाँ आपने २८, २९ और ३० अप्रेल को रोज़ दो घण्टे सत्संग दिया। प्रतिदिन सुबह दर्शन का कार्यक्रम था। परन्तु पहले ही दिन दर्शन के समय एक जिज्ञासु ने प्रश्न पूछा और उसके बाद दर्शन का पूरा समय प्रश्नोत्तर में बीता। यही क्रम अगले दो दिन भी रहा और इस प्रकार सुबह और शाम दोनों समय हुज़ूर को सत्संग प्रदान करना पड़ा। सत्संगों में उपस्थिति २५० से ऊपर होती थी। अपने चार दिन के निवास में हुज़ूर ने १२५ से अधिक व्यक्तियों को अलग-अलग समय दिया। १ मई को अभिलाषियों को नाम प्रदान किया और तीसरे पहर चार बजे के यान से चल कर उसी दिन पाँच बजे लन्दन पहुँचे।

लन्दन एयर-पोर्ट से महाराजजी सीधे भारतीय विद्यार्थी यूनियन हाल में गये जहाँ लगभग ८०० व्यक्ति दर्शन के लिये इन्तिज़ार कर रहे थे। संगत अपने प्यारे सतगुरु के दर्शन करके प्रेम-विभोर हो गई। चार साल के वियोग की घड़ियाँ दर्शन के उस आनन्द में बिसर गईं। हुज़ूर के नेत्रों से कृपा, करुणा और प्रेम की रश्मियाँ निकल रही थीं और संगत अपलक दृष्टि से उस अनुपम स्वरूप को निहार रही थी। रात को भोजन के उपरान्त हुज़ूर कुछ प्रमुख सत्संगियों तथा व्यवस्थापकों से मिलते रहे।

२ और ३ मई को हुज़ूर का प्रोग्राम बहुत व्यस्त रहा। दोनों दिन हुज़ूर ने दो-दो सत्संग प्रदान किये। २ मई को भारतीयों के लिये सुबह १० से १२ बजे तक तथा यूरोपियन संगत के लिये शाम को ३-३० से ५ बजे तक सत्संग किया। पंजाबी सत्संग में २५०० तथा अंग्रेज़ी में ८०० से १००० व्यक्ति उपस्थित थे। ३ मई को सुबह १० से १२ बजे तक अंग्रेज़ी में तथा शाम को ३ से ५ बजे तक पंजाबी में सत्संग हुआ। पंजाबी सत्संग में ३००० व्यक्ति उपस्थित थे, जब कि रायल थिएटर हाल में केवल २३०० व्यक्तियों के लिये जगह थी। अतएव कई लोगों ने खड़े रह कर सत्संग सुना। परन्तु

संगत इतनी अधिक थी कि ३००० व्यक्तियों को स्थान देने के बाद व्यवस्थापकों को हाल के द्वार बन्द करने पड़े तथा बहुत से लोग अन्दर न आ सके। बाहर सड़क पर भी काफी संगत खड़ी थी। इतनी भीड़ देख कर बहुत से पुलिस के सिपाही आ गये। परन्तु संगत एकदम खामोश और शान्त थी। सत्संग के बाद हाल से बाहर आते समय हुजूर के दर्शन करके संगत चली गई। इतनी शान्ति और अनुशासन को देख कर पुलिस अधिकारी हैरान थे, भीड़ को देख कर उन्हें अशान्ति फैलने का डर था।

हुजूर की यह सत्संग-यात्रा प्रमुख रूप से अमेरिका और कनाडा के लिये थी। अतएव हुजूर लन्दन को पाँच दिन से अधिक समय न दे सके। परन्तु व्यवस्थापकों ने पाँच दिन के बहुत थोड़े समय में बहुत कुछ प्रोग्राम शामिल करने का प्रयास किया था, जिसके फलस्वरूप हुजूर यहाँ बहुत व्यस्त रहे। समय की कमी के कारण महाराजजी ने लन्दन में नाम-दान के प्रोग्राम को स्वीकार नहीं किया था। परन्तु इतने अभिलाषियों को तथा उनकी तड़प को देख कर दया का सागर उमड़ पड़ा और हुजूर ने नाम-दान के लिये स्वीकृति दे दी।

४ मई को सुबह ९ बजे से १ बजे तक हुजूर ने सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं को निजी मुलाकातें दीं तथा तीसरे पहर नाम-दान दिया। २३५ भारतीय अभिलाषियों में से हुजूर ने २११ को नाम प्रदान किया और कर्नल सेण्डर्स के द्वारा ३५ पश्चिम देश-वासियों को नाम बख्शा।

महाराजजी के इसी प्रवास के समय आपके प्रवासकालीन सेक्रेटरी प्रोफेसर जनक पुरी के पुत्र राजेन्द्र का विवाह लन्दन निवासी पुराने सत्संगी श्री हरमहेन्द्र अहूजा की कन्या किरण के साथ सम्पन्न हुआ। हुजूर इस विवाहोत्सव में शरीक हुए। इस अवसर पर कई भारतीय, अंग्रेज़, यूरोपियन अमेरिकन सत्संगी भी उपस्थित थे।

इस बार समयाभाव के कारण हुजूर लन्दन से बाहर के सत्संग-केन्द्रों में न जा सके। परन्तु पूरे देश के विभिन्न भागों से सत्संगी लन्दन आ गये थे। अन्य देशों से भी संगत आई हुई थी। केवल हालैण्ड से ३० तथा लास पामास से १८ सत्संगी उपस्थित थे। नायडू परिवार के ३२ सदस्य इस समय लन्दन में मौजूद थे। सत्संगों में आने वाले बच्चों को अलग स्थान में रखा गया था, जहाँ उनकी देख-भाल के लिये कुशल नर्स तथा मनोरंजन के लिये खिलौने आदि थे। हुजूर ने प्रतिदिन सत्संग के बाद बच्चों को दर्शन दिये।

लन्दन से ६ मई की सुबह १०.४० पर रवाना होकर सात घण्टे की

उड़ान के बाद महाराजजी बरमूडा (वेस्ट इंडीज़) पहुँचे। उस समय बरमूडा में दोपहर के एक बजे थे। बरमूडा में जब रात को ग्यारह बजे हुज़ूर सोने के लिये अपने कमरे में गये उस समय लन्दन में रात के तीन बजे थे। इस प्रकार जेट वायुयान से लम्बी हवाई-यात्रा के फल-स्वरूप, महाराजजी लन्दन में सुबह तीन-चार बजे उठने के बाद लगभग पूरे २४ घण्टों तक जागते रहे। इस पूरी यात्रा में ऐसे अनेक अवसर आये जिनमें निद्रा, आराम तथा भोजन का समय बिलकुल उलट-पुलट हो गया। इससे होने वाली थकान और असुविधा के बावजूद हुज़ूर ने स्थानीय प्रबन्धकों द्वारा बनाये गये कार्य-क्रम को समय पर निभाया।

बरमूडा में हुज़ूर केवल चौबीस घण्टे ठहरे तथा वहाँ से ७ मई को वायुयान द्वारा शाम को ५.३० बजे बारबाडॉस पहुँचे। यहाँ आपने एक सत्संग प्रदान किया जिसमें ५० व्यक्ति उपस्थित थे। इनमें से अधिकांश जिज्ञासु थे। हुज़ूर ने सभी जिज्ञासुओं को अलग-अलग समय दिया।

बारबाडॉस से ८ मई को ६.१५ बजे हुज़ूर ट्रिनिडेड (पोर्ट आफ़ स्पेन) आये। यहाँ हुज़ूर ने दो सत्संग किये जिनमें उपस्थिति करीब ९० थी। हुज़ूर ने कई जिज्ञासुओं को मुलाकातें दीं और १२ व्यक्तियों को नाम प्रदान किया। महाराजजी ने १३ मई को किंगस्टन और १५ को माण्टेगो-बे में सत्संग प्रदान किये। माण्टेगो-बे में भारतीय उच्च-आयुक्त (हाई कमिश्नर) भी सत्संग में आये। यहाँ से करीब छः घण्टे की हवाई-यात्रा के बाद महाराजजी १६ मई की शाम को ७.३० बजे मेक्सिको पहुँचे।

मेक्सिको में करीब चालीस सत्संगी दर्शन के लिए एयर-पोर्ट पर उपस्थित थे। एयर-पोर्ट से हुज़ूर सीधे उस स्थान पर तशरीफ़ ले गये जहाँ संगत दर्शन के लिये बैठी थी। १७, १८ और १९ मई को मेक्सिको में बहुत व्यस्त कार्य-क्रम रहा। रोज सुबह महाराजजी सत्संगियों और जिज्ञासुओं से मिलते तथा शाम को सत्संग प्रदान करते। सत्संग का स्पेनिश भाषा में अनुवाद किया जाता और उसके बाद प्रश्नोत्तर होते। पूरे प्रोग्राम में दो-तीन घण्टे लग जाते। अन्तिम दिन हुज़ूर ने नाम-दान भी दिया।

२० मई की सुबह हवाई जहाज़ से हुज़ूर ने वाशिंगटन के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में हवाई जहाज़ सेण्ट एण्टोनियो और डलास में कुछ समय ठहरा। सेण्ट एण्टोनियो में १०० तथा डलास में करीब २०० सत्संगी एयर-पोर्ट पर दर्शन के लिये मौजूद थे। उन्होंने हुज़ूर के स्वागत में एक बहुत भावपूर्ण गीत गाया। प्रेम और भक्ति के इस अपूर्व वातावरण ने एयर-पोर्ट के

अधिकारियों को विस्मय में डाल दिया।

वाशिंगटन में हुज़ूर केवल ४८ घण्टे ठहरे। परन्तु इस थोड़े से समय में हुज़ूर ने दो सत्संग, अनेक मुलाकातें तथा प्रश्नोत्तर का कार्य-क्रम पूर्ण किया तथा सत्संगियों और जिज्ञासुओं से आधी रात तक मिलते रहे। यहाँ हुज़ूर श्री वीकली के निवास-स्थान पर ठहरे। जब भी महाराजजी किसी सत्संगी के घर में ठहरते थे तो साधारणतया वह सत्संगी अपने घर में सत्संगियों और जिज्ञासुओं को हुज़ूर से उनके खाली समय में मिलने के लिये निमन्त्रित करता था। इन मुलाकातों में तीस से चालीस व्यक्ति तक हो जाते थे तथा ये साधारण सामाजिक मुलाकातें न होकर सन्त-मत के सिद्धान्तों पर वार्तालाप और प्रश्न व उत्तर का रूप ले लेती थीं।

वाशिंगटन में हुज़ूर के ड्राइंग-रूम में ऐसी ही एक मीटिंग हो रही थी। जिज्ञासु सन्तों के मार्ग के विषय में तर्क-युक्त व खोज-पूर्ण प्रश्न पूछ रहे थे। हुज़ूर के उत्तर हमेशा की तरह सरल, स्पष्ट तथा सुबोध थे। उपस्थित मेह-मानों में एक व्यक्ति, जो यद्यपि समझदार और शिष्ठ प्रतीत होता था, अपने व्यवहार में कुछ अशिष्ठ और द्वेषपूर्ण था। वह हुज़ूर का सत्संगी नहीं था, न कोई नया जिज्ञासु मालूम होता था, क्योंकि उसे सच्चे सतगुरु की आवश्यकता की पूरी समझ थी। उसकी कठिनाई थी कि वह महाराजजी को सतगुरु के रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं था। उसके कुछ वाक्य अत्यन्त अशिष्ठतापूर्ण थे तथा उसने अपनी बात-चीत व प्रश्नों के द्वारा हुज़ूर को क्रोध दिलाने का प्रयत्न किया। परन्तु उसके ये प्रयत्न असफल रहे, क्योंकि हुज़ूर किसी भी प्रकार की बहस में न उलझे। उसके कटुतापूर्ण प्रश्न तथा कुटिल वाक्य हुज़ूर को अपनी स्वाभाविक स्थिरता, सहज शालीनता व सौजन्य तथा कृपा और करुणा से पूर्ण नम्रता से विचलित न कर सके। हुज़ूर ने उस की हर बात का उत्तर बड़े प्यार और मिठास के साथ दिया।

इस विलक्षण वार्तालाप के अन्त में, जाते समय उस व्यक्ति ने बड़ी नम्रता के साथ, अत्यन्त भावपूर्ण स्वर में हुज़ूर को धन्यवाद देते हुए कहा, "मुझे ऐसा महसूस होता है कि स्वयं परमपिता परमात्मा से मैं वार्तालाप कर रहा था।"

यहाँ मैं हुज़ूर महाराजजी द्वारा डेरा के सेक्रेटरी श्री के. एल. खन्ना को वाशिंगटन से लिखे गये २१ मई १९७० के पत्र के कुछ अंश देना चाहूँगा, जो नम्रता और प्रेम से परिपूर्ण हैं :—

"आपके प्रेम-पूर्ण पत्र के लिए धन्यवाद। यह जान कर ख़ुशी हुई कि डेरा का सब कार्य शान्ति और सुगमता के साथ चल रहा है। और क्यों न हो,

जब मैं सब कार्य हुज़ूर महाराजजी के प्रेमी तथा निष्ठावान सत्संगियों के हाथों में छोड़ आया हूँ। और सबसे बढ़ कर स्वयं हुज़ूर महाराजजी हमेशा अपनी संगत का हित देख रहे हैं। हम तो केवल कठपुतलियों के समान हैं और अपनी-अपनी योग्यतानुसार अपना फ़र्ज़ अदा कर रहे हैं।

"हुज़ूर महाराजजी की दया-मेहर से मेरी यह यात्रा सत्संग की दृष्टि से विलक्षण रही है। जैसा कि जनक के पत्रों से आपको पता लगा होगा, जहाँ भी मैं गया हूँ, बहुत बड़ा समुदाय खिचा चला आया है। यहाँ लोगों में परमार्थ के प्रति बहुत तड़प है तथा अब वे समझ गये हैं कि भौतिक प्रगति और सफलताएँ उन्हें सुख या मन को शान्ति नहीं दे पाई हैं।...वे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करने लगे हैं और अपनी परम्परागत रूढ़ियों और विश्वासों से निकलने का प्रयास कर रहे हैं।

"मेरा स्वास्थ्य काफ़ी अच्छा है; यद्यपि ये लम्बी हवाई यात्राएँ कष्टप्रद हैं, और फिर समय का परिवर्तन कई निद्राहीन रातें देता है। परन्तु मुझे अपना कर्तव्य पूरा कर पाने में खुशी है और लोगों के प्रेम तथा हुज़ूर महाराजजी के सन्देश को ग्रहण करने की भावना देख कर प्रसन्नता होती है। प्रतिदिन एक-सा व्यस्त कार्यक्रम बेशक बहुत थकानेवाला है, परन्तु यह देख कर गहरे सन्तोष और सुख का अनुभव होता है कि हुज़ूर महाराज जी का उद्देश्य व लक्ष्य उनकी दया-मेहर से सिद्ध हो रहा है।......अपने सत्संग सम्बन्धी कार्यों की पूर्ति में मैं सुख और आराम महसूस कर रहा हूँ; और फिर संगत का प्रेम-प्यार अपने आप के बारे में सब कुछ भुला देता है।"

इस पत्र के अन्त में हुज़ूर ने अपनी सहज परिहास-प्रियता के साथ हवाई जहाजों को ज़बरन क्यूबा उड़ा ले जाने की घटनाओं का ज़िक्र करते हुए फ़रमाया, "हवाई जहाज़ों को ज़बरन (हाईजेकिंग करके) क्यूबा उड़ा ले जाने के विषय में भारतीय समाचार-पत्रों में बहुत कुछ पढ़ा था। यद्यपि मैं क्यूबा के आस-पास के द्वीपों में उड़ाने लेता रहा हूं परन्तु इस मुफ्त हवाई यात्रा का सौभाग्य नहीं मिल पाया।"

वाशिंगटन से महाराजजी अपने सेक्रेटरी प्रोफेसर जनक पुरी तथा अन्य कई सत्संगियों के साथ वायुयान द्वारा २२ मई की शाम को ५-३० बजे न्यूयार्क पहुँचे। अमेरिका में अनेक सत्संगी हुज़ूर के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान जाते रहे हैं। कई बार वायुयान में एक साथ ४०-५० व्यक्तियों को शाकाहारी भोजन करते तथा शराब से परहेज़ करते देख कर एयर-लाइनों के अधिकारी आश्चर्य-चकित रह जाते।

महाराजजी न्यूयार्क में स्टेटलर हिल्टन होटल में ठहरे। एयरपोर्ट से होटल पहुँचने के आधे घण्टे बाद ही हुज़ूर ने सत्संग प्रदान किया जिसमें ८०० व्यक्ति उपस्थित थे। हमेशा की तरह सत्संग के बाद प्रश्न पूछे गये और हुज़ूर ने उनके स्पष्ट उत्तर दिये। २३,२४ और २५ को प्रतिदिन दोपहर को ३.०० बजे से ५.३० और कभी-कभी ६ बजे तक सत्संग और प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम रहा।

एक दिन प्रश्नोत्तर के समय एक बीस वर्षीय युवक सत्संगी ने बड़ी श्रद्धा और विनय-पूर्ण स्वर में पूछा, "महाराजजी ! हम सब को अपना-अपना कोई दुःख अवश्य है, जिसका हमें पता है। परन्तु मेरे सतगुरु, क्या आपको भी कोई दुःख है ?"

जब वह युवक बोल रहा था, हुज़ूर बड़े प्रेम और कृपा के साथ उसकी ओर देख रहे थे। हुज़ूर का मुख निराली शान में जगमगा रहा था तथा नेत्रों से करुणा और प्रेम बरस रहा था। फिर हुज़ूर के उत्तर का मधुर स्वर उस वातावरण में गूँज उठा, "मेरे बन्धु ! आपका दुःख ही मेरा दुःख है..." पूरे हॉल में एक निस्तब्ध अश्रुपूर्ण खामोशी छा गई। महाराजजी ने आगे फ़रमाया, "जब मेरे सत्संगी परेशान और दुःखी हैं, तब मैं भी दुःखी हूँ। जब वे खुश हैं, मैं भी खुश हूँ।...अतएव हमेशा खुश रहो।"

हुज़ूर ने २२ मई को न्यूयार्क पहुँचने के कुछ ही समय बाद शाम को ७ बजे सत्संग प्रदान किया तथा उसके बाद लोगों से मिलने, प्रोग्राम के विषय में चर्चा करने आदि में काफ़ी देर हो गई। श्री वीकली ने हुज़ूर से निवेदन किया कि देर हो जाने के कारण हुज़ूर भोजन नहीं कर सके हैं अतएव होटल से बाहर चल कर एक गिलास दूध अथवा काफ़ी ले लें। हुज़ूर ने स्वीकृति दे दी और श्री वीकली तथा प्रोफेसर पुरी के साथ एक छोटे से केफ़े में गये। उस समय रात के ग्यारह बजे थे तथा केफ़े में बहुत कम लोग थे। श्री वीकली ने तनिक हँसते हुए कहा, "महाराजजी ! आखिर हम सत्संगियों से बच कर एकान्त में कुछ समय चैन से बिताने में सफल हो गये हैं। यहाँ कोई सत्संगी नहीं है।" हुज़ूर ने इस पर मुसकरा कर फ़रमाया, "नहीं ! आपका अनुमान गलत है। हमारे पीछे की उस टेबल पर सत्संगी हैं।" हुज़ूर की टेबल के पीछे एक कोने में छः सत्संगी बैठे हुए थे। वे पहली बार न्यूयार्क आये थे। उन्होंने महाराजजी के देह-स्वरूप में दर्शन अभी तक नहीं किये थे तथा महाराजजी ने उन्हें पहले कभी न देखा था। परन्तु सतगुरु हमेशा अपने जीव को पहचान लेता है।

स्टेटलर-हिल्टन होटल में रोज़ सुबह महाराजजी सत्संगियों से मिलते थे। बाहर बैठक में ६०-७० व्यक्ति इकट्ठे हो जाते थे। हुज़ूर अपने कमरे में उनसे अलग-अलग मिलते थे। एक दिन मुलाकातों के समय में होटल का एक कर्मचारी मिस्तरी तथा एक परिचारिका (मेड) बैठक में आये। मिस्तरी के एक हाथ में औज़ारों का थैला और दूसरे में एक फ़ेहरिस्त थी जिसमें लिखा था कि इस कमरे के साथ के बाथ-रूम (स्नानागार) के एक नल में कुछ खराबी है। श्री वीकली ने उन्हें बाहर ठहरने को कहा और हुज़ूर के कमरे में से होते हुए बाथ-रूम में गये। परन्तु वहाँ के सब नल दुरुस्त थे। बाहर आकर उन्होंने मिस्तरी तथा परिचारिका से कहा कि उन्हें गलत सूचना मिली है, इस कमरे के बाथ-रूम के नलों में कोई खराबी नहीं है। यह सुन कर वे दोनों कुछ क्षण चुप रहे। फिर मिस्तरी साहस बटोर कर बोला, "हाँ, यह सच है कि कोई खराबी नहीं है। हमने यह फ़ेहरिस्त खुद ही बनाई है, क्योंकि हम उस सुन्दर नेत्रों वाले व्यक्ति को देखना चाहते हैं।"

उसकी सरल निष्कपट बात ने श्री वीकली के हृदय को छू लिया। उस समय महाराजजी से समय लेने वालों की लम्बी कतार लगी हुई थी। श्री वीकली उन सबको छोड़ कर मिस्तरी और मेड को अन्दर ले गये। हुज़ूर से अर्ज़ की, "महाराजजी! कृपया क्षमा करें। मैं इन्हें आपके पास लाये बगैर न रह सका..." श्री वीकली अपनी बात पूरी न कर पाये कि हुज़ूर अपनी कुर्सी से उठे। हुज़ूर का मुख-मण्डल करुणा और स्नेह-पूर्ण मुसकान में खिल उठा, ज्योतिर्मय नेत्रों से प्रेम और कृपा की किरणें प्रवाहित होने लगीं। मिस्तरी और परिचारिका दोनों मन्त्र-मुग्ध से खड़े थे, उनकी नज़र उस 'सुन्दर नेत्रों वाले व्यक्ति' पर जमी थी, ओठ बन्द थे तथा चेहरे खुशी में चमक रहे थे। फिर हुज़ूर ने उनसे हाथ मिलाये, उनके कन्धों को प्यार से थपथपाया और बिदा किया।

मिस्तरी और परिचारिका हिआटी (वेस्ट इण्डीज़) के रहने वाले थे। दोनों इसी होटल में नौकर थे। मिस्तरी विविध कार्य करता था तथा परिचारिका कमरों में सफ़ाई करती थी। दो-तीन मिनिट की इस भेंट के बाद जब वे बाहर आये तो उनके चेहरे प्रसन्नता से दमक रहे थे, नेत्रों में कृतज्ञता के अश्रु डबडबा रहे थे।

२६ मई की सुबह हुज़ूर ने डीट्राइट के लिये प्रस्थान किया। जिस समय एयरपोर्ट जाने के लिये हुज़ूर अपने कमरे से बाहर आये तो हुज़ूर के दर्शन के लिये आये हुए सत्संगियों ने एक विलक्षण दृश्य देखा। हुज़ूर के कमरे से

लिफ़्ट तक जानेवाले गलियारे (कोरिडोर) के दोनों ओर होटल के नौकरों, मिस्तरियों तथा परिचारिकाओं की कतार लगी थी। वे उस 'सुन्दर नेत्रों वाले व्यक्ति' को अन्तिम बार देखने के लिये लाइन बना कर खड़े थे। हुज़ूर जब बाहर आये तो उन्होंने कतार में खड़े प्रत्येक व्यक्ति के अभिवादन को स्वीकार किया तथा अपनी कृपा, करुणा और प्रेम से परिपूर्ण दृष्टि से उन्हें निहाल किया।

डीट्राइट में हुज़ूर ने चार सत्संग प्रदान किये। यहाँ भी सत्संग आदि का कार्य-क्रम अन्य स्थानों जैसा ही रहा। सत्संगों में लगभग ४०० व्यक्ति उपस्थित हो जाते थे। हुज़ूर ने दो दिन में २३ अभिलाषियों को नाम दिया। इससे पहले न्यूयार्क में महाराजजी ३४ व्यक्तियों को नाम के लिये स्वीकार कर चुके थे, जिन्हें प्रतिनिधि द्वारा नाम दिया गया।

डीट्राइट में एक दिन तीसरे पहर का समय बच्चों को दर्शन देने के लिये रखा गया। इसमें माता की गोद में कुछ महीने के शिशुओं से लेकर दस वर्ष के बालक तक मौजूद थे। महाराजजी को देख कर बच्चों के चेहरे खिल उठे। कुछ चार-पाँच वर्ष के बच्चे अपने स्थान पर बैठे न रह सके और उठ कर हुज़ूर के पास चले आये। एक चार वर्ष के बालक ने अपने दोनों हाथों से हुज़ूर की अँगुलियाँ पकड़ लीं और हुज़ूर की ओर निहारने लगा। हुज़ूर ने प्यार से उसे थपथपाया और पूछा, "तुम्हारे कोई दोस्त हैं ?"

"नहीं," बालक ने धीमे स्वर में उत्तर दिया, "सिर्फ एक है।"

"और वह कौन है ?" हुज़ूर ने पूछा।

वह नन्हा बालक अभी भी हुज़ूर का हाथ पकड़े हुए था, उसके निश्छल नेत्र उनके मुख पर स्थिर थे। हुज़ूर के प्रश्न के उत्तर में उसने अपना दाहिना हाथ उठाया और अपनी तर्जनी से हुज़ूर के मुख की ओर संकेत करते हुए बोला, "तुम !"

इस छोटे-से वार्तालाप को सुन कर सबके नयन भर आये। वास्तव में इस असार संसार में केवल सतगुरु ही हमारा सच्चा मित्र है, एक-मात्र साथी है।

अमेरिका में हुज़ूर द्वारा प्रदान किये गये सत्संगों तथा प्रश्नोत्तरों का संग्रह एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। अतएव इस विवरण में हुज़ूर से पूछे गये प्रश्नों तथा उनके उत्तर का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रश्नोत्तरों के कार्यक्रम से सम्बन्धित केवल एक छोटा-सा वृत्तान्त यहाँ दिया जाता है।

अमेरिका के पूर्वीय प्रदेश के एक शहर में महाराजजी प्रश्नों के उत्तर दे रहे थे। हाल में चार-पाँच सौ सत्संगी और जिज्ञासु उपस्थित थे। एक नवयुवक जिज्ञासु ने पूछा, "महाराजजी ! मेरे विचार से विवाह की कोई आवश्यकता नहीं है। विवाह तो केवल एक औपचारिकता है । विवाह का प्रमाण-पत्र (सर्टिफ़िकेट) कागज़ का एक टुकड़ा ही तो है। अगर स्त्री और पुरुष में सचमुच प्रेम है तो वे विवाह करें या ऐसे ही साथ रहें, क्या फ़रक पड़ता है ?"

महाराजजी ने अपने स्वाभाविक मिठासपूर्ण स्वर में उत्तर दिया, "सन्त-मत का ध्येय सामाजिक क्रान्ति नहीं है, आत्म-साक्षात्कार तथा परमात्मा की प्राप्ति है। सन्तों के इस मार्ग पर चलने के लिये हमें एक नेक व्यक्ति तथा अच्छा नागरिक बनना चाहिये। हमें अपने देश के कानून को मानना चाहिये, अपने कर्तव्य और दायित्व का पालन करना चाहिये। अगर आपस में सचमुच प्यार है, तो विवाह करने में आपत्ति क्यों होनी चाहिये ? यह याद रखें कि कई बार जिसे आप 'प्यार' कहते हैं वह वास्तव में वासना है । कई बार ये बातें हम अपने कर्तव्यों से बचने के लिये कहते हैं; इन बातों की ओट में अपने उत्तरदायित्वों से भागने की कोशिश करते हैं। आज के इस नये ज़माने में हम नहीं जानते कि प्रेम और वासना में क्या अन्तर है। इसलिये आज वैवाहिक जीवन में इतनी समस्याएँ हैं, इतने विग्रह और तलाक हैं।

"यदि आज का समाज उन्मुक्त या स्वच्छन्द जीवन के लिये इजाज़त देता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा जीवन उचित है। सन्त-मत अपने उत्तरदायित्वों को समझते और उन्हें निभाते हुए रूहानी अभ्यास करने का मार्ग है, कर्तव्यों से बचने या भागने का नहीं।

ग्रहस्थ-जीवन में हम अपने कर्मों का हिसाब अधिक सुगमता-पूर्वक चुका सकते हैं। सन्तों ने इसलिये हमेशा नेक और नियमपूर्ण जीवन पर ज़ोर दिया है।"

उसी हाल के दूसरे हिस्से में उस नवयुवक की प्रेमिका भी बैठी थी। उसने बाद में बताया कि जब सतगुरु इस प्रश्न का उत्तर दे रहे थे तो उसे ऐसा लग रहा था कि उनकी दृष्टि लगातार उसी पर स्थिर है। इसके दो-तीन दिन बाद वे दोनों हुज़ूर के स्थानीय प्रतिनिधि के पास आये और बोले कि हमने नाम-दान के लिये निवेदन करने का निश्चय कर लिया है । हम अब अलग-अलग रह रहे हैं। हमारे विधिवत विवाह की तारीख तय हो चुकी है। अब अपने प्यारे सतगुरु से हमारी यही प्रार्थना है कि हमें नाम

बख्शें और एक अच्छे सत्संगी के लायक नेक जीवन बिताने की ताकत दें। वे अपनी बात कह रहे थे और उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। कुछ दिनों बाद उनका विवाह हो गया और उसके बाद उन्हें नाम-दान भी मिल गया।

डीट्राइट से हुज़ूर ८०० मील की हवाई यात्रा के बाद शिकागो आये। शिकागो में हुज़ूर ने चार सत्संग प्रदान किये तथा अनेक व्यक्तियों को नाम-दान बख्शा। सत्संगों में उपस्थिति ७००-८०० व्यक्तियों की थी। शिकागो से महाराजजी मिनिआपोलिस पधारे जहाँ दो सत्संग प्रदान किये। शिकागो तथा मिनिआपोलिस में प्रश्नोत्तरों तथा मुलाकातों का पूर्ववत कार्यक्रम रहा। मिनिआपोलिस से ८ जून को हुज़ूर ने अपनी कनाडा यात्रा पर प्रस्थान किया।

कनाडा में सत्संगी दूर-दूर के स्थानों में बसे हुए हैं। यहाँ कई भारतीय सत्संगी भी हैं। सन्त किस प्रकार अपनी संगत को अपने चरणों में लाते हैं, इसकी एक घटना कनाडा में हुज़ूर के प्रतिनिधि डाक्टर जितेन्द्र खन्ना ने बताई है। हुज़ूर के आने से दो सप्ताह पहले की बात है। कुछ दिनों से डाक्टर जितेन्द्र की धर्मपत्नी ध्रुव अपने निवास-स्थान के सामने से एक सिख लड़के को आते-जाते देख रहीं थीं। उन्होंने सोचा कि यह लड़का कहीं नज़दीक ही रहता होगा, अतएव इसकी माता से पहचान करके अपने देश से इतनी दूर एक भारतीय से मिलने की खुशी क्यों न प्राप्त की जाये। इस विचार से श्रीमती ध्रुव खन्ना ने एक दिन उस लड़के को बुलाया। वह बालक जब घर के अन्दर आया तो उसकी दृष्टि बैठक की दीवार पर लगे हुज़ूर के फोटो पर गई। उसके मुख पर विस्मय और आनन्द छा गया। बोला, "यह तो हमारे महाराजजी की फोटो है! मेरी माँ सत्संगी है।" यह सुन कर श्रीमती ध्रुव को बहुत खुशी हुई। उन्होंने बालक से कहा कि अपनी माँ से कहो कि महाराजजी दो हफ्ते बाद वेनकुअर (कनाडा) आ रहे हैं। उसके पिता उस समय कनाडा के किसी दूर के स्थान पर थे। उन्हें भी खबर दी गई और वह सत्संगी परिवार तथा उनके साथ कुछ और लोग समय पर हुज़ूर के सत्संग और दर्शन के लिये आ सके।

वेनकुअर में महाराजजी ने तीन सत्संग दिये तथा एक दिन के लिये विक्टोरिया पधारे जहाँ एक सत्संग प्रदान करके उसी रात वापस वेनकुअर आ गये। सत्संगों में ३५० व्यक्ति उपस्थित होते थे। महाराजजी ने ४० व्यक्तियों को नाम प्रदान किया तथा करीब-करीब सभी सत्संगियों ने अकेले अथवा छोटे-छोटे समूह में हुज़ूर से समय लिया।

हुज़ूर १४ जून को कनाडा से वापस अमेरिका के लिये रवाना हुए तथा

उसी दिन सेनफ़ान्सिस्को पहुँचे। यहाँ से महाराजजी की सत्संग-यात्रा का सबसे अधिक व्यस्त कार्यक्रम शुरू हो गया। अमेरिका के इस प्रदेश में सबसे अधिक सत्संगी हैं। सेनफ़ान्सिस्को के एयर-पोर्ट से हुज़ूर सीधे उस स्थान पर गये जहाँ करीब ९०० सत्संगी और जिज्ञासु दर्शन के लिये बैठे थे। हुज़ूर ने यहाँ चार सत्संग प्रदान किये जिनमें उपस्थिति ८०० से १००० तक थी। प्रतिदिन सुबह लोगों को मुलाकातें दी गईं और हुज़ूर कई व्यक्तियों से छोटे-छोटे समूह में मिले।

सेनफ़ान्सिस्को से महाराजजी लास एन्जल्स आये। यहाँ सत्संगियों की संख्या सबसे अधिक थी। सत्संगों में उपस्थिति १५०० से अधिक थी और जब महाराजजी सत्संग के बाद हॉल से बाहर आते तो अनेक सत्संगी गलियारे में लाइन लगा कर दर्शन के लिये खड़े रहते। यहाँ हुज़ूर ने पाँच सत्संग प्रदान किये तथा बहुत बड़ी संख्या में निजी मुलाकातें दीं। सुबह मुलाकातों के बाद प्रतिदिन करीब १५० सत्संगी व जिज्ञासु हुज़ूर के पास आते और हुज़ूर उनके बीच में घूम कर सबसे मिलते और बात करते। हर रोज़ १५० व्यक्तियों का नया ग्रुप आता। लास एंजल्स में हुज़ूर ने १७८ व्यक्तियों को नाम प्रदान किया। अमेरिका में एक ही दिन नाम-दान प्राप्त करने वालों की यह अब तक सबसे बड़ी संख्या थी।

इस पूरी यात्रा में हुज़ूर का प्रयास था कि हरएक स्थान पर अधिक से अधिक सत्संगियों से व्यक्तिगत रूप से मिल सकें तथा सभी नये जिज्ञासुओं को अलग समय दे सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति में हुज़ूर का प्रोग्राम सभी जगह काफ़ी श्रमपूर्ण रहा और कई बार आधी रात तक जिज्ञासुओं से वार्तालाप होता रहता था। हुज़ूर की इस अमेरिका-यात्रा की गति इतनी तेज़ थी कि किसी मनुष्य के लिये ऐसे प्रोग्राम को इतने समय तक निभाना असम्भव था। हुज़ूर ने अपने २८ जून के पत्र में स्वीकार किया, "मैं नहीं समझता कि मैंने किसी अन्य सत्संग के दौरे पर इतना कठिन परिश्रम किया है। परन्तु हुज़ूर महाराजजी की दया-मेहर से मेरा स्वास्थ्य ठीक है।"

लास एंजल्स के कार्यक्रम के साथ हुज़ूर का अमेरिका का प्रोग्राम समाप्त हुआ और २८ जून को हुज़ूर ने समुद्री जहाज़ द्वारा होनोलुलू (हवाई) के लिये प्रस्थान किया। इतने श्रम-पूर्ण कार्य-क्रम के बाद हुज़ूर को चार-पाँच दिन विश्राम मिल सके इस विचार से समुद्री यात्रा का प्रोग्राम बनाया गया था।

हुज़ूर का जहाज़ ३ जुलाई की सुबह ११ बजे होनोलुलू पहुँचा। बन्दरगाह

पर करीब ५० व्यक्ति दर्शन के लिये आये हुए थे। अपने निवास-स्थान पर पहुँचने पर हुज़ूर सब सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं से एक साथ मिले तथा उनसे सन्त-मत के विषय में चर्चा की। उसके बाद हुज़ूर ने कुछ जिज्ञासुओं को अलग-अलग समय दिया। ४ जुलाई को भी यही प्रोग्राम रहा। ५ तारीख को हुज़ूर ने कुछ अभिलाषियों को नाम प्रदान किया।

५ जुलाई को सुबह ११-३० बजे वायुयान द्वारा चलकर सात घण्टे की उड़ान के बाद टोकियो (जापान) पहुँचे। परन्तु जब हुज़ूर टोकियो पहुँचे उस समय वहाँ तारीख ६ जुलाई थी तथा दिन के ३-३० बजे थे। जापान में इस बार हुज़ूर का सत्संग का प्रोग्राम नहीं था, परन्तु हुज़ूर सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं से रोज़ सुबह और शाम को मिलते रहे।

जापान से हुज़ूर ११ जुलाई को दिन के दो बजे हांगकांग आये। यहाँ आपने दो सत्संग प्रदान किये तथा सत्संगियों और जिज्ञासुओं को मुलाकातें दीं। हांगकांग में इस बार हुज़ूर का नाम-दान का प्रोग्राम नहीं था, परन्तु नाम के अभिलाषियों की विनती स्वीकार करके नाम-दान भी दिया। हांग-कांग से हुज़ूर ने १४ जुलाई की शाम को ४.३० बजे बम्बई के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में यान बैंकाक में ४५ मिनिट के लिये ठहरा। हुज़ूर ने यहाँ एयरपोर्ट पर आई हुई संगत को दर्शन दिये। आठ-नौ घण्टे की उड़ान के बाद महाराजजी रात को ग्यारह बजे के करीब बम्बई पहुँचे।

हुज़ूर ने दूसरे दिन १५ जुलाई को बम्बई में सुबह संगत को दर्शन दिये तथा करीब चालीस मिनिट का सत्संग बख्शा। इसी प्रकार हुज़ूर ने १६ जुलाई को देहली में संगत को दर्शन दिये तथा १७ तारीख को सुबह डेरे पधारे। डेरे आते ही इतने दिनों के रुके हुए कार्यों का भार सामने था और फिर जुलाई भण्डारे का व्यस्त कार्य शुरू हो गया।

(७) सुदूर पूर्व-१९७१

हुज़ूर अपनी पिछली सत्संग-यात्रा में जब हांगकांग, बैंकाक, आदि स्थानों में कहीं दो दिन तथा कहीं कुछ घण्टे ठहरते हुए वापस भारत आये तो सुदूर पूर्व की संगत ने हुज़ूर से फिर पधार कर उन्हें अधिक समय देने की प्रार्थना की। अमेरिका की यात्रा के समय जुलाई भण्डारे का वक्त निकट आ रहा था, अतएव महाराजजी संगत के अनुरोध को उस समय स्वीकार न कर सके। परन्तु संगत के प्रेम, आग्रह और अश्रु-पूरित निवेदनों से हुज़ूर द्रवित हो गये तथा अगले वर्ष आने का वचन प्रदान किया।

१५ मई, १९७१ को हुज़ूर देहली से सुबह ७-३० बजे वायुयान द्वारा

रवाना होकर शाम को ५-१५ बजे हांगकांग पहुँचे। रास्ते में यान बेंकाक में पचास मिनिट के लिये ठहरा। हुज़ूर ने एयरपोर्ट पर आई हुई संगत को दर्शन दिये। इस यात्रा में बम्बई सत्संग के सेक्रेटरी श्री कृष्ण बबानी हुज़ूर के साथ थे।

हांगकांग में महाराजजी ने तीन सत्संग प्रदान किये तथा प्रतिदिन जिज्ञासुओं व सत्संगियों को समय दिया। ३५ व्यक्तियों ने नाम-दान के लिये प्रार्थना की। हुज़ूर ने फ़रमाया कि जापान से लौटते समय नाम का प्रोग्राम रखा जायेगा।

हांगकांग से २० मई को प्रस्थान करके हुज़ूर उसी दिन शाम को चार बजे मनीला (फिलिपाइन्स) पहुँचे। अनेक भारतीय तथा फिलिपाइन निवासी एयरपोर्ट पर दर्शन के लिये उपस्थित थे। लगभग पौन घण्टे के आराम के बाद मनीला के हिन्दू मन्दिर में महाराजजी ने पहला सत्संग प्रदान किया जिसमें लगभग ५०० व्यक्ति मौजूद थे। मन्दिर में स्थान न रहा और लोगों को गलियारों, दालान तथा बाहर सड़क पर भी बैठना पड़ा। अतएव दूसरे दिन सत्संग बे-व्यू होटल के विशाल हाल में रखा गया, जिसमें उपस्थिति ६०० से कुछ अधिक थी। इन सत्संगों में अधिकांश जिज्ञासु थे। हुज़ूर ने मनीला में चार प्रभावशाली सत्संग प्रदान किये तथा अनेक जिज्ञासुओं से भेंट की। इनमें कई फिलिपाइन निवासी थे। दर्शन-शास्त्र के एक प्रोफ़ेसर तथा कुछ विद्यार्थी भी महाराजजी से मिले। हुज़ूर ने उनके खोजपूर्ण प्रश्नों के उत्तर दिये तथा सन्त-मत के सिद्धान्तों पर कुछ शब्द कहे। उनमें से कुछ ने उसी समय नाम-दान के लिये प्रार्थना की और बताया कि उन्होंने हुज़ूर के मनीला आने से पहले ही शाकाहारी भोजन अपना लिया है। २५ मई को एयरपोर्ट जाने से पहले हुज़ूर ने ३४ अभिलाषियों को नाम बख़्शा।

मनीला से दोपहर को १.२० के यान द्वारा चल कर हुज़ूर उसी दिन शाम को ७.३० बजे टोकियो (जापान) पहुँचे। जापान में हुज़ूर ने टोकियो, ओसाका और कोबे में सत्संग तथा जिज्ञासुओं को समय दिया। संगत कम होने की वजह से टोकियो में सत्संग के स्थान पर हुज़ूर ने जिज्ञासुओं से भेंट की तथा उनके प्रश्नों का समाधान किया। कोबे में हुज़ूर ने ३० और ३१ मई को सत्संग प्रदान किये तथा १ जून को नाम-दान दिया।

जापान से ताईपेह होते हुए हुज़ूर ३ जून को तीसरे पहर हांगकांग पहुँचे, संगत के आग्रह पर हुज़ूर ने यहाँ दो सत्संग प्रदान किये। ५ जून की शाम को ३३ व्यक्तियों को नाम दिया तथा सत्संगियों को समय दिया।

६ जून को सुबह हुज़ूर ने बैंकाक के लिये प्रस्थान किया और उसी दिन सुबह ९.३० बजे के करीब बैंकाक पहुँचे।

हुज़ूर के दर्शन के लिये २०० व्यक्ति एयरपोर्ट पर आये हुए थे। तीसरे पहर महाराजजी ने बेंकाक में अपना प्रथम सत्संग प्रदान किया जिसमें करीब ७०० व्यक्ति उपस्थित थे। यहाँ संगत का अपना सत्संग-हाल है, जिसमें हुज़ूर ने ७ जून को सुबह दर्शन प्रदान किये। दर्शन के बाद कुछ व्यक्तियों को अलग-अलग समय दिया। भोजन के बाद कुछ देर आराम करने के उपरांत ३.३० बजे से ५.१५ तक फिर लोगों को समय दिया तथा ५.४५ से ७.४५ तक सत्संग प्रदान किया। यहाँ संगत ने लंगर का आयोजन किया था। हुज़ूर ने सत्संग के बाद लंगर में जाकर भोजन पर दृष्टि डाली। अपने निवास-स्थान पहुँचने के कुछ समय बाद हुज़ूर ने दो-तीन नये जिज्ञासुओं को समय दिया। उनके प्रश्नों का उत्तर देने में सवा घण्टा लग गया तथा रात्रि के दस बज गये।

८ जून को भी हुज़ूर का यही व्यस्त कार्य-क्रम रहा। सुबह दर्शन, दर्शन के उपरान्त मुलाकातें दीं तथा शाम को ५.३० बजे सत्संग प्रदान किया। आज सत्संग में उपस्थिति १५०० हो गई थी। हुज़ूर ने पूरे दो घण्टे सत्संग प्रदान किया। सत्संग के बाद लंगर में होते हुए जब हुज़ूर अपने निवास-स्थान पर पहुँचे तो कुछ व्यक्ति मिलने के लिये बैठे थे। हुज़ूर ने उनसे वार्तालाप किया। विभिन्न विषयों पर प्रश्न पूछे गये। एक सज्जन ने पूछा, "महाराजजी! सदियों से हम परमात्मा की तलाश उसी पुराने तरीके से कर रहे हैं। विज्ञान तरक्की करके कहाँ से कहाँ पहुँच गया है। उसकी मदद से मनुष्य चन्द्रमा की सैर कर आया है। लेकिन क्या वजह है कि मालिक की प्राप्ति का तरीका वही चला आ रहा है? क्या इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता या कोई ऐसी रियायत नहीं हो सकती कि इन्सान बगैर मांस और शराब को छोड़े मालिक को प्राप्त करले?"

इस प्रश्न को सुन कर हुज़ूर तनिक मुस्कराये और बोले, "भाई साहिब, बेशक सब-कुछ बदल गया है। मनुष्य की बुद्धि, तर्क-शक्ति तथा विज्ञान ने अपार प्रगति की है। परन्तु यह न भूलें कि इन सब परिवर्तनों के बावजूद जन्म और मृत्यु एक निश्चित सत्य है। इस परिवर्तनशील जगत में कर्मों का कानून अटल है, वह नहीं बदल सकता। खुदा, वाहिगुरु, परमात्मा वही है, वही था और वही रहेगा। वह इन सब परिवर्तनों से परे है, अतएव उसकी प्राप्ति का मार्ग भी बदल नहीं सकता। परमात्मा के दर पर किसी प्रकार

की रिश्वत नहीं चल सकती; उसकी प्राप्ति के मार्ग पर चलने वालों को अपनी रहनी में कोई छूट या रियायत नहीं मिलती, क्योंकि कर्मों का नियम सबके लिये समान है।" फिर हुज़ूर ने तनिक हँसते हुए फ़रमाया, "लेकिन अगर आप उसको पुराने की जगह किसी नये खुदा में बदल दें तो उससे मिलने की राह को भी बदल सकेंगे।"

९ जून को सुबह दर्शन तथा दिन को ३.३० बजे हुज़ूर ने नाम प्रदान किया। शाम को कुछ अमेरिकन जिज्ञासु, भारतीय राजदूत श्री बी. के. बेनर्जी, बैंकाक में इज़राइल के राजदूत तथा उनकी पत्नी, एक स्थानीय पादरी की पत्नी तथा कुछ अन्य व्यक्ति हुज़ूर से मिलने आये। डेढ़ घण्टे तक हुज़ूर अध्यात्म सम्बन्धी प्रश्नों के बड़े सरल किन्तु सारगर्भित उत्तर देते रहे। ईसा मसीह के सन्देश, उपनिषदों के मार्ग, कर्म-सिद्धान्त, शब्द-मार्ग, शाकाहारी भोजन आदि विविध विषयों पर प्रश्न पूछे गये। हुज़ूर ने अनेक प्रश्नों के उत्तर बाइबिल का हवाला देते हुए दिये। सभी लोग हुज़ूर के स्पष्ट उत्तरों से बहुत प्रभावित हुए तथा उनमें से कुछ ने सन्त-मत पर पुस्तकें माँगी।

१० जून की सुबह संगत को दर्शन प्रदान करने के बाद महाराजजी बैंकाक से सिंगापुर के लिये मोटर द्वारा रवाना हुए। २७०० किलोमीटर (लगभग १७०० मील) लम्बे इस सफ़र में पाँच दिन लगे। हुज़ूर ने रास्ते में आने वाले ग्रामों और शहरों में सत्संगियों को दर्शन बख़्शे। १५ जून को दोपहर के बाद सिंगापुर पहुँचे। कुछ देर आराम करने के बाद महाराजजी सिंगापुर के कुछ प्रमुख सत्संगियों से मिले तथा अगले चार-पाँच दिनों के कार्यक्रम के विषय में चर्चा की।

सिंगापुर में हुज़ूर ने चार सत्संग प्रदान किये तथा रोज़ अनेक जिज्ञासुओं को अलग-अलग समय दिया। सिंगापुर के चीनी नागरिकों के लिये हुज़ूर ने एक सत्संग अंग्रेज़ी में किया तथा उनके प्रश्नों के उत्तर दिये। उसके बाद हुज़ूर उन सबसे अलग-अलग मिले। शाम को छः बजे तक इसमें व्यस्त रहने के बाद हुज़ूर ने शाम को ७-३० बजे सत्संग प्रदान किया जिसमें करीब १००० व्यक्ति मौजूद थे। अगले दो दिन भी लगभग यही प्रोग्राम रहा।

२० जून को हुज़ूर ने सुबह २३ अभिलाषियों को पंजाबी में नाम-दान दिया तथा शाम को आठ व्यक्तियों को अंग्रेजी में नाम बख़्शा। इन आठ में से छः चीन-निवासी थे जो सिंगापुर में बस गये थे। हुज़ूर की इस यात्रा के फल-स्वरूप सिंगापुर में सन्त-मत के प्रति रुचि बढ़ने लगी है तथा आज अनेक व्यक्ति नाम-दान के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। यहाँ अधिकांश सत्संगी भार-

तीय हैं। परन्तु यहाँ के रहने वाले चीनी लोगों में भी सन्त-मत के प्रति जिज्ञासा बढ़ रही है तथा उनमें भी कुछ व्यक्ति नाम-दान की याचना कर रहे हैं।

२१ जून की सुबह संगत को दर्शन देने के उपरान्त हुज़ूर ने वायुयान द्वारा बाली द्वीप के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में यान चालीस मिनिट के लिये जकार्ता में ठहरा जहाँ संगत एयर-पोर्ट पर दर्शन के लिये आई हुई थी। प्रबन्धक हुज़ूर को प्रमुख अतिथियों के कमरे (वी. आई. पी. रूम) में ले गये, परन्तु वहाँ सब सत्संगी नहीं आ सकते थे। अतएव हुज़ूर उठ कर बाहर आये और आधा घण्टा सभी संगत को दर्शन देते रहे।

२५ जून की शाम को ५-३० बजे हुज़ूर सुरबाया (इण्डोनेशिया) पहुँचे। अपने निवास-स्थान पर पहुँचने के कुछ ही समय बाद सत्संग प्रदान किया जिसमें ३०० व्यक्ति मौजूद थे। सुरबाया में महाराजजी का निवास बहुत कम समय के लिये था। अतएव २६ जून का पूरा दिन बहुत व्यस्त रहा। सुबह ८ बजे से ८-३० तक दर्शन देने के बाद हुज़ूर ने ३७ अभिलाषियों को नाम बख़्शा। करीब १२-३० बजे नाम-दान से निवृत्त होकर भोजन किया तथा उसके कुछ समय बाद हुज़ूर सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं से मिलते रहे। शाम को ७-३० बजे से ९-३० तक सत्संग प्रदान किया। रात को दस बजे भोजन के लिये समय मिल सका। भोजन के बाद स्थानीय सत्संग के व्यवस्थापकों से कुछ वार्तालाप किया और इस प्रकार रात्रि के ग्यारह बज गये। २७ जून की सुबह ८ बजे हुज़ूर सत्संग में पधारे तथा हुज़ूर के प्रवासकालीन सेक्रेटरी श्री बबानी ने सत्संग किया। सत्संग के बाद हुज़ूर ने कार द्वारा जकार्ता के लिये प्रस्थान किया।

जकार्ता सुरबाया से ९०० किलोमीटर (लगभग ५५० मील) दूर है। हुज़ूर मार्ग में दो रात्रि ठहरे तथा रास्ते में संगत को दर्शन देते हुए २९ जून की शाम को जकार्ता पहुँचे। ३० जून की सुबह ७-३० बजे महाराजजी ने संगत को दर्शन दिये तथा उसके कुछ समय बाद २५ जिज्ञासुओं को अलग-अलग समय दिया। शाम को ५ बजे हुज़ूर ने फिर कुछ लोगों को समय दिया। शाम को ७ बजे सत्संग हुआ जिसमें करीब ६०० व्यक्ति एक घण्टा चालीस मिनिट तक हुज़ूर के अमृत-भरे वचनों को मन्त्र-मुग्ध से सुनते रहे।

१ जुलाई को भी सुबह दर्शन, फिर दिन के ११-३० से १-३० बजे तक और शाम को ५ बजे से ६ बजे तक मुलाकातें और ७ से ९ बजे तक सत्संग का प्रोग्राम रहा। आज हुज़ूर ने करीब पचास सत्संगियों व जिज्ञासुओं को समय दिया।

२ जुलाई जकार्ता में महाराजजी का सबसे व्यस्त दिवस था। सुबह ७-३० से ९-३० बजे तक सत्संग प्रदान करने के बाद हुज़ूर १० बजे से १ बजे तक मुलाकातें तथा कुछ आवश्यक पत्रों के उत्तर देते रहे। शाम को चार से सात बजे तक ५६ भाग्यशाली जीवों को नाम-दान दिया। उसके बाद आठ बजे संगत को तथा नौ बजे सेवादारों को प्रसाद दिया। प्रसाद देते समय हुज़ूर ने सेवादारों से दो शब्द कहे तथा उन्हें आपस में प्रेम बनाये रखने, प्रेम-सहित सेवा तथा अभ्यास करने और अच्छे सत्संगी का जीवन बिताने की प्रेरणा दी।

३ जुलाई को सुबह हुज़ूर संगत को दर्शन देकर सात बजे के यान से सिंगापुर के लिये रवाना हुए। हुज़ूर सिंगापुर में केवल एक रात के लिये ठहरे तथा ४ जुलाई को कोलम्बो (श्री लंका) के लिये रवाना होने से पहले संगत को दर्शन प्रदान किये।

हुज़ूर का वायुयान जब कोलम्बो पहुँचा उस समय रात के दस बज चुके थे। उन दिनों कुछ राजनैतिक अशान्ति को दबाने के लिये लंका की सरकार ने देश में बहुत कठोर सैनिक निगरानी की हुई थी तथा बिना इजाज़त व बग़ैर सख्त तलाशी के रात्रि को शहर में कोई गाड़ी नहीं जा सकती थी। यद्यपि प्रबन्धकों ने इजाज़त प्राप्त की हुई थी, फिर भी वे मार्ग की चार-पाँच सैनिक चौकियों से होते हुए महाराजजी को रात्रि के समय नहीं ले जाना चाहते थे, क्योंकि इन चौकियों पर सैनिकों के रूखे व्यवहार के अतिरिक्त रात्रि को आने वाले व्यक्तियों की तलाशी भी ली जाती थी। व्यवस्थापकों को डर था कि कहीं संगत के इस महान अतिथि के साथ सैनिक कोई अभद्रतापूर्ण व्यवहार न करें। अतएव स्थानीय सेक्रेटरी ने हुज़ूर से निवेदन किया कि रात्रि के समय सैनिक चौकियों पर परेशानी होगी, सो इस समय शहर में जाने के बदले आज रात एयरपोर्ट के विश्राम भवन में ठहरें तो बेहतर होगा। परन्तु हुज़ूर ने फ़रमाया कि यहाँ ठहरने के बजाय हुज़ूर अपने निवास के स्थान पर जाना पसन्द करेंगे। इस पर सेक्रेटरी ने विनती की कि "महाराजजी! इन सैनिकों को बड़े विस्तृत अधिकार हैं। रात्रि को आनेवालों पर भरी बन्दूकें ताने रखते हैं। ज़रा सी उत्तेजना पर गोली मार देते हैं। हमने हुज़ूर तथा यहाँ उपस्थित सभी सत्संगियों के लिये एयरपोर्ट में कमरे रिज़र्व करवा रखे हैं।" महाराजजी ने मुसकराकर फ़रमाया, "कोई बात नहीं। रास्ते में जो होगा, देखा जायेगा।"

अतएव रात्रि के ग्यारह बजे चार-पाँच मोटरों से हुज़ूर तथा सत्संगी

शहर के लिये चल पड़े। रास्ते में पहली सैनिक चौकी पर मोटरें रोकी गईं। इतनी मोटरों का काफ़िला देख कर सैनिक बन्दूकें तान कर खड़े हो गये, उनका अफसर खुद आगे आया और उसने पूछा कि रात को इस वक्त इतनी मोटरें कहाँ जा रही हैं ? जब उसे बताया गया कि एक महान सन्त कोलम्बो आये हैं और कार में बिराजमान हैं, तो वह इस बात की जाँच करने के लिए स्वयं मोटरों में देखने लगा। महाराजजी को देखते ही उसका रुख नरम पड़ गया, बन्दूक नीची हो गई और उसकी दृष्टि महाराजजी के मुख पर स्थिर हो गई। कुछ देर हुज़ूर की ओर निहारता रहा। फिर श्रद्धापूर्वक सर नमाया और बोला कि आप ज़रा देर ठहरें। मैं आगे की सभी मिलिट्री चौकियों पर फोन कर देता हूँ कि वे आपकी मोटरों को न रोकें। फोन कर के वह फिर आया और हाथ जोड़ कर अभिवादन किया। एक-एक करके सभी सैनिक आगे आये और उन्होंने हुज़ूर के दर्शन किये। इसके बाद हुज़ूर और संगत बग़ैर किसी चौकी पर रुके आराम से शहर पहुँच गये।

कोलम्बो में महाराजजी ने तीन सत्संग प्रदान किये तथा अनेक जिज्ञासुओं को समय दिया। १० जुलाई को हुज़ूर दोपहर के करीब बम्बई पधारे। बम्बई में हुज़ूर ने शाम को संगत को दर्शन दिये। ११ जुलाई की सुबह महाराजजी ने देहली में संगत को दर्शन प्रदान किये तथा वहाँ से दो-तीन दिन के लिये सिकन्दरपुर होते हुए हुज़ूर वापस डेरे आये। हमेशा की तरह कार्य का भार सामने था और फिर २५ तारीख़ को जुलाई का भण्डारा था। डेरे आते ही हुज़ूर कार्य में व्यस्त हो गये।

हुज़ूर महाराजजी की इन सत्संग-यात्राओं में प्रायः सभी स्थानों पर युवा-वर्ग में सन्त-मत के प्रति काफ़ी रुचि जाग्रत हुई है। परम्परा, परिपाटी, रूढ़िवाद आदि से ऊब कर इन देशों में नई पीढ़ी सुख व शान्ति की खोज में मादक द्रव्यों की ओर बही जा रही है। हुज़ूर के सत्संगों से प्रभावित हो कर अनेक नौजवान नाम प्राप्त कर चुके हैं तथा कई सन्त-मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलने के इच्छुक हैं। इन युवा व्यक्तियों में कुछ हिप्पी भी हैं जो सन्त-मत में आ चुके हैं तथा सतगुरु दीन-दयाल की कृपा और प्रेरणा से अपने व्यसनों से छुटकारा पाकर एक नया जीवन शुरू करने में समर्थ हुए हैं।

कुछ वर्षों पहले ऐसे ही दो हिप्पी युवक और युवती डेरे में आ पहुँचे। महाराजजी का सत्संग सुना। अपने पिछले जीवन से विरक्त हुए, पश्चात्ताप की भावना जाग उठी और मादक द्रव्यों को, जिनके बिना एक दिन भी न रह सकते थे, त्याग दिया। कुछ दिन बाद नाम के लिये प्रार्थना करने लगे।

हुज़ूर ने दया की, नाम बख्श दिया और वे बड़े प्यार के साथ अभ्यास में लग गये। धीरे-धीरे उनकी काया ही पलट गई। जब तीन महीने बाद अप्रैल में डेरा में गेस्ट-हाउस बन्द करने का समय आया तो वे हुज़ूर के पास आये और बतलाया कि उन दोनों पर मादक द्रव्यों के क्रय और विक्रय के अपराध में अमेरिका में मुकदमा चल रहा था। दोनों के अपने-अपने रिश्तेदारों ने उन्हें ज़मानत पर छुड़ा लिया। परन्तु दोनों ही कोर्ट की तारीख से पहले अपने देश से चुपचाप भाग निकले। कई जगह भटकते हुए ब्यास तक आ पहुँचे। ब्यास आने से पहले दोनों बगैर विवाह किये साथ रहते थे। किन्तु यहाँ आने के बाद से अलग-अलग रह रहे हैं। अपना वृत्तान्त सुना कर उन्होंने कहा कि अब उन्हें समझ में नहीं आता कि क्या करें और कहाँ जायें।

हुज़ूर ने पूरी बात सुन कर उन्हें सलाह दी कि एक तो वे आपस में विवाह कर लें, क्योंकि भजन-सुमिरन के लिये नियमित गृहस्थ-जीवन अधिक अनुकूल है। दूसरे, महाराजजी ने सुझाव दिया कि उन्हें अमेरिकन राजदूत के पास जा कर आत्म-समर्पण करना चाहिये तथा अपने देश के विधान और कानून के अनुसार यदि सज़ा हो तो उसे अब मालिक की मौज या अपने प्रारब्ध का अंश समझ कर भुगतने की कोशिश करनी चाहिये।

उन्होंने सतगुरु की सलाह को शिरोधार्य किया। जिस जेल की सज़ा के डर से भागे-भागे फिर रहे थे, उसे सहर्ष स्वीकार करने को तैयार हो गये। सतगुरु द्वारा प्रदत्त बल ने उन्हें निर्भय बना दिया था। हुज़ूर से बिदा लेकर दोनों ने देहली में अमेरिकन राजदूत के सामने आत्म-समर्पण किया। राजदूत तथा अन्य अधिकारी इनके परिवर्तित जीवन से बहुत प्रभावित हुए। दूतावास में उनका विवाह हुआ तथा उसके बाद उन्हें अमेरिका भेज दिया गया। वहाँ उन्होंने न्यायालय में अपने अपराध को मंज़ूर किया तथा जेल की सज़ा को सतगुरु का भाणा मान कर स्वीकार किया। दोनों ही आज अमेरिका में बड़े प्रमी सत्संगी हैं।

सतगुरु के प्रभाव तथा प्रेरणा से जीवन में हुए ऐसे विलक्षण परिवर्तनों के अनेक वृत्तान्त हैं। निराशा और नाश के गर्त की ओर अग्रसर हो रही युवा पीढ़ी को आज सतगुरु आशा और उत्थान का सन्देश दे रहे हैं, नव-जीवन की प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं। परन्तु युवा-वर्ग ही नहीं, बल्कि पर-मात्मा की खोज में व्यग्र अनेक जीवों को महाराजजी ने मार्ग-दर्शन प्रदान किया

है। अमेरिका में एक ट्रेपिस्ट* मठ के पादरी को १४ वर्ष तक मठ में रह कर कठिन तपस्या, संयम, नियम आदि का पालन करने के बाद जब कोई प्राप्ति न हुई तो वह अपने प्रमुख से इजाज़त लेकर मठ से बाहर आया। परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग की खोज में वह भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक सोसाइटियों में जाने लगा। परन्तु निराशा के सिवाय कुछ न मिला। एक दिन एक परिचित से उसे डाक्टर जान्सन की पुस्तक 'दि पाथ आफ दि मास्टर्स' मिली। पढ़ कर उसे ऐसा लगा कि वर्षों से जिस मार्ग की तलाश में था, वह मिल गया। अपने शहर के सत्संगों में जाने लगा, शंकाएँ दूर हो गईं। महाराजजी ने कृपा करके नाम-दान की स्वीकृति दे दी। जिस वस्तु की खोज में १४ वर्ष कठोर तपस्या की, वह सतगुरु की मेहर से प्राप्त हो गई। जिस रूहानी प्रेम के लिये वह इतने वर्षों तक तरसता रहा, वह उसने अपने सत्संगी बंधुओं की संगति में प्राप्त किया। अपने एक पत्र में वह लिखता है कि अपने सत्संगी भाई व बहनों के साथ जिस निर्मल रूहानी प्रेम का वह अनुभव करता है, वह उसकी कल्पना में भी न था। जिस वस्तु की उसने इतने वर्षों आशा और आकांक्षा की थी वह उसे इस मार्ग पर प्राप्त हो गई है।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी की इन विस्तृत सत्संग-यात्राओं का परिणाम तो समय ही बता सकेगा। जैसा कि स्वयं हुज़ूर ने डीट्राइट (अमेरिका) में एक सत्संगी के यह पूछने पर कि "महाराजजी, आप डीट्राइट क्यों आये?" फ़रमाया था, "समय आने पर आपको पता चलेगा।" परन्तु इतना अवश्य है कि इन यात्राओं के फल-स्वरूप संगत में प्रेम का प्रवाह आ गया, आपसी प्यार व एक-दूसरे को समझने की भावना बढ़ी, सन्त-मत के प्रति उत्साह तथा सच्ची जिज्ञासा जाग्रत हुई और शाकाहारी आहार तथा नेक जीवन पर स्थिर होने के लिये बल प्राप्त हुआ। अनेक सत्संगियों ने अपने प्यारे सतगुरु के देह-स्वरूप में दर्शन करके यह अनुभव किया कि देह-स्वरूप गुरु क्या होता है, उसकी भक्ति, उसका प्रेम और विरह क्या होता है।

इतिहास में पहली बार एक महान सन्त ने विश्व के दूर-दूर के देशों में जाकर सन्तों के निर्मल रूहानी सन्देश को विभिन्न धर्मों और राष्ट्रों के अलग-अलग भाषा-भाषी लोगों तक पहुँचाया है। इस महान कार्य, इस श्रमपूर्ण मिशन की पूर्ति में सतगुरु दीन-दयाल ने कष्ट सहे, परेशानियाँ उठाईं, अपनी

*ट्रेपिस्ट, रोमन केथलिक पादरियों में एक बड़ा कठोर संयम का मार्ग है। इसमें मांक अथवा पादरी संयम, उपवास, मौन, प्रार्थना आदि नियमों का सख्ती से पालन करते हैं। वे अपने प्रमुख के सिवा और किसी से नहीं बोलते तथा अपने मठ से कभी बाहर नहीं जाते।

सुख-सुविधा व स्वास्थ्य तक की चिन्ता न की। आज भारत के बाहर हज़ारों सत्संगी हैं, लगभग १७५ सत्संग-केन्द्र हैं तथा अनेक जिज्ञासु इस मार्ग को अपनाने के लिये उत्सुक हैं। विदेश में जो बीज आज से ६० वर्ष पूर्व हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने बोया, उसे महाराज चरनसिंहजी प्रेम व करुणा के जल से सींच कर, अपनी तवज्जह और मेहनत से सँवार कर एक लहलहाते हुए वृक्ष के रूप में विकसित कर रहे हैं, जिसकी सुखद व शान्ति-प्रद छाँह में आकर संसार-ताप से त्रस्त जीव स्थायी शांति और आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

आज अमेरिका, कनाडा, हवाई, मेक्सिको, वेस्ट इण्डीज़ और फिलिपाइन्स से लेकर इंगलैंड, यूरोप, मध्य-पूर्व, पूर्वी व दक्षिणी अफ़्रीका तक; जापान, हांगकांग, थाईलैंड, मलेशिया, इण्डोनेशिया से लेकर फिजी द्वीप, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड तक सभी देश के वासी महाराजजी से फिर उनके यहाँ आकर दर्शन प्रदान करने के लिये बारम्बार विनती कर रहे हैं। निस्सन्देह हुज़ूर उनके प्रबल अनुरोध पर तथा उनकी अश्रुपूरित प्रर्थनाओं पर विचार करके इन देशों की और भी कई यात्राएं करेंगे।

विदेश-यात्राओं के उपरान्त महाराजजी को प्राप्त हुए असंख्य पत्रों में से केवल एक पत्र के अंश यहाँ दिये जाते हैं जिससे हुज़ूर की यात्रा के गहरे प्रभाव और रूहानी प्रेरणा का कुछ अनुमान लगाया जा सकेगा।

"आपसे केवल क्षण-भर का वार्तालाप भी परमात्मा के उस प्रेम और सौन्दर्य के प्रति सचेत करने वाला अमृत-मय रस है जो आपसे निरन्तर प्रसारित हो रहा है। पिछले सोमवार को सत्संग से पहले आपसे मिल कर मुझे अपार हर्ष हुआ। मेरे मित्र भी आपसे हुई भेंट के अनुभव से पुलकित हैं। वापस जाते समय अपने सौ मील के पूरे मार्ग में हम उस संध्या के प्रेरक प्रसंगों की याद और चर्चा में लीन थे।

"आपने हमारी धर्म-पुस्तकों की गहराई में जाकर 'बुक ऑफ सेंट जॉन' की अपनी व्याख्या में जो रत्न प्रकट किये हैं, उसके लिये एक अमेरिकन के नाते मैं हृदय से आभारी हूँ। हमारे धर्म-ग्रन्थों के द्वारा हमें बोध प्रदान करने का जो मार्ग आपने अपनाया है वह मनुष्य-मात्र की आन्तरिक एकता का परिचायक है तथा आपके शब्द श्रोताओं को पवित्र-जीवन की ओर प्रेरित करते हैं। जब तक हम यह नहीं जानते कि वह परमपिता परमात्मा एक है तथा वह अपने मसीहा और सन्तों के माध्यम से अपने बच्चों से बोल रहा है, तब तक हम उससे अपनी एकता का अनुभव कैसे कर सकते हैं? और जब

एक मसीहा विश्व के सुदूर भाग से, अपने निज अनुभव द्वारा प्राप्त हकीकत के हर्ष व आनन्द और अभ्यास की रीति में हमें शरीक करने आता है, तो निस्सन्देह परमात्मा अपनी कृपा और करुणा से हमें बख्श रहा है। हम सभी को चाहिये कि निर्मल बुद्धि और मुक्त हृदय से उस प्रेम और कृपा के प्रसाद को ग्रहण करने का प्रयास करें।

"आपसे पूछे गये व आपकी ओर प्रक्षिप्त किये गये प्रश्नों के उत्तर से मैं बहुत प्रभावित हुई हूँ। मैं समझ सकती हूँ कि आपके लिये ब्यास तथा अपना प्रिय देश छोड़ कर अपने सत्संगियों और प्रभु के प्यारों की सेवा हेतु इतनी दूर अमेरिका आना कितना बड़ा त्याग है। आपके प्रसाद व दात के लिये गहरी कृतज्ञता का अनुभव करने वालों में मैं अकेली नहीं हूँ।

"आशा है एक दिन भारत आकर आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँगी।"

८. युद्ध-काल में डेरा

जब कभी संगत पर कष्ट या आपत्ति आती है, सन्त अपनी अपार करुणा और कृपा से प्रेरित हो उसे दूर करने का प्रयास करते हैं। ऐसे अवसरों पर संगत के कर्मों के इस भार को स्वयं झेल कर वे संगत की रक्षा करते हैं। देश के विभाजन के वक्त हुए भीषण रक्त-पात के समय परम सन्त हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने अपने सत्संगियों की रक्षा की, उन्हें सुरक्षित स्थान में पहुँचने में मदद दी तथा उनके भार को हल्का करने में खुद कष्ट और कठिन बीमारी को स्वीकार किया और अपने प्राणों तक की कुर्बानी दे दी। उनकी इस रक्षा और कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाले हज़ारों हिन्दू और मुसलमान सत्संगी, उनके सम्बन्धी व निकट मित्र आज भी मौजूद हैं।

६ सितम्बर १९६५ के दिन भारत और पाकिस्तान के बीच जब युद्ध छिड़ा, उस समय महाराज चरनसिंहजी डलहौज़ी में थे। रेडियो में युद्ध छिड़ने का समाचार सुनते ही आप मोटर द्वारा डेरे के लिये रवाना हो गये। यह रास्ता उस सीमावर्ती क्षेत्र में से जाता है जहाँ युद्ध हो रहा था। परन्तु हुज़ूर ने इस खतरे की चिन्ता न की और व्यास चले आये। पूरे रास्ते गोला-बारी की आवाज़ें आ रही थीं।

हुज़ूर के यहाँ पधारते ही डेरा-निवासियों में हौंसला बँध गया और युद्ध के अन्त तक किसी प्रकार का भय या फ़िक्र उनके दिल में पैदा न हुआ।

अमृतसर, जालन्धर, गुरदासपुर, पठानकोट, बटाला, जम्मू आदि स्थानों से सत्संगी तथा उनके मित्र भाग कर डेरे में सतगुरु की रक्षा की छत्र-छाया में आ गये। छम्ब व जोरियां के उजड़े हुए क्षेत्र से बहुत से आदमी आ गये थे।

जहाँ आस-पास के क्षेत्र में घबराहट और उत्तेजना का वातावरण था, वहाँ डेरे में हमेशा की तरह पूर्ण शान्ति और निश्चिन्तता का साम्राज्य था। सत्संग प्रतिदिन होता था। हमेशा की तरह रोज़ शाम को सेवा होती थी, जिसमें महाराजजी स्वयं पूरे समय मौजूद रहते थे। आस-पास से संगत के आ जाने की वजह से सत्संग-हॉल में स्थान कम पड़ गया, जिसके फलस्वरूप सत्संग खुले मैदान में शामियानों के नीचे करना पड़ता था। सेवा में हज़ारों व्यक्ति शरीक होते थे। गोलों के फूटने के धमाके दिन-रात सुनाई देते थे और खिड़की-दरवाज़े उनके विस्फोट से खड़खड़ाते रहते थे। रात को अँधेरा रहता था और महाराजजी स्वयं रात को चुपचाप अकेले डेरे का चक्कर लगा कर देखते कि ब्लेक-आऊट के नियमों का बराबर पालन हो रहा है और किसी प्रकार की बेचैनी या भय तो नहीं है। सतगुरु ने संगत को इतना साहस और विश्वास प्रदान किया कि कहीं भी घबराहट या चिन्ता का नाम तक न था। वृद्ध स्त्री-पुरुष तक डेरे से जाने को राज़ी न थे, अपने सतगुरु पर उन्हें पूरा विश्वास था। संगत अपने सतगुरु की मौज में खुश थी। युद्ध के इस पूरे समय में डेरे में किसी को आँच तक न आई तथा सत्संग, दर्शन, सेवा और भजन-सुमिरन का क्रम निर्विघ्न जारी रहा।

एक बार सैनिक अधिकारियों ने सलाह दी कि डेरा सरहद के बहुत करीब होने की वजह से खतरे की हद में है; अच्छा हो अगर इन दिनों डेरे में सत्संग की गति-विधि बन्द कर दी जाये तथा किसी अन्य प्रान्त में सत्संग का प्रबन्ध कर लिया जाये। परन्तु हुज़ूर की दया से सत्संग इसी तरह जारी रहा और किसी प्रकार के स्थान-परिवर्तन की आवश्यकता न हुई।

नवम्बर १९७१ के अन्तिम सप्ताह में महाराजजी अस्वस्थ थे। अजमेर व जैपुर की सत्संग-यात्रा के बाद देहली में हुज़ूर को ज़ोर का हार्ट-अटेक हुआ तथा चण्डीगढ़ और बम्बई के सत्संग-प्रोग्राम रद्द करने पड़े। ३ दिसम्बर को जब भारत-पाक युद्ध छिड़ा, हुज़ूर देहली में अस्पताल में थे और डाक्टरों ने पूर्ण विश्राम दिया हुआ था। डाक्टरों की सलाह पर सम्बन्धियों तथा निकट सत्संगियों ने हुज़ूर को युद्ध छिड़ने की खबर न दी। उन्होंने आपके पास अखबार ले जाना बन्द कर रखा था और रेडियो तक कमरे से हटा

रखा था। परन्तु ४ दिसम्बर की सुबह हुज़ूर ने रेडियो मंगवाया और समाचार सुने। युद्ध का पता लगते ही महाराजजी ने डेरे जाने का निश्चय किया। डाक्टरों ने हुज़ूर को इसके लिये मना किया और कहा कि आपका स्वास्थ्य ऐसा नहीं है कि आप बिस्तर से ज़रा देर के लिये भी उठें। मित्रों, सत्संगियों तथा परिवार के सदस्यों ने अनुरोध किया कि हुज़ूर ऐसे स्वास्थ्य में डेरे न जायें। परन्तु हुज़ूर ने फ़रमाया कि इस समय उनका कर्तव्य डेरे में तथा संगत के पास रहना है और अब वे देहली में नहीं रुक सकेंगे। सब की सलाह व आग्रह के बावजूद हुज़ूर अपने निश्चय पर अटल रहे और ६ दिसम्बर को आप डेरे पहुँच गये।

इस बार भी पूरे युद्ध के दौरान हुज़ूर डेरे में ही रहे। छम्ब, नौशहरा, माधोपुर, जम्मू, पठानकोट तथा सीमा से लगे हुए कई ग्रामों में सत्संगी थे। सतगुरु ने युद्ध की विपत्ति के समय संगत की जो रक्षा और सहायता की उसके अनेक वृत्तान्त हैं, लेकिन महाराजजी को अपने शरीर पर कष्ट झेलना पड़ा।

इस युद्ध के समय भी डेरे में पूर्ण शान्ति व बेफिक्री का वातावरण था। डेरे के निवासियों तथा अन्य सत्संगियों के अतिरिक्त डेरे में बाहर के देशों से आये हुए करीब पचास-साठ सत्संगी भी थे। इनमें यूरोप, इंग्लैण्ड, अमेरिका, दक्षिण अफ़्रीका आदि देशों के निवासी थे। जब उनको सीमा से दूर किसी सुरक्षापूर्ण स्थान में ले जाने का सुझाव दिया गया तो वे डेरा छोड़ कर जाने को राज़ी न हुए। उनके मित्रों व रिश्तेदारों के तार आदि आये कि युद्ध के समय ब्यास में न रहो, किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाओ अथवा अपने देश लौट आओ। परन्तु वे यहाँ से जाने के लिये तैयार न थे।

यहाँ मैं हुज़ूर की कृपा तथा एक सत्संगी बहन के विश्वास का वृत्तान्त देना चाहूँगा। इन्दौर निवासी मेरी एक परिचित सत्संगी बहन तथा उसके पति ने ५ दिसम्बर की सुबह हुज़ूर को देहली टेलीफोन किया। उन्होंने हुज़ूर के स्वास्थ्य के बारे में पूछा तथा डेरे आने की इजाज़त चाही। महाराजजी ने फ़रमाया कि लड़ाई खत्म होने पर आ जाना। इस पर उन्होंने विनती की कि महाराजजी आप तो हमें तारीख बता दें कि कौन-सी तारीख का रिज़र्वेशन करवायें, कई रेलगाड़ियां बन्द कर दी गई हैं इसलिये एकाएक जगह मिलना शायद सम्भव न हो। हुज़ूर ने जवाब में फ़रमाया कि १७ दिसम्बर का रिज़र्वेशन करवा सकते हो। अतएव ६ दिसम्बर को उन्होंने १७ तारीख के टिकिट खरीदे और रिज़र्वेशन करवा लिया। जब घर में माता-

पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों को पता लगा तो वे कहने लगे कि ऐसे समय ब्यास न जाओ, क्योंकि रास्ते में खतरा है, ट्रेनों पर बम-वर्षा के प्रयास हो रहे हैं। कुछ मित्र तथा सत्संगी उनके डेरे जाने के इस निर्णय को सख्त गलती समझ कर समझाते रहे कि न जायें। परन्तु महाराजजी के वचन पर उन्हें पूर्ण विश्वास था और वे अपने निर्णय पर स्थिर रहे। वे १७ दिसम्बर को डेरे के लिये रवाना हुए। जब देहली पहुँचे तो पता चला कि युद्ध-विराम हो गया है तथा लड़ाई खत्म हो चुकी है।

इन दोनों लड़ाईयों के समय मुझे महाराजजी के निकट सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैंने एक दिन भी आपके मुख पर उद्विग्नता, चिन्ता अथवा उत्तेजना के चिन्ह न देखे। हमेशा की तरह आप शान्त, प्रसन्न-चित्त तथा निश्चिन्त थे। आपके मुख से किसी पक्ष अथवा देश की निन्दा न सुनी, किसी की जीत अथवा हार पर उत्तेजना के वचन न सुने। आप अना-सक्त रहे, मालिक की मौज में खुश रहे। जब कभी कोई सत्संगी किसी भी राष्ट्र के प्रति कोई द्वेषपूर्ण बात कहता तो हुजूर उसे विशाल दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देते कि जो कुछ हो रहा है, कर्मों के लेखे के अनुसार हो रहा है। हमें अपने देश व समाज के प्रति अपने दायित्व का पालन करना चाहिये, लेकिन किसी के प्रति नफ़रत नहीं करनी चाहिये। मनुष्य ने परमात्मा के नाम पर एक-दूसरे से द्वेष करना तो सीख लिया, काश हम उसके नाम पर आपस में प्यार करना सीख पाते!

९. डेरे का विकास और नये निर्माण

बाबा जैमलसिंहजी महाराज के समय में बाबाजी की अपनी कोठरी, सात-आठ कमरे, नाम-घर, छोटा सत्संग-घर और कुआँ ही सम्पूर्ण डेरा था। हुजूर महाराज सावनसिंह जी के समय में डेरे का विकास शुरू हुआ और अनेक मकान, लंगर, बड़ा सत्संग-घर आदि निर्मित हुए। सरदार बहादुरजी महाराज के समय में कोई विशेष नये निर्माण तो न हुए किन्तु पुराने मकानों की देख-रेख व सुधार, कुएँ को गहरा करके उसमें पम्प लगाना आदि कार्य होते रहे।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी के सतगुरु के पद पर बिराजमान होते ही संगत बढ़ने लगी और संगत को ठहराने के स्थान, लंगर में भोजन बनाने व खिलाने की जगह, सत्संग के मैदान आदि सब छोटे होने लगे। जहाँ भण्डारों में पचास से पचहत्तर हज़ार व्यक्ति आते थे, वहाँ कुछ ही वर्षों के अन्दर उनकी संख्या लाख से ऊपर हो गई। आज तो यह संख्या तीन-चार लाख

तक पहुँच गई है। यहाँ डेरे के विकास का संक्षेप विवरण देने का प्रयास किया जा रहा है।

सन् १९५४ की बात है। उन दिनों लंगर में एक बार में तीन-चार हज़ार व्यक्ति भोजन कर सकते थे। परन्तु संगत की संख्या पौन लाख तक होती थी और लंगर करीब चौबीस घण्टे ही चलता रहता था।

एक दिन भण्डारे के दिनों में महाराजजी को रात के दो-ढाई बजे तक लंगर से चहल-पहल की आवाज़ आती रही। हुज़ूर के पूछने पर कि इतनी रात बीते लंगर में क्या हो रहा है, पता लगा कि संगत खाना खा रही है और अभी कुछ हज़ार व्यक्ति इन्तिज़ार में बैठे हैं। यह सुन कर महाराजजी को बड़ा अफ़सोस हुआ कि संगत को इतनी परेशानी होती है कि शाम के भोजन के लिये रात को दो-तीन बजे तक इन्तिज़ार करना पड़ता है। दूसरे दिन आप रायसाहब मुन्शीराम तथा श्री आहलूवालिया (सत्संग के सेक्रेटरी) को लेकर लंगर में तशरीफ़ ले गये। लंगर में भोजन बनाने का स्थान तो बढ़ाया जा सकता था, किन्तु संगत को बिठा कर खिलाने के लिये स्थान न था। हुज़ूर का विचार था कि एक बार में कम से कम पन्द्रह-बीस हज़ार व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था होनी चाहिये, ताकि पूरी संगत दो या तीन बार में खाना खा सके। परन्तु लंगर में इतना स्थान नहीं था। लंगर के सामने के भाग में डेरे के मकान आदि थे तो पीछे थे तीस-तीस, चालीस-चालीस फीट गहरे विशाल खड्ड। हुज़ूर ने फ़रमाया कि लंगर को पीछे की ओर ही बढ़ाया जा सकता है। इसके लिये खड्ड भरना शुरू करना होगा।

यह सुन कर श्री आहलूवालिया ने कहा, "हुज़ूर! इन गहरे और लम्बे-चौड़े खड्ड को भरना असम्भव है। अगर भरना शुरू भी किया जाये, तो इस कार्य को पूर्ण करने में कम से कम दस-बारह वर्ष लग जायेंगे।" रायसाहब मुन्शीराम ने भी इस बात से सहमति प्रकट की और कहा, "महाराजजी! जैसा है, वैसा ही चलने दें, गुज़ारा तो हो ही रहा है।"

परन्तु हुज़ूर ने उत्तर दिया, "अगर इस काम को सम्पूर्ण करने में दस साल लग जायें तो भी कोई बात नहीं। उसके बाद तो संगत आराम से भोजन कर सकेगी।"

दूसरे दिन सत्संग के बाद सतगुरु दीन-दयाल ने उन खड्डों को मिट्टी से भरने की सेवा की घोषणा कर दी। उसी दिन शाम से कार्य शुरू हो गया। संगत नदी की ओर के टीबों को काट-काट कर मिट्टी लाने लगी। पहले कुछ दिन तो ऐसा लगता रहा कि सचमुच ही इस विशाल कार्य को सम्पूर्ण

करने में दस वर्ष से भी अधिक समय लग जायेगा। परन्तु धीरे-धीरे सेवा में संगत का योग बढ़ने लगा। हुज़ूर ख़ुद सेवा के पूरे समय सुबह व शाम आकर संगत के सामने विराजने लगे। धीरे-धीरे खड्ड भरे जाने लगे। भण्डारों के दिनों में आठ-दस हज़ार सत्संगी इस महान श्रम-दान में भाग लेने लगे। दो-ढाई साल के अन्दर खड्ड भर गये। लाखों घन फीट मिट्टी भर दी गई और इतना बड़ा मैदान तैयार हो गया कि एक बार में पन्द्रह-बीस हज़ार व्यक्ति बैठ कर खाना खाने लगे।

मिट्टी की सेवा का यह कार्य-क्रम आज तक जारी है। लंगर का यह मैदान भी कुछ समय के बाद छोटा पड़ने लगा। हुज़ूर ने मिट्टी की सेवा से उतने ही बड़े दो मैदान और तैयार करवा दिये। आज लंगर में एक साथ पचास-साठ हज़ार व्यक्ति आराम से बैठ कर भोजन कर सकते हैं।

भण्डारों के दिन आज-कल एक वक्त में करीब दो लाख व्यक्ति लंगर में खाना खाते हैं। इतने लोगों के खाना खाने के बाद भी सारा लंगर इतना स्वच्छ रहता है कि खाने के बाद कोई नहीं कह सकता कि इतने लोगों ने यहाँ खाना खाया था। हुज़ूर महाराजजी के निरीक्षण में तथा उनके आदेश के अनुसार श्री सोहनसिंहजी भण्डारी लंगर की यह उत्तम व्यवस्था कर रहे हैं। लंगर में इतने लोगों की रोटी बड़े-बड़े लोहे के तवों पर बनाई जाती है। खाना बनाने का सब कार्य—सब्ज़ी काटना, आटा गूँधना, रोटी बनाना, दाल, तरकारी वगैरह तैयार करना—संगत बड़े प्रेम और सेवा-भाव के साथ करती है।

लंगर सबके लिये खुला रहता है। चाहे कोई सत्संगी हो या गैर-सत्संगी, हरएक को बड़े प्रेम के साथ भोजन खिलाया जाता है। लंगर में जाति, वर्ण, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब का कोई भेद-भाव नहीं है। सब एक पंगत में खाना खाते हैं। सभी को थालियों में भोजन परोसा जाता है और पीतल के गिलासों में पानी दिया जाता है। खाना खाने के बाद हाथ धोने के लिये टोटियाँ लगी हुई हैं और बरतन साफ़ करने के लिये पक्का स्थान बना है।

लंगर के लिये खड्ड भरने के बाद इस प्रेम-पूर्ण सेवा के द्वारा संगत ने डेरे के अन्य भागों में भी बड़े-बड़े खड्ड भर कर मैदान बना दिये हैं। इसके तथा अन्य सभी प्रकार की सेवा के पीछे हुज़ूर का प्रेम और हुज़ूर की प्रेरणा व तवज्जह है।

डेरे में संगत द्वारा की जानेवाली सेवा का दृश्य देखने लायक होता है। अमीर, गरीब, विद्वान, अनपढ़, वकील, प्रोफ़ेसर, जज, उच्च शासकीय अधिकारी, सब कन्धे से कन्धा लगा कर एक साथ यह प्रेमपूर्ण सेवा करते हैं।

इनमें सत्तर साल के बूढ़े स्त्री-पुरुष भी होते हैं, तो छः-सात वर्ष के बच्चे भी, हृष्ट-पुष्ट कृषक भी हैं तो कमज़ोर शहरी भी। अब तो सैंकड़ों विदेशी स्त्री-पुरुष भी, जो विश्व के विभिन्न देशों से डेरे में आते हैं, इस सेवा में प्रेम के साथ हाथ बटाते हैं।

डेरे में आने वाले कई मन्त्री और नेता भी इस दृश्य को देख कर चकित रह जाते हैं। कुछ वर्ष पहले एक विदेशी टेलीविज़न कम्पनी भारत के प्रमुख स्थानों के चित्र लेती हुई डेरे में भी आ गई। आठ-दस व्यक्तियों का समूह था। जब उन्होंने मिट्टी की सेवा का दृश्य देखा तो पूछने लगे कि इन्हें क्या वेतन दिया जाता है ? जब उन्हें बताया गया कि यह प्रेम और भक्ति-पूर्ण सेवा है, कोई वेतन का सवाल ही नहीं उठता, तो एक बार तो उन्हें विश्वास ही न हुआ। उन्हें कौन समझा सकता था कि इस नम्रतापूर्ण सेवा का 'वेतन' सतगुरु का वह दर्शन है, उनकी वह प्रेमपूर्ण दृष्टि है जिसके लिये शिष्य सर्वस्व निछावर करने के लिये तैयार रहता है।

सिख इतिहास के एक माने हुए विद्वान एक बार डेरे में तशरीफ़ लाये। सत्संग सुना, लंगर की व्यवस्था देखी, इतनी संगत को एक साथ भोजन करते देखा और शाम को मिट्टी की सेवा देखी। दो दिन डेरे में रहे। जाते समय बोले कि मैंने गुरु साहिबों के इतिहास में सतगुरु के विषय में पढ़ा था, संगत की भक्ति और सेवा के बारे में वर्णन पढ़े थे। परन्तु केवल पढ़ा ही था, कहीं देखा नहीं था और इसलिये उस सब की कल्पना भी नहीं कर सकता था। यहाँ आकर मुझे ऐसा लगा कि मैं गुरु साहिबों के विषय में पढ़ी सतगुरु की महिमा और संगत के प्रेम की बातों को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।

एक बार दक्षिण अफ़्रीका के प्रतिष्ठित सत्संगी सर कॉलिन गारबेट डेरे आये हुए थे। ८८ वर्ष के वृद्ध शरीर के कारण अपने अन्य साथियों के साथ सेवा नहीं कर सकते थे। सेवा के समय हुज़ूर के पास आकर बैठ गये। कुछ देर सेवा का दृश्य देखने के बाद बोले, "महाराजजी ! कुछ लोग तो टोकरियों में खूब मिट्टी भर कर लाते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिनकी टोकरियों में मुश्किल से दो मुट्ठी मिट्टी होगी। इनकी सेवा का क्या फ़ायदा है ?" हुज़ूर ने उत्तर दिया, "सर कॉलिन ! हरएक अपनी शक्ति के अनुसार सेवा करता है। इस सेवा के पीछे जो प्रेम और भक्ति की भावना है वह महत्वपूर्ण है, मिट्टी की मात्रा नहीं।"

इस प्रकार मिट्टी की सेवा डेरे में संगत द्वारा की जाने वाली कई प्रकार की सेवाओं में प्रमुख सेवा है। साल में चालीस-पचास लाख घन फीट मिट्टी

24

संगत द्वारा भरी जाती है। इस प्रकार की सेवा द्वारा आज डेरे में कई एकड़ भूमि समतल करके उपयोगी बना ली गई है।

इसी तरह खड्ड भरवाकर और भूमि समतल करवा कर महाराजजी ने डेरे के दक्षिणी भाग में पच्चीस पक्के शेड बनवा दिये हैं जिनमें मासिक सत्संग तथा भण्डारा के दिनों में महिलाएँ ठहरती हैं। एक-एक शेड में करीब तीन-चार सौ महिलाएँ ठहरती हैं। इनमें हाल ही में हुज़ूर ने पंखे भी लगवा दिये हैं। इन शेडों के पास ही महिलाओं के लिये पक्के स्नान-घर तथा फ्लश के शौचालय बनाये गये हैं। शेडों के आस-पास तथा बीच में खुली जगह व लान हैं तथा सभी शेड पक्के रास्तों से जुड़े हुए हैं।

संगत की सेवा के द्वारा डेरे के अन्दर के चौक तथा सड़कें ईंटों की जुड़ाई द्वारा पक्की बना दी गई हैं। महाराजजी ने डेरे के अन्दर आने वाली तथा अन्दर की सभी प्रमुख सड़कों को डामर की पक्की सड़कें बनवा दिया है। डेरे की दीवार के बाहर तीन तरफ पक्की सड़क बन गई है। अब ब्यास नदी वाली दिशा में भी दीवार के किनारे सड़क बनाई जा रही है।

लंगर में एक बीस हज़ार वर्ग फीट (२००'×१००') का विशाल शेड बनवाया गया है, जिसके बीच में कहीं भी खम्बे आदि नहीं हैं। इसके नीचे बारिश के दिनों में संगत खाना खाती है। इसमें लगभग पाँच हज़ार व्यक्ति एक बार में खाना खा सकते हैं। हाल ही में हुज़ूर ने इसमें पंखे लगवा दिये हैं ताकि गर्मी के दिनों में यहाँ संगत आराम भी कर सके। हुज़ूर ने ऐसा ही एक और विशाल शेड बनवाने का भी निर्णय किया है।

सन् १९५४-५५ में हुज़ूर ने सत्संग-घर के पश्चिम में एक दो-मंज़िला विशाल भवन बनवाया जिसमें करीब १५० कमरे हैं। इसका नाम साधु-आश्रम है। यह संगत के निवास के काम आता है।

बड़े सत्संग-घर (बाबा जैमलसिंह हाल) के अहाते में से पुराने कच्चे निर्माण हटा कर अहाता काफ़ी बड़ा कर दिया गया है। पुरानी ऊँची दीवार के स्थान पर लोहे की रेलिंग लगा दी गई है जिससे सत्संग-घर की सुन्दरता और बढ़ गई है। हाल के अन्दर पंखे लगवा दिये हैं और गरमी में संगत यहाँ आराम करती है।

सन् १९५५ में ही भण्डारे के सत्संगों में संगत की संख्या इतनी बढ़ गई कि भण्डारे का सत्संग जो अब तक बड़े सत्संग घर के मैदान में किया जाता था, बाहर करना पड़ा। बाहर के मैदान (जहाँ पहले डेरे के खेत थे) को समतल किया गया ताकि उसमें दो लाख व्यक्ति बैठ सकें। चार-पाँच वर्ष

में ही उसे और बड़ा करना पड़ा और अभी दो साल पहले उसमें तीन-चार एकड़ भूमि और जोड़ दी गई है। अब तो मासिक सत्संगों तक में दो लाख से ऊपर संगत आ जाती है और सत्संग इस मैदान में करना पड़ता है।

डेरे में हुज़ूर ने एक नई बस्ती का निर्माण किया है जिसमें २५० से ऊपर आधुनिक मकान हैं। इनमें से कुछ एक कमरे के, कुछ दो कमरों के और कुछ तीन कमरों के हैं! सभी मकानों में बिजली और पानी की व्यवस्था है, फ़्लश के शौचालय हैं तथा पीछे दीवार से घिरा हुआ चौक है। इस प्रकार के मकानों का निर्माण अभी भी चल रहा है और ऐसे कई भवन अभी भी निर्माण-अवस्था में है। ये मकान लागत से भी कम मूल्य पर सत्संगियों को दिये गये हैं। पूरी बस्ती में जल-प्रणाली तथा जल-निर्गम (ड्रेनेज) की उत्तम व्यवस्था है तथा सफाई का पूरा ध्यान रखा जाता है। सभी घरों, भवनों आदि में पानी चौबीस घण्टे आता है। बढ़ती हुई संगत के लिये, लान व सड़कों के किनारे के वृक्षों के लिये पानी की आवश्यकता भी बहुत बढ़ गई। डेरे में बने कुएँ इसकी पूर्ति नहीं कर पाते थे। अतएव हुज़ूर ने नये ट्यूब-वेल बनवाये तथा ६०-७० फीट ऊँची तीन विशाल पानी की टंकियाँ बनवाईं जिनमें से प्रत्येक में पचास हज़ार गैलन पानी आता है। पूरे डेरे में पाइप लाइन द्वारा जल-वितरण की सुनियोजित व्यवस्था है और पानी डेरे के हरएक स्थान में पहुँच जाता है। ट्यूब-वेल और पानी की टंकियों की व्यवस्था के साथ-साथ ही संगत ने कई छोटे-छोटे कुएँ भर दिये हैं और उन पर अब संगत के निवास के लिये मकान बन गये है।

पानी की व्यवस्था होने से डेरे में अनेक लान व छोटे-छोटे बगीचे बना दिये गये हैं और सड़कों व रास्तों के दोनों ओर सुन्दर फूलदार पेड़ों की पंक्तियाँ लगा दी गई हैं। कई खुले मैदानों में यूकिलिप्टिस तथा अन्य हज़ारों पेड़ों का समूह लगा दिया गया है और आज संगत गर्मियों में उनके नीचे आराम करती है।

सुरक्षा की दृष्टि से डेरे के चारों ओर दीवार आवश्यक थी। हुज़ूर ने डेरे के चारों ओर ईंटों की पक्की छः फीट ऊँची दीवार बनवा दी है। दीवार के ऊपर दो फीट की ऊँचाई तक काँटेदार तार लगाये गये हैं। प्रत्येक दिशा में बाहर जाने व आने के लिये बड़े-बड़े दरवाज़े हैं और हर दरवाज़े पर चौकी-दारों के लिये कमरे हैं। दिसम्बर १९७० में ब्यास नदी की तरफ की बाड़ के स्थान पर दीवार बनाई गई। ३५०० फीट लम्बी दीवार (ऊँचाई छः फीट), तीन गेट (दरवाज़े) और ग्यारह कमरे संगत ने सेवा के द्वारा केवल

पन्द्रह दिन में बना दिये। दीवार बनने के साथ ही डेरे की चतुः सीमा स्पष्ट हो गई है। दीवार के अन्दर डेरे का विस्तार करीब दो सौ एकड़ है। दीवार के बाहर भी सत्संग की भूमि है जो लगभग बीस एकड़ है।

इतनी संगत के आने पर भी डेरे में सफाई की व्यवस्था बहुत अच्छी है। सेवादार बराबर सफ़ाई रखते हैं और हुज़ूर की अपार दया से इतने बड़े समुदाय के होते हुए भी कभी कोई स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या पैदा नहीं होती। डेरे में कई स्थानों पर सामुदायिक स्नान-गृह बने हैं। इनमें महिलाओं के लिए अलग स्नान-गृह हैं। पूरे डेरे में इस समय स्नान के लिये चार-पाँच हज़ार नल हैं। इसी प्रकार डेरे में लगभग १५०० फ्लश-प्रणाली युक्त शौचालय हैं।

डेरे में महाराजजी ने संगत के लिए कई सुविधाएँ प्रस्तुत की हैं। एक 'सब्सिडाइज़्ड' भोजन भण्डार है, जिसमें संगत अपना भोजन खरीद कर खा सकती है। एक थाली का मूल्य पचास पैसे है, जिसमें चपातियों की संख्या और सब्ज़ियों की मात्रा पर कोई रोक नहीं है। उसका सारा घाटा डेरे की ओर से पूरा किया जाता है। भोजन भण्डार में रसद, बरतन आदि सामान रखने, खाना बनाने वगैरह के लिए अलग मकान हैं। खाना खाने के लिये दो बड़े हाल हैं। इनमें कुर्सी टेबल लगी हैं और पंखे व बिजली की पूरी व्यवस्था है। शुरू में खाना खाने के लिए एक हाल बनाया गया था, किन्तु वह कम पड़ने लगा तो चार वर्ष पहले एक और हॉल बनाया गया है। भण्डारे के दिनों में भोजन-भण्डार में करीब छः सात हज़ार व्यक्ति सुबह तथा इतने ही शाम को भोजन करते हैं। खाना स्टील की थालियों में परोसा जाता है। खाना खिलाने, बर्तन साफ करने आदि का कार्य सेवा-भावी प्रेमी सत्संगी करते हैं, जिनमें कई पढ़े-लिखे व्यक्ति, व्यापारी, वकील, अफ़सर तथा संभ्रांत पुरुष और महिलाएँ हैं।

भोजन-भण्डार के पास ही चाय व नाश्ते का भवन (टी-केफटेरिया) है जिसमें संगत चाय और पकौड़े, समोसे, डबल रोटी आदि नाश्ते का सामान खरीद सकती है। भण्डारे के दिनों में अच्छे ताज़ा फल खरीद कर लाये जाते हैं और संगत को खरीद से भी कम भाव पर दिये जाते हैं। इसका घाटा भी डेरा ही पूरा करता है।

हुज़ूर के आदेश से डेरे में एक छोटा सा प्रोवीज़न-स्टोर खोला जा चुका है जिसमें आटा, दाल, चावल, तेल, आदि रसद तथा दंत-मंजन, साबुन, तेल आदि नित्य उपयोग की वस्तुएँ मिलती हैं। इस स्टोर में खरीद से भी कम भाव

पर बिक्री की जाती है। इसके लिए डेरे की ओर से घाटा पूरा किया जाता है

डेरे में होने वाले समस्त निर्माण तथा विकास कार्य हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी के व्यक्तिगत निर्देश और मार्ग-दर्शन में हुए हैं और हो रहे हैं। प्रत्येक मकान का नक्शा हुज़ूर के आदेश के अनुसार बनाया जाता रहा है और हुज़ूर ने इन नक्शों का अच्छी तरह अध्ययन करके निर्माण की अनुमति प्रदान की है। अच्छे-अच्छे अनुभवी इंजिनियर भी इस विषय में हुज़ूर की रुचि और ज्ञान को देख कर चकित रह जाते हैं। इसी तरह मिट्टी की सेवा तथा अन्य प्रकार की सेवा का सम्पूर्ण कार्य हुज़ूर के हुक्म, इजाज़त और निगरानी में होता है। हुज़ूर स्वयं सेवा के समय आकर बिराजते हैं और आपकी उपस्थिति में संगत को प्रेम तथा उत्साह के साथ सेवा करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज के समय से ही डेरे में एक निःशुल्क पुस्तकालय और वाचनालय चला आ रहा है। इसे अब व्यवस्थित रूप दिया जा चुका है तथा इसका नाम महाराज सावनसिंह लाइब्रेरी रखा गया है। आध्यात्मिक तथा सन्त-मत साहित्य की दृष्टि से यह पंजाब में अपने ढंग का एक ही पुस्तकालय है। इसमें अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, सिन्धी आदि भाषाओं में पुस्तकों का उत्तम संग्रह है। फ़ारसी और अरबी की भी कुछ चुनी हुई पुस्तकें और पाण्डु लिपियाँ मौजूद हैं।

बढ़ती हुई संगत और उस तक सन्त-मत के साहित्य को पहुँचाने की दृष्टि से राधास्वामी सत्संग ब्यास का अपना प्रकाशन विभाग हुज़ूर के मार्ग-दर्शन में विभिन्न भाषाओं में सन्त-साहित्य प्रकाशित कर रहा है। सन् १९५१ तक केवल पाँच-छः अंग्रेज़ी की तथा दो-तीन पंजाबी की पुस्तकें छपी थीं। पंजाबी में प्रथम ग्रन्थ था "शब्द की महिमा के शब्द" जिसमें हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने गुरु ग्रन्थसाहिब में से कुछ शब्द संकलित किये थे। दूसरा, हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज द्वारा रचित "गुरुमत सिद्धान्त" नामक गवेषणा-पूर्ण ग्रन्थ था जो दो भागों में छपा था।

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने सतगुरु पद पर आते ही इस ओर ध्यान दिया। आपकी प्रेरणा और मार्ग-दर्शन में सन्त-साहित्य के प्रकाशन का कार्य शुरू हुआ और आज भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में डेरे द्वारा प्रकाशित साहित्य मिलता है। हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी, उर्दू, सिंधी में कई पुस्तकें छप चुकीं हैं और मराठी, गुजराती, बंगला, तामिल, तेलेगू, कन्नड़ में भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आज सन्त-साहित्य केवल भारत में

ही नहीं, बल्कि अन्य देशों में भी अनेक भाषाओं में प्रकाशित हो रहा है। अंग्रेज़ी, फ्रेंच स्पेनिश, डच, जर्मन, ग्रीक, लेटिन, पोलिश, हिब्रू और अरबी में डेरे से प्रकाशित पुस्तकों का अनुवाद हो चुका है और हो रहा है।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के सत्संगों के पंजाबी में छः भाग छप चुके हैं और उनका अनुवाद अन्य भाषाओं में हो रहा है। गुरुमत सिद्धान्त का हिन्दी और अंग्रेज़ी में अनुवाद हो चुका है। इसी प्रकार हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी की पुस्तकों और सत्संगों का भी कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

डेरे के ये प्रकाशन लागत से भी कम मूल्य पर बेचे जाते हैं ताकि सभी सत्संगियों व जिज्ञासुओं को आसानी से प्राप्त हो सकें। इस संदर्भ में दो महत्व-पूर्ण बातों का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है, जिनमें एक तो है परमार्थी पत्र (भाग १) नामक पुस्तक का प्रकाशन और दूसरा है महाराज चरनसिंहजी द्वारा बाइबिल पर दी गई व्याख्या का प्रकाशन।

परमार्थी पत्र में बाबा जैमलसिंहजी महाराज के वे पत्र हैं जो आपने हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी को समय-समय पर लिखे थे। ये पत्र आध्यात्मिक ज्ञान के सागर हैं। इन पत्रों को हुज़ूर बड़े महाराजजी ने सँभाल कर रखा था। आप कई बार इन्हें बड़े प्रेम के साथ पढ़ा करते थे और फ़रमाया करते थे कि मुझे किसी वेद-शास्त्र, ग्रन्थ-पोथी को पढ़ने की ज़रूरत नहीं, मेरे पास मेरे सतगुरु की चिट्ठियाँ हैं, मेरे लिये वे शास्त्रों और ग्रन्थों से बढ़ कर हैं। हुज़ूर सावनसिंहजी महाराज ने अपनी अन्तिम वसीयत करने से एक दिन पहले, १९ मार्च १९४८ के दिन ये अमूल्य पत्र महाराज चरनसिंहजी के सुपुर्द कर दिये। देने से पहले हुज़ूर ने इन पत्रों को हृदय से लगाया और मस्तक पर रखा, हुज़ूर के नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये। बड़े प्यार के साथ महाराज चरनसिंहजी के हाथों में पत्रों की मंजूषा देते हुए फ़रमाया, "बेटा, यह मेरी बड़ी अनमोल और दुर्लभ जायदाद है जो मैं तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ; इसे प्रेम के साथ सँभाल कर रखना।"

ये पत्र हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी के पास यत्नपूर्वक रखे हुए हैं। आपने कृपा करके इन्हें प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी है ताकि सारी संगत बाबा जी महाराज के अनमोल वचनों को पढ़कर उनसे लाभ उठा सके। इन पत्रों का हिन्दी, उर्दू, मराठी तथा अंग्रेज़ी में अनुवाद हो चुका है।

सभी सन्त-महात्मा परमपिता परमात्मा रूपी समुद्र में से आते हैं और मालिक से मिलने के मार्ग का समान उपदेश देकर वापस उसी समुद्र में समा

जाते हैं। उनके जाने के बाद लोग बाहर-मुखी क्रियाओं और रूढ़ियों में फँस कर उनके असली उपदेश को खो बैठते हैं। सन्त उनके उपदेशों में छिपी हुई हक़ीकत को फिर से प्रकट करके उनके अनुयाइयों को समझाने का प्रयास करते हैं। हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने बाइबिल में छिपी हुई अमूल्य आध्यात्मिक सच्चाइयों को पाश्चात्य देशों के जिज्ञासुओं के सम्मुख प्रकट करने का महत्वपूर्ण कार्य शुरू किया। हुज़ूर ने बताया कि शब्द की महिमा, देह-स्वरूप सतगुरु की आवश्यकता, कर्म-सिद्धान्त और आवागमन के नियम के संकेत बाईबिल में स्पष्ट रूप से मिलते हैं। विदेश से डेरे आनेवाले जिज्ञासुओं तथा सत्संगियों को हुज़ूर ने बाईबिल के आधार पर सन्त-मत समझाना शुरू किया। कुछ समय बाद हुज़ूर ने बाइबिल में से अंग्रेज़ी में सत्संग प्रारम्भ किये। अपनी यूरोप, अमेरिका, दक्षिण अफ़्रीका आदि देशों की सत्संग-यात्राओं में जब हुज़ूर ने बाईबिल के सेण्ट जॉन के अध्याय से सत्संग प्रदान किये तो वहाँ के सत्संगी तथा जिज्ञासु बहुत प्रभावित हुए। ईसाई धर्म के वातावरण में पले हुए जिज्ञासुओं को महाराजजी ने समझाया कि सन्तों का मार्ग कोई नया धर्म या मत नहीं है। यह अनादि काल से चला आ रहा है और हज़रत ईसा ने भी इसी की शिक्षा दी है। वहाँ की संगत ने इन सत्संगों की टेप-रेकार्ड की प्रतिलिपि भेजी और आग्रह किया कि महाराजजी इन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करें। प्रायः सभी केन्द्रों से हुज़ूर के पास अनुरोध-पूर्ण पत्र आये और हुज़ूर ने सन् १९६७ में सेण्ट जॉन के अध्याय पर दिये गये सत्संगों को प्रकाशित करने की इजाज़त दे दी। अब सेण्ट मैथ्यू के अध्याय पर भी हुज़ूर के सत्संग प्रकाशित किये जा रहे हैं।[१]

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी की पवित्र समृति में डेरे में एक अस्पताल चलाया जा रहा है, जिसका नाम 'महाराज सावनसिंह अस्पताल' है। अस्पताल में एक सुयोग्य चिकित्सक (डाक्टर) रखा गया है। परन्तु सत्संगियों में से भी कई डाक्टर अपना समय निकाल कर डेरे आते हैं और अस्पताल में मुफ्त सेवा करते हैं। इस समय अस्पताल में सोलह पलंगों का इण्डोर वार्ड, खून आदि की जाँच के किये लेबरॉटरी और एक छोटा शल्य-चिकित्सा भवन (आपरेशन थियेटर) है। अस्पताल में मुफ्त इलाज होता है और दवा मुफ्त दी जाती है। सत्संग के दिनों में दाँत, आँख, गले आदि के रोग के विशेषज्ञ तथा सर्जन आदि आकर अस्पताल की सेवा में योग देते हैं। डेरे में जब भी दक्षिण अफ़्रीका के नायडू परिवार में से कोई डाक्टर आते हैं तो वे अपना काफी समय बीमारों की सेवा में देते हैं। डेरे के आस-पास के

१. ये पुस्तकें अब डेरे की ओर से छप चुकी हैं।

देहातों में कोई मुफ़्त चिकित्सालय नहीं हैं तथा शहरों में इलाज खर्चीला होने की वजह से बहुत बड़ी संख्या में रोगी यहाँ आकर लाभ उठाते हैं। इंडोर वार्ड हमेशा भरा ही रहता है तथा हज़ारों की संख्या में रोगी आते रहते हैं।

संगत के आध्यात्मिक लाभ के साथ ही महाराजजी का ख़याल संगत के स्वास्थ्य की ओर भी बहुत है। पहाड़ी इलाकों व ग्रामीण क्षेत्रों के दौरों में हुज़ूर ने देखा कि लोगों में नेत्र-रोग बहुत है तथा कई लोग मोतियाबिन्दु के कारण अपने नेत्रों की ज्योति खो रहे हैं। अतएव महाराजजी ने सन् १९६५ में डेरे में एक नेत्र-शिविर का आयोजन किया। उत्तर-प्रदेश के सीतापुर नेत्र-चिकित्सालय से विशेषज्ञ बुलाये गये। देश के प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक डाक्टर जे. एम. पाहवा अपने डाक्टरों का दल लेकर आये और फरवरी १९६५ में डेरे में प्रथम नेत्र-शिविर का उद्घाटन हुआ। ९५० बड़े तथा ३०० छोटे आपरेशन किये गये और करीब दो हज़ार नेत्र रोगियों का इलाज किया गया। महाराजजी की दया से सभी आपरेशन सफल रहे।

सन् १९६५ से १९७१ तक पाँच नेत्र-शिविरों का आयोजन हो चुका है। यह नेत्र शिविर अब हर साल ही आयोजित होते हैं। इन शिविरों का इन्तिज़ाम बड़ी सुनियोजित तथा व्यवस्थित रीति से किया जाता है। नेत्र-शिविर के समय देश के कई स्थानों से सत्संगी डाक्टर आकर अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं। शिविर के दिनों में नेत्र-चिकित्सा के साथ ही अन्य रोगों की चिकित्सा भी की जाती है। प्रत्येक मरीज़ की पूरी डाक्टरी जाँच होती है जिसमें रक्त, मूत्र, रक्त-चाप आदि बातें देखी जाती हैं और आपरेशन के योग्य मरीज़ों को स्वीकार किया जाता है। आपरेशन के साथ ही अन्य नेत्र-रोगों के लिए मुफ़्त दवा भी दी जाती है। मोतिया-बिन्दु के आपरेशन के मरीज़ों को मुफ़्त चश्मा भी दिया जाता है। लंगर में रोगियों के लिये उपयुक्त भोजन की व्यवस्था होती है।

नेत्र-शिविर में कई पढ़े-लिखे व्यक्ति, व्यापारी, वकील, सरकारी अफ़सर आदि विभिन्न व्यवसायों के स्त्री-पुरुष आकर सेवा करते हैं। ये सेवादार देश के विभिन्न स्थानों से आते हैं और शिविर के पूरे समय तक डेरे में रह कर बड़े प्यार के साथ सेवा करते हैं। शिविर के लिये पच्चीस जनता-शेड काम में लिये जाते हैं। इन्हें अलग-अलग वार्डों में बांटा जाता है और प्रत्येक वार्ड पर डाक्टर और सेवादार नियुक्त किये जाते हैं। आठ दिन पहले सब रोड तथा उनके आस-पास का पूरा क्षेत्र साफ़ किया जाता है।

एक बड़ा आपरेशन थियेटर तैयार किया जाता है जिसमें मरीज़ों को

पहले तैयार करने और आपरेशन करने के अलग-अलग भाग होते हैं। मरीज़ों को पलंग, चादर, टावल आदि सामान डेरे की ओर से दिया जाता है। हुज़ूर की दया-मेहर से अभी तक हर वर्ष सभी आपरेशन सफल रहे हैं। डाक्टर पाहवा की योग्यता, सेवा-भाव और लगन से सभी मरीज़ तथा सेवादार बहुत प्रभावित होते हैं। मोतियाबिन्दु के आपरेशन की सफलता में डाक्टर के कौशल के साथ ही आपरेशन के बाद मरीज़ की देख-भाल और सुश्रूषा बहुत आवश्यक होती है। डाक्टर पाहवा के अनुसार आपरेशनों की पूर्ण सफलता का श्रेय उत्तम व्यवस्था, सफाई तथा सेवादारों के रात-दिन के अथक परिश्रम को है।

अब शिविर में आने वालों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। इस शिविर में महाराजजी के आदेश से सभी वर्ग के लोगों को स्वीकार किया जाता है, चाहे कोई सत्संगी हो या गैर-सत्संगी।

पंजाब सरकार के स्वास्थ्य-विभाग की प्रार्थना पर हुज़ूर ने रक्त-बैंक समिति (ब्लड बैंक सोसाइटी) को डेरे में आकर रक्तदान लेने की इजाज़त दे दी है। आवश्यकतानुसार ब्लड-बैंक के डाक्टर साल में एक या दो बार डेरे में आते हैं। महाराजजी के ज़रा से इशारे पर संगत खून देने के लिये दौड़ी आती है। पहली बार जब रक्त-बैंक वाले खून लेने आये तो रक्त देने के लिये इतने लोग आ गये कि उनके पास इतने रक्त को लेने तथा रखने की व्यवस्था ही न थी। आज भी दो-तीन दिन के बाद उन्हें अपना कार्य बन्द करना पड़ता है, क्योंकि रक्त-बैंक के पास इतने रक्त को रखने की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार रक्त-दान करने वाले अनेक अभिलाषियों को निराश होना पड़ता है।

श्रीमती हरजीत कौर, जिन्हें संगत आदरपूर्वक 'माताजी' कहती है, ने पिसावा हाउस (जोकि आपके पिता रावबहादुर शिवध्यानसिंहजी की कोठी है) में एक प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र खोला है। इसमें प्राकृतिक वस्तुओं—मिट्टी, पानी, भाप, सूर्य-किरण आदि—के द्वारा चिकित्सा की जाती है। माताजी इस केन्द्र की संचालिका तथा मुख्य चिकित्सक हैं। आपकी लगन, परिश्रम और सेवा के फलस्वरूप यह केन्द्र, छोटा होते हुए भी, देश के बहुत अच्छे चिकित्सा-केन्द्रों में गिना जाता है। इस केन्द्र को चलाने का सारा खर्च माताजी स्वयं कर रही हैं। केन्द्र में योग्य तथा शिक्षित कार्य-कर्ता हैं जो माताजी के कुशल मार्ग-दर्शन में यह सेवा बड़े प्रेम के साथ कर रहे हैं।

हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के प्रेमी सत्संगी डाक्टर रेण्डाल्फ़ स्टोन

पिछले १४-१५ वर्षों से सर्दियों में छ: महीने के लिये डेरे आ रहे हैं।[1] अभ्यासी सत्संगी तथा एक योग्य लेखक[2] होने के साथ ही आप एक कुशल चिकित्सक भी हैं। आपकी प्रणाली 'पोलारिटी थेरेपी' मनुष्य के शरीर में स्थित तत्वों तथा प्राणों से सम्बन्धित है। अमेरिका में भी आप सन् १९१४ से प्रैक्टिस कर रहे हैं तथा वहाँ अपनी विलक्षण पद्धति के द्वारा असंख्य कठिन रोगों की सफल चिकित्सा कर चुके हैं। अपनी चिकित्सा-पद्धति पर आपने कई पुस्तकें भी लिखी हैं तथा अमेरिका में आपने काफ़ी ख्याति प्राप्त की है। आप अपने डेरे के निवास में भारत तथा अन्य देशों के सैंकड़े रोगियों का हर साल मुफ़्त इलाज करते हैं। इस समय आपकी आयु अस्सी वर्ष से भी अधिक है, परन्तु अब भी इस प्रेमपूर्ण सेवा को आप बड़ी लगन व मेहनत के साथ करते हैं।

सन् १९५१ में विदेश से आनेवाले सत्संगियों के लिये केवल एक अतिथि-गृह था, जिसमें ऊपर और नीचे की मंज़िल में कुल चार शयन-कक्ष (बेड रूम) थे। उस समय पूरे साल में विदेश से चार-पाँच सत्संगी आते थे। परन्तु कुछ ही दिनों में विदेश से आनेवाले सत्संगियों और जिज्ञासुओं की संख्या बढ़ने लगी और १९५५ में तीन कमरों का एक छोटा उपगृह (अनेक्सी) बनाया गया। १९५४ मे राजकुमारी इन्दुमती राजवाड़े ने एक भवन अपने रहने के लिये बनवाया था जिसे 'रानी की कोठी' कहते हैं। बाहर से आने वाली संगत को ठहराने के लिए आपने इस भवन को महाराजजी की सेवा में पेश कर दिया। परन्तु यह भी कम पड़ने लगा और कुछ ही समय बाद आठ कमरों का एक दो मंज़िला भवन और बनाया गया।

महाराजजी की विदेश-यात्राओं के फलस्वरूप वहाँ से आनेवाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ने लगी और हुज़ूर ने सन् १९६५ में एक ३७ कमरों का दो-मंज़िला गेस्ट-हाऊस और बनवाया। यह एक बहुत सुन्दर भवन है। इसमें नीचे एक रिसेप्शन-हाल (स्वागत-कक्ष) तथा ऊपर एक बड़ा मीटिंग-हाल है, जिसमें करीब १५० व्यक्ति कुर्सीयों पर बैठ सकते हैं। महाराजजी इस हाल में विदेश से आई हुई संगत के लिये प्रतिदिन अंग्रेज़ी में सत्संग प्रदान करते हैं। इस गेस्ट-हाऊस के पिछले हिस्से में एक बड़ा भोजन-कक्ष (डाइनिंग-हाल) है, जिसमें गेस्ट-हाऊस में ठहरने वाली संगत खाना खाती है। इससे जुड़ा हुआ एक रसोई घर है जिसमें विदेश से आने वाली संगत के लिये अलग खाना बनता है।

---

१. अब आप स्थाई रूप से डेरे में रहने लगे हैं।

२. आपकी पुस्तक 'बाइबिल का रहस्यवाद' (मिस्टिक बाइबिल) बहुत लोकप्रिय हुई है।

इस अतिथि-गृह की पूरी योजना तथा रूप-रेखा हुज़ूर ने स्वयं तैयार करवाई है। सम्पूर्ण निर्माण-कार्य भी हुज़ूर के मार्ग-दर्शन तथा निरीक्षण में हुआ है। कुशल कारीगरों के कार्य को छोड़ कर बाकी सब काम संगत की सेवा के द्वारा पूर्ण हुआ है। महाराजजी स्वयं इस सेवा के समय उपस्थित रहते थे। जब छत डालने का समय आया, जुलाई के गरमी और ऊमस भरे दिन थे। इंजिनीयरों का विचार था कि सीमेंट की यह विस्तृत छत एक ही बार में डाल दी जाये तो मज़बूती की दृष्टि से बेहतर होगा। सुबह सात बजे से छत डालने का कार्य शुरू हुआ। महाराजजी ने सुबह केवल पन्द्रह मिनिट का सत्संग प्रदान किया तथा संगत से छत डालने की सेवा में योग देने के लिये कहा। संगत सेवा में जुट गई तथा सुबह साढ़े सात बजे से दिन के तीन बजे तक यह सेवा बिना रुके चलती रही। हुज़ूर पूरे समय गेस्ट-हाऊस के मैदान में एक पेड़ के नीचे कुरसी पर बैठे रहे। जुलाई की सख़्त गरमी में संगत प्रेम के साथ सेवा कर रही थी। हुज़ूर ने सभी सेवा करने-वालों को इस पूरे समय में पाँच-छः बार शरबत पिलवाया। इंजिनियरों ने अर्ज़ की कि हुज़ूर जाकर भोजन करें तथा कुछ देर आराम कर लें। परन्तु हुज़ूर ने स्वीकार न किया। तीन बजे छत डालने का कार्य सम्पूर्ण हुआ। हुज़ूर ने सुबह सात बजे से तीन बजे के बीच में एक प्याला काफ़ी के सिवाय कुछ खाया-पिया न था। परन्तु सेवा समाप्त होने पर महाराजजी ने लंगर से भोजन मँगवाया, सेवा करनेवाली पूरी संगत को अपने सामने बिठा कर भोजन करवाया तथा अपने हाथ से उन्हें रोटी परोसी। वह दृश्य देखने योग्य था। हुज़ूर का मुख प्रेमपूर्ण प्रसन्नता से खिल रहा था और संगत अपनी थकान भूल कर दर्शन से निहाल हो रही थी। जब सभी सेवा करनेवालों ने भोजन कर लिया, तब महाराजजी ने उन्हें कृपापूर्ण मुस्कान के साथ बिदा किया और करीब चार बजे अपनी कोठी में तशरीफ़ ले गये तथा भोजन किया।

परन्तु यह सब निर्माण भी अब कम पड़ रहा है। सन् १९७१ में विदेशों से कुल ४६२ व्यक्ति आये थे जो तीन सप्ताह से आठ-दस सप्ताह तक ठहरे। परन्तु इस वर्ष अमेरिका, दक्षिण अफ़्रीका, यूरोप, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड आदि देशों से इतने सत्संगी आना चाहते हैं कि जगह की कमी के कारण उन्हें रोकना पड़ रहा है। यह देख कर हुज़ूर ने गेस्ट-हाऊस के अहाते में ही दो और भवनों का निर्माण शुरू किया है जिनमें से एक में १५ तथा दूसरे में ३० डबल बेडरूम होंगे। इन सभी कमरों के साथ जुड़े हुए फ्लश के शौचालय तथा स्नानघर होंगे। नये तथा पुराने गेस्ट-हाऊस के सभी कमरों में आरामदेह

फर्नीचर, संलग्न बाथरूम तथा दिन-रात ठण्डे व गरम पानी की व्यवस्था है।

संगत की सुविधा, आराम और निवास के लिये डेरे में कार्य लगातार चल रहा है। बाबाजी महाराज के वचन कि यहाँ "तेसी कंडी चलती ही रहेगी" के अनुसार निर्माण कार्य निरन्तर चल रहा है। बाहर से आनेवाली संगत की सुविधा के लिये ब्यास स्टेशन पर अब सभी गाड़ियाँ रुकने लगी हैं। जी. टी. रोड पर जानेवाली बसें भी डेरे होकर आती और जाती हैं। १९५१ में डेरे में बिजली की रोशनी नहीं थी। अब न सिर्फ डेरे के अन्दर हर चौक, मैदान और सड़क पर ट्यूब लाइटें लगी हैं, बल्कि हुजूर की दया से डेरे से स्टेशन जानेवाली ३॥ मील की पूरी सड़क पर भी ट्यूब लाइटें लग गई हैं। बसों, ताँगों व साइकिलों के स्टेण्ड अब बड़े-बड़े मैदानों में बना दिये गये हैं। आजकल भण्डारे के दिनों में सौ-डेढ़ सौ बसें बाहर से आती हैं जिनमें से कई दो-तीन दिन यहीं रहती हैं। सर्विस बसों की तो कोई गिनती ही नहीं है।

सत्संगों में संगत अब बहुत बढ़ गई है। भण्डारे के दिनों में तीन-चार लाख व्यक्ति तक आ जाते हैं। किस प्रकार पूर्ण शान्ति और खामोशी के साथ वे सत्संग को सुनते हैं यह एक देखने लायक चीज़ है। सत्संगों में लाउड-स्पीकरों की अच्छी व्यवस्था होती है, शामियानों और बिछायत का पूरा इन्तिज़ाम है तथा इतनी संगत के लिये लंगर के द्वार खुले हैं। सबकी प्रेम के साथ देख-भाल होती है तथा सैंकड़ों सत्संगी आनेवाली संगत की सेवा और अन्य व्यवस्था में बड़ी लगन व तत्परता से योग देते हैं।

जैसे-जैसे सेवा का कार्य बढ़ता जा रहा है, महाराजजी की दया से सेवा-दार भी उसी प्रकार बढ़ते जा रहे हैं। सतगुरु के प्रेम और भक्ति के पवित्र वातावरण में सेवादार बड़ी मेहनत के साथ दिन-रात कार्य में जुटे रहते हैं। जब भी कोई आवश्यकता होती है अथवा विशेष परिश्रम की सेवा होती है तो घुमान, वडाला, वीला, मानको आदि ग्रामों की संगत आकर बड़े उत्साह के साथ दिन-रात सेवा करती है।

पानी, बिजली, इंजिनियरिंग, निर्माण, आदि सभी कार्यों के लिये अलग-अलग विभाग हैं जिनमें कुशल तथा अनुभवी सेवानिवृत्त अफ़सर, व्यापारी तथा अन्य नागरिक नियुक्त हैं। ये सेवा-भावी प्रेमी मुफ़्त सेवा करते हैं तथा अपना निर्वाह अपनी पेंशन और अन्य निजी आमदनी पर करते हैं। डेरे के इतने बड़े पैमाने पर विस्तार और विकास के बावजूद, प्रेम, भक्ति तथा आध्यात्मिकता से परिपूर्ण वातावरण निरन्तर बना रहता है। सेवा तथा रूहानी अभ्यास पर ज़ोर दिया जाता है और संगत नियमपूर्वक भजन-सुमिरन

करती है। जो भी व्यक्ति आता है, इस बात को स्वीकार करता है कि डेरे में अपूर्व प्रेम व शान्ति का वातावरण है और वास्तव में यह स्थान धरती पर स्वर्ग है।

१०. डेरे की दिनचर्या

डेरे में निवास करने वाले तथा देश-विदेश से यहां आने वाले सत्संगियों के लिये एक नियमित दिनचर्या है। सत्संगी का दिन बहुत सवेरे तीन बजे से शुरू होता है। चाहे सर्दी की कंपा देने वाली बर्फ़ीली रात्रि हो अथवा गरमी या बरसात की उमस भरी निशा, सवेरे तीन बजे डेरे की नीरवता में सायरन की आवाज़ गूंज उठती है। सत्संगी, डेरे के शान्त व प्रसन्न वातावरण में, रात्रि के विश्राम के बाद हलके शरीर और स्वस्थ मन से अपने बिस्तर से उठ कर भजन-सुमिरन में बैठ जाते हैं। मालिक का प्रदान किया हुआ प्रत्येक दिन उसी की भक्ति और इबादत से शुरू किया जाता है। ढाई-तीन घण्टे के रूहानी अभ्यास के बाद करीब छः बजे वे भजन से उठते हैं।

गर्मियों में सवा आठ बजे और सर्दियों में साढ़े नौ बजे सवेरे सत्संग होता है जिसमें हुज़ूर महाराजजी तशरीफ़ लाते हैं, और एक या डेढ़ घण्टे तक अपनी मधुर प्रेमपूर्ण वाणी तथा सरल भाषा में सत्संग प्रदान करते हैं, अथवा उनकी अनुमति से कोई पाठी उनके स्थान पर सत्संग करता है और संगत हुज़ूर महाराजजी के दर्शनों का लाभ प्राप्त करती है। सम्पूर्ण वातावरण आत्मिक चेतनता और स्फूर्ति से परिपूर्ण होता है, जिसमें सत्संगियों को आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त होती है तथा जिज्ञासुओं को अपनी शंकाओं का समाधान मिलता है।

इसके बाद संगत अपने घरों का कार्य, भोजन, आदि करती है तथा गर्मियों में चार बजे व सर्दियों में तीन बजे तक आराम करती है। सेवा की घण्टी बजते ही जो सत्संगी सेवा करना चाहते हैं और जिन्हें डेरे में कोई और सेवा न हो, वे बड़े प्रेम और उत्साह के साथ सेवा करते हैं। हुज़ूर स्वयं इस समय संगत में मौजूद रहते हैं।

यह सेवा विविध प्रकार की होती है, जो आवश्यकता और सुविधा के अनुसार बदलती रहती है, तथा पूरे वर्ष चलती रहती है। टीबों को काट कर मिट्टी लाकर ज़मीन को समतल करना और ईंटों को तोड़कर रोड़े बनाना लगातार चलने वाली सेवाओं में से प्रमुख हैं।

दो ढाई घण्टे की सेवा के बाद सूरज ढलने के साथ-साथ संगत वापस

अपने निवास-स्थान पर आती है। शाम को छः बजे से आठ बजे तक रात्रि का भोजन करके नौ बजते बजते सत्संगी अपने बिस्तर में चला जाता है तथा कुछ समय भजन-सुमिरन करने के बाद सो जाता है।

इस प्रकार यहाँ की दिनचर्या के अनुसार सत्संगी का दिन लगभग १८-१९ घण्टे का होता है, जिसमें रूहानी अभ्यास, सत्संग, सेवा अर्थात् श्रमदान तथा समुचित मात्रा में आराम का समय होता है।

हर भण्डारे पर इस दैनिक दिनचर्या में आवश्यकता के अनुसार थोड़ा-बहुत परिवर्तन करना पड़ता है। भण्डारे से एक सप्ताह पहले ही दूर दूर के प्रदेशों से और निकटवर्ती गांवों से संगत आनी शुरू हो जाती है। भारी जनसमुदाय डेरे की ओर उमड़ पड़ता है। कार, बस, ट्रैक्टर, ट्राली, टैम्पो जो भी वाहन मिल जाय जनता वही ग़नीमत समझती है। अमृतसर, जालंधर, कपूरथला, लुधियाना, होशियारपुर आदि निकटवर्ती नगरों से स्पेशल बसें चलनी शुरू हो जाती हैं। डेरे में इन बसों के लिये एक अस्थायी बस-स्टैंड बनाया जाता है जो हर साल छोटा ही पड़ता जाता है। स्टेशन और जी. टी. रोड पर विशेष बसों का प्रबन्ध किया जाता है जो संगत को डेरे तक पहुँचाने का काम करती हैं।

हज़ारों सेवादार जनता की सेवा के लिये नियत कर दिये जाते हैं जो आने-जाने वाली संगत की सँभाल, उनका सामान उठाना और उन्हें डेरे तक पहुंचाने का कार्य बड़ी सावधानी से करते हैं। ट्रेन दिन में स्टेशन पर पहुँचे या रात के पहले, दूसरे या तीसरे पहर में, हर समय बस और सेवादारों की सेवा आने वालों को मिलती है। सेवदार उन्हें बड़े स्नेह और आदर के साथ डेरे तक पहुँचा देते हैं। डेरे पहुँचने पर अतिथि विभाग, पूछ-ताछ दफ्तर तथा सेवा समिति संगत के ठहरने का समुचित प्रबन्ध करते हैं; और सतगुरु का लंगर, भोजन-भण्डार, कैंटीनें और टी-स्टाल उनके खानेपीने का दायित्व सँभालते हैं। भण्डारे से चार पांच दिन पहले जैसे जैसे संगत बढ़ती है कैंटीनों की गिनती भी बढ़कर ५-६ तक पहुँच जाती है। पीने के पानी के प्याऊ का प्रबन्ध जगह-जगह कर दिया जाता है, ताकि संगत को तकलीफ़ न हो। खाने-पीने और ठहरने आदि का सारा कार्य-भार सेवादार ही सँभालते हैं, जिनके प्रबन्धक और मुखिया डेरे में स्थायी रूप से निवास करने वाले अवकाश-प्राप्त अनुभवी सज्जन होते हैं।

सवेरे के नाश्ते और चाय-पानी के बाद सत्संग होता है। यह सत्संग हुज़ूर महाराज जी आप ही प्रदान करते हैं। दो-ढाई लाख स्त्री-पुरुष खुले

मैदान में शामियानों के नीचे बैठ कर सत्संग सुनते हैं। लाउड स्पीकरों की सहायता से हुज़ूर के अमृत-वचन दूर दूर बैठे हर व्यक्ति को सुनाई देते हैं और हुज़ूर के अलौकिक तेजस्वी व्यक्तित्व से आकर्षित मंत्रमुग्ध से खामोश बैठे वे उस दिव्य-सन्देश का स्वाद लेते हैं। महाराजजी का व्यक्तित्व और स्वरूप इतना प्रभावशाली होता है कि भारतीय भाषा को न समझने वाले योरोपीय, अमेरिकन और दूसरे विदेशी स्त्री-पुरुष भी संगमरमर की मूर्ति जैसे बिना हिले-डुले एकटक उस दिव्य-रूप को निहारते रहते हैं। ये लोग इतनी दूर से परमार्थ की खोज में डेरे आते हैं, और कुछ महीने ही यहां रह सकते हैं, अत: इनकी सुख-सुविधा का ध्यान भी विशेष रखा जाता है।

सत्संग की समाप्ति के लगभग एक घण्टे के बाद (सेवा के समय) हुज़ूर महाराजजी एक ऊंचे स्थान पर बैठकर संगत को दर्शन देते हैं। स्त्री-पुरुष दर्शन करते हुए धीरे-धीरे सामने से गुज़रते हैं। अपनी भावना और सामर्थ्य के अनुसार वे सेवा सन्दूकची में डालते जाते हैं और दर्शन करके, प्रसाद लेकर कृतार्थ होते हैं। इसके बाद संगत दोपहर के भोजन के लिये लंगर और भोजन-भण्डार की ओर चली जाती है।

लंगर में बर्तन साफ़ करने, आटा, दाल आदि सामान खाना बनाने के स्थान पर लाने, भोजन बरताने आदि सभी कार्य प्रेमपूर्ण श्रमदान से होते हैं। महिलायें सुबह से दोपहर तक तथा दोपहर से रात तक लोहे के बड़े बड़े तवों के चारों ओर बैठ कर रोटियां बनाती हैं। मई और जुलाई की सख्त गरमी में सत्संगी महिलायें भट्टी के पास बैठकर प्रेम के साथ रोटी बनाती हैं। पसीने में स्नान किन्तु सतगुरु के प्रेम में लीन वे शब्द गाती जाती हैं और गुरु की संगत के लिये लगन पूर्वक भोजन तैयार करती जाती हैं।

इतनी विशाल संगत को खिलाने पिलाने की समस्या इतनी बड़ी और कठिन है कि कोई अलौकिक शक्ति ही उसे सँभाल सकती है। जैसे-जैसे संगत बढ़ती जाती है लंगर का क्षेत्रफल भी बढ़ता जाता है। आजकल एक साथ ३०-४० हज़ार स्त्री-पुरुष एक पंगत में बैठ कर भोजन करते हैं; और भोजन बरताने वाले सेवादार चल चल कर नहीं, दौड़-दौड़ कर भोजन बरताते हैं। भण्डारे के दिनों में डेढ़-पौने दो लाख व्यक्ति लंगर में भोजन पाते हैं। बाकी का भार भोजन भण्डार की कैंटीनें सँभालती हैं। इतनी भारी भीड़ में कोई भूखा नहीं रहता। आजकल लंगर का क्षेत्रफल और भी बढ़ाया जा रहा है जिससे आने वाले दिनों में बढ़ती हुई संगत को तकलीफ़ न हो।

दोपहर के खाने और थोड़े से आराम के बाद सेवा की घण्टी बजते ही

संगत खुले मैदान में सेवा के लिये चली जाती है। यह सेवा विविध प्रकार की होती है। नदी की ओर के टीबों को काटकर मिट्टी लाकर ज़मीन समतल करना, घास, झाड़ियां आदि काटकर मैदान को साफ करना, नदी के किनारे से मोटा घास (कांस) काटकर लंगर में बालन (ईंधन) के लिये लाना, ईंट-रेती आदि उठाकर निर्माण-स्थल पर लाना, ईंटों को तोड़ कर रोड़ी बनाना आदि सेवायें चलती तो पूरे वर्ष ही हैं पर भण्डारे के दिनों का दृश्य देखने वाला होता है। सेवा करने वाली संगत इतनी होती है कि मिट्टी उठाने की टोकरियों की कमी पड़ जाती है और रोड़ी तोड़ने के लिये हथौड़ियों की। अमीर, गरीब, विद्वान-अनपढ़, शासकीय अधिकारी, वकील, प्रोफ़ेसर, डाक्टर, व्यापारी, उद्योग पति से लेकर सरल-हृदय कृषक व मज़दूर आपसी भेद-भाव भूल कर सेवा में भाग लेते हैं।

रूहानी सत्संग, सतगुरु के दर्शन, उनके अमूल्य वचन और सेवा संसार के दुःख-संताप से जलती हुई संगत को अलौकिक शान्ति प्रदान करते हैं।

डेरा निवासियों के समान ही हुज़ूर महाराजजी का दिन भी १८-१९ घण्टे का होता है, किन्तु कहीं अधिक व्यस्त तथा श्रमपूर्ण। हुज़ूर की दिनचर्या सुबह तीन बजे से शुरू होती है। भजन तथा स्नानादि से निवृत्त हो आप सुबह आठ साढ़े आठ बजे तैयार होकर अपनी कोठी के निजी आफ़िस में आ जाते हैं। हुज़ूर के निजी सचिव (पर्सनल सेक्रेटरी) पत्र तथा अन्य आवश्यक काग़ज़ों के साथ आते हैं। सत्संग के सेक्रेटरी, डेरे के कुछ आफ़िसर, इंजीनियर आदि कार्यकर्ता भी दिन-भर के कार्यों के विषय में चर्चा करने के लिये मौजूद रहते हैं। इसके बाद साढ़े नौ से ग्यारह बजे तक हुज़ूर सत्संग प्रदान करते हैं। सत्संग के तुरन्त बाद विदेश से आये हुए सत्संगियों से मिलते हैं तथा कुछ नये आगन्तुकों को अलग समय देते हैं।

इसी समय हुज़ूर डाक में आय हुए पत्रों का अवलोकन करते हैं। आज-कल करीब तीन सौ पत्र प्रतिदिन आते हैं, जिनमें लगभग सौ पत्र अंग्रेज़ी में तथा बाकी हिन्दी, सिंधी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं में होते हैं जिनका उन्हीं भाषाओं में उत्तर लिखाया जाता है। इन पत्रों में आध्यात्मिक जिज्ञासा तथा आन्तरिक व अभ्यास-सम्बन्धी प्रश्नों से लेकर पारिवारिक उलझनों, व्यवसायिक समस्याओं, बीमारी, आपरेशन, विवाह, सन्तान, नौकरी, मुकद्दमें आदि परेशानियों में सतगुरु से मार्गदर्शन और दया-मेहर की याचना होती है। यद्यपि संगत से केवल आध्यात्मिक तथा अभ्यास-सम्बन्धी समस्याओं पर पत्र-व्यवहार की अपेक्षा की जाती है, फिर भी अन्य बातों पर लिखे प्रत्येक पत्र का उत्तर दिया जाता है। अंग्रेज़ी पत्रों में अधिकांश पत्र विदेश से सत्संगियों और जिज्ञासुओं के होते हैं।

साढ़े ग्यारह से बारह बजे के बीच में महाराजजी लंगर में तशरीफ़ ले जाते हैं और रोटी बनाने, दाल, सब्ज़ी आदि पकाने के विभिन्न स्थानों पर जाते हैं। इस समय संगत भोजन के लिये पंगत में बैठी होती है। भण्डारे के दिनों में एक-एक बार में तीस-तीस चालीस-चालीस हज़ार व्यक्ति विधिपूर्वक पंक्तियों में बैठे रहते हैं। हुज़ूर उनके बीच में से होते हुए लंगर के विभिन्न हिस्सों में जाते हैं, सम्पूर्ण व्यवस्था का निरीक्षण करते हैं तथा भोजन पर दृष्टि डालते हैं। अनुशासन, प्रेम और भक्ति का यह दृश्य अपूर्व होता है।

लंगर से महाराजजी सीधे सत्संग पण्डाल में पधारते हैं, जहाँ संगत धन की सेवा के लिये आती है। संगत अपनी इच्छा तथा भावना के अनुसार रुपया अथवा सामान राधास्वामी सत्संग ब्यास सोसाइटी को भेंट करती है। यह राशि सेक्रेटरी के निरीक्षण में सत्संग के कार्यकर्ता तथा सेक्रेटरी या ट्रस्ट द्वारा नियुक्त विश्वसनीय सत्संगी लेते हैं और भेंटकर्ता को रसीद आदि देते हैं। यह सम्पूर्ण राशि ट्रस्ट के हिसाब में जमा की जाती है और हुज़ूर महाराजजी, सेक्रेटरी, ट्रस्टी अथवा कोई भी कार्यकर्ता उसे अपने उपयोग में नहीं लेते।
दोपहर के बारह बजे से करीब डेढ़ बजे तक हुज़ूर इस सेवा में बैठे रहते हैं। इस समय में उन सत्संगियों से जिन्हें आन्तरिक अथवा अभ्यास-सम्बन्धी समस्याओं के बारे में पूछना हो, हुज़ूर बात करते हैं।

इस सेवा से वापस आते हुए डेढ़-दो बज जाते हैं और हुज़ूर दोपहर का भोजन करने के बाद मुश्किल से आधा या पौन घण्टा आराम कर पाते हैं। तीन से चार बजे तक पत्रों के उत्तर लिखाने तथा डेरा सम्बन्धी अन्य कार्य को निपटाने के बाद हुज़ूर चार बजे उस स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ संगत तन की सेवा कर रही है। हुज़ूर एक ऊँचे स्थान पर कुर्सी पर बिराजते हैं, जहाँ से सेवा करने वाली संगत दर्शन कर सके। परन्तु इस डेढ़ घण्टे के समय में भी महाराजजी व्यस्त रहते हैं। मुलाकात चाहने वाले सत्संगियों व जिज्ञासुओं से बात करने, डेरे के इंजीनियरों से निर्माण-कार्य के विषय में विचार-विमर्श करने और हिन्दी, सिंधी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं के पत्रों के उत्तर लिखवाने में करीब-करीब पूरा समय बीत जाता है।

सेवा के उपरान्त साढ़े पाँच बजे के बाद अपनी कोठी में पहुँचते ही हुज़ूर डेरे के सेक्रेटरी से विभिन्न आवश्यक कार्यों के विषय में चर्चा करते हैं तथा उन्हें अपने सुझाव और निर्देश देते हैं। इसमें करीब सवा छः बज जाते हैं। इसके बाद हुज़ूर शाम को पुनः लंगर के निरीक्षण और भोजन पर दृष्टि डालने के लिये लंगर में तशरीफ़ ले जाते हैं।

साढ़े छः से साढ़े सात तक हुज़ूर गेस्ट-हाऊस के मीटिंग-हाल में विदेश से आये हुए सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं को अंग्रेज़ी में सत्संग प्रदान करते हैं। इस समय में हुज़ूर उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं। इन प्रश्नों का क्षेत्र सन्त-मत के सिद्धान्त, भजन-सुमिरन की रीति आदि से लेकर सत्संगी के दैनिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं तक होता है। हुज़ूर प्रत्येक प्रश्न का सरल स्पष्ट उत्तर प्रदान करते हैं। प्रश्नोत्तर के बाद सत्संग होता है। हुज़ूर अक्सर बाइबिल में से सत्संग प्रदान करते हैं और बाइबिल के प्रतीकों, दृष्टान्तों तथा कथाओं में छिपे रूहानियत के अनमोल रत्नों को प्रकट करते हैं।

अंग्रेज़ी सत्संग के बाद हुज़ूर वापस अपनी कोठी में आकर भोजन करते हैं तथा भोजन के बाद रात्रि को आठ बजे से नौ अथवा साढ़े नौ तक का समय सत्संगियों से मिलने अथवा अपने आफ़िस में बैठ कर दिन भर के बकाया कार्य को पूरा करने, किसी नई पाण्डुलिपि को देखने आदि में निकल जाता है। इसके बाद हुज़ूर अपने शयन-कक्ष में चले जाते हैं तथा दस-पन्द्रह मिनिट पढ़ने के बाद बत्ती बन्द कर लेते हैं। उन्नीस घण्टे के लम्बे, श्रमपूर्ण और व्यस्त दिन के बाद रात्रि को दस बजे सतगुरु दीन-दयाल निद्रा के केन्द्र पर तवज्जह देते हैं अथवा ऊँचे रूहानी मण्डलों पर गमन करते हैं, यह तो वे ही जानें। जैसा कि एक पहुँचे हुए अभ्यासी मित्र ने एक बार मुझसे कहा था कि सन्त-सतगुरु जिस परमपिता परमात्मा के सेवक होते हैं, उस मालिक के दरबार में उन्हें एक क्षण के लिये भी छुट्टी नहीं मिलती, यहाँ तक कि निद्रावस्था में भी नहीं। हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी फ़रमाया करते थे कि अन्तर में शब्द से जुड़ जाने पर अभ्यासी को शब्द से इतनी स्फूर्ति और ताज़गी प्राप्त होती है कि उसे ज़्यादा नींद की ज़रूरत महसूस नहीं होती।

और सन्त तो स्वयं देहधारी शब्द होते हैं।

अध्याय ५

सन्तों की शिक्षा

पिछले बाँसठ वर्षों से मुझे तीन परम सन्तों के चरणों में बैठ कर उन की अनुभव-पूर्ण शिक्षा को ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वास्तव में उनकी शिक्षा ही उनके जीवन का प्रमुख अंग है जिसका उल्लेख किये बिना यह पुस्तक अधूरी ही रहेगी। इसलिये उनकी शिक्षा के सार को यहाँ संक्षेप में दे रहा हूँ।

सन्त सुनी-सुनाई या पढ़ी-पढ़ाई बात नहीं करते। जो कुछ उन्होंने स्वयं देखा है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है वही प्रकट करते हैं। जैसा कि दादू साहिब कहते हैं, 'दादू देखा दीदा, सब कोई कहत शुनीदा' कि लोग तो सुनी-सुनाई बात करते हैं परन्तु मैंने परमात्मा को प्रत्यक्ष देखा है और देख कर कह रहा हूँ।

सन्त चाहे किसी भी जाति, देश अथवा समय में क्यों न आये हों, सबका एक ही उपदेश है। वे कोई नई जाति बनाने या किसी नये धर्म की स्थापना करने नहीं आते। वे हमें जन्म-मरण के बन्धनों से, मोह-माया के जाल और चौरासी के भयानक कारागृह से छुड़ा कर परमपिता परमात्मा से मिलाने के लिये आते हैं। लेकिन ऐसे महात्माओं के जाने के बाद हम बाहरमुखी हो जाते हैं, शरीयत या कर्मकाण्ड में उलझ जाते हैं, और सन्तों की असली शिक्षा को भूल जाते हैं। उनके निर्मल रूहानी उपदेश को हम जाति, धर्म और देश की संकीर्ण सीमाओं में बन्द करके आपसी विवाद और झगड़े पैदा कर लेते हैं।

सन्त कहते हैं कि जिस धर्म, जाति, समाज अथवा देश में हम पैदा हुए हैं, उसी में अपना गुज़ारा करें। मज़हब बदलने से खुदा नहीं मिलता। ये जाति और धर्म मनुष्य के द्वारा निर्मित हैं, परमात्मा के बनाये हुए नहीं। परमात्मा के मिलाप के लिये न हमें धर्म-परिवर्तन की ज़रूरत है, न किसी बाहरी भेष को अपनाने की; न सिर मुंडाने की ज़रूरत है, न लम्बे केश रखने की; न गेरुए पहनने की आवश्यकता है, न नीले या पीले वस्त्र धारण

करने की। परमात्मा की प्राप्ति के लिये हमें न तो घरबार छोड़ कर साधू बनना है, न समाज से भाग कर जंगलों में जाना है और न ही उसकी तलाश में हमें गुफाओं व कन्दराओं, पहाड़ों व उजाड़ों में भटकना है। परमात्मा हमारे शरीर के अन्दर है, बाहर नहीं। जिसे भी मिला है, अपने अन्दर मिला है और जिसे भी मिलेगा अपने अन्दर ही मिलेगा।

हमारा शरीर वह सच्चा 'हरि-मन्दिर' है जहाँ वह मालिक निवास करता है। सभी सन्तों का यही कथन है। गुरु नानक साहब का कथन है, 'हरि मन्दिर एहु सरीरु है'। दादू साहब भी कहते हैं कि लोग मालिक की तलाश में बाहर भटक रहे हैं, परन्तु वह तो हमारे घट के अन्दर है—

"कोई दौड़े द्वारिका, कोई काशी जाहिं।
कोई मथुरा को चलै, साहब घट ही माहिं।"

बुल्लेशाह कहते हैं कि वह परमात्मा हम से भिन्न नहीं है, 'बुल्ला शौह असां तो वख नहीं।' तुलसी साहब फ़रमाते हैं कि बड़े अफ़सोस की बात है, मनुष्य बाहर नकली मन्दिरों-मस्जिदों में जाकर परमात्मा की तलाश करता है, जब कि उस मालिक का निवास मनुष्य के शरीर रूपी कुदरती मस्जिद में है। हज़रत ईसा ने ख़ुदा की बादशाहत को हमारे अन्दर बताया है और गुरु अमरदासजी का कथन है कि हमारे शरीर रूपी गुफ़ा में अखुट भण्डार है और इसी में वह अलख और अपार परमात्मा निवास करता है। कबीर साहब ने तो स्पष्ट कहा है—

तुरक मसीते, हिन्दू देहरे* आप आप को धाए।
अलख पुरख घट भीतरै, ताको लखा न जाए॥

परमात्मा का मिलाप केवल मनुष्य-जन्म में ही सम्भव है। बाकी किसी भी जून को परमात्मा से मिलाप करने की योग्यता नहीं है। देवी-देवता भी मनुष्य-जन्म के लिये तरसते हैं। चौरासी के चक्कर के बाद मनुष्य-जन्म बड़े भाग्य से मिलता है। यह परमात्मा की प्राप्ति का अमूल्य अवसर है। गुरु अर्जुनदेवजी फ़रमाते हैं कि हमने कई जन्म कीड़ों-पतंगों के, हाथी, मृग, मछली आदि के पाये हैं। कई जन्म पक्षियों व सर्पों के मिले तथा कई जन्म हमने घोड़ों, पशुओं और पेड़-पौधों के पाये। चिरकाल के बाद यह मनुष्य-जन्म की बारी आई है। यह परमात्मा से मिलने का अवसर है, इसका पूरा लाभ उठाना चाहिये (गउड़ी, पृ. १७६-१०)। स्वामीजी महाराज का कथन है, 'यह तन दुर्लभ तुमने पाया। कोटि जनम भटका जब खाया।' अब इसे

* मन्दिर।

व्यर्थ खो नहीं देना चाहिये। फ़ारस के सन्तों ने भी इसी भाव को प्रकट किया है। मौलाना रूम फ़रमाते हैं कि वनस्पति की तरह मैं कई बार पैदा हुआ हूँ और सात सौ सत्तर शरीर मैंने देखे हैं।* एक और फ़ारस के सन्त कहते हैं—

'गाहे नख़ल दर बाग़हा, गाहे समर बर शाख़हा।'

अर्थात कई बार मैं घास और सब्ज़ी की तरह पैदा हुआ हूँ और पेड़ों पर फल बन कर लगा हूँ।

उस परमपिता परमात्मा, कुल मालिक को सन्तों-महात्माओं ने अपने प्यार में आकर अनेक नामों से पुकारा है। परन्तु मौलाना रूम के शब्दों में 'ऊ नामे नदारद' उसका कोई नाम नहीं है। हमने उस मालिक के जितने भी नाम रखे हैं, वे सभी लिखने, पढ़ने और बोलने में आते हैं। उन सबका हम इतिहास बतला सकते हैं, समय निश्चित कर सकते हैं। स्वामीजी महाराज के आने के बाद हमने उस मालिक को 'राधास्वामी' कहना शुरू कर दिया। गुरु नानक साहब के बाद हमने परमात्मा को 'वाहिगुरु' कह कर पुकारना शुरू कर दिया। मुहम्मद साहब के बाद हम उस मालिक को 'अल्लाह' कह कर याद करने लगे। स्वामीजी महाराज को आये सौ वर्ष, गुरु नानक साहब को आये पाँच सौ वर्ष तथा हज़रत मुहम्मद साहब को आये चौदह सौ वर्ष हुए हैं। लेकिन आज से सौ, पाँच सौ अथवा चौदह सौ वर्ष पहले भी दुनिया के जीव यहीं थे, वही मालिक था तथा लोग किन्हीं और लफ़्ज़ों से उसे याद करते थे। इसी प्रकार राम, जेव्होवा, ख़ुदा, आदि सभी नामों की कोई न कोई मियाद अथवा समय है।

जो नाम लिखने, पढ़ने व बोलने में आता है, जिसका समय निश्चित किया जा सकता है, उसे महात्मा वर्णात्मक नाम कहते हैं। लेकिन जिस नाम की सन्त महिमा करते हैं, जिस नाम से जुड़ कर हमें मुक्ति प्राप्त करना है, आत्मा तथा मन की ग्रन्थि को खोलना है, अपने आपको पहचान कर मालिक को पहचानने के योग्य बनना है, उस नाम की कोई अवधि नहीं है। वह अनादि और अनन्त है। वह धुनात्मक नाम है, सच्चा नाम है, वह न लिखने में आता है, न पढ़ने में आता है और न बोलने में। 'ज़िक्रे बेकाम व बेज़बान ऊ रा अस्त', उसका ज़िक्र बिना तालू और ज़बान के किया जाता है। सन्तों ने उसे नाम और शब्द कह कर पुकारा है। वेदों ने उसे उद्गीत, नाद और आकाशवाणी कहा है। ईसा मसीह ने उसे 'वर्ड' या 'लोगास', हज़रत मुहम्मद

---

* 'हमचो सब्ज़ा बारहा रोईदा अम। हफ़्तो सद हफ़्ताद क़ालिब दीदा अम॥'

साहब ने 'कुन' और 'कलाम' तथा फ़ारस के सन्तों ने उसे 'निदाए आसमानी' 'बांगे-इलाही' आदि कहा है । गुरु नानक साहब तथा अन्य सन्तों ने उसे शब्द, अमर, सच, वाणी, गुरुवाणी, हुक्म, कीर्तन, अकथकथा, निर्मल नाद आदि नामों से पुकारा है ।

इस नाम या शब्द ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है । गुरु अमरदासजी कहते हैं, 'नामै ही ते सभु किछु होआ' अर्थात जो कुछ भी हम दुनिया में देख रहे हैं सब नाम के द्वारा ही पैदा हुआ है । कुरान शरीफ़ में आया है कि 'कलमा' या 'कुन' के ज़रीये मालिक ने दुनिया पैदा की है । चीन के दर्शन-शास्त्रों में उल्लेख है कि 'टाओ' ने दुनिया की रचना की है । हज़रत ईसा फ़रमाते हैं, "आदि में शब्द था, शब्द परमेश्वर के साथ था । सब कुछ उसी के द्वारा बना और जो कुछ बना है उसमें से कोई भी वस्तु उसके बिना नहीं बनी ।" (जॉन, १ : १, २, ३) । गुरु नानक साहब समझाते हैं—

"सबदे धरती सबदे आकास । सबदे सबद भया परगास ।।
सगली सृसटि सबद के पाछे । नानक सबद घटे घट आछे ।।"

मुसलमान सन्तों का भी यही कथन है । शम्स तब्रेज़ कहते हैं कि इस आवाज़ से आलम या संसार प्रकट हुआ, 'आलम अज़ सौते ईं ज़हूर गरिफ़्त ।'

परमात्मा और उसके इस सच्चे नाम में भेद नहीं । नाम और नामी एक हैं । ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती कहते हैं, 'मयाने इस्म व मुसम्मा चो फ़र्क नेस्त' कि नाम और नामी के बीच में कोई फ़र्क नहीं है । इसी शब्द के विषय में ईसा मसीह ने कहा है, "शब्द ही परमात्मा था" (जॉन, १ : १) ।

हमारी आत्मा उस परमात्मा का अंश है, उस सतनाम रूपी समुद्र की बूँद है । अपने असल से बिछुड़ कर इस संसार में आकर यह निरन्तर दुःख उठा रही है । यहाँ आकर इसने मन का साथ ले लिया है । मन के अधीन होकर आत्मा कर्मों के जाल में फँस गई है तथा अच्छे और बुरे कर्मों के फलस्वरूप बार-बार दुनिया में आकर इसे जन्मना और मरना पड़ रहा है । यह संसार कर्म-भूमि है । जैसे भी कर्म हम करते हैं वैसा ही फल भुगतने के लिये यहाँ आते हैं । इस संसार रूपी खेत में यदि मिर्चं बोते हैं तो मिर्चं, और यदि गन्ना लगाते हैं तो गन्ने की फसल काटने आना पड़ता है । यदि केवल नेक कर्म करते हैं तो स्वर्गों में पहुँच जाते हैं । परन्तु अपनी अवधि पूरी करने पर स्वर्ग से भी वापस आना पड़ता है । इस संसार में कहीं सुख नहीं है; राजा व रंक, अमीर और गरीब, विद्वान और अनपढ़ सभी यहाँ आकर दुःख उठा रहे हैं । हमें सच्चा सुख, सच्ची शान्ति वापस जाकर परमात्मा से

मिलाप करके अपने असल में लीन होने पर ही प्राप्त हो सकती है।

हमारा रूहानी सफर पैरों के तलवों से लेकर सिर की चोटी तक है। इस सफर की दो मंज़िलें हैं, एक आँखों तक तथा दूसरी आंखों से ऊपर। आँखों से नीचे आँख, कान, नाक आदि नौ द्वार हैं जिनके द्वारा हमारा ख़याल बाहर सारे संसार में फैल रहा है। इन नौ द्वारों में दुनिया के कारोबार हैं, इन्द्रियों के फीके स्वाद हैं। इन नौ द्वारों में मुक्ति नहीं है। आँखों से ऊपर मन और आत्मा का केन्द्र है, इसे सन्तों ने तीसरा तिल व मुक्ति का दरवाज़ा कहा है। मुसलमान फ़कीरों ने इसे 'नुक्ताए सुवैदा' और हज़रत ईसा ने 'अपने घर का दरवाज़ा' कह कर समझाया है। इसी केन्द्र से उतर कर हमारा ख़याल नौ द्वारों के ज़रिये सारे संसार में फैल रहा है। हमारा मन निरन्तर बाहर भटक रहा है। हमें इसे बाहर से समेट कर इस केन्द्र में लाना है। इस स्थान पर वह शब्द, मालिक की दरगाह धुरधाम से उठ कर, निरन्तर आ रहा है। इस केन्द्र पर अपनी सुरत अर्थात आत्मा को समेट कर ही हम उस शब्द से जुड़ कर अपनी रूहानी यात्रा शुरू कर सकते हैं। इस रूहानी अभ्यास के लिये सन्त हमें सुमिरन, ध्यान और भजन के साधन बताते हैं।

हमारे मन को निरन्तर सोचने व दलीलें करने की आदत पड़ी हुई है। इसे महात्मा सुमिरन कहते हैं। जिसका हम सुमिरन करते हैं, उसकी शक्ल भी हमारी आँखों के आगे आ जाती है। अगर बाल-बच्चों का सुमिरन करते हैं तो बाल-बच्चों की शक्लें आँखों के आगे आ जाती हैं, अगर घर के कारोबार का ख़याल आता है तो वे हमारी आखों के सामने आ जाते हैं। इसे महात्मा ध्यान करना कहते हैं। जिसका हम सुमिरन करते हैं उसका ध्यान भी साथ ही शुरू हो जाता है। जिन शक्लों और पदार्थों का हम सुमिरन और ध्यान करते हैं, उनके साथ हमारा मोह और प्यार पैदा हो जाता है। 'जहाँ आसा तहाँ बासा', मौत के बाद अपने मोह और लगाव से बँध कर वहीं जाकर जन्म लेते हैं, जहाँ हमारा मोह व प्यार होता है। इस प्रकार संसार की शक्लों और वस्तुओं का प्यार हमें बार-बार इस संसार में ही ले आता है। सन्त हमें संसार के सुमिरन के स्थान पर मालिक के नाम के सुमिरन तथा संसार के नाशवान पदार्थों के ध्यान के स्थान पर चेतन और अविनाशी के ध्यान की विधि सिखाते हैं।

सुमिरन के द्वारा हम फैले हुए ख़याल को समेट कर तीसरे तिल में एकत्रित करते हैं, ध्यान के द्वारा उसे यहाँ ठहराते अथवा स्थिर करते हैं

और शब्द से जुड़ कर उसके द्वारा ऊपर के रूहानी मण्डलों में जाते हैं। हम मन-माया के मण्डलों को पार करते हुए शुद्ध चेतन लोकों में प्रवेश करते हैं और अन्त में धुरधाम पहुँच कर परमपिता परमात्मा में लीन हो जाते हैं। सुमिरन, ध्यान और धुन (शब्द) के इस अभ्यास को सुरत-शब्द योग का मार्ग कहा गया है। दूसरे शब्दों में यह सुरत अर्थात आत्मा को शब्द से जोड़ने का मार्ग है।

इस अभ्यास में जब आत्मा शरीर से सिमट कर तीसरे तिल से आगे सूर्य, चन्द्र और तारा मण्डल को पार करके ऊपर जाती है तो अपने सतगुरु के ज्योतिर्मय शब्द-स्वरूप के दर्शन करती है। सतगुरु का यह परम चेतन स्वरूप शिष्य की आत्मा को ऊपर के रूहानी मण्डलों में से ले जाता हुआ धुरधाम पहुँचता है। शब्द के अभ्यास और सतगुरु के ध्यान के द्वारा शिष्य अपने गुरु के इस ज्योतिर्मय स्वरूप में लीन होने लगता है। गुरु नानक साहिब इस अवस्था की ओर संकेत करते हुए कहते हैं, 'आप छोड़ि गुर माहि समाओ'। मुसलमान सन्त इस अवस्था को 'फ़नाफ़िशशैख' होना—अर्थात अपने गुरु में अपने अस्तित्व को खो देना—कहते हैं।

यहाँ से सतगुरु शिष्य को ऊपर के मण्डलों में ले जाते हैं और सबसे पहले सहस्र-दल कमल में प्रवेश करते हैं। इसे योगियों ने सहस्रार भी कहा है और यह स्थान उनकी अन्तिम मंज़िल है। परन्तु सन्तों की रूहानी यात्रा के मार्ग में यह पहला मुकाम है। यहाँ से आगे ब्रह्म का देश आता है जिसे त्रिकुटी कहा गया है तथा जिसे फ़ारस के सन्तों ने 'मुसल्लसी' कहा है। यह हमारे मन के उद्‌गम का स्थान है। अनेक ऋषि-मुनि, योगीश्वर, वली, आदि इस स्थान पर बैठे हैं। लेकिन सन्त और उनके द्वारा चिताये हुए जीव इस स्थान से कहीं ऊपर जाते हैं। यहाँ मन का साथ छूट जाता है, आत्मा मन के बन्धन से मुक्त हो जाती है। इस के आगे, त्रिकुटी और सचखण्ड के बीच के अन्य मण्डलों को पार करती हुई आत्मा धुरधाम सचखण्ड में अपने निज-देश पहुँच जाती है। ब्रह्म तक के लोक प्रलय और महाप्रलय में नष्ट हो जाते हैं। सतलोक प्रलय और महाप्रलय की पहुँच से परे निर्मल चेतन धाम है, जहाँ पहुँचने पर हमारा जन्म-मरण के चक्कर से सदा के लिये छुटकारा हो जाता है।

यह गति केवल उसी जीव को प्राप्त हो सकती है जिसे पूर्ण गुरु प्राप्त हुआ हो तथा उनसे नाम के अभ्यास की विधि मिली हो। केवल सतगुरु ही हमें सुमिरन व ध्यान की विधि प्रदान कर सकते हैं तथा वे ही हमारी आत्मा

को अन्तर में शब्द से जोड़ सकते हैं। सभी धर्मों में, वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों, पुराणों आदि में गुरु की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है। बाहरी संसार में भी हम बगैर गुरु के साधारण दुनियावी हुनर तक नहीं सीख सकते। विज्ञान, चिकित्सा, शिल्प, लुहारी, सुनारी, मोटर, वायुयान आदि वाहनों का चालन आदि की योग्यता इन विषयों के ज्ञाता पुरुषों से ही प्राप्त होती है। बोलने, चलने, पढ़ने, लिखने आदि के लिये जन्म से ही हमें किसी न किसी को गुरु धारण करना पड़ता है। जब बाहर के कार्यों को सीखने के लिये हमें गुरु की ज़रूरत पड़ती है तो परमार्थ तो कठिन आन्तरिक विषय है, जिसके बारे में हमें कुछ भी पता नहीं, इसमें हम गुरु के बगैर एक कदम भी नहीं चल सकते। कबीर साहब कहते हैं—

"वस्तु कहीं ढूंढै कहीं, किह बिध आवै हाथ।
कहु कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजै साथ॥"

मौलाना रूम फ़रमाते हैं कि बगैर पीर (गुरु) के इस मार्ग पर सफ़र करना ख़तरों से खाली नहीं[1]। अगर तू हज पर जाना चाहता है तो किसी हाजी को अपने साथ ले और इस बात की परवाह न कर कि वह हिन्दू है, तुर्क है या अरब[2]। बगैर गुरु के तो रूहानी मण्डलों में प्रवेश करना तक असम्भव है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं, 'बिन गुर दाते कोइ न पाए, लख कोटी जे करम कमाए' अर्थात् गुरु की बख्शिश के बिना प्रभु को कोई नहीं पा सकता, चाहे वह अपने आप करोड़ों प्रकार के कर्म और यत्न कर ले। गोस्वामी तुलसीदास जी भी इसी भाव को प्रकट करते हैं—

"गुरु बिन भवनिधि तरै न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई॥"

गुरु रामदास जी का कथन है—

"गुरु जहाजु खेवट गुरू, गुर बिनु तरिआ न कोइ॥
गुरु प्रसादि प्रभु पाईऐ, गुर विनु मुकति न होइ॥"

बाइबिल में भी गुरु की आवश्यकता पर कई जगह स्पष्ट संकेत हैं। हज़रत ईसा फ़रमाते हैं, "जो कोई परमपिता के पास जाता है, मेरे ज़रिये जाता है" (जान, १४:६) और "जो कोई पुत्र को नहीं जानता, वह पिता को भी नहीं जान सकता"। गुरु अर्जुनदेव जी फ़रमाते हैं—

'मत को भरमि भुलै संसारि॥ गुर बिनु कोई न उतरसि पारि॥"

---

१. पीर रा बगुज़ीं के बेपीर ईं सफ़र, हस्त पुर आफ़त व पुर ख़ौफ़ो ख़तर।
२. मर्दे हज्जी हमराही हाजी तलब, ख़्वाह हिन्दू ख़्वाह तुर्को अरब।

यही बात हाथरस के प्रसिद्ध सन्त तुलसी साहब ने कही है, 'बिना करम[१] किसी मुर्शिदा रसीदा[२] के, राहे-निजात[३] दूर है उस पार देखना'। सभी सन्तों-महात्माओं ने गुरु की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है तथा अपने गुरु की महिमा की है। मौलाना रूम अपने विषय में स्पष्ट कहते हैं कि यह साधारण मौलवी मौलाना रूम न बन सका जब तक कि—'गुलामे शम्स तब्रेज़ी न शुद'—वह शम्स तब्रेज़ का गुलाम न बना। अपने गुरु के प्रति कहते हैं कि ऐ साकी (मुर्शिद), तू मौलाना रूम पर दया-मेहर की नज़र कर, मैं कलंदर[४] की तरह कहता हूँ कि मैं शम्स तब्रेज़ का गुलाम हूँ—

"बया साक़ी इनायत कुन तू मौलानाए रूमी रा,
गुलाम शम्स तब्रेज़म कलंदर वार मी गोयम।"

नाम की दीक्षा एक चेतन स्पर्श है जो किसी देह-स्वरूप में मौजूद जीते-जागते पूर्ण गुरु से ही प्राप्त हो सकता है। ग्रन्थों-पोथियों, वेदों-शास्त्रों के पठन-पाठन से नाम की महिमा का पता तो चलता है परन्तु नाम प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार चिकित्सा-शास्त्रों में औषधियों का वर्णन है, औषधियाँ नहीं हैं। औषधियाँ तो चिकित्सक की अलमारी में होती हैं। चिकित्सा-शास्त्र को लेकर उसमें से औषधि के गुणों को पढ़ते रहने से बीमारी दूर नहीं होती, औषधि को लेने से होती है।

संसार में अनेक सन्त, महात्मा, पैगम्बर व मसीहा आये हैं जो अपने समय में जीवों को चेता कर चले गये। परन्तु वे कितने ही महान क्यों न रहे हों, आज आकर हमें 'नाम' की अनमोल दात नहीं दे सकते। उनकी पूजा और उनकी टेक आज जीव का उद्धार नहीं कर सकती। आज अगर कोई व्यक्ति चाहे कि बादशाह जहाँगीर उसके मुकदमें का फैसला करे या लुकमान हकीम उसके रोग का इलाज करे अथवा आज कोई स्त्री राजा वीर विक्रमादित्य से विवाह करना चाहे, तो ये बातें असम्भव हैं। आज के मुकदमे के लिए आज का जज, इलाज के लिए मौजूदा डाक्टर तथा विवाह के लिए जीते-जागते पुरुष की आवश्यकता है।

मनुष्य को मनुष्य ही समझा सकता है, यह प्रकृति का नियम है। परमात्मा इस स्थूल संसार में जीवित पुरुषों के माध्यम से ही कार्य करता है। यदि महात्मा के आने की ज़रूरत किसी भी ज़माने में हुई है, तो स्पष्ट है कि आज भी हमें ऐसे महात्मा की उसी प्रकार आवश्यकता है जैसे कि पहले

---

१. कृपा। २. पहुँचा हुआ गुरु। ३. मुक्ति का मार्ग।
४. ऐसा फ़कीर जो बेपरवाह है और शरह की पाबन्दियों (कर्मकाण्ड के बन्धनों) को नहीं मानता।

थी। मालिक भी यदि जीवों को समझाना चाहे तो उसे मनुष्य-चोले में आना पड़ेगा, उसे साध या सन्त का तन धारण करना ही होगा। गुरु अर्जुनदेवजी फ़रमाते हैं कि उस मालिक ने साध के रूप में तन धारण किया, 'साध रूप अपना तनु धारिआ' (मारू म. ५,१००५-८) और गुरु नानक का कथन है, 'गुर महि आपु रखिआ करतारे' (मारू म. १,१०२४)। गुरु अर्जुनदेवजी फ़रमाते हैं कि मेरे सतगुरु रामदासजी और परमात्मा एक हैं। पर परमात्मा ही रामदास नाम धारण करके आया है, "हरि जीउ नामु परिओ रामदासु।"

पूर्ण गुरु या सतगुरु का असली स्वरूप शब्द या नाम है। वे शब्द या नाम में से आते हैं और हमें शब्द या नाम के साथ जोड़ कर वापस उसी में समा जाते हैं। हज़रत ईसा ने ऐसे महात्मा को 'देह-धारी शब्द' कहा है। वह शब्द जब मनुष्य का जामा पहन कर हमारे बीच आता है तो हमारे लिये देहधारी सतगुरु बन बाता है। सच्चे सतगुरु और परमात्मा एक हैं। हज़रत ईसा कहते हैं, 'मैं और मेरे पिता एक ही हैं' (जान:१०,३०) तथा 'और शब्द देहधारी हुआ और हमारे बीच आकर रहा' (जान, १:४)। मौलाना रूम फ़रमाते हैं कि औलिया अथवा सन्त के अन्दर सच्ची मस्जिद है और सबके लिये यही परमात्मा के सिजदा करने का स्थान है, 'मस्जिदे अस्त अंदरूने औलिया, सजदागाहे जुमला अस्त आँ जा खुदा।'

परमात्मा और उसके सन्तों में कोई भेद नहीं। वे मालिक की भक्ति करके मालिक के रूप हो चुके हैं। सन्त-सतगुरु सतनाम रूपी समुद्र की लहर होते हैं जो दुनिया में आकर हमारे ख़याल को शब्द या नाम के साथ जोड़ कर, हमें अपने साथ ले जाकर उसी सतनाम के समुद्र में समा जाते हैं। गुरु अर्जुनदेवजी फ़रमाते हैं—

"हरि का सेवकु सो हरि जेहा॥ भेदु न जाणहु माणस देहा॥
जिउ जल तरंग उठहि बहु भाती फिरि सललै सलल समाइदा॥"

(मारू म. ५; १०७६-३)

सतगुरु और परमात्मा में भेद केवल इनता ही है कि परमात्मा सतगुरु का ही असली स्वरूप है, जबकि सतगुरु मनुष्य के चोले में परमात्मा है। परमात्मा जब तक सतगुरु का रूप धारण करके मनुष्य चोले में हमारी सतह पर नहीं आता, वह हमारा मार्गदर्शन नहीं कर सकता, वह हमें वापस ले जाकर अपने साथ नहीं मिला सकता। गुरु अर्जुन साहिब ने कहा है, 'गुरु परमेसर एको जाणु।' गुरु रामदास साहब समझाते हैं कि हमने शरीर के अन्दर नाम की कमाई करके एक अनुपम दृश्य देखा है कि गुरु परमात्मा

है और परमात्मा गुरु है, दोनों में कोई भेद नहीं है (आसा म. ४,४४२-१७)। बाईबिल में महात्मा ईसा कहते हैं, 'मुझमें विश्वास करो. मैं पिता में हूँ और पिता मुझमें है' (जान, १४:११)।

संसार में सभी लोग किसी न किसी की भक्ति में लगे हैं, किसी न किसी व्यक्ति अथवा पदार्थ के प्यार में लीन हैं। कोई धन-दौलत का भक्त है तो कोई मान-प्रतिष्ठा का प्रेमी, किसी को बाल-बच्चों से प्यार है तो किसी को मित्रों व सम्बन्धियों से। दुनिया के सभी रिश्ते अस्थाई हैं, सभी पदार्थ नाशवान हैं। इनकी भक्ति हमें परमपिता परमात्मा से नहीं मिला सकती। इनका प्यार अन्त में दुःख का कारण बनता है। इसी प्रकार जाति और देश की भक्ति भी नश्वर की भक्ति है, वैर व विवाद की जननी है और कई बार दुःख और तबाही का कारण बन जाती है। हमें उसकी भक्ति करनी चाहिये जो स्थिर, अटल और अविनाशी है, और वह केवल परमात्मा है। परन्तु परमात्मा को हमने देखा नहीं है और जिसे देखा नहीं उससे प्रेम कैसे हो सकता है। सतगुरु और परमात्मा एक हैं। सतगुरु की भक्ति परमात्मा की भक्ति है। सतगुरु से प्रेम परमात्मा से प्रेम है। सतगुरु परमपिता परमात्मा के अंश हैं, उसमें से आते हैं और वापस जाकर उसी में समा जाते हैं। हम भी सतगुरु के प्रेम से बँधे हुए उनके साथ जाकर परमात्मा में समा जायेंगे।

संसार और सांसारिक पदार्थों का प्यार और हमारा हौमैं अथवा अहंकार सतगुरु के प्रेम में सबसे बड़ी रुकावटें हैं। अपने अहंकार, मोह व सभी प्रकार के प्यार को, यहाँ तक कि सर्वस्व को न्योछावर किये बगैर उस दिव्य प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती। कबीर साहब फ़रमाते हैं कि 'प्रेम पियाला जो पीए, सीस दक्खिना देइ' अर्थात जो भी उस प्रेम के प्याले का स्वाद लेना चाहे उसे अपने शीश अर्थात अपने अहं की भेंट करनी होगी।

"यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काटि पग-तल धरे, तब निकट प्रेम का स्वाद।"

इसी प्रकार ख्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि कम से कम शर्त जो इश्क हमसे चाहता है, वह सिर का देना है। यदि तू यह नहीं कर सकता तो प्रेम का नाम न ले।

'कमीना शर्ते वफ़ा तर्के-सर बवद हाफ़िज़,
बरो अगर ज़े ईं कार बर न मे आयद।'

प्रेम और भक्ति का मार्ग बलिदान का मार्ग है, समस्त वासनाओं,

तृष्णाओं और कामनाओं के त्याग का मार्ग है। अपने समस्त दावों, अधिकारों, अपनी हस्ती तक को मुर्शिद में खो देने का मार्ग है। फ़रीदुद्दीन अत्तार कहते हैं कि हे मालिक! काफ़िरों को कुफ़ और धर्मात्माओं को धर्म—'कुफ़ काफर रा व दीन दीनदार रा'—मुबारक हो, अत्तार को तो अपने दर्दे-दिल का एक कण बख्श दे—'ज़र्राऐ-दर्दे-दिल अत्तार रा'। इस प्रेम के मार्ग में कर्मकाण्ड, शरीयत, तप, त्याग तथा दीन, ईमान सब निरर्थक हैं। हाफ़िज़ साहब फ़रमाते हैं कि जुहद (तप-त्याग) का जो बाना मैंने पहना हुआ था, उसे मैंने मुर्शिद के इश्क की शराब के लिये रेहन (गिरवी) रख दिया है। इसी प्रकार अमीर खुसरो कहते हैं कि मैं इश्क में काफ़िर हो गया हूँ (अर्थात प्रेम में लीन हो कर दीन-ईमान सब खो चुका हूँ) अब मुझे मोमिन बनने की ज़रूरत नहीं। 'हर रगे मन तार गश्ता, हाजते जन्नार नेस्त' कि मेरी रग-रग प्रेम में तार-तार होकर खस्ता हो चुकी है, मुझे जनेऊ की ज़रूरत नहीं। आगे कहते हैं कि प्रेमियों को कयामत के दिन से कोई गरज़ नहीं, उनका काम तो अपने प्रीतम के ज्योतिर्मय स्वरूप को देखते रहना है—

'आशिकां रा रोज़े महशर बा कयामत कार नेस्त,
कारे आशिक जुज़ तमाशाए जमाले यार नेस्त,'

इसी प्रकार पलटू साहब अपनी प्रसिद्ध कुण्डली 'सन्त न चाहें मुकति को, नहीं पदारथ चार' में फ़रमाते हैं कि सन्त मुक्ति, ऋद्धि-सिद्धि, तीर्थ, व्रत, पुण्य, दान, स्वर्ग, बैकुण्ठ आदि की इच्छा नहीं करते। वे इन सभी वस्तुओं को तुच्छ समझते हैं। वे तो केवल परमात्मा और उसकी भक्ति के इच्छुक हैं। गुरु अर्जुनदेवजी ने भी इसी विचार को प्रकट किया है, 'राज न चाहउ मुकति न चाहउ मनि प्रीति चरन कमलारे' (देवगंधारी म. ५,५३४-३) कि मैं सांसारिक पदार्थ, राजपाट आदि नहीं चाहता, परलोक के पदार्थ मुक्ति आदि की कामना भी नहीं करता; मैं तो केवल (अपने सतगुरु के) चरण-कमलों की प्रीति चाहता हूँ।

इस प्रेम और भक्ति के साथ नम्रता, दीनता, पवित्रता, शील, क्षमा, विवेक, सन्तोष आदि गुण भी ज़रूरी हैं। सतगुरु के प्रति आदर, उनकी आज्ञा के पालन में तत्परता, उनकी खुशी में खुश और रज़ा में राज़ी रहने की भावना होना चाहिये। अन्तर में हमेशा यह खयाल रहे कि वह प्रीतम सतगुरु दीन-दयाल हमारे किसी कार्य से कहीं असन्तुष्ट अथवा अप्रसन्न न हो जायें।

नौ द्वारों को खाली करके जब आत्मा तीसरे तिल में प्रवेश करती है तो

शरीर चेतना-शून्य हो जाता है। आत्मा को समेट कर इस केन्द्र पर लाने और यहाँ से ऊपर के रूहानी मण्डलों में ले जाने के अभ्यास में हम उस अवस्था में से गुज़रते हैं जो मृत्यु के समय होती है। यद्यपि इस अभ्यास में शरीर चेतना-रहित हो जाता है, फिर भी प्राणों की क्रिया शरीर में जारी रहती है। अभ्यासी अपने अभ्यास के समय के उपरान्त वापस पूर्ववत् चेतन हो जाता है। इस क्रिया में शरीर को किसी भी प्रकार का नुक्सान नहीं होता है। सन्तों ने नौ दरवाज़ों को खाली करके रूहानी मण्डलों में जानें की इस क्रिया को जीते-जी मरना कहा है। गुरु अंगददेवजी इस अवस्था का वर्णन करते हुए फ़रमाते हैं कि हमें इन आँखों के बिना देखना है, इन कानों के बगैर सुनना है, इन पैरों के बगैर चलना, हाथों के बिना कार्य करना तथा इस ज़बान के बगैर बोलना है। सतगुरु के हुक्म के अनुसार अभ्यास करके इस प्रकार जीवित मरना और परमात्मा से मिलाप करना है।

अखी बाझहु वेखणा विणु कंना सुनणा ॥
पैरा बाझहु चलणा विणु हथा करणा ॥
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा ॥
नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा ॥

(माझ म. २, १३९)

इस जीते-जी मरने की आवश्यकता पर सभी सन्तों ने ज़ोर दिया है। नौ द्वारों को खाली किये बगैर अथवा जीते-जी मरे बिना हम अन्दर के रूहानी लोकों में प्रवेश नहीं कर सकते। दादू साहब कहते हैं, 'दादू पहले मर रहो, पाछे मरे सब कोय'। कुरान शरीफ़ में आया है 'मूतू कबलंता मूतू' अर्थात मौत से पहले मरो। जीते-जी मरने की यह क्रिया जड़ से चेतन को अलग करने की क्रिया है। सतगुरु जीते-जी मरने की विधि सिखलाते हैं तथा इस अवस्था को प्राप्त करने में अन्तर में शिष्य की सहायता करते हैं। सतगुरु ही हमें अन्तर में शब्द या नाम से जोड़ सकते हैं। नाम की कुंजी सतगुरु के हाथ में है, 'सतिगुरु हथि कुंजी, होरतु दरु खुल्है नाही' (माझ म. ३, १२४-१४)। ऐसा पूर्ण गुरु बड़े भाग्य से प्राप्त होता है। गुरु अर्जुन साहब कहते हैं कि जिसका यह घर (शरीर) है उसी ने इस पर ताला लगा रखा है और उसकी कुंजी गुरु को सौंप दी है। मनुष्य चाहे जितने उपाय कर ले, पर सतगुरु की शरण में आये बगैर वह कुंजी नहीं मिल सकती :—

'जिसका गृह तिनि दीआ ताला, कुंजी गुर सउपाई ॥
अनिक उपाव करे नही पावै, बिन सतिगुरु सरणाई ॥'

(गउड़ी म. ५, २०५)

यही विचार शम्स तब्रेज़ ने प्रकट किये हैं। आप कहते हैं कि उस महान बादशाह ने हमें बाहर निकाल कर दरवाज़ा पक्के तौर पर बन्द कर दिया है; फिर वह इन्सानी जामा पहन कर ख़ुद ही दरवाज़ा खोलने आ जाता है—

'आँ पादशाहे आज़म दर बस्ता बूद मुहकम,
पोशीदा दल्के आदम यानी के बर दर आमद।'

सभी सन्त पाँच नाम का भेद प्रदान करते हैं। हमारे निजघर सचखण्ड के मार्ग में हमारे अन्तर में पाँच मंज़िलें हैं। हज़रत ईसा ने भी इसका संकेत किया है, 'मेरे पिता के घर में कई निवास-स्थान हैं' (जॉन १४; २)। अन्तर की प्रत्येक मंज़िल की अपनी अपनी धुन है। सतगुरु अपने शिष्य को दीक्षा देते समय इन पाँच मण्डलों की धुन, प्रकाश आदि का भेद प्रदान करते हैं। वे हमें इन पाँचों मंज़िलों से ले जाते हुए, इन पाँचों धुनों से जोड़ते हुए परमात्मा तक पहुँचा देते हैं। स्वामीजी महाराज, गुरु नानक साहिब, कबीर, दादू, पलटू आदि सभी सन्तों की वाणियों में पाँच शब्द या पाँच नाम का स्पष्ट उल्लेख है। शम्स तब्रेज़, मौलाना रूम आदि फ़ारस के सन्तों नें भी इनका उल्लेख किया है। मौलाना रूम कहते हैं—

"बहफ़्तम फ़लक नौबत पंज याबी,
चो खेमा ज़ शश जहत बरकंदा बाशी।"

अर्थात, जब तू नीचे के छः चक्रों से निकल कर सातवें आसमान में पहुँच जायेगा तो वहाँ पाँच नौबतें बजती हुई सुनेगा। इसी प्रकार शम्स तब्रेज़ का कथन है :—

ख़ामोश पंज नौबत बिशनौज़ आसमाने,
कां आसमाने बेरूँ ज़ां हफ़्तो ईं शश आमद।"

कि ख़ामोशी के साथ आसमान से आती हुई पाँच नौबतों या धुनों को सुन। वह आसमान हमारे सात आसमानों और छः चक्रों से परे है।

जिन भाग्यशाली जीवों को पूर्ण सतगुरु नाम प्रदान करते हैं उनको मृत्यु के बाद यमदूतों के साथ नहीं जाना पड़ता। सतगुरु मृत्यु के समय स्वयं अपने शिष्य को लेने आते हैं। वे उसके सच्चे मित्र, साथी और रक्षक हैं। वे केवल इस संसार में ही नहीं बल्कि मौत के समय भी अपने नूरी स्वरूप में हमारी सहायता करते हैं और मौत के बाद भी हमारा साथ नहीं छोड़ते। गुरु अर्जुन देवजी कहते हैं "इस संसार के कच्चे अर्थात नाशावान मित्रों का साथ छोड़ और पूर्ण गुरु ढूँढ कर उन्हें अपना सच्चा मित्र बना ले, क्योंकि

सांसारिक मित्र तो तुझे जीवन-काल में ही छोड़ देते हैं, लेकिन सतगुरु मौत के बाद भी तेरा साथ नहीं छोड़ते" (मारू म. ५, पृ. ११०२)। सतगुरु से नाम प्राप्त किये हुए जीवों को काल अथवा धर्मराज के पास अपने कर्मों का हिसाब देने नहीं जाना पड़ता। धर्मराज के दरबार में जहाँ और जीवों को अपने कर्मों का हिसाब चुकाना पड़ता है, वहाँ सतगुरु मौत के बाद भी सत्संगी के साथ जाते हैं और जहाँ पर लेखा मांगा जाता है वहाँ साथ रहते हैं, 'जिथे लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंन्हि' (सूही म. १ पृ. ७२९)। सतगुरु मौत के कठिन समय में यम के त्रास से अपने जीवों की रक्षा करते हैं। मौलाना रूम फ़रमाते हैं कि तू बग़ैर किसी शक या संकोच के मुर्शिद के दामन को जल्दी से पकड़ ले ताकि तू अन्त समय की आफ़तों से छुटकारा पा सके—'दामने ऊ गीर ज़ूद ऐ बेगुमां; ता रही अज़ आफ़ते आख़िर ज़मां।' गुरु अमरदास साहब के शब्दों में, 'जिनको सतगुरु मिल गया, उनके कर्मों का सब लेखा पूरा हो गया।'*

सन्त-मत अमली अथवा व्यावहारिक मार्ग है। सन्त मृत्यु के बाद की मुक्ति का दिलासा नहीं देते, वे जीते-जी मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग बतलाते हैं। वे स्वयं आन्तरिक रूहानी मण्डलों में जाते हैं और हमें भी जाने का भेद प्रदान करते हैं। अपने सत्संग के द्वारा वे हमें सन्तों का सन्देश समझाते हैं, हममें मालिक की प्राप्ति का चाव उत्पन्न करते हैं, बाहरमुखी क्रियाओं व भ्रमों में से निकाल कर अन्तर में जाने की प्रेरणा देते हैं और नाम बख्श कर शब्द के साथ जोड़ कर हमें इस चौरासी के जेलखाने से मुक्त करके सच्चा सुख, आनन्द व शान्ति प्रदान करते हैं। उनकी शरण ग्रहण करके जीव काल के जाल से निकल कर परमपिता परमात्मा के मिलाप के योग्य होता है। हमें चाहिये कि ऐसे पूर्ण गुरु की संगति में जाकर उनसे नाम-दान प्राप्त करके अपने अनमोल मनुष्य-जीवन का पूरा लाभ उठायें।

---

* 'नानक जिन्ह कउ सतिगुरु मिलिआ तिन्ह का लेखा निबड़िआ।
(आसा म. ३. पृ.४३५)

अध्याय ६

कुछ महत्वपूर्ण बातें

इस समय मैं उन गिनती के पुराने सत्संगियों में से हूँ जिन्हें हुज़ूर स्वामी जी महाराज द्वारा चिताये हुए कुछ व्यक्तियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ है। इसलिये कुछ ऐसी महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ जो किसी समय ऐतिहासिक महत्व की हो सकती हैं।

१. राधास्वामी नाम

सबसे पहली बात तो 'राधास्वामी' नाम के बारे में है। मतभेद इन बातों पर है कि (क) स्वामीजी महाराज पाँच नाम का उपदेश दिया करते थे या 'राधास्वामी' नाम का ? और (ख) 'राधास्वामी' नाम धुनात्मक है या वर्णात्मक ?

राधास्वामी नाम राय बहादुर सालगराम साहिब के ज़रिये प्रचलित हुआ है, जैसा कि स्वामीजी महाराज के अन्तिम वचनों में वचन नम्बर १४ से स्पष्ट प्रकट होता है :-

"मेरा मत तो सतनाम और अनामी का था और राधास्वामी मत सालग राम का चलाया हुआ है। इसको भी चलने देना।"*

स्वामीजी महाराज द्वारा नाम-दान दिये हुए जितने भी महात्माओं से मिलने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन सभी ने पूछे जाने पर इस बात की पुष्टि की कि स्वामीजी महाराज ने उन्हें पाँच नाम का उपदेश दिया था और अन्त तक पाँच नाम़ का ही उपदेश देते रहे। जिन महात्माओं से मैंने इस विषय में पूछ-ताछ की, उनका विवरण आगे दिया जाता है :—

(१) **बाबा गरीबदासजी** :—आप स्वामीजी महाराज के श्रेष्ठ शिष्यों में से थे। आप बहुत समय तक दिल्ली में सत्संग करके व नाम-दान देकर जीवों का उपकार करते रहे। आप उच्च कोटि के महात्मा थे। स्पष्ट फ़रमाया करते थे कि सतगुरु से पाँच नाम का भेद प्राप्त किये बिना कोई जीव धुरधाम

---

* जब भी स्वामीजी महाराज के अन्तिम वचन दयाल बाग आगरा वाले छाप रहे हैं, पता नहीं क्यों वे इस वचन को छोड़ देते हैं।

नहीं पहुँच सकता। आपको स्वामीजी महाराज ने पाँच नाम का उपदेश दिया था। बाबा गरीबदासजी के बाद उनकी गद्दी पर महात्मा राम बिहारीलाल जी बैठे। उनको भी बाबा गरीबदासजी ने पाँच नाम का उपदेश दिया था और वहाँ यही उपदेश अब भी जारी है।

(२) **बीबी सेवादासीजी** : आप स्वामीजी महाराज और माता राधाजी की सेविका थीं। अन्तिम समय तक पन्नी गली आगरा में स्वामीजी महाराज के मकान में रहती रहीं। आप प्रेम की मूर्ति और भक्ति का आदर्श थीं। स्वामीजी का जिक्र आते ही आपके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगते। आपकी आरती सार बचन में स्वामीजी ने इन शब्दों से शुरू की है :—

"यह आरत दासी रची, प्रेम सिंध की धार।
धारा उमँगी प्रेम की, जा का वार न पार॥"

फरवरी १९१२ में जब मैं पहली बार हुजूर महाराज सतगुरु दीन-दयाल (बाबा सावनसिंहजी) के साथ आगरा गया, तो इनसे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। जब हुजूर महाराजजी से मिलने आईं तो हुजूर के चरणों में गिर पड़ीं, आँखों से आँसू बहने लगे, चरण छोड़ती ही न थीं। हुजूर महाराजजी को हमेशा 'स्वामीजी' कहतीं और स्वामीजी का रूप ही उन्हें समझतीं। स्वामीजी महाराज के चमत्कार तथा उनके समय के वृत्तान्त सुनने मैं कई बार उनके पास जाता रहता था। हम तब स्वामीबाग में उस मकान में ठहरे थे जो बाबा जैमलसिंहजी के समय में हुजूर महाराजजी ने ब्यास की संगत के निवास के लिये बनवाया था। बीबी सेवादासी भी हुजूर के दर्शन के लिये आ जाती थीं। उनसे एक दिन हम लोगों ने यह प्रश्न किया कि आपको स्वामीजी महाराज ने पाँच नाम का सुमिरन दिया था या राधा-स्वामी नाम का?

बीबी सेवादासी ने उत्तर दिया कि "हमें तो हुजूर स्वामीजी महाराज ने वही पाँच नाम का सुमिरन दिया था जो कि आपको मिला है। स्वामीजी महाराज आखीर तक पाँच नाम का उपदेश देते रहे हैं। जब से यह 'राधा स्वामी' का बोल चला है, हम सब लोग आपस में मिलते समय एक-दूसरे को 'राधास्वामी' कह कर प्रणाम करते हैं। लेकिन उपदेश तो हुजूर स्वामीजी महाराज का हमेशा पाँच नाम का ही रहा है, जो सभी सन्तों का एक ही रहा है और रहेगा।"

(३) तीसरे सज्जन यू. पी. के रहने वाले एक रिटायर्ड पोस्ट-मास्टर

---

*सार बचन छन्द बन्द : बचन छठा, शब्द पाँचवाँ।

साहिब थे। नाम तो उनका अब याद नहीं, क्योंकि हम उन्हें पोस्ट-मास्टर साहब कह कर ही पुकारते थे। बड़े वृद्ध और दुबले-पतले किन्तु स्वस्थ व्यक्ति थे। उन्हें स्वामीजी महाराज से नाम मिला था। जब डेरे में आये उनकी आयु ९० वर्ष से ऊपर थी, कुछ झुक कर चलते थे, लेकिन बड़े साहसी और मेहनती व्यक्ति थे। अन्तिम दिनों तक अपना सारा काम-काज खुद अपने हाथों से करते थे। हर रोज़ बिना नागा सत्संग सुनते। सुनाई कुछ कम देता था, इसलिये हुज़ूर के तख़्त के बिल्कुल पास बैठते। करीब पन्द्रह वर्ष तक डेरे में रहे और १०९ वर्ष की उम्र में सन् १९३२ में यहीं शरीर छोड़ा। बड़े अच्छे स्वभाव के नेक पुरुष थे। प्रेम व सचाई की मूर्ति थे। स्वभाव हास्य-प्रिय था, वृद्धावस्था में भी उत्साही और ज़िन्दा-दिल थे। संगत उनका बहुत आदर करती थी। वे अपना ज़्यादा समय भजन-सुमिरन में बिताते थे। डाक्टर जानसन भी उनसे मिलते रहते थे।*

एक बार मैंने पोस्ट-मास्टर साहिब से पूछा कि वे इतनी दूर चल कर डेरे में क्यों आये? आपने हुज़ूर महाराजजी की कोठी की ओर इशारा करके जवाब दिया कि उस लाने वाले से पूछो। मेरे आग्रह करने पर उन्होंने यह वृत्तान्त सुनाया :—

"एक दिन मैं भजन से उठा तो बहुत रोना आया। उस वक्त की याद आ गई जब स्वामीजी महाराज सामने बैठ कर सत्संग फ़रमाते थे, अपने हाथों से प्रसाद देते थे, मेहर का हाथ सर पर रखते थे, प्रेम और दया-मेहर सहित बात करते और दुनियावी व रूहानी हर तरह की अर्ज़ सुनते थे। उनकी याद में हृदय में कुछ ऐसी तड़प पैदा हुई कि आँसू थमते ही नहीं थे। दिल से ठण्डी आह निकल रही थी कि हाय! अगर एक बार वह मोहिनी मूरत फिर प्रत्यक्ष आकर दर्शन दे दे तो चरणों में तन-मन न्योछावर कर दूँ। ठीक याद नहीं कि रोते-रोते मैं सो गया था या जाग रहा था, परन्तु क्या देखता हूँ कि स्वामीजी महाराज साक्षात सामने खड़े हैं। उन्होंने फ़रमाया, 'क्यों घबराता है? मैं कहीं तुझसे दूर हूँ? अगर इतना प्यार और विरह है तो ब्यास चला जा।'

"मैंने अपना बोरिया-बिस्तर बाँधा और ब्यास के लिये चल पड़ा। जब डेरे में पहुँचा तो सत्संग शुरू हो रहा था। क्या देखता हूँ कि हुज़ूर स्वामीजी महाराज तख़्त पर बैठे सत्संग फ़रमा रहे हैं। वही तेजस्वी आँखें, वही हँसता

---

*डाक्टर जानसन ने अपनी पुस्तक 'सतगुरु के साथ हिन्द में' के पत्र नः २ में इनका उल्लेख किया है।

हुआ चेहरा, वही रसीली आवाज़ और सिर पर तिल्लेदार टोपी। मुझे देख कर फ़रमाया, 'तुम आ गये, बहुत अच्छा किया।'

"वही प्रेमपूर्ण आवाज़ सुन कर मेरा हृदय फूला न समाया। आँखों में आंसू आ गये। चित्त प्रेम से गद्‌गद् हो गया। मैंने जाकर अपना सीस चरणों पर रख दिया और स्वामीजी महाराज ने हमेशा की तरह अपने हाथ मेरे सिर पर रख दिये। जब मैंने सिर उठाया तो देखा कि हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी बैठे हैं। तब समझ में आया कि किस तरह स्वामीजी महाराज ही इस रूप में काम कर रहे हैं। हैरान था कि हम क्या समझते थे और कहाँ पाया। तब से यहीं हूँ। अब जाना भी कहाँ था। स्वामीजी महाराज के बाद उस दिन जब हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी का सत्संग सुना तो स्वामीजी महाराज के सत्संग का नज़ारा सामने आ गया।"

पोस्ट-मास्टर साहब ने यह भी बताया कि स्वामीजी महाराज आम तौर पर ग्रंथसाहिब से सत्संग प्रदान किया करते थे। अपनी बानी रचने के बाद भी उन्होंने यही क्रम जारी रखा। आपने बताया कि स्वामीजी महाराज के दादा साहिब के समय का लिखा एक ग्रन्थ साहिब* उनके घर में था। स्वामीजी उसमें से ग्रन्थ साहब के शब्दों की बड़ी स्पष्ट व्याख्या करते थे।

पोस्ट-मास्टर साहब से जब मैंने राधास्वामी नाम के विषय में पूछा तो आपने बड़ी गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "हुज़ूर स्वामीजी महाराज तो आखिर तक पाँच नाम का उपदेश देते रहे। परम धाम सिधारने से कुछ समय पहले मेरी पत्नी को नाम दिया था, उस वक्त भी पाँच नाम का ही सुमिरन दिया था।"

जब मैंने उनसे राधास्वामी नाम के धुनात्मक होने के बारे में पूछा तो आप तनिक हँस पड़े। फिर बोले, "इस पर तो मत-भेद का सवाल ही नहीं उठता, स्वामीजी महाराज ने खुद फ़रमाया है, 'लिखन और पढ़न में आया। उसे वर्णात्मक गाया।' फिर इस विषय में गलतफ़हमी क्यों होनी चाहिये? राधास्वामी नाम रायबहादुर सालगरामजी ने प्रचलित किया था। स्वामीजी महाराज ने उसे मत के नाम के तौर पर तो मंजूर कर लिया लेकिन उन्होंने उपदेश हमेशा पाँच नाम का ही दिया।"

पोस्ट-मास्टर साहिब ने सेठ प्रतापसिंहजी (चाचाजी महाराज) द्वारा लिखित "जीवन-चरित्र स्वामीजी महाराज" का भी हवाला दिया, जिसमें

* यह ग्रन्थ साहिब हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी डेरे में ले आये थे। इसका यहाँ लाये जाने का वृत्तान्त पहले दिया जा चुका है देखें पृ.७३।

स्पष्ट लिखा है कि स्वामीजी महाराज हमेशा पाँच नाम का उपदेश दिया करते थे ।

(४) **राय बहादुर सेठ सुदर्शनसिंहजी साहिब**—आप हुज़ूर स्वामीजी महाराज के भतीजे और चाचाजी महाराज सेठ प्रतापसिंहजी के सुपुत्र थे। आप हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी को बहुत प्यार करते थे और उन पर आपको बड़ी श्रद्धा थी। आप कई बार हुज़ूर के दर्शन करने अपनी धर्मपत्नी सहित डेरे तशरीफ़ लाते रहे। आपने जो प्रेम और भावना-पूर्ण पत्र हुज़ूर महाराजजी को लिखे, वे परमार्थी पत्र (भाग एक) में छप चुके हैं। एक बार आपने डेरे में कोठी बनवा कर हमेशा के लिये यहाँ आकर हुज़ूर महाराजजी के पास रहने का विचार प्रकट किया था।[१] हुज़ूर महाराजजी भी आपको बहुत प्यार करते थे।

एक बार बख़्शी चाननशाह और मैंने आपसे भी इस विषय में जिज्ञासा की। आप बड़े गम्भीर तथा बुद्धिमान बुज़ुर्ग थे। पहले तो आपने यह कह कर टालने की कोशिश की कि आप बड़े भागों वाले जीव हो। आपको ऐसे महान संत-सतगुरु मिल गये हैं। जो नाम सतगुरु ने आपको बख़्शा है वही सब-कुछ है। उसकी खूब कमाई करो और अपना जन्म सफल कर लो। बख़्शी चाननशाह के आग्रह करने पर आपने फ़रमाया, "इस उधेड़-बुन में न पड़ो। गुरु जो अपना कमाया हुआ नाम दे, वही शिष्य को पार उतारने में समर्थ होता है।"

लेकिन बख़्शी चाननशाह कब मानने वाले थे, सीधा सवाल किया, "हुज़ूर ! आप स्वामीजी महाराज के भतीजे हैं, एक महान हस्ती हैं। कृपया यह बतायें कि आपको स्वामीजी ने पाँच नाम का उपदेश दिया था या राधास्वामी का; और क्या स्वामीजी महाराज राधास्वामी नाम को धुनात्मक खयाल करते थे ? हमारी अर्ज़ तो यही है कि अगर हम गलत रास्ते पर हों तो हुज़ूर हमें सीधे रास्ते पर लगायें।"

---

१. आगरा के वातावरण से परेशान होकर सेठ सुदर्शनसिंह साहब डेरे आकर रहना चाहते थे। परन्तु उन दिनों आपके लायक कोठी बनवाने में डेढ़-दो साल लग सकते थे। जब सेठ साहब से यह बात अर्ज़ की गई तो आपने हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी को अपने ४ दिसम्बर १९३३ के पत्र में लिखा—"ज़मीन की बाबत जो मैंने अर्ज़ किया था, अब गौर करने से मेरी दरखास्त फ़िज़ूल मालूम होती है, क्योंकि कोठी डेढ़-दो साल में तैयार हो पावेगी। जैसे दो साल काटूँगा, वैसे दो-तीन और सही। इस वास्ते उस मुआमले में आप तकलीफ़ न फ़रमावें। माताजी कहती हैं कि अगर तकलीफ़ काबिले-बरदाश्त न होगी तो हम भी हुज़ूर के चरनों में डेरे में आ जावेंगे, वहाँ मकान बनवा लेंगे, आपकी शरण इख्तियार कर लेवेंगे।"

इस पर सेठ साहिब ने फ़रमाया, "नहीं ! आप गलत रास्ते पर बिलकुल नहीं हैं। उपदेश तो हम लोगों को भी हुज़ूर स्वामीजी महाराज ने पाँच नाम का ही दिया था और आख़िर तक पाँच नाम का ही सुमिरन बख़्शते रहे। लेकिन जब स्वामीजी महाराज ने राधास्वामी नाम को कुल-मालिक अनामी का नाम मान लिया, तो हमें भी उसे मालिक का नाम मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये।"

बख़्शीजी ने फिर अर्ज़ की, "हुज़ूर ! सार-बचन में स्वामीजी महाराज ने जहाँ रास्ते के भेद और अभ्यास के तरीके का वर्णन किया है, वहाँ साफ़ फ़रमाया है, 'पाँच नाम का सुमिरन करो'।"*

सेठ साहिब ने फ़रमाया, "यह दुरुस्त है। सुमिरन पाँच नाम का ही करना चाहिये और स्वामीजी महाराज की यही हिदायत है। हुज़ूर महाराज राय सालगराम साहब ने स्वामीजी महाराज को जब 'राधास्वामी' कहना शुरू किया तो धीरे-धीरे यह नाम प्रचलित हो गया। स्वामीजी ने भी इसे अपना लिया, आम लोगों ने भी इस मार्ग को 'राधास्वामी मत' कहना शुरू कर दिया, तो स्वामीजी महाराज ने इसकी व्याख्या सार-बचन में इस प्रकार की—

'राधा आदि सुरत का नाम। स्वामी आदि शब्द निज धाम ॥
सुरत शब्द और राधास्वामी। दोनों नाम एक कर जानी ॥'

"जब स्वामीजी महाराज ने इस नाम को अपना लिया तो हमें भी इससे प्यार है। यह भी मालिक के बाकी नामों की तरह एक नाम है। महात्माओं ने मालिक के हज़ारों नाम रखे हैं। हुज़ूर स्वामीजी महाराज ने अगर एक और नाम रख दिया तो उसमें एतराज़ की क्या बात है?"

बख़्शी चाननशाह ने अर्ज़ की, "नहीं, हुज़ूर ! हमें कोई एतराज़ नहीं है। जब स्वामीजी महाराज ने उसे मंज़ूर कर लिया, तो हम भी उसे प्यार करते हैं। लेकिन जब उसे धुनात्मक नाम कहा जाता है तो हमें यह कथन स्वामीजी महाराज के स्पष्ट उपदेश से भिन्न प्रतीत होता है। सार-बचन में स्वामीजी ने 'वर्णात्मक' और 'धुनात्मक' नामों का भेद बताते हुए स्पष्ट फ़रमाया है, 'लिखन और पढ़न में आया। उसे वर्णात्मक गाया।' जब राधास्वामी नाम बोलने, लिखने और पढ़ने में आता है तो यह धुनात्मक नाम कैसे हो सकता है? इसलिये अन्तर में नाम की धुन अथवा शब्द को ही सही माने में धुनात्मक नाम कहा जा सकता है।"

---

*सार बचन छन्द-बन्द, बचन २६, पंक्ति १५६।

सेठ साहब ने फ़रमाया, "यह ठीक है। इससे किस को इन्कार हो सकता है।"

बख़्शीजी ने फिर स्वामीजी महाराज के 'आखिरी बचनों' के बचन नम्बर १४ की ओर ध्यान दिला कर पूछा कि स्वामीजी का इस बात से क्या मतलब था कि 'मेरा मत तो सतनाम और अनामी का था और राधास्वामी मत सालगराम का चलाया हुआ है। इसको भी चलने देना।'

इस पर सेठ साहब हँस पड़े और फ़रमाया, "अरे भाई, बाल की खाल उतारने से क्या फ़ायदा है? इसका मतलब साफ़ है, जो तुम खूब समझते हो। अपने सतगुरु को कुल मालिक समझो और अपना भजन किये जाओ।"

राय साहब लाला हरनारायणजी भी वार्तालाप के दौरान में आ गये थे। उन्होंने पूछा, "हुज़ूर! स्वामीजी महाराज के आखिरी वचनों में आप का ज़िक्र भी आता है कि आपने पूछा था कि अगर कुछ पूछना हो तो किस से पूछें और स्वामीजी ने फ़रमाया था कि जिस किसी को पूछना होवे वह सालगराम से पूछे।"

सेठ साहब ने फ़रमाया, "हाँ, यह हिदायत मुझे फ़रमाई गई थी, मैंने स्वामीजी महाराज से पूछा था कि अगर कुछ पूछना हो तो किससे पूछूँ? क्योंकि मैं उस वक्त रायबहादुर सालगराम साहब के मातहत काम करता था, स्वामीजी महाराज ने फ़रमाया कि जो कुछ पूछना हो उनसे पूछ लिया करो। यह हिदायत मेरे लिये थी।"

(५) **बीबी रुक्को** व (६) **बीबी रली**—बीबी रुक्को के बारे में पहले विस्तार सहित लिखा जा चुका है। आप बहुत समय तक पन्नी गली आगरा में माता राधाजी की सेवा में रह कर भजन-सुमिरन करती रहीं। बीबी रली ने चाचाजी महाराज से नाम लिया था। आपको बाबा जैमलसिंहजी महाराज से लेकर आज तक चार बादशाहियों की सेवा का गौरव प्राप्त हुआ है। बीबी रुक्को बतलाती थीं कि उन्हें पाँच नाम का उपदेश दिया गया था। बीबी रली भी यही कहती हैं।

२. स्वामीबाग़ आगरा तथा अन्य गद्दियाँ

हुज़ूर स्वामीजी महाराज के धुरधाम सिधारने के बाद भी डेरे के सन्त-सतगुरु बाबा जैमलसिंहजी महाराज का आगरा के प्रति काफी भाव था। माता राधाजी तथा सेठ प्रतापसिंहजी साहब (चाचाजी महाराज) तथा स्वामीजी महाराज के वंश के सभी सदस्य बाबाजी के प्रति बहुत आदर

ग्रौर प्यार रखते थे। बाबाजी महाराज भी प्रायः सभी भण्डारों पर अपने प्रमुख सत्संगियों के साथ आगरा तशरीफ़ ले जाते थे जिनमें महाराज सावनसिंहजी मुख्य थे।

स्वामीजी महाराज के महाप्रयाण के कुछ समय बाद रायबहादुर सालगराम साहिब ने पीपल-मण्डी आगरा में सत्संग और नाम-दान शुरू किया। उनके बाद प्रेम-निवास पीपल-मण्डी में लाला अयोध्याप्रसाद साहिब (सुपुत्र हुज़ूर रायबहादुर सालगराम साहब) ने सत्संग तथा नाम देना आरम्भ किया। संगत में कुछ लोगों ने उन्हें गुरु रूप में स्वीकार किया किन्तु अधिकांश लोगों ने पण्डित ब्राह्मशंकर मिश्र साहिब को राय बहादुर सालगरामजी का सही जानशीन माना। पंडित ब्रह्मशंकर साहब के उपरान्त बाबू माधोप्रसाद साहिब ने प्रकट किया कि सन्त-धार उनमें आई है तथा आपने स्वामीबाग आगरा में नाम-दान शुरू किया। परन्तु सत्संगियों के एक अंश ने इस बात को स्वीकार न किया और बाबू कामताप्रसाद साहब (सरकार साहब) को गुरु रूप में स्वीकार किया। उनके बाद सर आनन्द-स्वरूप साहब (साहिबजी महाराज) गद्दीनशीन हुए और उन्होंने दयाल बाग की स्थापना की।

बाबा जैमलसिंहजी महाराज ने जब देखा कि आगरा स्वामीजी महाराज की शिक्षा और सन्त-मत के उसूलों से दूर जा रहा है, आपसी प्रेम, सेवा-भाव तथा रूहानी अभ्यास की ओर झुकाव क्षीण होता जा रहा है तथा सद्भावना के अभाव में मत-भेद पैदा हो रहा है तो उन्होंने इस सब विवाद से अपने को तथा अपनी संगत को अलग रखना ही अच्छा समझा। आगरा की परिस्थिति का अनुमान चाचाजी महाराज द्वारा बाबा जैमलसिंहजी महाराज को लिखे तारीख १९ जून, १९०३ के पत्र से लगाया जा सकता है। चाचाजी महाराज ने लिखा—"मैं देखता हूँ कि फ़िरकाबन्दी और गिरोहबन्दी होती जाती है और राधास्वामी सत्संग में एक होकर और मिल-जुल कर सब सत्संगी नहीं बरताओ करते। इस वास्ते मैं अलाहाबाद पंडितजी साहब (पंडितजी ब्रह्मशंकर मिश्र साहब) के पास वास्ते मश्वरा[1] और सलाह करने के लिये आया हूँ कि क्या इन्तिज़ाम किया जावे। और हमारा मश्वरा से यह करार[2] पाया है कि एक राधास्वामी सत्संग सदर सभा कायम की जावे और उसके सभापति मुझको पंडितजी साहब ज़िद करके करार देते हैं।" इस पत्र में दस सदस्यों की सभा में चाचाजी महाराज ने बाबाजी

१. सलाह या राय। २. निश्चय।

को भी शामिल करना चाहा। पत्र में आगे आपने लिखा कि "इस सभा के होने से उम्मीद है कि यह फ़िरकाबन्दी जाती रहेगी। और सब एक-दूसरे से प्यार-प्रीत से बिरादराना बरताव करेंगे।"

बाबाजी महाराज इस प्रकार की सभाओं के पक्ष में न थे। आपने चाचाजी को जवाब दिया कि वे इस प्रकार की सभा में बतौर सदस्य शरीक होने में असमर्थ हैं तथा न ही यह चाहते हैं कि बाबू सावनसिंहजी इसमें शामिल हों। रहा इस सभा के सदस्यों के नामों के अनुमोदन का प्रश्न, उस के लिये बाबाजी महाराज ने यह शर्त रखी कि सभी स्थानों में उपदेश वही होना चाहिये जो स्वामीजी महाराज का था, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न करने दिया जाय। चाचाजी महाराज बाबाजी का दृष्टिकोण जानते थे, आपने लिखा कि तुम्हारी प्रीति व प्रतीत देख कर बहुत खुशी हुई।

यद्यपि आगरा से चाचाजी महाराज के बाद विवाद और बढ़ गये तथा मुकद्दमेबाज़ी की नौबत आ गई, फिर भी हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने बाबाजी महाराज की तरह सबके प्रति प्रेम और सद्भाव बनाये रखा। चाचा जी महाराज के महाप्रयाण के बाद हुज़ूर महाराजजी उसी प्रेम के साथ सेठ सुदर्शनसिंहजी से मिलते रहे। हुज़ूर कई बार आगरा तशरीफ़ ले जाते रहे तथा सेठ साहब भी, जब तक उनका स्वास्थ्य ठीक रहा, डेरे आते रहे। सेठ साहब का भी महाराज सावनसिंहजी के प्रति बड़ा गहरा प्यार था। आप हुज़ूर को बड़े प्रेम-पूर्ण पत्र लिखते थे। एक बार आपने हुज़ूर को लिखा :—

"मख़दूमो[१] मुकर्रमो[२] मुअज़्ज़म[३] बन्दा श्री हुज़ूर सरदार साहिब दामे ज़िल्लकुल[४] मत्था टेक कर दस्तबस्ता[५] राधास्वामी।

हुज़ूर के पवित्र चरण कंवलो में ब-सद[६] इज्ज़ोनियाज़ व इन्किसार[७] निहायत अधीनगी व दीनता से राधास्वामी क़बूल हो।

इफ्तिख़ारनामा आली[८] पहुँचा। मुम्ताज़[९] फ़रमाया। आप से ज़्यादा इस गुलाम को हुज़ूर के दर्शनों की चाह अज़हद[१०] है। अगर बन्दा सफ़र लायक होता तो ख़ुद हाज़िर होता; मगर अफ़सोस, कमज़ोरी निहायत है। इसके बाइस से हाज़िरी से मजबूर व लाचार है। आप दयालू हैं, दया फ़रमा कर दर्शन दीजिये और बन्दा को कृतार्थ कीजियेगा।"

सेठ सुदर्शनसिंह साहब से हुज़ूर महाराजजी की भेंट का दृश्य एक

---

१. मालिक। २. दयामय। ३. महान। ४. मालिक के रूप। ५. हाथ जोड़ कर। ६. सौ। ७. सादर-सविनय व दीनता। ८. कृपा-पत्र ९. बड़ी कृपा की। १०. बहुत अधिक।

निराला नज़ारा होता था, जिसे देखने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हुजूर आगे झुक कर सेठ साहब के चरणों में मत्था टेकने बढ़ते और सेठ साहब हुजूर के चरणों में। दोनों एक-दूसरे को झुकने से रोकते और खुद चरण छूने की कोशिश करते और अन्त में हार कर दोनों बड़े प्रेम से गले मिलते। सेठ साहब के नेत्रों में जल भर आता और वे बड़ी देर तक हुजूर को गले लगाये रखते। उस समय सम्पूर्ण वातावरण प्रेम से परिपूर्ण हो जाता, पास खड़ी संगत के हृदय भर आते और आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगते। हुजूर का मुख-मण्डल अपने अपूर्व रूहानी तेज में जगमगाने लगता और सेठ साहब का उज्ज्वल मुखड़ा आनन्द से खिल उठता था।

एक बार दयालबाग आगरा के सतगुरु साहबजी महाराज (सर आनन्द-स्वरूप साहिब) ने दयालबाग में किसी उत्सव के समय हुजूर महाराजजी से दयालबाग पधारने का अनुरोध किया। हुजूर ने अपनी स्वीकृति दे दी। हमेशा की तरह हुजूर महाराजजी स्वामीबाग में ठहरे। हुजूर के साथ डेरे से कुछ सत्संगी भी गये थे और मुझे भी साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जब हुजूर वहाँ सेठ सुदर्शनसिंह साहिब से मिलने गये, हम लोग भी साथ थे। सेठ साहब ने महाराजजी से कहा, "आपको दयालबाग जाने की मंजूरी नहीं देना चाहिये थी। मुझे बुलाया था, लेकिन मैंने भी इन्कार कर दिया। आप जानते हैं कि वे लोग हमारे ख़िलाफ़ हैं। आपका वहाँ जाना मुना-सिब नहीं।"

इस पर सतगुरु दीन-दयाल महाराज सावनसिंहजी तनिक मुसकराये, कागज़ के एक रुक्के पर कुछ लिखा और वह कागज़ सेठ साहब के हाथ में थमा दिया। सेठ साहब ने उसे पढ़ा, पढ़ कर अपने मस्तक से छुआया और फिर दोनों हाथों से उसे अपने हृदय से लगा लिया। उनके नेत्रों से आँसू बहने लगे तथा गला रुँध गया। कुछ देर मौन रह कर आपने हुजूर महाराज जी से कहा, "आपका वचन सत्य है। मेरी बड़ी भूल थी। मैं भी आपके साथ चलता, लेकिन मैं इन्कार कर चुका हूँ।"

हुजूर ने फ़रमाया, "आप ज़रूर चलिये। वे लोग आपको खुशी से ले चलेंगे। अगर वे आपको नहीं ले चलते तो मैं भी नहीं जाऊँगा।"

दूसरे दिन सुबह स्वयं साहबजी महाराज सर आनन्दस्वरूप साहिब मोटर लेकर हुजूर को लेने आये। हुजूर ने कहा कि पहले सेठ साहब मोटर में बैठेंगे। इस पर साहबजी महाराज ने सेठ साहब से राधास्वामी किया, उनसे चलने का अनुरोध किया और बड़े प्रेम के साथ उन्हें मोटर में बिठाया।

फिर हुज़ूर महाराजजी तथा साहबजी महाराज बैठे।

दयाल बाग में साहबजी महाराज ने अपनी संगत को हुज़ूर का परिचय दिया तथा स्वागत में दो शब्द फ़रमाये। उसके उत्तर में हुज़ूर महाराजजी ने करीब आधे घण्टे का भाषण दिया जो एक तरह से सत्संग ही था। बाद में हम लोगों ने जानना चाहा कि हुज़ूर ने सेठ साहब को उस कागज़ में क्या लिखा था। लेकिन हुज़ूर ने उत्तर दिया कि यह हुज़ूर तथा सेठ साहिब के बीच की बात थी।

उसके बाद हुज़ूर महाराजाजी के निमंत्रण पर साहबजी महाराज अपनी संगत के साथ डेरे तशरीफ़ लाये। हुज़ूर ने आपको बड़े प्रेम के साथ डेरे में ठहराया। आपने हुज़ूर के आग्रह पर सत्संग में कुछ शब्द भी फ़रमाये। डेरे में आपका तथा आपकी संगत का जो प्रेम-पूर्ण स्वागत किया गया, आपने उस के लिये आभार प्रदर्शित किया। दयालबाग के सत्संगी यहाँ के सत्संग की व्यवस्था, संगत की प्रेम-पूर्ण सेवा, लंगर आदि के इन्तिज़ाम को देख कर बहुत प्रभावित हुए।

हुज़ूर महाराजजी का सभी के प्रति प्रेम और सद्भावनापूर्ण व्यवहार था। बाबू माधोप्रसाद साहिब (सतगुरु स्वामीबाग आगरा) से भी महाराज जी आगरा में मिलते रहते थे। एक बार बाबू माधोप्रसाद साहब अमृतसर तशरीफ़ लाये थे। जब हुज़ूर महाराजजी को इसकी सूचना मिली तो राय-साहब हरनारायनजी को साथ लेकर हुज़ूर खुद अमृतसर तशरीफ़ ले गये तथा उन्हें बड़े आदर व प्रेम के साथ शाम को सत्संग से पहले डेरे लाये। सत्संग में हुज़ूर ने बाबू माधोप्रसाद साहिब को अपने पास दाहिने हाथ पर बिठाया तथा आपका व आपके साथ के लोगों का सत्कार किया।

३. जानशीन नियुक्त करने का तरीका

डेरा बाबा जैमलसिंह ब्यास में जानशीन (उत्तराधिकारी) नियुक्त करने का तरीका वही है जो हमेशा से सन्त-मत में चलता आया है, अर्थात् सतगुरु अपने चोला छोड़ने से पहले, अपने जीवन-काल में ही, लिख कर या जबानी उस व्यक्ति को नियुक्त कर देते हैं जिससे वे अपने बाद सत्संग की सेवा और जीवों को चिताने का काम करवाना चाहते हैं। उसकी नियुक्ति में किसी को एतराज़, हस्तक्षेप अथवा प्रश्न करने का अधिकार नहीं होता। गुरु स्वयं सत्पुरुष और कुल मालिक है, जिसे चाहे अपनी जगह कार्य करने

के लिये नियुक्त कर सकता है। संगत हमेशा गुरु के हुक्म की सच्चे दिल से तामील करती है। जो गुरु के हुक्म के विरुद्ध चले, वह गुरु का सेवक और सत्संगी नहीं। स्वामीजी महाराज के हुक्म से बाबा जैमलसिंहजी जीवों को चिताते रहे। बाबाजी महाराज अपने बाद यह कार्य करने के लिये हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी को नामज़द कर गये। हुज़ूर महाराजजी लिखित वसीयत के द्वारा सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी को अपनी जगह नियुक्त कर गये। इसी प्रकार सरदार बहादुरजी महाराज वसीयत द्वारा मौजूदा सरकार महाराज चरनसिंहजी को सन्त-सतगुरु नियुक्त कर गये हैं।

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी अक्सर जब आगरा वगैरह के सत्संग की गद्दियों में जानशीनी के विषय में विवाद और झगड़े होते देखते तो फ़रमाया करते थे कि उचित तो यही है कि सतगुरु चोला छोड़ने से पहले स्पष्ट रूप से अपने जानशीन को नामज़द कर जाये ताकि बाद में विवाद की कोई संभावना ही न रहे। इसी संदर्भ में हुज़ूर यह भी फ़रमाया करते थे कि वे ऐसे विवाद या झगड़े की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ेंगे। इसीलिये हुज़ूर ने चोला छोड़ने से दस-बारह दिन पहले एक लिखित वसीयत द्वारा सरदार बहादुर जगतसिंहजी को अपना जानशीन नियुक्त कर दिया था। अपनी इच्छा प्रकट करने का इससे ज़्यादा स्पष्ट व अच्छा तरीका आज के ज़माने में और क्या हो सकता था।

४. सेवा तथा भेंट

नकद राशि, बर्तन, कपड़े, ज़मीन, मकान, बाग, मशीन आदि जो भी वस्तु सतगुरु को भेंट की जाती हैं, उस सबका वह एक-मात्र स्वामी होता है। वह ऐसी वस्तुओं का जैसा चाहे उपयोग कर सकता है। वह चाहे तो उसका खुद उपयोग कर सकता है और चाहे जिसको दे सकता है। सत्संगी, भेंट देनेवाले, सतगुरु की सन्तान और सम्बन्धी अथवा किसी भी व्यक्ति को गुरु के द्वारा इस सम्पत्ति और राशि के उपयोग पर कोई आपत्ति उठाने का अधिकार नहीं हो सकता। लेकिन हमारे डेरे के सभी गुरु साहिबों का शुरू से ही यह उसूल रहा है कि भेंट अथवा सेवा में आई हुई किसी भी वस्तु का अपने या अपने परिवार के लिये उपयोग नहीं करते हैं। ऐसी सभी वस्तुओं की वे संगत की अमानत के रूप में देख-भाल करते हैं तथा उसका उपयोग संगत के आराम और लाभ के लिये करते हैं। इस प्रसंग में मैं सतगुरु दीन-दयाल

महाराज सावनसिंहजी की २६ अप्रेल, १९४२ की वसीयत के कुछ अंश देता हूँ जो इस बात को स्पष्ट करते हैं :–

"शब्द-स्नेही, सचखण्ड अनामी के वासी सन्तों की यह रीति अनादि काल से चली आई है कि उनके शिष्य अर्थात् उनके चिताये हुए सत्संगी उन्हें कुल मालिक का रूप समझते हैं और इसलिए सम्पूर्ण धार्मिक सम्पत्ति जो उनके नाम में हो, उनके स्वामित्व की सम्पत्ति होती है, जिसके सम्बन्ध में उनको उसके हस्तान्तरण के पूरे अधिकार होते हैं तथा किसी को भी उनके पूर्ण और व्यापक अधिकारों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता। किन्तु ऐसे सन्त, स्वामी होते हुए भी इस सम्पत्ति अथवा इससे प्राप्त आय का अपने निजी या व्यक्तिगतकार्य के लिए उपयोग नहीं करते, बल्कि अपने सत्संगियों के आध्यात्मिक उद्धार व लाभ के लिये इस सम्पत्ति का व इससे प्राप्त आय का प्रयोग करते हैं। मेरे सतगुरु बाबा जैमलसिंहजी महाराज, जिनकी डेरा बाबा जैमलसिंह यादगार है, उन्हीं पूर्ण सन्तों में से हैं, और उनकी लाइन अब तक चल रही है और आगे भी सिलसिलेवार चलेगी। चुनांचे मेरा भी यही तरीका चला आया है कि मैं अपना और अपनी सन्तान का निर्वाह निजी आय, पेंशन और अपनी कृषि-भूमि तथा अन्य व्यक्तिगत सम्पत्ति की आय से करता आया हूँ। मेरे स्वामित्व की धार्मिक सम्पत्ति को या उसकी आमदनी को मेरे निजी, व्यक्तिगत या सन्तान के खर्च के लिये कभी प्रयोग में नहीं लाया गया है।"

इस महान परम्परा को डेरे के सभी गुरु साहिबों ने बड़ी दृढ़तापूर्वक निभाया है। आज डेरे में लंगर हर वक्त चालू है। अस्पताल, पुस्तकालय, आदि खुले हुए हैं। बिजली की रोशनी व पंखे, पानी के पम्प व टंकियाँ, पक्की सड़कें, शेड, अतिथि-गृह, मकान, लान, बगीचे, व पेड़ आदि लगवा दिये गये हैं। सतगुरु हमेशा अपनी हक-हलाल की कमाई पर गुज़ारा करते हैं। वर्तमान सन्त-सतगुरु हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी ने तो गद्दीनशीनी के कुछ ही वर्ष बाद एक पंजीकृत सोसाइटी बना कर कुल रुपये-पैसे, ज़मीन-जायदाद को तथा उनके प्रबन्ध को इसके हवाले कर दिया है। अब भेंट अथवा सेवा में जो भी नकद राशि और वस्तुएँ आती हैं, सब इस सोसाइटी के हिसाब में जाती हैं। हुज़ूर इसमें से कभी एक पैसा भी अपने निज कार्य में खर्च नहीं करते हैं। आप अपना गुज़ारा अपनी कृषि-भूमि की आय से करते हैं।

अध्याय ७

सच्चाई का प्रकटीकरण

मंजूर है गुज़ारिशे अहवाले वाक़ई,
मक्सूद इससे क़तए मुहब्बत नहीं मुझे*
(मिर्ज़ा ग़ालिब)

जैसा कि पिछले अध्याय में बयान किया जा चुका है, हुजूर महाराज सावनसिंहजी का सभी सन्तों-महात्माओं के प्रति सद्भाव व आदर था। किसी धर्म, सम्प्रदाय अथवा व्यक्ति की निन्दा तो दूर रही, आप कभी किसी की आलोचना तक नहीं करते थे। हृदय की विशालता और सहिष्णुता सन्तों की खूबी होती है। हुजूर ने कभी अपना विरोध करने वालों तक की आलोचना नहीं की। ऐसे अनेक वृत्तान्त हैं जिनमें सतगुरु दीन-दयाल ने अपने आलोचकों और निन्दकों पर भी दया-मेहर की तथा उन्हें अन्तिम समय में सहारा बख्शा। सरदार बहादुर महाराजजी भी कभी किसी आलोचना का प्रत्युत्तर तक देने का प्रयास न करते थे। आलोचना, तर्क और निन्दा के मार्ग से सन्त हमेशा दूर रहे हैं।

सन्तों की इसी महान परम्परा में परम सन्त-सतगुरु महाराज चरनसिंह जी ने भी हर आलोचना का उत्तर अपनी नम्रतापूर्ण मुस्कान और प्रेमपूर्ण वाणी में दिया है। आप कई बार फ़रमाते हैं कि सन्त-मत को अपने ऊँचे सिद्धान्तों और महान आदर्श के द्वारा जिज्ञासुओं को आकर्षित करना है, किसी अन्य धर्म, सम्प्रदाय, मार्ग अथवा व्यक्ति की आलोचना के आसरे नहीं। यह तर्क या खण्डन-मण्डन का विषय नहीं है, और न ही हमें सन्तों की इस महान शिक्षा को साधारण प्रचार, प्रोपेगेण्डा अथवा विज्ञापन के स्तर पर लाना चाहिये। हुजूर ने अपने सत्संगों में इस महान आदर्श को बराबर बनाये रखा है। आप अपनी संगत को हमेशा चेतावनी देते हैं कि सत्संग में कभी किसी की निन्दा, टीका या आलोचना नहीं होनी चाहिये; सत्संग में केवल निर्मल रूहानियत की चर्चा होनी चाहिये। अपनी प्रत्येक विदेश-यात्रा के पूर्व,

---

*मैं सच्चा वृत्तान्त पेश करना चाहता हूं; मेरा उद्देश्य मित्रता को तोड़ना नहीं है।

हुज़ूर ने विभिन्न देशों के सत्संग-व्यवस्थापकों को आदेश दिये हैं कि वे किसी प्रकार के विज्ञापन, टेलिवीज़न अथवा रेडियो से प्रचार तथा पोस्टरों व ऐसे अन्य साधनों द्वारा लोगों को एकत्रित या आकर्षित करने का प्रयास न करें। हाँ, सत्संगियों तथा सच्चे जिज्ञासुओं को प्रोग्राम की सूचना अवश्य दें।

सन्तों ने कभी यह ऐलान नहीं किया कि 'मैं गुरु हूँ'। गुरु नानक साहब ने कब कहा कि मैं गुरु हूँ। न किसी अन्य सन्त ने अपने गुरु होने की घोषणाएँ कीं। हुज़ूर बड़े महाराजजी हमेशा फ़रमाते थे कि आप मुझे अपना भाई, मित्र या कोई बुज़ुर्ग व्यक्ति समझ लें। अपने लिये हुज़ूर ऐसे नम्रतापूर्ण शब्दों का प्रयोग करते थे कि कुछ कहा नहीं जा सकता। इसी प्रकार हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी अपने को सतगुरु का सेवक तथा संगत का दास कहते हैं।

सन्तों ने कभी जीवों को बुला-बुला कर यह नहीं कहा कि आओ मुझसे नाम ले लो। वे अनासक्त भाव से सन्त-मत की स्पष्ट व्याख्या करते हैं, नम्रता-पूर्वक लोगों को भ्रमों में से निकालने का प्रयास करते हैं, नाम और शब्द का असली अर्थ और सच्ची महिमा समझाते हैं तथा स्वतन्त्र इच्छा से आनेवाले अभिलाषियों को नाम प्रदान करते हैं। सभी बुज़ुर्ग व पुराने सत्संगी इस बात को स्वीकार करेंगे कि सन्त कभी अपनी महानता का ढिंढोरा नहीं पीटते कि 'मेरे पास आओ, मैं अन्दर रोशनी दिखा दूँगा।' अथवा 'तुम्हारा शब्द खोल दूँगा'। सूर्य को अपने प्रकाश की घोषणा करने की क्या ज़रूरत है? इसी प्रकार सच्चे सन्तों की महानता भी स्वयं प्रकट होती है, वह किसी इश्तिहार और प्रचार की मोहताज नहीं। सन्तों की सदा से यह परम्परा चली आई है और तीन महान सन्तों के निकट सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त करने के बिना पर मैं पूरे ज़ोर के साथ कह सकता हूँ कि डेरे के तीनों सन्त-सतगुरु साहिबानों (महाराज सावनसिंहजी, सरदार बहादुर जगतसिंहजी तथा वर्तमान सतगुरु महाराज चरनसिंहजी) ने इस उच्च आदर्श और महान परम्परा को अक्षुण्ण रखा है।

इस सन्दर्भ में यहाँ मैं एक खेदपूर्ण बात का उल्लेख करना चाहता हूँ। जो कुछ भी मैं लिख रहा हूँ, इसमें किसी के प्रति द्वेष की भावना नहीं है। अपने सतगुरु की क्षमाशीलता तथा सहिष्णुता का ध्यान करके मैंने तथा मेरे कई निकट मित्रों ने काफ़ी समय तक मौन रखा और डेरे पर तथा यहाँ के महान सन्तों पर किये गये मिथ्या आक्षेपों की उपेक्षा की है। लेकिन जब इस प्रकार के कार्य अपनी सीमा लाँघने लगे, तब मैंने तथा कुछ आदरणीय सत्संगी मित्रों ने यह महसूस किया कि इन बातों का स्पष्टीकरण नहीं करना असत्य को प्रश्रय

देना होगा तथा हमारे खामोश रहने से सत्संगियों में गलतफ़हमी पैदा होगी।

सन् १९४८ के अन्तिम महीनों से हमें खबर मिल रही थी कि सरदार कृपालसिंह साहब ने हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी के स्पष्ट हुक्म के विरुद्ध अपने आपको गुरु कह कर लोगों को नाम देना शुरू कर दिया है। परन्तु डेरे में किसी ने इस बात पर कोई ध्यान न दिया। लेकिन सरदार कृपालसिंहजी ने धीरे-धीरे डेरे के विरुद्ध मौखिक व लिखित प्रचार शुरू कर दिया और कई ऐसी बातें कहना शुरू कीं जो सच्चाई से कोसों दूर थीं। डेरे में इस बात की कोई परवाह न की गई, क्योंकि निन्दा और झूठ के सामने भी सन्त कभी अपनी सहज शालीनता और सहिष्णुता नहीं छोड़ते।

एक भण्डारे के अवसर पर बख्शी चाननशाह (उप-आयुक्त, आय-कर) तथा मेहता रंगलालजी (संचालक, सिविल सप्लाई, पंजाब) डेरे तशरीफ़ लाये हुए थे। उन्होंने कुछ पुराने तथा प्रतिष्ठित सत्संगियों को अपने कमरे में एकत्रित किया जिनमें रायसाहब मुंशीराम, रायबहादुर गुलवन्तराय, लाला बालकराम, रायसाहब अर्जुनदास, प्रोफेसर जगमोहनलाल, रायबहादुर शंकर दास सोंधी और इन पंक्तियों का लेखक थे। उन्होंने हमें सरदार कृपालसिंह जी की लिखी हुई अंग्रेज़ी पुस्तिका "बाबा सावनसिंहजी का जीवन-चरित्र" दिखाई और उसमें से कुछ अंश पढ़ कर सुनाये। ये अंश सुन कर हम बड़े विस्मित हुए तथा सबको बड़ा कष्ट पहुँचा। बख्शी चाननशाह ने कहा कि इस प्रकार की असत्य बातों का स्पष्टीकरण करना हमारा कर्तव्य है।

इस पर काफ़ी विचार-विमर्श हुआ। हममें से कुछ सज्जनों का विचार था कि इस प्रकार की सार-हीन बातों पर कोई ध्यान नहीं देना चाहिये। सभी सन्तों के समय में ऐसी बातें होती आई हैं। सच्चाई कभी छिपी नहीं रह सकती। हमें गलत बातों की परवाह नहीं करना चाहिये। इन सज्जनों की भावना हृदय की विशालता तथा सौजन्यता से परिपूर्ण थी। परन्तु दूसरी ओर यह भावना थी कि परमार्थ के जिज्ञासु और हकीकत के खोजियों के लिये सत्य को प्रकट करना आवश्यक है तथा इस विषय में हमारा मौन रहना अपने कर्तव्य की उपेक्षा होगी। प्रोफेसर जगमोहनलालजी ने (जो हुज़ूर बड़े महाराज जी के समय से विदेशी पत्र-व्यवहार को देखते थे) बताया कि किस प्रकार सरदार कृपालसिंहजी की ओर से डेरे के विरुद्ध लिखित तथा मौखिक प्रचार विदेशों में भी किया जा रहा है और किस प्रकार उनके द्वारा लिखित पत्र डाक्टर स्टोन तथा अन्य सत्संगियों ने डेरे में भेजे हैं जिनमें सरदार साहब ने डेरे पर कई आक्षेप लगाये हैं।

बख्शी चाननशाह ने कहा, "हुज़ूर बाबा सावनसिंहजी महाराज के चोला छोड़ने से कुछ दिन पहले मैं एक दिन दर्शन तथा तबियत पूछने के लिये ऊपर गया। उस रोज़ हुज़ूर प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। हुज़ूर ने फ़रमाया, 'अब यह मकान पुराना हो चुका है। अब जालन्धर में नया मकान लेंगे।' आपको तो पता है कि हुज़ूर अपने शरीर को कई बार किराये का मकान कहा करते थे। दूसरे दिन हुज़ूर ने फिर फ़रमाया, 'सूरज जालंधर में निकल आया है। देखो कितनी तेज़ रोशनी है।' इससे हुज़ूर का तात्पर्य सरदार बहादुर जगतसिंहजी में (जो जालंधर के रहने वाले थे) सतगुरु-धार प्रकट होने की ओर इशारा करना था। बाद में तो इस बात की हुज़ूर ने घोषणा भी कर दी थी। लेकिन देखिये, सरदार कृपालसिंह अपनी पुस्तक में क्या लिखते हैं।" बख्शी जी ने पुस्तक में से पढ़ कर सुनाया, "एक रात जब मैं हुज़ूर के पास गया तो हुज़ूर ने फ़रमाया कि कृपालसिंह, देखो सूरज कितना ऊँचा चढ़ आया है, क्या जालंधर वाले इसे देखते हैं?" यह सुन कर बख्शीजी ने पूछा कि क्या इस प्रकार जान-बूझ कर कहे गये असत्य का निराकरण करना हमारा कर्तव्य नहीं है।

मेहता रंगलालजी ने कहा कि हुज़ूर महाराजजी हमेशा डेरे की प्रतिष्ठा और शोभा का खयाल रखते थे और उसे बढ़ाने की कोशिश किया करते थे। डेरे के भविष्य के विषय में हुज़ूर कई बार फ़रमाया करते थे कि अभी तो डेरे ने क्या तरक्की की है! यह तो बाबाजी महाराज का लगाया हुआ बाग है, इसे अभी खूब फलना-फूलना है। तुम देखोगे कि एक दिन इसकी रोशनी यूरोप, अमेरिका आदि दूर-दूर देशों में पहुँचेगी। बाबाजी की कमाई के जौहर तो अभी प्रकट होने हैं। मेहता रंगलालजी ने बताया कि सरदार कृपालसिंहजी अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि हुज़ूर ने उनसे फ़रमाया कि अब तुम्हें डेरे में रह कर क्या करना है, अब यहाँ कुछ नहीं रहा, तुम किसी और जगह जाकर रहो, आदि, आदि। और सरदार कृपालसिंह यह भी लिखते हैं कि हुज़ूर ने उनसे कहा कि तुम देहली में जाकर रूहानी सत्संग शुरू करो।

हम सब ने स्वीकार किया कि हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने डेरे के भविष्य तथा सन्त-मत के विश्व में प्रसार के बारे में अपने वचन कई बार बहुत-से सत्संगियों के सामने फ़रमाये हैं, जब कि सरदार कृपालसिंहजी की बात का सिवाय उनके और कोई साक्षी नहीं है।

फिर भी रायसाहब मुन्शीरामजी, रायसाहब अर्जुनदासजी तथा कुछ

सज्जनों का ख़याल था कि हमें सरदार कृपालसिंहजी की सारहीन बातों की कोई परवाह नहीं करनी चाहिये। परन्तु बख्शी चाननशाह ने निवेदन किया कि अगर सरदार कृपालसिंह अपने गुरु बनने के समर्थन में यह दलील पेश करते कि वे सन्त-पद तक पहुँच चुके हैं और अब दुनिया में जीवों का उद्धार करना चाहते हैं या यह कहते कि अन्तर में उन्हें यह हुक्म हुआ है कि तुम जीवों को नाम दो, तो इस पर किसी को आपत्ति न होती। हर मत व सम्प्रदाय में कई महात्मा हैं। ख़ुद राधास्वामी मत में बहुत से सज्जन अपने आप को गुरु बतलाते हैं। सरदार कृपालसिंहजी एक और हो जाते। हुज़ूर महाराजजी के शिष्यों में से एक-दो और सज्जनों ने गुरु बन कर नाम देना शुरू कर दिया है। हमें उनसे कोई गरज़ नहीं। लेकिन सरदार कृपालसिंह जी जब यह दावा करते हैं कि हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने उन्हें जीवों के उद्धार का कार्य सौंपा है और इस बात के साथ डेरे के महान सन्तों के प्रति आक्षेप-पूर्ण वचन कहते हैं तो हमें इस बात की जाँच करके सत्य को प्रकट करना चाहिये, क्योंकि हमारी खामोशी सत्संगियों के दिलों में गलतफ़हमी पैदा कर सकती है।

काफ़ी सोच-विचार के बाद हम सब इस बात पर सहमत हो गये कि हमारा मौन रहना संगत में भ्रम पैदा कर सकता है। सरदार कृपालसिंह हमारे मित्र रहे हैं और अब भी हमारी उनके प्रति सद्भावना है, अतएव हमें चाहिये कि उनकी बातों की जाँच करके किसी स्पष्ट नतीजे पर पहुँचें। हम सबकी भावना निष्पक्षता-पूर्ण थी। हमने महसूस किया कि हमारा उद्देश्य तो अपनी आत्मिक-उन्नति है। यदि हम अपनी जाँच में इस नतीजे पर पहुँचे कि हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने वास्तव में सरदार कृपालसिंहजी को अपना जानशीन नियुक्त किया है तो दीनता व सच्चे दिल से उनके आगे सीस नमाने वाले हम पहले व्यक्ति होंगे।

सरदार कृपालसिंहजी का कथन है कि १२ अक्तूबर १९४७ को सुबह सात बजे हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी ने उनको बुलाया और फ़रमाया कि 'मैं अपनी जगह नाम देने के लिये अब तुमको नियुक्त करता हूँ। डेरे का बाकी इन्तिज़ाम तो मैंने कर दिया था, सिर्फ यह काम बाकी रह गया था सो अब यह तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ।'

इस कथन के सत्यासत्य की जांच करने के लिये हम लोग तीन-चार महीने तक डेरे तथा बाहर के लगभग ३०-४० व्यक्तियों से मिले और पूछ-ताछ की। हम सर्व-सम्मति से जिस नतीजे पर पहुँचे उसका सारांश आगे

दिया जा रहा है :—

१२ अक्तूबर, १९४७ को हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी अमृतसर में थे और वहाँ सतसंग घर की दूसरी मंज़िल में निवास कर रहे थे। सितम्बर के अन्त में हुज़ूर बीमारी के कारण डेरे से अमृतसर इलाज के लिये तशरीफ़ ले गये थे। अक्तूबर के प्रारम्भ में हुज़ूर का स्वास्थ्य बहुत चिन्ताजनक हो गया था और डाक्टरों ने हुज़ूर का सबसे मिलना-जुलना बन्द कर दिया था। सतसंगी सेवादार दिन-रात सीढ़ियों के द्वार पर बैठे रहते थे। उन्हें हुक्म था कि डाक्टर साहब की इजाज़त के बग़ैर किसी के लिये द्वार न खोलें। डाक्टर (मेजर) गुरचरणदास कपूर, डाक्टर हरनामदास अग्रवाल (लुधियाना निवासी) और डाक्टर हज़ारासिंह (हुज़ूर के निजी डाक्टर) हर वक्त हुज़ूर के पास सेवा में मौजूद रहते थे। कोई भी व्यक्ति इनकी आज्ञा के बिना ऊपर नहीं जा सकता था। इन तीनों सज्जनों का कहना है कि हुज़ूर ने ऐसी कोई बात १२ अक्तूबर को या उससे पहले अथवा उसके बाद, अमृतसर के निवास के दौरान में सरदार कृपालसिंहजी से नहीं कही। आप लोग बताते हैं कि पाँच छः दिन पहले सरदार कृपालसिंहजी अमृतसर आये हुए थे और एक-दो बार उन्होंने हुज़ूर की सेवा में हाज़िर होने के लिये प्रार्थना की, लेकिन हुज़ूर ने फ़रमाया कि जब हुज़ूर डेरे से चलते समय कृपालसिंहजी को डेरे में ही रहने का हुक्म दे आये थे तो फिर वह अमृतसर क्यों आये हैं और उन्हें क्या काम है ?

अतएव सरदार कृपालसिंहजी हुज़ूर महाराजजी के चरणों में उपस्थित न हो सके। १२ अक्तूबर को सुबह नौ बजे के करीब बीबी रली ऊपर जा रही थीं, उस समय आप भी उनके साथ ऊपर चले गये। भाई शादी ने (जो हमेशा महाराजजी की सेवा में रहते थे) बताया कि उस समय कृपालसिंहजी की हुज़ूर से अकेले में कोई बात न हुई, क्योंकि हुज़ूर ने कृपालसिंहजी के अमृतसर चले आने पर अप्रसन्नता प्रकट की और फ़रमाया कि जब हुज़ूर ने सरदार बहादुर जगतसिंहजी, कृपालसिंहजी तथा कुछ और लोगों को डेरे में ही रहने का हुक्म दिया था, तो कृपालसिंहजी बग़ैर इजाज़त क्यों आये हैं। साथ ही महाराजजी ने सरदार बहादुरजी के प्रति प्रसन्नता प्रकट की और फ़रमाया कि वे सच्चे आज्ञाकारी गुरुमुख हैं जो हुक्म को मान कर डेरे से न आये; हालाँकि एक दिन पहले मोटर उनके पास से आई थी।

डाक्टर हरनामदास ने बताया कि उन दिनों सीढ़ियों का द्वार आठ-नौ बजे से पहले नहीं खोला जाता था। १२ अक्तूबर को सरदार कृपालसिंह

जब बीबी रली के साथ ऊपर गये तो केवल दो मिनिट ही हुज़ूर के सामने ठहरे तथा हुज़ूर के अप्रसन्नता प्रकट करने पर नीचे चले आये। बीबी रली और बीबी रक्खी भी इस कथन की पुष्टि करती हैं। उसी दिन ग्यारह-बारह बजे के करीब राय साहब मुन्शीराम और दीवान दरियाईलाल रोज़ की तरह ऊपर गये तो उन्हें बताया गया कि किस प्रकार सरदार कृपालसिंहजी आये थे और हुज़ूर उन पर अप्रसन्न हुए हैं।

निम्न-लिखित तथ्यों पर किसी प्रकार की टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है :—

(१) एक ओर तो सरदार कृपालसिंह साहब का अपने हक में एक-मात्र अपना ही बयान है जिसकी पुष्टि और किसी साक्षी से नहीं होती, और दूसरी ओर छः तटस्थ तथा सम्मानित व्यक्तियों के कथन हैं जिन पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं।

(२) अगर इन बातों पर ध्यान न भी दिया जाये, तो सतगुरु दीन-दयाल परम पुरुष पूरन धनी हुज़ूर महाराजजी की लिखित वसीयत[१] बिलकुल स्पष्ट है जिसके अनुसार हुज़ूर ने सरदार बहादुर जगतसिंहजी को अपना जानशीन नियुक्त फ़रमाया है।

(३) २० सितम्बर १९४७ को जो लिखित आदेश हुज़ूर महाराजजी ने सत्संग के प्रबन्ध के विषय में अपने हस्ताक्षरों सहित दिये, उनके अनुसार तीन प्रबन्धक कमेटियाँ बनाई गई थीं। उन तीनों कमेटियों के अध्यक्ष स्वयं हुज़ूर थे तथा उपाध्यक्ष सरदार बहादुर जगतसिंहजी थे। उन आदेशों के अन्त में हुज़ूर का फ़रमान था कि उनके बाद सरदार बहादुर जगतसिंह इन तीनों कमेटियों के अध्यक्ष (प्रेसिडेंट) होंगे और समस्त अचल सम्पत्ति, धार्मिक या रूहानी सम्पत्ति के रूप में, सरदार बहादुर जगतसिंह के नाम में रहेगी और वह उनकी निजी या व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं समझी जायेगी।[२] इन लिखित आदेशों से साफ़ ज़ाहिर होता है कि हुज़ूर महाराजजी ने बहुत समय पूर्व ही यह निश्चय कर लिया था कि सरदार बहादुर जगतसिंहजी उनके जानशीन होंगे। इन तीनों कमेटियों को बनाते समय महाराजजी ने सरदार कृपालसिंह जी को कोई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य नहीं दिया तथा उन्हें मेनेजिंग कमेटी में भी शामिल नहीं किया।[३]

---

१. यह वसीयत पहले दी जा चुकी है देखें पृष्ठ १९६.

२. देखें पृष्ठ १४३.

३. देखें डेरे के प्रबन्ध और प्रशासन की योजना, पुष्ठ १४२-१४५। इस योजना की तालिका २ में हुज़ूर ने सरदार कृपालसिंहजी को बाबू गुलाबसिंह जी, सरदार गोकुलसिंह तथा बाबा रामेश्वर के साथ सत्संग करने की संयुक्त जिम्मेदारी दी थी।

(४) २० अक्तूबर १९४७ को हुजूर महाराजजी ने अपनी मोटर भेज कर सरदार बहादुर जगतसिंहजी को अमृतसर अपने पास बुलाया और सत्संग के लाखों रुपयों के खाते जो बैंकों में केवल हुजूर के नाम पर चले आ रहे थे, उनमें सरदार बहादुर जी का नाम भी जोड़ दिया (और स्पष्ट कर दिया कि सरदार बहादुरजी उन खातों को हुजूर के बाद अकेले चला सकेंगे)। इसका उद्देश्य यही था कि हुजूर के बाद जानशीनी का सर्टिफिकेट आदि प्राप्त करने में रुपया खर्च न करना पड़े तथा डेरे का कार्य बगैर किसी रुकावट के नये सतगुरु के मातहत बराबर चलता रहे। ये बातें स्पष्ट रूप से महाराजजी की उस इच्छा की ओर संकेत करती हैं जो २० मार्च १९४८ को सरदार बहादुर जगतसिंहजी के हक में वसीयत के रूप में प्रकट हुई। यदि सरदार कृपालसिंह जी को गुरु-गद्दी दे दी गई थी तो नकद धन व अन्य रुहानी सम्पत्ति के लिये उन पर विश्वास क्यों न किया गया?

(५) सरदार कृपालसिंह फ़रमाते हैं कि हुजूर महाराजजी ने आपको अकेले बुलाकर कहा कि अब मैं अपनी जगह परमार्थी काम के लिये तुम्हें नियुक्त करता हूँ। लेकिन यह बात बिल्कुल समझ में नहीं आती है कि ऐसी आवश्यक तथा महत्वपूर्ण बात को—जिसका प्रभाव भारत की संगत पर ही नहीं बल्कि विदेशों में भी हज़ारों व्यक्तियों पर पड़ने वाला था—इतनी गुप्त रखने की क्या ज़रूरत थी। यह हुजूर महाराजजी या सरदार कृपालसिंह की ऐसी कोई निजी गोपनीय बात तो थी नहीं, जिसे इतना गुप्त रखा जाता कि न सरदार कृपालसिंह ने (२ अप्रेल १९४८ को और उसके बाद भी काफ़ी समय तक) किसी से इसका ज़िक्र किया और न हुजूर महाराजजी ने किसी को यह बात बताई। इसकी तो संगत में तुरन्त घोषणा कर दी जानी चाहिये थी, जैसी कि सरदार बहादुर जगतसिंहजी के बारे में की गई।

(६) डाक्टर पैरी स्मिथ साहिब ने, जो उन दिनों हुजूर का इलाज कर रहे थे, दिल्ली के प्रसिद्ध होमियोपेथिक डाक्टर दीवान जयचन्द को १४-१५ मार्च १९४८ को परामर्श के लिये बुलाया। जब ये दोनों डाक्टर हुजूर का निरीक्षण करके कमरे से बाहर निकले तो डाक्टर जयचन्द ने साथ के कमरे में आकर कहा, "मुझे अब हुजूर की ज़िन्दगी ज्यादा दिन की नहीं दिखाई पड़ती। अब जल्दी ही आगे के प्रबन्ध के लिये उनसे कोई वसीयत आदि लिखवा लेनी चाहिये।" उस समय डेरे के जो सम्मानित सत्संगी (सरदार बचिंतसिंहजी, राय साहिब मुन्शीरामजी, सरदार बहादुर जगतसिंहजी, प्रोफेसर जगमोहन लालजी, सरदार चरनसिंहजी, डाक्टर हज़ारासिंह, मियां शादी, सरदार

कृपालसिंहजी इत्यादि) मौजूद थे, सबने कहा कि हम तो हुजूर को पूर्ण पुरुष परमात्मा का रूप समझते हैं और हम उनसे वसीयत आदि के बारे में कुछ अर्ज़ नहीं कर सकते। उस वक्त भी सरदार कृपालसिंह जी ने इस बात का जिक्र नहीं किया कि हुजूर सब प्रबन्ध कर चुके हैं, आप तसल्ली रखें और छः महीने पहले ही सब काम उनके सुपुर्द कर चुके हैं। सभी उपस्थित सज्जन सरदार कृपालसिंह के अच्छे मित्र और शुभचिन्तक थे। उस वक्त आप बड़ी आसानी से डाक्टर जयचन्द के सुझाव के उत्तर में कह सकते थे, "हुजूर ने सब इन्तिज़ाम किया हुआ है, आप फिक्र न करें।" अतः यह स्पष्ट है कि उस समय तक ऐसी कोई बात नहीं हुई थी। और २० मार्च को हुजूर का अपने सेक्रेटरी द्वारा सरदार बहादुर जगतसिंह के हक में वसीयत लिखवाना इस बात की पुष्टि करता है।

(७) वसीयत लिखी जाने के आठ दिन बाद, २८ मार्च १९४८ को बड़ा मासिक सत्संग था। उसमें स्वयं सरदार कृपालसिंहजी ने सरदार बहादुर जगतसिंह के हक में लिखी गई वसीयत को हाथ में लेकर भरे सत्संग में ऐलान किया कि संगत बिल्कुल न घबराये और हर तरह से तसल्ली रखे, महाराजजी ने अपना जानशीन नियुक्त कर दिया है और हर तरह का उचित प्रबन्ध कर दिया गया है। २७ मार्च की शाम को जब रायसाहिब मुंशीराम के दफ़्तर में हम १५-२० सत्संगी बैठे थे (जिनमें रायसाहिब मुन्शीराम के अलावा राय बहादुर गुलवन्तराय, मलिक राधाकिशन साहिब, प्रोफेसर जगमोहनलाल, बीबी रली, सरदार बचिंतसिंह व सरदार कृपालसिंह भी थे), यह फैसला किया गया कि अगले दिन सत्संग में सरदार बहादुर जगतसिंह साहिब की नियुक्ति की घोषणा कर दी जाये। उस वक्त सरदार कृपालसिंह ने अपने नियुक्त किये जाने का ज़िक्र तक न किया। अगर सचमुच ही वह छः महीने पहले नियुक्त हो चुके होते तो वह इस बात को ज़रूर ज़ाहिर करते।

(८) सरदार कृपालसिंह साहिब और दीवान दरयाईलाल, हुजूर महाराजजी के देहान्त के बाद, अगस्त या सितम्बर सन् १९४८ में कुछ दिन एकान्तवास के लिये, हृषिकेश में रहे थे। सरदार कृपालसिंह ने एक दिन दीवान दरयाईलाल से कहा कि बाबा जैमलसिंहजी, हुजूर महाराज (बाबा सावनसिंहजी) से सरदार बहादुर को अपनी जगह नियुक्त करने पर खुश नहीं हैं और कहते हैं, 'यह तुम क्या कर आये हो' और अंतर में मुझे (सरदार कृपालसिंह को) हुक्म दिया है कि तुम किसी नदी के किनारे अपना नया आश्रम बना लो। दीवान दरयाईलाल अपने सतगुरु के बारे में ऐसी

बातें सुनकर वहाँ से चले आये। अगर १२ अक्तूबर १९४७ को हुज़ूर महा-राजजी ने आपको गुरुगद्दी सौंप दी थी, तो फिर आपके इस कथन का क्या मतलब हो सकता है ? और क्या बाबा सावनसिंहजी महाराज ने इतना बड़ा फैसला बाबा जैमलसिंहजी के हुक्म के खिलाफ़ कर दिया था ? इस विषय में कोई टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

(९) सरदार सुरैनसिंहजी, हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी के गुरु-भाई और बाबा जैमलसिंहजी के पुराने सत्संगियों में से हैं। आप हुज़ूर महा-राजजी के विश्वस्त सत्संगी व सलाहकार थे। उन्होंने हमें बताया, "हुज़ूर ने तो एक साल पहले ही मुझसे फ़रमा दिया था कि उनके बाद सरदार बहादुर जगतसिंहजी काम करेंगे।" राय साहिब अर्जुनदास सुपरिटेंडिंग इंजीनियर ने भी इस बात का समर्थन किया है।

(१०) बाबू गुलाबसिंहजी हुज़ूर बाबा जैमलसिंहजी महाराज के पुराने सत्संगी और सरदार कृपालसिंहजी के निकट सम्बन्धी हैं। हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी को उन पर पूरा भरोसा था। हुज़ूर की सर्विस के दिनों में आप बहुत समय तक हुज़ूर के हैड-क्लर्क और कान्फिडेंश्यल क्लर्क रह चुके थे। सरदार बहादुर जगतसिंहजी की गद्दी-नशीनी के वक्त, तीस-चालीस हज़ार व्यक्तियों के सामने, आपने अपने भाषण में कहा, "हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी ने वसीयत लिखवाने से कुछ दिन पहले मुझसे ज़िक्र किया था कि उन्होंने अपनी जगह परमार्थी काम के लिये सरदार बहादुर जगतसिंहजी को नियुक्त करने का फैसला किया है। इस पर मैंने कहा कि हुज़ूर ! इससे अच्छा चुनाव हो ही नहीं सकता; इस काम के लिये वे सबसे योग्य हस्ती हैं।" सच्चाई व भक्ति की मूर्ति बाबू गुलाबसिंह के इस कथन को, जिसमें उनका कोई निजी मतलब नहीं, कोई गलत नहीं कह सकता। जब कभी सरदार कृपालसिंह जी डेरे आते, बाबूसाहिब के पास ठहरते। क्या अपने गुरु-गद्दी पर नियुक्त होने का भेद सरदार साहिब को उनसे भी छिपाना था ? हुज़ूर के चोला छोड़ने के बाद भी सरदार साहिब ने उनसे इस बात का ज़िक्र तक नहीं किया कि छः महीने पहले अकेले बुलाकर हुज़ूर ने कहा था "मेरे बाद तुम गुरु होगे।" बाबू गुलाबसिंह अब तक डेरे में ही रहते हैं और हमेशा सरदार बहादुरजी महाराज को हुज़ूर महाराजजी की जगह अपना सतगुरु मानते रहे हैं।

(११) एक बात और, जिसका (सरदार कृपालसिंहजी के दावे के सन्दर्भ में) कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं हो सकता, यह है कि खुद सरदार कृपाल-

सिंहजी हुज़ूर सरदार बहादुर जगतसिंहजी महाराज के चरणों में नाम के अभिलाषियों को नाम-दान के लिये भेजते रहे हैं। इस समय भी उनके अपने हाथ का लिखा हुआ इस मज़मून का एक पत्र डेरे के दफ्तर में मौजूद है।

(१२) लेफ्टिनेण्ट-कमाण्डर योगेन्द्रपाल कपूर भारतीय नौ-सेना में एक उच्च अफसर हैं। बड़े प्रेमी और नेक सज्जन हैं। पहले उन्होंने सरदार कृपालसिंहजी से नाम लिया था और तन-मन-धन से उनकी सेवा करते रहे। वह कहते हैं कि वहाँ के कुछ हालात से व्यथित होकर वह कई-कई रातें रो-रो कर हुज़ूर महाराजजी के चरणों में प्रार्थना करते रहे कि उन्हें सच्चाई का ज्ञान कराया जाये। फिर उन्हें अन्तर में आदेश हुआ कि अगर अपनी आत्मा की भलाई चाहते हो तो सरदार बहादुर जगतसिंहजी महाराज की शरण में जाओ। डाक्टर खोसला साहिब (चंडीगढ़ वाले) भी अपने बारे में इसी प्रकार का वृत्तान्त सुनाते हैं। श्रीमती पुरी (श्री ईश्वरचन्द्र पुरी, डिप्टी कमिश्नर धर्मशाला, की माताजी) एक बड़ी गम्भीर बुजुर्ग व मितभाषी महिला हैं। आपको अन्तर में हुज़ूर महाराजजी ने जो पद सरदार बहादुर जी का दिखाया और जो हालत सरदार कृपालसिंह की दिखाई, वह आपने साफ़-साफ़ बयान कर दी है। इस प्रकार के अनेक वृत्तान्त हैं जिनमें स्वयं हुज़ूर महाराजजी ने अन्तर में दर्शन देकर सरदार बहादुर जी को अपनी जगह नियुक्त करने की पुष्टि की है।

(१३) बाहरी गवाही की अपेक्षा ऊँचे दर्जे के, पहुँचे हुए अभ्यासियों की अन्तर की गवाही अधिक वज़नदार और अकाट्य है। ये सभी अभ्यासी सरदार बहादुर जगतसिंहजी महाराज के पक्ष में हैं। यह संत-मत का पक्का विश्वास है कि ऊँचे दर्जे के अभ्यासियों को अन्तर में वक्त-गुरु के दर्शन होते रहते हैं और एक गुरु के चोला छोड़ने पर उनके जानशीन का स्वरूप भी अन्तर में प्रकट हो जाता है। इस वक्त सत्संग में जितने पहुँचे हुए अभ्यासी हैं—जिनकी पहुँच पर किसी को सन्देह नहीं हो सकता—उन सभी ने सरदार बहादुर जगतसिंहजी महाराज द्वारा अन्तर में सन्त-सतगुरु के रूप में दर्शन देने की पुष्टि की है। सतगुरु के दरबार में बड़े-बड़े रत्न मौजूद हैं। बाबा मनसारामजी (बाबा रोड़ा), मुन्शी चाननमलजी कपूरथला वाले, बाबू गुलाबसिंहजी, लाला अरूड़चन्दजी अमृतसर निवासी, सरदार मोहनसिंहजी, बाबा उजागरसिंहजी कपूरथला वाले, बाबा भगतसिंहजी लुधियाना वाले, बाबा बुधसिंहजी, मौलवी मुहम्मद-दीन, मौलवी इब्राहीम, भाई वज़ीरा,

डाक्टर हज़ारासिंहजी[१] लुधियाना वाले, सेठ सेढूमलजी, लाला रामदासजी, बीबी रक्खीजी, बीबी रलीजी, बीबी धन्नो, बीबी कृष्णारानी जम्मू वाली, श्रीमती लेखराज पुरी, माई जोन्दीजी, श्रीमती सोहनलाल कौड़ा (और अन्य अनेक सत्संगियों) को हुज़ूर महाराजजी ने अन्तर में सरदार बहादुर जगतसिंहजी महाराज से मिलाया। कांगड़ा ज़िले के पहाड़ी इलाके की एक प्रसिद्ध महात्मा माता जानकीजी ने तो कई दिन पहले ही वहाँ के सत्संगियों को बता दिया था कि अब हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी जल्दी ही निज-देश को वापस जाने वाले हैं और उन्होंने उनकी जगह सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी को तख्त पर बिराजमान देखा है। इस बीबी की उम्र १०४ साल है। आप अभी तक जीवित हैं और गुरु ने नाम की दौलत से इतना मालामाल किया हुआ है कि अन्दर के हालात खूब सुनाती रहती हैं।

(१४) हुज़ूर महाराजजी के चोला छोड़ने के कुछ दिन बाद, यहाँ से चलने से पहले, डाक्टर पैरी स्मिथ ने हुज़ूर महाराजजी के देहान्त के बारे में एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था "ब्यास में सतगुरु का चोला छोड़ना।" इसकी एक टाइप की हुई प्रतिलिपि (नकल) प्रोफेसर जगमोहन लाल ने हमें देखने के लिये दी। इस लेख की प्रामाणिकता को डाक्टर स्मिथ ने खुद भी माना है। इसमें से कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं। इनसे सच्चाई के बारे में काफी ज्ञान होता है। डाक्टर साहिब[२] ने लिखा है :—

"मैं महसूस करता हूँ कि यहाँ मैं उन दो बातों का ज़िक्र ज़रूर करूँ जो इस भारी कष्ट के समय में भी हुज़ूर महाराज के पूर्ण सतगुरु होने की पुष्टि करती हैं :—

(अ) "चोला छोड़ने से कुछ सप्ताह पहले हुज़ूर ने फ़रमाया, 'जालंधर से (जो डेरे से लगभग ४० किलोमीटर दूर है) थोड़ा-सा पानी मँगवाया जाये।' फिर एक दिन शाम को फ़रमाया, 'वह देखो जालंधर में कैसी तेज़ रोशनी चमक रही है।' फिर एक दिन फ़रमाया, 'देखो, जिस मकान में अब मैं रहता हूँ, वह पुराना व जर्जर हो गया है। अब इसे छोड़ कर जालंधर एक नया मकान लूँगा।' पहले तो हमने सोचा कि शायद बीमारी की वजह से ऐसी बातें करते हैं। लेकिन बाद में हुज़ूर का असल मंशा मालूम हुआ

---

१. डाक्टर हज़ारासिंह सरदार कृपालसिंहजी के परम मित्र हैं। आप हुज़ूर महाराजजी की बीमारी में शुरू से आखिर तक हुज़ूर की सेवा में उपस्थित रहे। डाक्टर साहब को हुज़ूर महाराजजी ने अपने चोला छोड़ने से बहुत दिन पहले ही भविष्य की सारी रूप-रेखा दिखा दी थी।

२. डाक्टर पैरी स्मिथ के इस लेख की मूल प्रति डेरे में सुरक्षित है।

कि वे अपने जानशीन (सरदार बहादुर साहिब) के बारे में इन इशारों से हमें कुछ पता देना चाहते थे। सरदार बहादुर जालंधर के रहने वाले थे और हुज़ूर हमें बता रहे थे कि उन्होंने अपना काम अब तक ख़त्म कर लिया है और अब रोशनी जालंधर से आयेगी।"

(आ) "अपने जाने से दो सप्ताह पूर्व, जब हुज़ूर कुछ स्वस्थ थे, तब २० मार्च को उन्होंने अपने कमरे की खिड़की में से संगत को दर्शन दिये। उसके बाद दोपहर को १-३० बजे, हुज़ूर के बड़े साहबज़ादे (जो कि ६८ वर्षीय बुज़ुर्ग हैं और जिनकी दाढ़ी सफ़ेद हो चुकी है), हुज़ूर के पौत्र, निजी-सचिव (प्राइवेट सेक्रेटरी), विश्वासपात्र सेवादार बीबी रली और मेरी उपस्थिति में सेक्रेटरी ने हुज़ूर को वह कागज़ दिया जिसमें हुज़ूर के आदेश के अनुसार उनकी अन्तिम इच्छाएँ लिखी गईं थी। महाराजजी ने अपने पढ़ने की ऐनक माँगी, उसे शान्तिपूर्वक आँखों पर लगाया और तनिक काँपते हुए हाथ से उस कागज़ को लिया। हुज़ूर ने धीरे-धीरे और बड़ी सावधानी से हरएक पंक्ति को शुरू से आखिर तक पढ़ा और फिर सेक्रेटरी की ओर देखते हुए कागज़ वापस दे दिया। उसके बाद हुज़ूर पाँच मिनिट तक ख़ामोश रहे, तथा अपने सामने की ओर देखते रहे; ऐसा प्रतीत होता था कि हुज़ूर किसी ध्यान अथवा चिन्तन में लीन हैं। उस समय चारों ओर गहरी ख़ामोशी थी। फिर हुज़ूर ने वह दस्तावेज़ दोबारा माँगा और उसे फिर से उसी सावधानी के साथ पढ़ा और सेक्रेटरी को देते हुए हुक्म दिया कि इसे पढ़ कर सुना दो। सेक्रेटरी ने उसे पढ़ कर सुनाया। दस्तावेज़ पढ़ कर सब को सुना देने के बाद सेक्रेटरी ने महाराजजी से पूछा, 'क्या यह ठीक है?' हुज़ूर ने जवाब दिया, 'हाँ।' और साथ ही अपना सिर हिला कर सम्मति प्रकट की। फिर हुज़ूर ने अपनी पेन (कलम) माँगी। मैंने अपनी क़लम पेश की। कलम हाथ में लेकर हुज़ूर ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से अपने पौत्र (सरदार चरनसिंहजी) की ओर देखा, जिन पर हुज़ूर का हमेशा बहुत गहरा विश्वास था। उसके बाद महाराजजी ने उस अनमोल दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर किये, जिसमें हुज़ूर के जानशीन का नाम और हुज़ूर की अन्तिम इच्छा अंकित थी।

"मैंने हुज़ूर के हस्ताक्षर का इस ज़रूरी घोषणा के साथ प्रमाणीकरण किया कि हस्ताक्षर करते समय हुज़ूर अपने पूरे होश-हवाश में हैं और उन्होंने इस दस्तावेज़ पर खुद अपनी मरज़ी से, बग़ैर किसी दबाव के हस्ताक्षर किये हैं।

"उस शान्त, अलौकिक वातावरण में महाराजजी की क्या निराली शान थी! उनके मुख की शोभा कितनी दिव्य, उदार और प्रभावशाली थी!

यद्यपि उनके हाथ थोड़े काँप रहे थे, फिर भी उनकी प्रत्येक क्रिया भव्य और आकर्षक थी। दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने का जो कार्य हुज़ूर ने किया था और जिस प्रकार किया था, उसने हमारे हृदय को प्रेम और भावना से भरपूर कर दिया था; जुड़े हुए हाथों, उमड़ते हृदय और भक्ति के साथ हम उनके पावन चरणों में नत हो गये। वे उस समय हमारे सामने देह-स्वरूप में मौजूद थे, किन्तु अपनी वसीयत के द्वारा यह घोषणा कर चुके थे कि कुछ समय बाद हमारे बीच देह-स्वरूप में न रहेंगे। मैं कभी न भूल सकूँगा वह खामोशी और उससे भी अधिक वह पूर्ण आन्तरिक-शान्ति जो सतगुरु की अपार दया-मेहर के साथ हमारे रोम-रोम में समा गई थी।

"उस समय हुज़ूर अपने पलंग पर एक मोटे नीले मखमली तकिये के सहारे बैठे थे। कन्धों पर एक श्वेत मुलायम शाल लपेटा हुआ था। सिर खुला था, पगड़ी नहीं पहनी हुई थी। उनके नेत्रों में अपार आत्मिक शक्ति तथा सामर्थ्य को प्रकट करने वाली वह ज्योति और आभा थी जिसका वर्णन असम्भव है। उनके सम्पूर्ण शरीर से ऐसी चेतन धाराएँ निकल रही थीं जिनका मैं वर्णन नहीं कर सकता, जो अथाह और अलौकिक थीं। हुज़ूर की सर्वज्ञता के सामने हम अपने आप को बहुत छोटा और तुच्छ महसूस कर रहे थे। उसके बाद हम पर एक गहरी सौम्यता और आन्तरिक शान्ति छा गई, जिसने हमें अपने चारों ओर की दुनिया को भुला दिया; हमें अपने आपकी सुधि न रही, हमारी आँखें प्रेम और आनन्द के अश्रुओं से डबडबा गईं, हम अपने महान सतगुरु के आत्मिक वातावरण के परम आनन्द में प्लावित हो गये।"

(१५) सरदार बहादुर जगतसिंहजी को तो गुरु बनने का भार जबरदस्ती दिया गया था। उन्होंने कभी इसकी इच्छा ही नहीं की, बल्कि पहली बार कहे जाने पर तो भीगी आँखों से, इस ज़िम्मेदारी को स्वीकार करने से साफ इन्कार कर दिया था। दूसरी बार जब हुज़ूर महाराजजी ने उन्हें बुला कर एक तरह से मजबूर किया और हुक्म दिया कि यह काम उन्हें करना ही पड़ेगा तो गुरु के हुक्म के आगे उन्होंने सिर झुका दिया। सभी गुरु साहिबों का यही हाल रहा है। इसके विपरीत सरदार कृपालसिंहजी (अपने गुरु के हुक्म की परवाह न करके) गुरु बनने की जो कोशिश करते रहे, वह पुराने सत्संगियों को भली प्रकार मालूम है।

(१६) जब सरदार बहादुर साहिब ने इस मृत्यू-लोक को छोड़ने का

इरादा प्रकट किया तो फिर सरदार कृपालसिंहजी ने उन्हें पत्र लिखा कि अब आप मुझे अपनी जगह नियुक्त कर जायें और डेरे में बुला लें। इसका जवाब सरदार बहादुर साहिब ने रायसाहिब लाला मुंशीरामजी से यह लिखाया, "भाई साहिब, यह गद्दी मेरी जायदाद नहीं। न मैं इस पर अपनी खुशी से बैठा हूँ, और न अगला वारिस नियुक्त करना मेरे अधिकार में है। मैं तो हुज़ूर महाराजजी का एक तुच्छ सेवक हूँ। मुझे तो जैसा ऊपर से हुज़ूर महाराजजी का हुक्म होता है, वैसा कर देता हूँ। आप इस बारे में जो निवेदन करना चाहें, हुज़ूर महाराजजी की सेवा में करें।"

(१७) कलकत्ता के श्री प्रेमसिंह भण्डारी हुज़ूर महाराजजी के एक प्रेमी सत्संगी हैं जो हुज़ूर महाराजजी के बाद सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी को और अब वर्तमान सतगुरु महाराज चरनसिंहजी को सन्त-सतगुरु मानते हैं। सरदार कृपालसिंहजी ने श्री प्रेम भण्डारी को अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाने के लिये कई पत्र लिखे। लेकिन उन पर इन पत्रों का कोई असर न हुआ। इस पर सरदार कृपालसिंहजी ने ६ जनवरी १९५२ को एक और पत्र उन्हें लिखा जिसमें एक बिल्कुल आधारहीन और असत्य कथा लिखी कि महाराज चरनसिंहजी ने सरदार बचिंतसिंह साहब (हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी के सुपुत्र) के कहने पर पचास हज़ार रुपये का एक चेक, ब्यास गद्दी पर बैठे रहने के लिये दिया है और एक स्टाम्प पेपर पर यह भी लिख कर दिया है कि वे दो-तीन साल के बाद गद्दी सरदार बचिंतसिंह जी के पौत्र को दे देंगे, वगैरह, वगैरह। श्री प्रेम भण्डारी ने यह पत्र हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी की सेवा में भेज दिया। हुज़ूर तो हद से ज़्यादा दयालु व क्षमाशील हैं। उन्होंने पत्र को कोई महत्व नहीं दिया। लेकिन हुज़ूर के कुछ वकील सत्संगियों ने शेख सादी का यह शेर याद दिला कर 'नेकी बा बदाँ चुनां अस्त चू बद करदन बराए नेक मरदां*', इस बात पर ज़ोर दिया कि बर्दाश्त और माफ़ी की भी कोई हद होती है; सरदार कृपालसिंहजी ने जबानी व लिखित असत्य प्रचार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, लेकिन अब जबकि यह बात बहुत बढ़ गई है तो इसका इलाज किया जाना ज़रूरी है। महाराज चरनसिंहजी तो फिर भी यही कहते रहे कि हमारा इन सार-हीन कथनों से क्या बिगड़ा है; लोग अपनी आदत पूरी करते रहें हमें अपना स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिये। लेकिन वकील मित्रों ने सरदार कृपालसिंहजी को नोटिस दे ही दिया कि आपने जान-बूझकर, द्वेषपूर्ण भावना से गलत,

*बुरे लोगों के साथ नेकी करना, नेक व्यक्तियों के साथ बुराई करने के समान है।

निराधार, झूठी और अपमान-जनक बातें लिखी हैं और इनसे सत्संगियों की भावनाओं को बहुत चोट पहुँची है। अतएव या तो एक महीने के अन्दर इस झूठे कथन के लिये माफी मांगें या इसके परिणाम के लिये तैयार हों। इस पर सरदार कृपालसिंहजी ने अपने एक पुराने मित्र, मलिक राधाकिशन जी वकील (हिसारवाले) के मार्फत पत्र में लिखी बातों को गलत और असत्य स्वीकार किया और एक लिखित माफ़ी-नामा[1] महाराज चरनसिंहजी की सेवा में पेश किया और उसे मंजूर करने की प्रार्थना की। हुज़ूर ने कृपापूर्वक माफ़ीनामे को स्वीकार किया।

(१८) श्री प्रेम भंडारी साहिब को (जो कलकत्ते के एक अमीर व्यापारी हैं) अपने गुरुयाई के क्षेत्र में लाने की कामना में आप यह पत्र[2] लिखते समय भूल गये कि ऐसे अपमानजनक मिथ्या आरोप न्याय विधान के अनुसार अपराध हैं। लेकिन छः महीने बाद जब आपको यह बात समझ में आई तो फिर श्री प्रेम भण्डारी से अपनी चिट्ठी वापस प्राप्त करने के लिये आपने १५ जून १९५२ को एक पत्र भंडारी जी को लिखा और प्रार्थना की, "मेरा ६ जनवरी १९५२ वाला पत्र कृपया वापस भेज दो। मैं उसमें कुछ देखना चाहता हूँ। यह बड़ी ज़रूरी बात है; मुझे उम्मीद है कि वह मूल पत्र मेहर-बानी करके आप ज़रूर भेज देंगे और मुझे अनुग्रहीत करेंगे।" उन्हीं दिनों का ज़िक्र है कि एक व्यक्ति—जिसने दो-तीन मास डेरे के दफ्तर में खूब मेहनत और होशियारी से काम करके सेक्रेटरी साहिब को खुश कर लिया था और उनका विश्वास प्राप्त कर लिया था—एक दिन सुबह के वक्त, जब सब लोग डेरे से बाहर बड़े सत्संग घर में सत्संग सुनने गये हुए थे, डेरे के ज़रूरी काग़ज़ों की अलमारी का ताला खोलकर कागज़ निकालता पकड़ा गया; संयोगवश सेक्रेटरी साहिब किसी काम से वहाँ आ गये और उस व्यक्ति के पास से सरदार साहिब से सम्बन्धित कागज़ पकड़े गये। वह बनता रहा कि वह बिल्कुल अनपढ़ है, लेकिन जब उसे पुलिस के हवाले करने लगे तो मान गया कि वह मैट्रिक पास है और यू. पी. का रहने वाला है, और उसने अपनी इच्छा से ही

---

१. यह माफ़ी नामा डेरे के रिकार्ड में सुरक्षित है।

२. ऐसे असत्य कथन और प्रोपेगण्डा की अपेक्षा एक साधारण सत्संगी से भी नहीं की जाती है। अभ्यासी सत्संगियों की कथनी और रहनी बहुत ऊँची होती है। सन्तों की तो बात ही निराली है। वे पवित्र जीवन, सच्चाई और नेकी की स्वयं एक मिसाल होते हैं।

यह काम किया था, किसी के कहने पर नहीं। हुज़ूर ने दया करके उसे छोड़ देने का हुक्म फ़रमाया।

ऊपर दी गई बातों पर विचार करके नतीजा निकालना हम सत्य के खोजियों पर छोड़ते हैं। हमारी प्रार्थना है कि मालिक दया करे और हमें सुबुद्धि दे ताकि हम सच और झूठ की पहचान कर सकें।

इस जाँच के दौरान में बख़्शी चाननशाह ने हमें एक नोट लिख कर दिया था, जिसके एक अंश का सारांश यहाँ दिया जाता है :—

हुजूर महाराज सावनसिंहजी की प्रसिद्ध पुस्तक "गुरुमत सिद्धान्त" का पहला संस्करण सन् १९२०-२२ में प्रकाशित हुआ था, जब सरदार कृपालसिंहजी ने नाम भी न लिया था। सन् १९४२ में इस ग्रन्थ की वृद्धि करके इसे दो भागों में छपवाया गया। यह पुस्तक बहुत लोक-प्रिय हुई है। हुज़ूर महाराजजी ने पुस्तक का कापीराइट सुरक्षित करवाने की आवश्यकता न समझी। बड़े अफ़सोस की बात है कि इस बात का फ़ायदा उठाकर सरदार कृपालसिंहजी ने, पुस्तक के वैध स्वामी की आज्ञा के बग़ैर, इसका अनुवाद उर्दू में करके बेचना शुरू कर दिया; बल्कि उन्होंने इतने पर ही सन्तोष न किया और यह कहना शुरू कर दिया है कि इस पुस्तक के लेखक महाराज बाबा सावनसिंहजी नहीं हैं। जब कुछ प्रेमी सत्संगियों ने आपसे मिलकर आपके इस अवैध और अनुचित कार्य पर आपत्ति की तो आपने फ़रमाया, "मैंने ही यह पुस्तक लिख कर हुज़ूर महाराजजी को दी थी और हुज़ूर ने इसे अपने नाम से प्रकाशित करा लिया।[1]"

हमारी जाँच के इस नतीजे को लिखे आज कई वर्ष हो गये हैं। जिन सम्माननीय सत्संगी मित्रों ने इस जाँच में योग दिया उनका आशय किसी की भावनाओं को चोट पहुँचाने का नहीं था और न ही प्रस्तुत पुस्तक के लेखक का ऐसा कोई भाव है। इस अंश को लिखना मेरे लिये एक अरुचिकर उत्तरदायित्व तथा खेदपूर्ण आवश्यकता थी, और है; क्योंकि आने वाली पीढ़ियों के हित में सच्चाई को प्रकट करना इतिहास की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है।

---

१. यह बात महत्वपूर्ण है कि हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी के जीवन-काल में सन् १९४८ तक सरदार कृपालसिंहजी ने इस बात का दावा नहीं किया कि वे "गुरुमत सिद्धान्त" के लेखक हैं। हुज़ूर के महाप्रयाण के कुछ समय बाद उन्होंने इस प्रकार की बातें करना शुरू कर दीं।

अभी कुछ समय पहले डेरे के सेक्रेटरी श्री के. एल. खन्ना ने हुज़ूर बाबा सावनसिंहजी महाराज की सन् १९३७ से लेकर २० मार्च, १९४८ तक की सभी वसीयतों तथा २० सितम्बर १९४७ को हुज़ूर महाराजजी द्वारा बनाई गई डेरे के प्रबन्ध व प्रशासन की योजना को एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कर दिया है। इन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज़ों को मैंने प्रस्तुत पुस्तक में भी शामिल किया है[1]। इन्हें पढ़ने से साफ ज़ाहिर होता है कि हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने अपनी २० मार्च १९४८ की अन्तिम वसीयत से काफी पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि उनका जानशीन कौन होगा। डेरे के प्रशासन की योजना के अन्त में तो महाराजजी ने स्पष्ट कर दिया कि उनके बाद सरदार बहादुर जगतसिंह जी गद्दीनशीन होंगे। हुज़ूर ने योजना के अन्त में आदेश दिया कि उनके देहान्त के बाद भी यह प्रबन्ध जारी रहेगा और उनके बाद सरदार बहादुर जगतसिंह (हुज़ूर के स्थान पर) इन तीनों कमेटियों के अध्यक्ष होंगे तथा समस्त अचल सम्पत्ति, धार्मिक या रूहानी सम्पत्ति के रूप में उनके (सरदार बहादुर जगतसिंह के) नाम होगी और वह उनकी निजी या व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं समझी जायेगी।[2]

इस घोषणा को कानूनी रूप देने के लिये हुज़ूर महाराजजी ने दो महत्वपूर्ण कदम उठाये। एक, हुज़ूर ने २४ सितम्बर, १९४७ को एक वसीयत[3] बनाई जिसमें इसी बात को स्पष्ट रूप से दोहराया। दो, अक्तूबर, १९४७ में हुज़ूर ने बैंकों में जमा डेरे की सम्पूर्ण राशि के खातों में अपने साथ सरदार बहादुरजी का नाम जोड़ दिया और स्पष्ट कर दिया कि उन खातों को दोनों में से एक अथवा उत्तर-जीवी चला सकेगा।

इस सन्दर्भ में हुज़ूर की इससे पहले कीं वसीयतों में से कुछ उद्धरण देना चाहूँगा, जिनमें यह स्पष्ट फ़रमाया गया है कि डेरे की रूहानी अथवा धार्मिक सम्पत्ति हुज़ूर के बाद हुज़ूर द्वारा नामज़द गद्दीनशीन के नाम होगी :—

"मेरी दूसरी प्रकार की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी और स्वामी वह व्यक्ति होगा जिसे मैं एक अलग वसीयत के द्वारा डेरा बाबा जैमलसिंह में अपने स्थान पर गद्दीनशीन नामज़द व मुकर्रर करूँगा।...... यह डेरा और इससे सम्बन्धित जायदाद मेरे एक-मात्र स्वामित्व की सम्पत्ति है और मेरे बाद मेरे द्वारा नामज़द जानशीन की भी एक-मात्र स्वामित्व की सम्पत्ति होगी।" (वसीयतनामा ३० नवम्बर, १९३७)

ऊपर लिखे वचनों से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि सन् १९३७ में ही

---

१. देखें पृष्ठ १३६ से १५०। २. देखें पृष्ठ १४३। ३. देखें पृष्ठ १४८।

हुज़ूर ने यह स्पष्ट प्रकट कर दिया था कि हुज़ूर अपना गद्दीनशीन एक अलग वसीयत के द्वारा नामज़द व मुक़र्रर करेंगे।

इस वसीयत के कुछ वर्ष बाद जब यह देखा गया कि डेरे की रूहानी सम्पत्ति में कुछ और वृद्धि हुई है तो हुज़ूर सतगुरु महाराज सावनसिंहजी ने २६ अप्रेल १९४२ को एक कोडिसिल अथवा पूरक वसीयतनामा बनाया और उसमें फिर स्पष्ट रूप से घोषणा की—"इस (परमार्थी) सम्पत्ति के साथ, मेरी अन्य धार्मिक सम्पत्ति की तरह, जिसका वर्णन पिछली वसीयत में आ चुका है, मेरी सन्तान का कोई वास्ता या सम्बन्ध नहीं होगा। मेरे बाद इसका स्वामी मेरे द्वारा नामज़द किया हुआ जानशीन होगा और उसे उपरोक्त सम्पत्ति से सम्बन्धित वे समस्त अधिकार प्राप्त होंगे जो मुझे मेरे जीवन-काल में प्राप्त हैं।" (पूरक वसीयतनामा २६ अप्रेल, १९४२)

अतएव २० मार्च १९४८ की अपनी अंतिम वसीयत द्वारा अपने जानशीन के नाम की घोषणा हुज़ूर के पूर्व नियोजित निश्चय का एक अंग थी। हुज़ूर कई बार फ़रमाया करते थे कि मैं अपने जानशीन के बारे में किसी तरह की शंका व सन्देह की गुंजाइश नहीं रखूँगा। सन्तों ने हमेशा अपने जानशीन की घोषणा अपनी संगत के सामने की है। गुरु नानक साहिब तथा अन्य गुरु साहिबों का वृत्तान्त देखें। बाबा जैमलसिंहजी महाराज ने अपने प्रमुख सत्संगियों के सामने महाराज सावनसिंहजी को अपना जानशीन नियुक्त करने की घोषणा की थी। अपना जानशीन संगत को बताना सन्तों का एक महत्वपूर्ण कार्य है और इसे डेरे के गुरु साहिबानों ने हमेशा स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। हुज़ूर महाराज सावनसिंहजी ने आज के ज़माने को देखते हुए इस घोषणा को वसीयत का कानूनी रूप प्रदान किया है।

इतना कहना ज़रूरी है कि यदि कोई भी सज्जन यह दावा करते हैं कि हुज़ूर सतगुरु महाराज सावनसिंहजी ने उन्हें जानशीन नियुक्त किया है, तो ऊपर दिये तथ्यों के प्रकाश में ऐसे सभी दावे आधार-हीन हैं। हाँ, यदि कोई साहब यह कहें कि हुज़ूर महाराजजी ने उन्हें अन्तर में हुक्म दिया है कि नाम देना शुरू करो, तो इस प्रकार के कथन को इन साहिबानों की व्यक्तिगत बात मान कर इस पर मैं कोई टिप्पणी नहीं करना चाहूँगा। इस प्रकार के कथन भी सतगुरु दीन-दयाल की प्रत्यक्ष घोषणा तथा वसीयत के सामने कितना महत्व रखते हैं इसका निर्णय मैं संगत तथा पाठकों पर छोड़ता हूँ।

परिशिष्ठ १

हुज़ूर स्वामीजी महाराज के आखिरी वचन

वचन जो कि स्वामीजी महाराज ने आखिरी रोज़ पेश्तर अन्तर-ध्यान होने के, वास्ते हिदायत साधुओं व सत्संगियों सत्संगिनों के, ख़ास ज़बाने मुबारक से फ़रमाये।

तारीख १५ जून सन् १८७८ मुताबिक असाड़ वदी १—पड़वा सम्वत १९३५ वि. रोज़ शनीचर वक्त अल् सुबह।

वचन १—चन्द्रसैन सत्संगी जो कि हर पूनो (पूर्णमांशी) को मौज़ा कुरसंडे से वास्ते दर्शन हुज़ूर स्वामीजी महाराज के आता था, उसको स्वामीजी महाराज ने पास बुलाकर फ़रमाया कि तुम बैठ जाओ और दर्शन खूब ग़ौर से कर लो और इस स्वरूप को हृदय में रख लो क्योंकि दूसरी पूनों को तुमको दर्शन न होंगे, तुम्हारी भक्ति पूर्ण हुई।

वचन २—वक्त आठ बजे सुबह के स्वामीजी महाराज ने फ़रमाया कि अब चलने की तैयारी है। इसके बाद महाराज ने सुरति चढ़ाई और सब भास खैंच लिया, सिर्फ सफ़ैद डेले आँखों के नज़र पड़ते थे और बदन कांपने लगा, फिर पाव घंटे बाद सुरति उतारी और उस वक्त यह फ़रमाया कि अब मौज फिर गई, अभी देर है। तब लाला प्रतापसिंह ने पूछा कि कब की मौज है ? उस पर फ़रमाया कि बाद दोपहर के।

वचन ३—फिर भारासिंह साधू और सत्संगियों ने कुछ रुपये भेंट करना शुरू किया और बन्दगी करने लगे। उस पर लाला जगन्नाथ खत्री पड़ौसी कहने लगे कि इस वक्त महाराज का ध्यान अन्तर में लगने दो, रुपया पेश करने का यह वक्त नहीं है। तब स्वामीजी महाराज ने उन की तरफ़ मुतवज्जह होकर यह फ़रमाया कि ध्यान इसका नाम है कि जब चाहे तब सुरति पहुँचा दी, और जब चाहे तब उतार ली, और हमने तो डेरे रात को ही पहुँचा दिये और सुरति सत्पुरुष की गोद में पहुँचा दी, मगर तुम लोगों से कुछ वचन कहने को उतर आये हैं।

वचन ४—फिर यह फ़रमाया कि तुम जानते हो कि मेरी छः वर्ष की उमर थी जब से मैं परमार्थ में लगा हूँ, तब से यह अभ्यास पका हुआ है और

28

यह दृष्टान्त फ़रमाया—कि कच्चा पैराक हो उसको डूबते वक्त कहो कि अब तू पैर (तैर) तो उस वक्त वह क्या पैरेगा, वह तो डूबे ही गा और जो लड़कपन से पैरना सीख रहा है उसको दरया में डाल दोगे तो वह नहीं डूबेगा और यह देह तो खलड़ी है, यह तो किसी की भी नहीं रही है। इसका क्या है, और ज़िन्दगी भर का भजन-सिमरन सिर्फ़ इसी वास्ते है कि इस वक्त न भूले, इस वास्ते ऐसा नाम का अभ्यास करो कि चलते-फिरते नाम न भूले।

वचन ५—फिर स्वामीजी महाराज ने रायसाहिब सालगराम और कुल साधुओं व सत्संगियों व सत्संगिनों की तरफ मुतवज्जह हो कर फ़रमाया—कि जैसा मुझ को समझते हो वैसा ही अब राधाजी को समझना और राधा जी और छोटी माताजी को बराबर जानना।

वचन ६—फिर राधाजी महाराज को हुक्म दिया कि सिब्बो और बुक्की और बिसनों को पीठ न देना।

वचन ७—सनमुखदास को फ़रमाया कि इसको सब साधुओं का महन्त किया और यह फ़रमाया कि ऐसी महन्ती नहीं जैसी दुनिया में जारी है यानी सनमुखदास और विमलदास साधुओं के अफ़सर हुए और इन्तज़ाम और बन्दो-बस्त साधुओं का इनके तअल्लुक रहेगा और बाग़ में ठहरें और बाग़ का मालिक "प्रतापा" (सेठ प्रतापसिंह)।

वचन ८—फिर फ़रमाया कि गृहस्थी अपनी पूजा साधुओं से न करवावें।

वचन ९—फिर रद्धी बीबी ने पूछा कि हमारे वास्ते किसको तजवीज़ किया है? इस पर फ़रमाया कि गृहस्थियों के वास्ते तो राधाजी और साधुओं के वास्ते सनमुखदास।

वचन १०—स्वामीजी महाराज ने फ़रमाया :—कि गृहस्थी औरतें बाग़ में जाकर किसी साधु की पूजा और सेवा न करें। इन सबको चाहिये कि राधा जी के दर्शन और पूजा करें। फिर फ़रमाया कि शेर और बकरी को एक घाट पानी मैंने पिलाया है और किसी का काम नहीं है कि ऐसा करे।

वचन ११—फिर बीबी बुक्की ने अर्ज़ किया कि स्वामीजी! मुझको भी अपने साथ ले चलो। इस पर फ़रमाया कि तुम घबराओ मत, तुमको जल्दी बुला लेंगे, तुम अन्तर में चरणों की तरफ ज़ोर देना।

वचन १२—फिर लाला प्रतापसिंह ने अर्ज़ किया कि मुझको भी अपने संग ले चलो। इस पर फ़रमाया कि तुमसे अभी बहुत काम लेना है। बाग में रहोगे और सत्संग करोगे और कराओगे।

वचन १३—फिर सुदर्शनसिंह ने पूछा कि जो कुछ पूछना होवे तो किससे

पूछें ? इस पर फ़रमाया कि जिस किसी को पूछना होवे वह सालगराम से पूछे।

बचन १४—फिर लाला प्रतापसिंह की तरफ मुतवज्जह होकर फ़रमाया कि मेरा मत तो सतनाम और अनामी का था और राधास्वामी मत सालगराम का चलाया हुआ है। इसको भी चलने देना और सत्संग जारी रहे और सत्संग आगे से बढ़कर होगा।

बचन १५—फिर फ़रमाया कि सब सत्संगी खाह गृहस्थी या भेष, किसी तरह न घबरावें, मैं हरएक के अंग-संग हूँ और आगे को सबकी सँभाल पहले से विशेष रहेगी।

बचन १६—फिर फ़रमाया कि कलजुग में और कोई करनी नहीं बनेगी, केवल सतगुरु के स्वरूप का ध्यान और नाम का सुमिरन और ध्यान नाम का बनेगा।

बचन १७—लाला प्रतापसिंह ने अर्ज़ किया कि शब्द खुले। इस पर फ़रमाया कि धुन का सुनाई देना और उससे आनन्द का प्राप्त होना, यही शब्द का खुलना है।

बचन १८—फिर स्वामीजी महाराज ने राधाजी की तरफ मुतवज्जह होकर फ़रमाया कि मैंने स्वार्थ और परमार्थ दोनों में कदम रखा है यानी दोनों बरते हैं सो संसारी चाल भी सब करना और साधुओं को भी अपनी रीति करने देना।

(फिर स्वामीजी महाराज सेहन में से भीतर कमरे के तशरीफ़ ले गये, और करीब पौने दो बजे बाद दोपहर के अन्तर ध्यान हुए।)

परिशिष्ठ २

स्वामीजी महाराज का नाम	सेठ शिवदयालसिंहजी
पिता का नाम	सेठ दिलवालीसिंहजी
माता का नाम	(माता) महामायाजी
जन्म तारीख	२५ अगस्त सन् १८१८
धर्मपत्नी का नाम	माता नारायणीदेवी उर्फ़ राधाजी
सन्तान	कोई नहीं
भाई	सेठ प्रतापसिंह साहिब
	सेठ बिन्द्राबन साहिब
आम सत्संग शुरू किया	बसन्त पञ्चमी सन् १८६१ को
ज्योति-ज्योत समाए	१५ जून सन् १८७८ को
अपने बाद जानशीन नियुक्त किया	राधाजी को आगरा के लिये; बाबा जैमलसिंहजी महाराज को पंजाब के लिये
राधाजी का देहान्त	१ नवम्बर सन् १८९४
बाबा जैमलसिंहजी महाराज का जन्म	जुलाई १८३९
जन्म स्थान	गाँव घुमान, तहसील बटाला (ज़िला गुरदासपुर)
पिता का नाम	सरदार जोधसिंहजी
माता का नाम	माता दयाकौर
स्वामीजी महाराज से नाम-दान की प्राप्ति	सन् १८५६ में
पलटन में नौकरी शुरू की	सन् १८५६ में (सिख रेजिमेंट नं. २४)
पेंशन पाई	सन् १८८९ में
डेरे की बुनियाद रखी	सन् १८९१
ज्योति-जोत समाए	२९ दिसम्बर, १९०३ को
बाबाजी के भाई	भाई दानसिंहजी, भाई जीवनसिंहजी

बहनें — बीबी ताबो
बीबी राजो

विवाह — नहीं किया, बाल-ब्रह्मचारी रहे

अपने बाद जानशीन नियुक्त किया — हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी का जन्म — २० जुलाई १८५८

पिता ना नाम — सरदार काबलसिंहजी (सूबेदार मेजर)

माता का नाम — माता जीवनीजी

दादा का नाम — सरदार शेरसिंहजी (११५ वर्ष तक जिये)

धर्मपत्नी का नाम — माता किशनकौरजी

बहन-भाई — कोई नहीं

सर्विस — मिलट्री इन्जीनियर
सिख रेजीमेंट नं. १४ में (२८ वर्ष तक)

पेंशन पाई — अप्रेल सन् १९११ में

नाम-दान की प्राप्ति — १५ अक्तूबर सन् १८९४

नाम-दान बख्शा — १,२५,३७५ जीवों को

ज्योति-ज्योत समाए — २ अप्रेल सन् १९४८
(९० वर्ष की आयु में)

अपने बाद जानशीन नियुक्त किया — सरदार बहादुर महाराज जगतसिंहजी को

हुज़ूर सरदार बहादुर जगतसिंहजी महाराज का जन्म — २० जुलाई सन् १८८४

जन्म-स्थान — गाँव नूसी, ज़िला जालंधर

पिता का नाम — सरदार भोलासिंहजी

धर्मपत्नी का नाम — माता सदाकौरजी

पुत्र — श्री जसवन्तसिंह, सुपरिण्टेण्डिग इन्जीनियर

सर्विस — राजकीय कालेज लाहौर से १९०८ में एम. एस. सी. पास करके उसी साल कृषि कालेज लायलपुर में सर्विस कर ली।

नाम पाया — दिसम्बर सन् १९१० में

पेंशन पाई — सन् १९४३ में

गद्दी पर बिराजे	२ अप्रेल सन् १९४८
ज्योति-ज्योत समाए	२२ अक्तूबर सन् १९५१
अपने बाद जानशीन नियुक्त किया	महाराज चरनसिंहजी को

हुज़ूर महाराज चरनसिंहजी का जन्म	१२ दिसम्बर १९१६
पिता का नाम	सरदार हरबंससिंहजी (सुपुत्र हुज़ूर महाराज बाबा सावन सिंहजी)
माता का नाम	माता शामकौरजी
धर्मपत्नी का नाम	श्रीमती हरजीतकौरजी
भ्राता	कप्तान पुरुषोत्तमसिंहजी
नाम की प्राप्ति	३० जनवरी १९३३
गद्दी पर बिराजने की तारीख	२२ अक्तूबर १९५१

'तुम सलामत रहो हज़ार वर्ष,
हर वर्ष के हों दिन हज़ार'

Dharti Per Swarag

(HINDI)